MATS UNIVERSITY

NAAC GRADE A+ ACCREDITED UNIVERSITY

MATS CENTRE FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

विश्व का इतिहास पुर्नजागरण काल से लेकर 19 वी सदी की राष्ट्र राज्य प्रणाली तक

बैचलर ऑफ़ आर्ट्स (बी.ए.)

द्वितीय सेमेस्टर

SELF LEARNING MATERIAL

COURSE DEVELOPMENT EXPERT COMMITTEE

1- Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh
2- Dr. Sudhir Sharma , Subject Expert ,HOD Hindi Department, Kalyan College, Bhilai
3- Dr. Kamlesh Gogia Associate Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh
4- Dr. Sunita Shashikant Tiwari Associate Professor, MATS University Raipur Chhattisgarh
5- Dr. Rajesh Kumar Dubey , Subject Expert, Principal , Shahid Rajeev Pandey Government College ,Bhatagaon , Raipur ,Chhattisgarh
6- Dr. Shashikala Sinha , Government Mata Shabri Naveen Girls College, Bilaspur, Chhattisgarh

COURSE COORDINATOR

Ms. Surbhi singh Assistant Professor, MATS University ,Raipur, Chhattisgarh

COURSE /BLOCK PREPARATION

Prof.(Dr.) Reshma Ansari, HOD Hindi Department , MATS University Raipur Chhattisgarh

March, 2025

ISBN-978-93-49916-76-0

@MATS Centre for Distance and Online Education, MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from MATS University, Village- Gullu, Aarang, Raipur-(Chhattisgarh)

Printed & Published on behalf of MATS University, Village-Gullu, Aarang, Raipur by Mr. Meghanadhudu Katabathuni, Facilities & Operations, MATS University, Raipur (C.G.)

Disclaimer-Publisher of this printing material is not responsible for any error or dispute from contents of this course material, this is completely depends on AUTHOR'S MANUSCRIPT.

Printed at: The Digital Press, Krishna Complex, Raipur-492001(Chhattisgarh)

अनुक्रमणिका

माड्यूल	विषय- **विश्व का इतिहास**	
माड्यूल 1	**पुर्नजागरण**	
	इकाई-1 पुर्नजागरण – उदय, विस्तार	7—17
	इकाई-2 धर्म—सुधार आन्दोलन तथा प्रति धर्म—सुधार आन्दोलन	17—24
	इकाई-3 यूरोप में धर्म—सुधार आन्दोलन	25—32
माड्यूल 2	इकाई-4 यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों का उदय	33—38
	इकाई-5 समकालीन राजनीतिक विचार	39—65
	इकाई-6 पवित्र रोमन साम्राज्य एवं चार्ल्स	66—84
	इकाई-7 गृह—युद्ध के कारण एवं परिणाम	85—127
माड्यूल 3	इकाई-8 औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र तथा परिणाम	128—171
	इकाई-9 अमरीकी क्रान्ति	172—228
माड्यूल 4	इकाई-10 फ्रांस की राज्य क्रान्ति	231—272
	इकाई-11 राष्ट्रीय सभा के कार्य का मूल्यांकन	273—314
	इकाई-12 पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना	314—354
	एवंइकाई-13 पवित्र यूरोपीय संघ का महत्व	355—364
माड्यूल 5	इकाई-14 अमेरिकी गृह—युद्ध के कारण	366—389
		386—391
	इकाई 15 जर्मनी का एकीकरण	370—406

Acknowledgement

The Material (Pictures and images) we have used is purely for educational purpose. Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this book. Sould any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future of this book.

इतिहास

(विश्व का इतिहास पुनर्जागरण काल से लेकर 19वीं सदी की राष्ट्र राज्य प्रणाली तक)

(बी. ए. द्वितीय सेमेस्टर)अनुक्रमणिका :–

इकाई.1

पुर्नजागरण – उदय, विस्तार

☐ पुनर्जागरण के कारण
☐ अरबों का योगदान
☐ साहित्य के क्षेत्र में पुनर्जागरण
☐ विज्ञान के क्षेत्र में पुनर्जागरण
☐ भौगोलिक अनुसंधान एवं पुनर्जागरण तथा नई भौगोलिक खोजें पुनर्जागरण के महत्व
धर्म–सुधार आन्दोलन तथा प्रति धर्म–सुधार आन्दोलन
☐ धर्म – सुधार आन्दोलन के उद्देश्य, अर्थ एवं परिभाषाएँ

☐ सर्म–सुधार आन्दोलन के कारण एवं प्रमुख परिणाम
यूरोप में धर्म–सुधार आन्दोलन
प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण, इसकी सफलता के मुख्य कारण और इसके प्रभाव
यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों का उदय (त्पेम वf म्नितवचमंद `जंजमे)
☐ यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण
समकालीन राजनीतिक विचार
चार्ल्स प्रथम के समय स्पेन की विदेशनीति
पवित्र रोमन साम्राज्य एवं चार्ल्स
☐ इग्लेंड तथा चार्ल्स पंचम
☐ साम्राज्य का विभाजन
☐ फ्रांस में निरंकुश वाद चरम उत्कर्ष पर
☐ प्रथम ट्यूडर सम्राट टेनरी सप्तम के शासन काल की प्रमुख उपलब्धियाँ
☐ हेनरी अष्टम की विदेश नीति और उसके परिणाम
☐ महारानी एलिजाबेथ की गृह एवं वैरेशिकनीति
☐ गृह–युद्ध के कारण एवं परिणाम
चार्ल्स द्वितीय के काल की वैद्यानिक प्रगति
आधुनिक परिचात्य जगत के आर्थिक स्त्रोत
☐ वाणिज्यवाद की उत्पत्ति एवं परिभाषा
☐ आर्थिक वातावरण की अनुकूलता
वाणिज्यवाद एवं इसका मूल्यांकन
☐ उपनिवेशवाद का उदय, औद्योगिक क्रान्ति के कारण एवं राष्ट्रवाद का उदय

औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र तथा परिणाम
1688 ई. की गौरवपूर्ण क्रान्ति
☐ गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारण
गौरवपूर्ण क्रान्ति की प्रकृति
☐ 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणाम
अमरीकी क्रान्ति
☐ अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण
☐ अमेरिकी स्वाधीनता संग्राम के परिणाम तथा महत्व
☐ अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की पराजय और उपनिवेशों की विजय के कारण
99—108
109—120
फ्रांस की राज्य क्रान्ति (थ्त्म्छब्भ् त्म्टव्स्न्ज्प्व्छ)
121—175
☐ फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण, प्रभाव एवं परिणाम
☐ फ्रांस की क्रान्ति का महत्व, स्वरूप और इसके लिए दार्शनिकों के योगदान
☐ इतिहास कार हेज का विचार
राष्ट्रीय सभा के कार्य का मूल्यांकन
☐ मनुष्य के आधारभूत सिद्धान्तों की घोषणा तथा संविधान
☐ नेपोलियन बोनापार्ट
☐ ट्रेफाल्गर का युद्ध
☐ महाद्वीपीय व्यवस्था
☐ राष्ट्रों का युद्ध
☐ वाटरलू का युद्ध
☐ वियना कांग्रेस
☐ मैटरनिख युग, मैटरनिख और जर्मनी एवं मैटरनिख और इटली
यूरोप की संयुक्त वयवस्था (जीम बवदबमतज वि म्नतवचम)
पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व
☐ इसकी आलोचना तथा पतन
☐ यूरोप की संयुक्त व्यवस्था एवं इसकी कार्य प्रणाली
☐ समय – समय पर इस संघ के हुए पाँच सम्मेलनों की कार्य प्रणाली
☐ 1830 की फ्रांसीसी क्रांति
☐ पूर्वी समस्या
यूरोप का विस्तार
☐ उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड
☐ ब्रिटिश साम्राज्य
176—228
9

अमेरिकी गृह–युद्ध

☐ अमेरिकी गृह–युद्ध के कारण

संवैधानिक सिद्धान्त

☐ आर्थिक सिद्धान्त

राष्ट्रवाद, संघ स्तर पर इसके प्रभाव

☐ संघीय सम्पत्ति पर अधिकार

☐ गृह युद्ध का आरम्भ, लिंकन की भूमिका एवं अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाएँ

☐ दक्षिणी भाग पर उत्तरी भाग की जीत के प्रमुख कारण

10 इटली का एकीकरण

☐ कार्वेनरी का प्रारम्भ

☐ राष्ट्रवादियों और देशभक्तों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम की तैयारियाँ

मेजिनी और पीडमान्द का प्रादुर्भाव

☐ गैरीवालडी का योगदान

☐ माक्किवश – डी– कैवर का इटली के एकीकरण में योगदान

☐ कैवर की विदेश नीति

सम्राट विक्टर इमैन्युएल द्वितीय

जर्मनी का एकीकरण, 1815 – 1870

☐ जर्मनी के एकीकरण की पृष्ठभूमि

☐ फ्रांसीसी क्रान्ति के पहले जर्मनी की स्थिति

☐ जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ

☐ मैटरनिस और जर्मनी

☐ उदार वादी आन्दोलन का प्रारम्भ

श्लेजबिग हाल्सटीन का प्रश्न

फ्रैंकफर्ट संसद की सफलता

एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा ऐरफर्ट संसद

बिस्मार्क का उदय उसकी रक्त और तलवार की नीति

पुनर्जागरण

इस अध्याय के अन्तर्गत :

पुनर्जागरण के कारण अरबों का योगदान

साहित्य के क्षेत्र में पुनर्जागरण विज्ञान के क्षेत्र में पुनर्जागरण

भौगोलिक अनुसंधान एवं पुनर्जागरण तथा नई भौगोलिक खोजें

पुनर्जागरण के महत्व

अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :

पुनर्जागरण के कारण

अरबों का योगदान

साहित्य के क्षेत्र में पुनर्जागरण

विज्ञान के क्षेत्र में पुनर्जागरण की आप व्याख्या करेंगे
अन्य क्षेत्रों में पुनर्जागरण का विश्लेषण कर सकेंगे
☐ भौगोलिक अनुसंधान एवं पुनर्जागरण का अर्थ समझ सकेंगे तथा
नई भौगोलिक खोजों के परिणाम जान सकेंगे
☐ पुनर्जागरण के महत्व समझ सकेंगे।

परिचय

पुनर्जागरण उस नवीन बौद्धिक मनःस्थिति का प्रतीक है जो यूरोप को धीरे–धीरे आधुनिकता के द्वार पर ले आयी है। पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ होता है– फिर से जागना । इतिहासकार डेविस के शब्दों में पुनर्जागरण, मानव के स्वतंत्रा प्रिय साहसी विचारों को, जो मध्ययुग में धर्मधिकारियों द्वारा जकड़े व बन्दी बना दिये गये थे, को व्यक्त करता है । निःसन्देह पुनर्जागरण एक बौद्धिक एवं उदार सांस्कृतिक आन्दोलन था, जिसमें प्राचीन यूरोप की प्रेरणा के आधार पर नये यूरोप का निर्माण हुआ। पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' में लिखा है, " पुनर्जागरण का अर्थ है– विद्या का पुनर्जन्म अर्थात् कला, साहित्य, विज्ञान एवं देशी भाषाओं का विकास।

विशेषताएँ

मानववाद – पुनर्जागरण की एक प्रमुख विशेषता मानववाद थी। मानववाद का अर्थ है– मानव–जीवन में रुचि लेना, मानव की समस्याओं का अध्ययन करना, मानव का आदर करना तथा मानव जीवन के महत्व को स्वीकार करना । जीवन का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष मानने वाला धर्म, जीवन को ग्लानि की भावना से भर देता है, लेकिन मानववाद ने मानव जीवन को अधिक सुखी एवं समृद्ध बनाने का सन्देश दिया । पुनर्जागरण के मानववादी स्वरूप के कारण मनुष्य ने अपना ध्यान मानव जीवन की वास्तविक समस्याओं पर केन्द्रित किया । यह मानववादी भावना प्राचीन साहित्य की एक विशेषता थी । मध्ययुगीन धर्म एवं परम्पराओं से नियन्त्रित चिन्तन को मुक्त करने में मानववाद एवं ताक्रिक दृष्टिकोण ने मुख्य भूमिका निभायी।

पैट्राक्र जैसे मानववादी ने अन्धविश्वासों एवं धर्माधिकारियों की जीवन – प्रणाली की खिल्ली उड़ाई है। पैट्रा ने अपनी साहित्यिक कृतियों में पहली बार धार्मिक विषय के स्थान पर, प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य एवं मनुष्य के लौकिक प्रेम की गहरी अनुभूतियों का चित्रण किया। पैट्राक्र के बाद इटली एवं यूरोप के अन्य देशों में अनेक मानववादी विचारक हुए, जिन्होंने कला एवं साहित्य के व्यापारिक समृद्धि – धर्मयुद्धों ने यूरोप और एशिया के मध्य व्यापार को बढ़ावा दिया। इससे हुई समृद्धि ने पुनर्जागरण में चार प्रकार से सहयोग दिया :

(प) यूरोपीय व्यापारी व्यापार के सिलसिले में विभिन्न देशों में पहुँचे और वहाँ वे नये विचारों एवं प्रगतिशील तत्वों से परिचित हुए। जब वे अपने देश लौटे, तो ये नये विचार भी यूरोप पहुँचे ।

(पप) व्यापार ने नये–नये नगरो वेनिस, मिलान, फ्लोरन्स, आंग्लबर्ग, न्यूरेम्बर्ग आदि को विकसित किया ।
– इन नये व्यापार– केन्द्रों ने नवीन विचारों को फैलाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। नये नगरों ने विचार स्वातन्त्रता को बढ़ावा दिया और चर्च के विचारों के प्रति शंका को जन्म दिया, जिससे पुनर्जागरण को गति मिली।
(पपप) व्यापार से पैदा हुई समृद्धि के फलस्वरूप नव– धनाढ्य व्यापारी वर्ग ने शिक्षा, साहित्य एवं कला को प्रोत्साहित किया । पूर्व के समृद्ध पुस्तकालयों की संचित ज्ञान – राशि ने यूरोप को नये ज्ञान का प्रकाश दिया।
(पअ) समृद्ध व्यापारी वर्ग शक्ति के नये केन्द्र के रूप में उभरा और उसने चर्च के विचारों की कड़ी
आलोचना की, जैसे कि सूद को पाप मानने के चर्च के विचार का विरोध ।
कागज और छापाखाना
कागज बनाने की चीनी कला यूरोपवासियों ने अरबों के सम्पर्क से सीखी। कागज से परिचय ने लेखन को बढ़ावा दिया। 15वीं शताब्दी के मध्य में जोहन्नेस गुटेबर्ग नामक जर्मन ने मुद्रण यंत्र का आविष्कार किया, जिससे ज्ञान – प्रसार का मार्ग प्रशस्त हुआ । शीघ्र ही यूरोप में सुधरे हुए मुद्रण यन्त्रों ने शिक्षा एवं साहित्य में युगान्तकारी परिवर्तन किये। सुलभ एवं सस्ती पुस्तकों ने आम–जन तक ज्ञान को पहुँचाया, जिस पर अभी तक कुछ पादरियों एवं भद्रजनों का ही अधिकार था। छापाखानों एवं कागज ने यूरोप में सांस्कृतिक एवं वैचारिक जागरण को सम्भव बनाया। ज्ञान के प्रसार ने लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। बेकन, सत्य सत्ता की नहीं, वरन् समय की पुत्री है, की शिक्षा दी। मुद्रित पुस्तकों ने यूरोप के लोगों की बौद्धिक चेतना के विकास में सर्वाधिक योगदान दिया। प्रसिद्ध विद्वान विल ड्यूरां ने लेखन कला के बाद मुद्रण कला को ही दुनिया का सबसे बड़ा आविष्कार माना,
पश्चिमी विश्व
जिसने यूरोपीय चेतना के विकास को सर्वाधिक प्रभावित किया। अज्ञान के बादल छँटने से यूरोप ने ज्ञान – विज्ञान के नये सूर्य के दर्शन किये।
कुस्तुन्तुनिया पर तुर्की आधिपत्य 1453 ई० में बाईजेन्टाइन साम्राज्य (पूर्वी यूरोप) की राजधानी कुस्तुन्तुनिया पर तुर्कों ने अधिकार कर लिया। तुर्कों से परेशान होकर वहाँ के विद्वान सदियों से संचित ज्ञान के साथ यूरोप के विभिन्न देशों को पलायन कर गये। वे अपने साथ अमूल्य पाण्डुलिपियाँ, कलाकृतियाँ आदि भी ले गये । अकेला कार्डिनल बेसारिओन 800 पाण्डुलिपियों के साथ इटली पहुँचा। इसी तरह प्राचीन रोम एवं यूनान का अतुल ज्ञान – विज्ञान एवं विचार – पद्धति यूरोप को जागृत करने के लिए पहुँच गयी । तुर्कों द्वारा व्यापारियों को लूटने के कारण पूर्वी देशों से मसालों का अत्यधिक लाभदायक व्यापार संकट में पड़ गया। व्यापारिक मार्ग बन्द हो जाने के कारण वैकल्पिक मार्गों की खोज का मार्ग प्रशस्त हुआ। अमेरिकी महाद्वीप की खोज, भारत एवं पूर्वी देशों के लिए जल मार्गों की खोज आदि ने यूरोप के लिए नई सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये।

(पअ) समष्द्ध व्यापारी वर्ग षक्ति के नये केन्द्र के रूप में उभरा और उसने चर्च के विचारों की कड़ी

आलोचना की, जैसे कि सूद को पाप मानने के चर्च के विचार का विरोध ।

कागज और छापाखाना

कागज बनाने की चीनी कला यूरोपवासियों ने अरबों के सम्पर्क से सीखी। कागज से परिचय ने लेखन को बढ़ावा दिया। 15वीं षताब्दी के मध्य में जोहन्नेस गुटेबर्ग नामक जर्मन ने मुद्रण यंत्र का आविश्कार किया, जिससे ज्ञान – प्रसार का मार्ग प्रषस्त हुआ । षीघ्र ही यूरोप में सुधरे हुए मुद्रण यन्त्रों ने षिक्षा एवं साहित्य में युगान्तकारी परिवर्तन किये। सुलभ एवं सस्ती पुस्तकों ने आम–जन तक ज्ञान को पहुँचाया, जिस पर अभी तक कुछ पादरियों एवं भद्रजनों का ही अधिकार था। छापाखानों एवं कागज ने यूरोप में सांस्कृतिक एवं वैचारिक जागरण को सम्भव बनाया। ज्ञान के प्रसार ने लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। बेकन, सत्य सत्ता की नहीं, वरन् समय की पुत्री है, की षिक्षा दी। मुद्रित पुस्तकों ने यूरोप के लोगों की बौद्धिक चेतना के विकास में सर्वाधिक योगदान दिया। प्रसिद्ध विद्वान विल ड्यूरां ने लेखन कला के बाद मुद्रण कला को ही दुनिया का सबसे बड़ा आविश्कार माना,

जिसने यूरोपीय चेतना के विकास को सर्वाधिक प्रभावित किया। अज्ञान के बादल छँटने से यूरोप ने ज्ञान – विज्ञान के नये सूर्य के दर्षन किये।

कुस्तुन्तुनिया पर तुर्की आधिपत्य 1453 ई० में बाईजेन्टाइन साम्राज्य (पूर्वी यूरोप) की राजधानी कुस्तुन्तुनिया पर तुर्कों ने अधिकार कर लिया। तुर्कों से परेषान होकर वहाँ के विद्वान सदियों से संचित ज्ञान के साथ यूरोप के विभिन्न देषों को पलायन कर गये। वे अपने साथ अमूल्य पाण्डुलिपियाँ, कलाकृतियाँ आदि भी ले गये । अकेला कार्डिनल बेसारिओन 800 पाण्डुलिपियों के साथ इटली पहुँचा। इसी तरह प्राचीन रोम एवं यूनान का अतुल ज्ञान – विज्ञान एवं विचार – पद्धति यूरोप को जागष्त करने के लिए पहुँच गयी । तुर्कों द्वारा व्यापारियों को लूटने के कारण पूर्वी देषों से मसालों का अत्यधिक लाभदायक व्यापार संकट में पड़ गया। व्यापारिक मार्ग बन्द हो जाने के कारण वैकल्पिक मार्गों की खोज का मार्ग प्रषस्त हुआ। अमेरिकी महाद्वीप की खोज, भारत एवं पूर्वी देषों के लिए जल मार्गों की खोज आदि ने यूरोप के लिए नई सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये।

अरबों का योगदान

यूरोप के बहुत–से देशों विशेषकर स्पेन, सिसली एवं सार्डीनिया में अरबी लोगों की बस्तियाँ बस चुकी थीं। अरब लोग स्वभावतः स्वतंत्र विचारों को मानने वाले थे। अरबों पर प्राचीन यूनान के अरस्तू, प्लूटो आदि का बहुत प्रभाव था । अरस्तू और प्लूटो के विचारों से अरबों ने ही यूरोप को पुनः परिचित कराया । अरबों के पूर्वी देशों से अति प्राचीनकाल से ही समृद्ध व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क रहे थे, अतः अरबों ने स्वाभाविक रूप से पूर्वी ज्ञान–विज्ञान का भी यूरोप को तोहफा दिया ।

पुनर्जागरण का आरंभ इटली में

पुनर्जागरण की अरुणिमा सर्वप्रथम इटली में फैली और इटली से पुनर्जागरण का प्रकाश इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि यूरोपीय देशों में फैला। इटली में पुनर्जागरण की शुरुआत के निम्नलिखित करण हैं :

भौगोलिक अनुकूलता – भौगोलिक दृष्टि से इटली को यूरोप के अन्य देशों की तुलना में अनेक लाभ थे। भौगोलिक निकटता की सुविधा के कारण इटली पूर्वी एवं पश्चिमी देशों के मध्य बढती हुई व्यापारिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बनगया । पूर्वी से आने वाले नवीन विचारों को भी सर्वप्रथम इटली ने ही ग्रहण किया। धर्मयुद्धों से लौटने वाले यूरोपवासी सबसे पहले इटली के नगरों में रुकते थे। 1453 ई० में जब तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर लिया, तो वहाँ से भागने वाले बहुत से यूनानी लेखकों एवं कलाकारों ने भौगोलिक निकटता के कारण इटली के नगरों में ही शरण ली।

सांस्कृतिक विशिष्टता – इटली की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने भी इटली में पुनर्जागरण के उदय में उल्लेखनीय योगदान किया। इस युग के लेखकों और कलाकारों ने यूनान की संस्कृति के साथ–साथ प्राचीन रोम की संस्कृति से भी प्रेरणा ग्रहण की। इटली स्वयं प्राचीन रोमन संस्कृति की जन्म भूमि एवं केन्द्रबिन्दु था। अतः पुनर्जागरण के अंकुरित होने के लिए इटली की भूमि यूरोप के अन्य देशों की तुलना में अधिक उर्वर थी।

आर्थिक समृद्धि – इटली के नगर समृद्ध थे। उनकी यह समृद्धि विदेश व्यापार के कारण थी। भूमध्य सागर की अनुकूल स्थिति ने इटली के नगरों को प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बना दिया। मिलान, नेपल्स, फ्लोरेन्स, वेनिस आदि इतालवी नगर व्यापारिक समृद्धि के कारण सांस्कृतिक धरोहर के केन्द्र बन गए थे। अकेले फ्लोरेन्स नगर ने ही अनेक कलाकारों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय दिया। फ्लोरेंस के एक व्यापारिक परिवार कैसिमो मैडिसी और उसके पौत्र फ्लोरेन्स कैसिमो ने अपने धन का उपयोग दस हजार दुर्लभ ग्रन्थों को एकत्र करने में किया। यह उल्लेखनीय है कि पुनर्जागरण युग के अनेक कलाकार एवं लेखक जैसे लिओनार्दो, माइकेल एंजेलो, दांते, पेट्राक्र, बुकासियो, मैकियावली आदि फ्लोरेन्स नगर से जुड़े
हुए थे।

नगर – राज्य – इटली के कुछ नगर, जैसे फ्लोरेन्स और वेनिस, स्वतंत्र नगर–

राज्यों के रूप में विकसित हो गए एवं उनमें जनतंत्रवादी प्रवृत्तियों का भी विकास होने लगा। इन नगर– राज्यों पर सम्राट एवं पोप का नियन्त्रण अपेक्षाकृत बहुत शिथिल था। ये नगर – राज्य पुनर्जागरण की उद्घोषणा के आरंभिक एवं प्रमुख केन्द्र बन गए।

पुनर्जागरण के परिणाम : कला, साहित्य एवं विज्ञान का विकास

पुनर्जागरण के आयाम व्यापक रहे। परिणाम की दृष्टि से पुनर्जागरण ने यूरोप को और फिर शेष विश्व को काफी प्रभावित किया । पुनर्जागरण को एक नये युग के रूप में देखा जाने लगा। अनेक नवीन धाराएँ, जो इस युग में नहीं, उन सबका श्रेय पुनर्जागरण को दिया जाना उचित नहीं है,

दिया जाना उचित नहीं है, परन्तु पुनर्जागरण को नवयुग के संदेशवाहक के रूप में देखना कतई गलत नहीं है । पुनर्जागरण के परिणाम व्यापक रहे और इसका यूरोपीय जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रभाव पड़ा, जिन्हें निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है :

कला के क्षेत्र में पुनर्जागरण

पुनर्जागरणकालीन कला की प्रमुख विशेषता थी– सहज सौन्दर्य की उपासना । इस युग की कला – चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला एवं संगीत पर मानववादी प्रभाव को स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस युग की कला में मध्‍ ययुगीन कला प्रवृत्तियों के प्रति अरुचि दिखाई देती है। मध्यकालीन कला की आत्मा ईसाई चर्च के कठोर शिक्षाप्रद सांचे में दब सी गई थी। परन्तु पुनर्जागरण – युगीन कला धार्मिक बन्धनों से मुक्त होकर यथार्थवादी हो गई । यद्यपि कला के विषय धार्मिक भी रहे, लेकिन कला की प्रस्तुति एवं शैली में जीवन के यथार्थ एवं नैसर्गिक तत्वों का प्रतिबिम्बन हुआ । साहित्य की भाँति कला में भी मानववादी चेतना का उदय हुआ। इस युग की कला में जीवन के सहज सौन्दर्य का जीवन्त एवं स्वाभाविक अंकन देखने को मिलता है।

चित्रकला पुनर्जागरणकाल में चित्रकला जीवन्त एवं आकर्षक हो गयी। इसमें प्रकृति एवं जनसाधारण को स्थान मिला। इटली का जियेटो (1276–1333) आधुनिक चित्रकला का जन्मदाता माना जाता है। परन्तु चित्रकला के क्षेत्र में इटली के जिन तीन कलाकारों का सर्वाधिक योगदान रहा, वे हैं– लियोनार्दो द विन्ची (1452–1519) माइकेल एंजेलो (1475–1564) एवं राफेल (1483–1520) । लियोनार्दो फ्लोरेन्स का निवासी था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह वैज्ञानिक, गणितज्ञ, इन्जीनियर, संगीतज्ञ, दार्शनिक व चित्रकार था। उसने अपने चित्रों को यथार्थ बनाने के लिए मानव शरीर का गहन अध्ययन किया। उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'मोनालिसा' एवं 'द लास्ट सपर' हैं। मोनालिसा विश्व कला – जगत की एक अमूल्य निधि है । इस स्त्री के चेहरे पर जो हल्की सी मुस्कान है, वह रहस्यमयी दिखाई देती है । मोनालिसा के चित्र की विशेषता, भाव भंगिमा की सुंदरता, परिधान की शोभा एवं जलधाराओं, कुण्डों तथा पथरीली चट्टानों से युक्त उसकी पृष्ठभूमि है। द लास्ट सपर नामक चित्र में ईसा मसीह का रात्रिभोज दिखाया गया है। इसमें ईसा के चेहरे पर शांति के

भाव हैं। परन्तु उनके शिष्य हतप्रभ दिखाई देते हैं और एक शिष्य के चेहरे पर अपराध की झलक दिखाई देती है। लियोनार्दो द विन्ची की चित्रकला की मुख्य विशेषताएँ हैं– प्रकाश और छाया, रंगों का चयन तथा शारीरिक अंगों का सफल प्रदर्शन ।

एंजेलो बहुमुखी प्रतिभा का धनी थ। वह एक चित्रकार, मूर्तिकार, कविएवं वास्तुकार था । चित्रकारी के क्षेत्र में उसका अद्भूत योगदान वेटिकन में पोप के महल 'सिस्टाइन चौपेल' की छः हजार वर्गमीटर छत का सुन्दर चित्रांकन था। चार वर्षों के अल्पकाल में उसने इस छत पर 145 चित्रों का निर्माण किया । सिस्टाइन चौपेल के भित्ति चित्रों में 'द लास्ट जजमेंट' अंतिम न्यcraftययद्ध नामक चित्र को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। एंजोलो के कलात्मक चित्रों की एक प्रमुख विशेषता, उसके मानवीय शरीर का, उसकी गतिमान अवस्था में, बड़ा नैसर्गिक एवं जीवन्त चित्रण है।

राफेल भी इसी युग का एक महान् चित्रकार था । यद्यपि 37 वर्ष की अल्पायु में ही उसका देहान्त हो गया लेकिन उसने अपने जीवनकाल में अनेक श्रेष्ठ चित्रों का सृजन किया। उसके चित्रों में मातृत्व का

पश्चिमी विश्व

स्व–प्रगति की जाँच करें : 1. धर्मयुद्ध (क्रूसेड) को पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण माना जाता है। स्पष्ट करें।

पुनर्जागरण का आरम्भ इटली में ही क्यों हुआ ? कोई एक कारण स्पष्ट करें।`

हृदयग्राही सौन्दर्य तथा बालकों का मनोहारी वात्सल्य रूप दिखाई देता है। उसका सबसे प्रसिद्ध चित्र मेडोना है। जीसस क्राइस्ट की माँ मेडोना का दिव्य नारीत्व आज भी दर्शकों का मन मोह लेता है।

मूर्तिकला – यह उल्लेखनीय है कि मूर्तिकला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में यूरोप में मध्यकाल के दौरान अधिकांश कार्य उत्तरी यूरोप के क्षेत्र में हुआ न कि इटली में । उत्तरी यूरोप में इस काल में सर्वत्र गोथिक शैली, मध्ययुगीन तथाकथित बर्बर शैली का बोलबाला रहा, भले ही वह गिरजाघरों का निर्माण हो या सार्वजनिक महत्व के स्मारकों का या निजी भवनों का । लेकिन चौदहवीं शताब्दी से कला के सभी क्षेत्रों – मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला सहित – का नेतृत्व इटली के समृद्धशाली नगरों के हाथ में आ गया। नव धनाढ्य अभिजात्य वर्ग की धर्मनिरपेक्ष अभिरुचियों की संतुष्टि के लिए इन नगरों में कला के नवीन रूपों का सृजन किया गया।

पुनर्जागरणयुगीन कलाकारों ने मूर्तिकला की गोथिक परम्पराओं जैसे– भारी वस्त्र परिधान, कोणात्मक शरीर, मनुष्य का विषादपूर्ण चेहरा आदि को तिलांजलि दे दी। मूर्तिकला में यथार्थवादी अंकन की शुरुआत इटली की मूर्तिकला में देखी जा सकती है। मूर्तिकला के क्षेत्र में लोरेन्जो गिबेर्ती, दोनों तेल्लो और माइकेल एंजेलो का नाम विशेष उल्लेखनीय है । गिबेर्ती एक महान मूर्तिकार था । उसने फ्लोरेन्स के गिरजाघर के लिए सुन्दर दरवाजा निर्मित किया जिसकी प्रशंसा करते हुए एंजेलो ने कहा, ''ये स्वर्ग में रखे जाने योगय है ।'' दोनोतेल्लो द्वारा निर्मित

वेनिस की संत मार्क की आदमकद मूर्ति श्रेष्ठ कलाकृति मानी जाती है। एंजेलो की मूर्तियों में डेविड की मूर्ति भी अत्यंत प्रसिद्ध है। उसने डेविड को वीर पुरुष के रूप में तो प्रस्तुत किया ही, साथ ही उसके व्यक्तित्व में कोमलता की भी प्रस्तुति की। इस विशालकद मूर्ति का निर्माण उसने फ्लोरेन्स में किया। इसके अतिरिक्त उसकी 16 फुट ऊँची पेता की मूर्ति इस युग की मूर्तिकला की प्रतिनिधि ा कृति है । यह एक सुन्दर युवा कुँवारी स्त्री की मूर्ति है, जो अपनी गोद में मृत ईसा मसीह के शरीर को लिए हुए है।

स्थापत्य कला – पुनर्जागरण युग में में स्थापत्य की नवीन शैली का विकास हुआ। मध्ययुगीन गोथिक शैली के स्थान पर, प्राचीन यूनान, रोम और अरब की शैलियों का समन्वय करके इस नवीन शैली को अस्तित्व में लाया गया। इसमें डिजाइन तथा सजावट पर विशेष महत्व दिया गया। गोल मेहराबों का उपयोग किया जाने लगा। इस नवीन शैली की शुरुआत इटली से हुई और बाद में अन्य देशों में इसका प्रसार हुआ। फ्लोरेन्स, निवास, ब्रूनेस्की (1377–1446) इस नवीन शैली का प्रवर्तक था। इस शैली में मेहराबों, गुम्बदों और स्तम्भों को प्रध ानता दी गयी। उसने नुकीले मेहराबों के स्थान पर गोल मेहराबों का निर्माण किया। सोलहवीं शताब्दी में इस नवीन शैली का पूर्ण विकास हो चुका था। इस शताब्दी का सबसे प्रसिद्ध स्थापत्यकार माइकेल एंजेलो था। उसने तथा राफेल ने मिलकर रोम में सेंट पीटर के गिरजाघर का निर्माण किया। इस गिरजाघर का विशाल और भव्य गुम्बद पुनर्जागरण कालीन स्थापत्य की अन्यतम देन है। इटली के पुनर्जागरण से प्रभावित स्थापत्य शैली का पश्चिम यूरोप पर भी प्रभाव पड़ा। पेरिस का लूब्रे प्रासाद, लन्दन का सन्त पाल का गिरजाघर तथा स्पेन – इस्कोरियल का प्रासाद आदि इस शैली के अद्वितीय नमूने हैं।

संगीत – पुनर्जागरण – युग में संगीत के क्षेत्र में भी कई नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ। पुनर्जागरण और धर्म–सुधार के कारण गिरजाघरों में लौकिक संगीत को स्थान मिला। मार्टिन लूथर ने गिरजाघरों में धार्मिक मंत्रों एवं गीतों के सामूहिक गान की परंपरा का सूत्रपात किया । वाद्य संगीत लोकप्रिय हुआ । साधारण से रीबेक वाद्य यंत्र को वायलिन में बदल दिया गया एवं हाप्सी कार्ड का निर्माण किया गया जो कि पियानो का पूर्व रूप था। आर्केस्ट्रा संगीत भी पुनर्जागरण की देन है। सबसे पहला ऑपेरा 1594 में प्रस्तुत किया गया। इटली का वालेस्ट्राइना (1524–1594) इस युग का महान् संगीतकार था जिसने गिरजाघरों के लिए प्रार्थनाएँ संगीतबद्ध कीं।

॓मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

14

साहित्य के क्षेत्र में पुनर्जागरण

विशेषताएँ

पुनर्जागरण काल से पहले साहित्य का सृजन केवल लैटिन एवं यूनानी भाषा में ही होता रहा था । देशी भाषाएँ असभ्य मानी जाती थीं। लेकिन पुनर्जागरण काल में देशी भाषाओं में साहित्य लिखा गया, जिससे साहित्य का व्यापक प्रसार हुआ । इतालवी, फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगाली, जर्मन, अंग्रेजी, डच आदि बोलचाल की भाषाओं में साहित्य लिखा गया। इस प्रकार बोलचाल की भाषाओं

में साहित्य की एक विशेषता यह भी थी कि इसमें मानव को साहित्य की विषय–वस्तु बनाया।

इतालवी साहित्य – पुनर्जागरणयुगीन इतालवी साहित्यकारों में दांते (1265–1321), पैट्राक्र (1304–1374), बुकासियो (1313–1375) मुख्य थे। दांते की 'डिवाइन कॉमेडी' मातृभाषा में लिखी एक महत्वपूर्ण रचना थी। दांते 'इतालवी कविता का जनक कहा जाता है। पैट्राक्र ने प्राचीन रोमन और यूनानी साहित्य के सौंदर्य एवं महत्व की ओर ध्यान आकर्षित किया। उसने सम्पूर्ण यूरोप में मानववादी विचारधारा को प्रोत्साहित किया । इसलिए उसे 'मानववाद का पिता' कहा गया। बुकासियो की प्रसिद्ध कृति 'डेकेमेरोन' है, जिसमें 100 कहानियाँ संग्रहित हैं। इसने इतालवी समाज में व्याप्त नैतिक भ्रष्टाचार को उजागर किया।

फ्रांसीसी साहित्य – फ्रांस के रेबेला (1494 – 1553ई०) तथा मॉन्टेग (1533 – 1592 ई०) इसी युग की देन हैं। फ्रांस का रेबेला एक गद्य लेखक था, उसने धार्मिक कट्टरता एवं अंधविश्वासों के विरोध में आवाज उठाई। उसने बड़ी सपाट एवं सशक्त फ्रांसीसी भाषा में अपनी रचनाएँ लिखीं। उसने अपनी विषय–वस्तु के प्रतिपादन में जीवन के भौतिक, आनन्दमय एवं धर्मनिरपेक्ष पक्ष पर जोर दिया। उसकी रचानाओं में 'हीरोइक डीड्स ऑफ गारगुन्त्वा एण्ड पेन्टाग्रुएल' प्रमुख है। मॉन्टेग एक निबन्धकार था। उसने अपने निबन्ध सुबोध फेच में लिखे थे। अपने विवेकशील चिन्तन के कारण मॉन्टेग को वाल्तेयर का पूर्वगामी माना जाता है। उसने अपने निबन्धों में मानव – जीवन की समस्याओं एवं उनके समाधान के प्रति गहरी रुचि दिखाई। वह निबन्धकार के साथ ही एक मानवतावादी भी था।

अंग्रेजी साहित्य – पुनर्जागरणकालीन अंग्रेज कवि चौसर (1340–1400) को 'अंग्रेजी काव्य का पिता' कहा जाता है। उसकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'कैन्टरबरी टेल्स' है। इसमें कैन्टरबरी की यात्रा पर निकले. यात्रियों के गुण–दोषों का वर्णन किया गया है। उसने लम्बी कविता के रूप में सोनेट को जन्म दिया। चौसर के बाद सर टॉमस मूर (1478–1535) ने पुनर्जागरण कार्य को आगे बढ़ाया। वह धर्म एवं विधिशास्त्र का पंडित था । उसकी महान् कृति 'यूटोपिया' है। इसमें उसने इंग्लैण्ड के जनजीवन में व्याप्त बुराइयों एवं दोषों का निरूपण किया है। वह आदर्श समाज एवं आदर्श राज्य की स्थापना का पक्षधर था। एडमण्ड स्पेन्सर (1522 – 1599) इंग्लैण्ड में पुनर्जागरण काल का एक अन्य महान साहित्यकार था । उसकी श्रेष्ठ कृति है– 'फेयरी क्वीन ।' इसमें मानवीय मूल्यों का महत्व बताया गया है। पुनर्जागरण की इंग्लैण्ड की सबसे बड़ी देन शेक्सपियर (1564 – 1616) है । वह अपने युग का महानतम कवि एवं नाटककार था। उसके नाटकों में मानव के सांसारिक जीवन की वास्तविक अनुभूतियों का बड़ा सहज, स्वाभाविक, जीवन्त एवं हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। उसक नाटकों में 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस', 'रोमियो जूलियट', 'हैमलेट, मैकबेथ' आदि प्रमुख हैं। निःसंदेह महाकवि शेक्सपियर आज भी एक बेजोड़ नाटककार है।

स्पेनिश साहित्य – स्पेन के साहित्यकारों में सर्वेन्टीज (1547 – 1616) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसने 'ड्रान क्विक्जोट' नाम की पुस्तक की रचना की ।

इस रचना का नायक डान क्विक्जोट आपने आपको नाइट (सरकार) समझता है और दुनिया को सुधारने की कोशिश में दुर्गति का शिकार बनता है । आपने ये उक्तियाँ अवश्य पढ़ी या सुनी होंगी– ''हर कुत्ते का अपना दिन आता है, '' '' खीर का प्रमाण खाने में है, '' '' एक जैसे पंखों के पक्षी एक साथ रहते हैं। '' – ये सभी विशेषोक्तियाँ सर्वेन्टीज की लेखनी से ही निकली हैं।

डच साहित्य डच साहित्यकारों में इरैस्मस (1466–1536) प्रमुख था। वह अपने समय का मुख्य मानववादी था। उसकी शैली और विद्वता ने उसे यूरोप का महान् विद्वान बनाया । वह इतना अधिक लोकप्रिय हो गया कि यूरोप के अधिकांश विश्वविद्यालय और राजवंशी लोग उसे अपने यहाँ आमंत्रित करने में गर्व का अनुभव करने लगे। इरैस्मस ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अन्धविश्वासों, असहिष्णुता और अज्ञान के विरुद्ध सतत् संघर्ष किया। अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'इन द प्रेज ऑफ फौली' में मूर्खता की प्रशंसा में उसने व्यंग्यपूर्ण शैली में धर्माधिकारियों का उपहास उड़ाया । यह कहा जाता है कि लूथर के क्रोध की तुलना में इरैस्मस के मजाकिया कथनों ने पोप को अधिक नुकसान पहुँचाया।

विज्ञान के क्षेत्र में पुनर्जागरण

पुनर्जागरण काल में विज्ञान में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस काल में वैज्ञानिक विकास के लिए अनेक कारण जिम्मेदार रहे। इनमें प्रमुख थे :

(प) प्रोटेस्टेन्ट धर्म के लोगों को धार्मिक नियन्त्रण से मुक्ति दिलाकर स्वतंत्र – विचारों को प्रेरित करना, (पप) मानववाद से बौद्धिक विकास में मदद लना, (पपप) भौगोलिक खोजों से नवीन चीजों के बारे में जानने की जिज्ञासा, तथा (पअ) नई दुनिया की खोज के साथ ही नये दृष्टिकोण का अभ्युदम ।

अंग्रेज, फ्रांसिस बेकन (1561–1626) ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए लिखा है कि ज्ञान की प्राप्ति केवल प्रेक्षण और प्रयोग करने से ही हो सकती है। बेकन के अनुसार '' घटनाओं के कारण को समझकर एक सिद्धान्त बना लें और फिर उसकी प्रयोग द्वारा जाँच करें। यह प्रयोग की विधि ही वैज्ञानिक क्रिया – विधि ा का आधार है । ''

पोलैण्ड के वैज्ञानिक कॉपरनिक्स (1473–1543) ने वैज्ञानिक विधि, प्रेक्षण एवं गणना के आधार पर ही बाइबिल एवं टॉलमी की प्राचीन प्रस्थापना को ध्वस्त कर सिद्ध किया कि ''पृथ्वी एक ग्रह है, जो सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। पोप के आदेश एवं मृत्यु भय से उसे अपने नये विचारों का प्रचार बन्द करना पड़ा। बाद में इटली के वैज्ञानिक ब्रूनों (1548–1600) ने कॉपरनिक्स के सिद्धान्तों की पुष्टि की, तो उसे धर्माधिकारियों ने जिन्दा जलवा दिया। अन्ततः जर्मन खगोलशास्त्री जॉन केपलर (1571–1630) ने गणित के प्रमाणों के आधार पर कॉपरनिक्स के विचारों की पुष्टि की। उसने बताया कि पृथ्वी दीर्धवृत्ताकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करती है। इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो (1564–1642) ने दूरबीन का आविष्कार कर इस सत्य को लोगों को नंगी आँखों से दिखाया। गैलीलियों ने ही अरस्तू को गलत सिद्ध करते हुए बताया कि गिरते हुए पिण्डों की गति उनके भार पर नहीं वरन् दूरी पर निर्भर करती है। हॉलैण्ड के प्रसिद्ध चिकित्सक वेसेलियस (1514–1564) ने मानव शरीर की बनावट नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी, जिससे शल्य क्रिया की आध

ाार शिला रखी गयी। इंग्लैण्ड के विलियम हार्वे (1578–1657) ने रक्त प्रवाह के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर चिकित्सा विज्ञान को समृद्ध किया । विज्ञान एवं खगोल विज्ञान को सर्वाधिक प्रभावित, इंग्लैण्ड के महान् वैज्ञानिक आइजक न्यूटन (1642–1727) के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त ने किया। इससे सर्वप्रथम यह सिद्ध हुआ कि विश्व देवयोग से होने वाली आकस्मिक घटना न होकर एक ऐसी वस्तु है जो प्रकृति के सुव्यवस्थित नियमों से चलती है। पुनर्जागरण काल में सबसे ज्यादा विज्ञान – आधारित तकनीकी का विकास खदान, धातु–विज्ञान और रसायन–शास्त्र में हुआ। नये–नये खनिजों की खोज, उन्हें निकालने की खनन – प्रणालियों एवं उन्हें शुद्ध कर गलाने, ढालने एवं मिश्रित धातुओं का विकास रसायन शास्त्र से ही सम्भव हुआ । विज्ञान के हर क्षेत्र में इस काल में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। इस युग ने दुनिया को नवीन विज्ञान युग में प्रवेश कराया ।

अन्य क्षेत्रों में पुनर्जागरण

राजनीतिक क्षेत्र में पुनर्जागरण – पुनर्जागरण ने नये राजनीतिक विचारों को जन्म दिया। राजनीतिक चिन्तन में दाँते का नाम सबसे पहले लिया जाता है। उसकी कृति 'द मोनार्क्या' में उसने अधार्मिक विषयों में राजसत्ता के सर्वोपरि होने का सिद्धान्त दिया। फ्रांस के मर्सिग्लियो (1275–1343) ने अपनी कृति 'डिफेन्डर ऑफ पीस' में पोप के राजनीति में हस्तक्षेप को अनुचित बताया। इटली का फ्लोरेन्सवासी मैकियावली (1469–1527) महान् राजनीतिक चिन्तक था, जिसे आधुनिक चाणक्य भी कहा जाता है। उसने वहाँ के कई राजाओं की सेवा की। उसकी कृति 'द प्रिन्स' सबसे प्रसिद्ध है। उसका विचार था कि धर्म ने राज्यों को निर्बल बनाया है। उसने राजनीति एवं धर्म के पृथक्करण की पैरवी की। पोप एवं पादरियों ने उसकी कटु आलोचना की और उसे 'शैतान का अवतार' कहा। उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी एवं साध्य के लिए साधनों की उपयुक्तता पर आधारित था ।

भौगोलिक अनुसंधान एवं पुनर्जागरण– पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप जो वातावरण तैयार हो रहा था, उसने यूरोपवासियों को इस संसार को देखने तथा उसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया । इससे यूरोपवासियों की भूगोल में अभिरुचि का विकास हुआ तथा अनेक भौगोलिक खोजें क्रिस्टोफर कोलम्बस, जो भारत के लिए नया मार्ग खोजने निकला था, ने 1492 ई० में अमेरिकी महाद्वीप खोज निकाला द्य पुर्तगाल के वास्कोडिगामा ने 1498 ई० में अफ्रीका का चक्कर लगाते हुए भारत के लिए समुद्री मार्ग खोज लिया। इस दौरान दुनिया के अज्ञात भूखण्डों एवं छोटे–बड़े द्वीपों को साहसी नाविकों के कारनामों ने खोजा और मानवता की महान् सेवा की । इटली के अमेरिगो वेस्पुची ने 1499 ई० में अमेरिकी महाद्वीप के चक्कर लगाकर यह बताया कि नया महाद्वीप एशिया का एक भाग न होकर एक स्वतंत्र महाद्वीप है, जो उसके नाम से ही बाद में 'अमेरिका' कहलाया । 1519 ई० में सपेन के कार्तेज ने मैक्सिको व 1532 ई० में फ्रांसिस्को पिजारो ने पेरू की खोज की। इन खोजों ने स्पेन की समृद्धि के द्वार खोले । नई भौगोलिक खोजों के निम्नलिखित प्रभाव हुए :

यूरोप शेष दुनिया का भाग्य–विधाता बन गया।
व्यापार एवं वाणिज्य की जबर्दस्त प्रगति हुई ।
नई खोजों ने यूरोपीय देशों में उपनिवेशों की स्थापना के लिए होड़ शुरू की जिससे यूरोप द्वारा दुनिया को लूटने की राह खुल गयी ।
ईसाई धर्म का व्यापक प्रसार हुआ और यह विश्वव्यापी धर्म बन गया।
नई खोजों ने ही घृणित दास व्यापार को जन्म दिया।
पृथ्वी के बारे में मानव के ज्ञान में वृद्धि हुई और अन्तर्महाद्वीपीय सम्बन्ध कायम हुए।
कृषि में नई फसलों से सभ्य संसार का परिचय हुआ । गन्ना, कहवा, चाय, मक्का, आलू, तम्बाकू, नील आदि की उपजों ने मानवता की अप्रतिम सेवा की।
पुनर्जागरण का महत्व
पुनर्जागरण का महत्व अत्यन्त व्यापक है। इसके कारण यूरोपवासियों के जीवन में आमूल चूक परिवर्तन हुए। मध्यकालीन मान्यताओं एवं अन्ध–विश्वासों का अन्त हुआ और आधुनिक युग का आरंभ हुआ । विचार – स्वातन्त्रय को बढ़ावा मिला। मानव – केन्द्रित चेतना का उत्कर्ष हुआ । इसने मनुष्य को उसकी महत्ता से अवगत कराया। कला एवं विज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इतना ही नहीं, भावी धर्म–सुधार आन्दोलन के मार्ग को सुगम बनाया। संक्षेप में, पुनर्जागरण के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में समझ सकते हैं
मानव को महत्व सभ्यता के विकास के बाद से पहली बार मानव को केन्द्र में रखकर सोचने पर जोर दिया गया। इससे काल्पनिक परलोक के स्थान पर यथार्थ संसार को महत्व मिला।
तर्क एवं विवेक को बढ़ावा तर्क एवं विवेक पर आधारित विचारों ने संकीर्ण ध ाार्मिक रूढ़िवाद और अन्धविश्वासों पर चोट की। इससे ज्ञान – विज्ञान के विकास का मार्ग खुला।
स्व–प्रगति की जाँच करें
पुनर्जागरण युग में संगीत के क्षेत्र में किन नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ?
4. पुनर्जागरण–युग में अंग्रजी
साहित्य के अंग्रेज कवि चौसर को अंग्रेजी काव्य का पिता क्यों कहा जाता है?
॰

देशी भाषाओं की प्रगति – साहित्य में पहली बार स्थानीय बोलचाल की भाषाओं– अंग्रेजी, इतालवी, स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन आदि में विपुल एवं विविध साहित्य लिखा गया ।
राष्ट्रीयता की भावना का विकास पुनर्जागरण ने यूरोप के लोगों में अपनी भाषा, संस्कृति एवं ज्ञान के प्रति गौरव बढ़ावा, इससे राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ।
विज्ञान को बढ़ावा – नवीन सोच एवं ज्ञान के प्रसार ने विज्ञान के क्षेत्र में नये सिद्धान्तों को स्थापित किया। फलतः आधुनिक विज्ञान की प्रगति का मार्ग

प्रशस्त हुआ।

कला का अद्भुत विकास – पुनर्जागरण का महत्व इस बात में भी है कि इसने कला को रूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त कर विकास के चरम पर पहुँचाया कला के हर क्षेत्र में इस युग में नये प्रतिमान स्थापित किये गये।

विज्ञान, इस प्रकार हम देखते हैं कि पुनर्जागरण एक उदार सांस्कृतिक आन्दोलन था जिसने कला, साहित्य, धर्म और राजनीति में बड़े परिवर्तनों के लिए मार्ग तैयार किया । पुनर्जागरण के कारण आर्थिक क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा । भौगोलिक अनुसंधानों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नये द्वार खोले । पुनर्जागरण को मानव सभ्यता के इतिहास में एक परिवर्तनकारी बिन्दु कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा।

सारांश

पुनर्जागरण का महत्व अत्यन्त व्यापक है। इसके कारण यूरोपवासियों के जीवन में आमूल चूक परिवर्तन हुए । मध्यकालीन मान्यताओं एवं अन्ध–विश्वासों का अन्त हुआ और आधुनिक युग का आरंभ हुआ। विचार – स्वातन्त्रय को बढ़ावा मिला। मानव – केन्द्रित चेतना का उत्कर्ष हुआ । इसने मनुष्य को उसकी महत्ता से अवगत कराया। कला एवं विज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इतना ही नहीं, भावी धर्म–सुधार आन्दोलन के मार्ग को सुगम बनाया। संक्षेप में, पुनर्जागरण के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में समझ सकते हैं :

मानव को महत्व

सभ्यता के विकास के बाद से पहली बार मानव को केन्द्र में रखकर सोचने पर जोर दिया गया। इससे काल्पनिक परलोक के स्थान पर यथार्थ संसार को महत्व मिला।

तर्क एवं विवेक को बढ़ावा तर्क एवं विवेक पर आधारित विचारों ने संकीर्ण ध ार्मिक रूढ़िवाद और अन्धविश्वासों पर चोट की। इससे ज्ञान – विज्ञान के विकास का मार्ग खुला ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक पवित्र तीर्थ जेरूसलम के प्रश्न

को लेकर ईसाइयों और मुसलमानों के बीच यूरोप में लड़े गये युद्धों को 'धर्मयुद्ध' के नाम से जाना जाता है। इन धर्मयुद्धों के कारण यूरोपवासियों का पूर्व के साथ सम्पर्क हुआ जिससे उन्हें पूर्व के ज्ञान–विज्ञान का परिचय मिला । अरबी अंक, बीजगणित, दिग्दर्शन – यंत्र और कागज यूरोप में धर्मयुद्धों के दौरान पहुँचे । धर्मयुद्धों ने यात्राओं एवं भौगोलिक अध्ययन को प्रोत्साहित किया । धर्मयुद्धों ने नवीन विचारों का प्रसार करने तथा पुराने विचारों, विश्वासों एवं संस्थाओं को क्षति पहुँचाकर महत्वपूर्ण कार्य किया और उसी के फलस्वरूप पुनर्जागरण सम्भव हो सका।

इटली के नगर समृद्ध थे। उनकी यह समृद्धि विदेश व्यापार के कारण थी। भूमध य सागर की अनुकूल स्थिति ने इटली के नगरों को प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बना

दिया। मिलान, नेपल्स, फ्लोरेन्स, वेनिस आदि इतालवी नगर व्यापारिक समृद्धि के कारण सांस्कृतिक धरोहर के केन्द्र बन गए थे। अकेले फ्लोरेन्स नगर ने ही अनेक कलाकारों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय दिया। फ्लोरेंस के एक व्यापारिक परिवार कैसिमो मैडिसी और उसके पौत्र फ्लोरेन्स कैसिमो ने अपने धन का उपयोग दस हजार दुर्लभ ग्रन्थों को एकत्र करने में किया। यह उल्लेखनीय है कि पुनर्जागरण युग के अनेक कलाकार एवं लेखक जैसे लिओनार्दो, माइकेल एंजेलो, दांते, पेट्राक्र, बुकासियो, मैकियावली आदि फ्लोरेन्स नगर से जुड़े हुए थे।

पुनर्जागरण – युग में संगीत के क्षेत्र में भी कई नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ। पुनर्जागरण और

धर्म–सुधार के कारण गिरजाघरों में लौकिक संगीत को स्थान मिला। मार्टिन लूथर ने गिरजाघरों में धार्मिक मंत्रों एवं गीतों के सामूहिक गान की परंपरा का सूत्रपात किया । वाद्य संगीत लोकप्रिय हुआ। साधारण से रीबेक वाद्य यंत्र को वायलिन में बदल दिया गया एवं हाप्सी कार्ड का निर्माण किया गया जो कि पियानो का पूर्व रूप था। आर्केस्ट्रा संगीत भी पुनर्जागरण की देन है। सबसे पहला ऑपेरा 1594 में प्रस्तुत किया गया। इटली का वालेस्टाइना (1524–1594) इस युग का महान् संगीतकार था जिसने गिरजाघरों के लिए प्रार्थनाएँ संगीतबद्ध कीं ।

4. पुनर्जागरणकालीन अंग्रेज कवि चौसर (1340–1400) को 'अंग्रेजी काव्य का पिता' कहा जाता है। उसकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'कैन्टरबरी टेल्स' है। इसमें कैन्टरबरी की यात्रा पर निकले यात्रियों के गुण–दोषों का वर्णन किया गया है। उसने लम्बी कविता के रूप में सोनेट को जन्म दिया। चौसर के बाद सर टॉमस मूर (1478–1535) ने पुनर्जागरण कार्य को आगे बढ़ाया। वह धर्म एवं विधिशास्त्र का पंडित था। उसकी महान् कृति 'यूटोपिया' है। इसमें उसने इंग्लैण्ड के जनजीवन में व्याप्त बुराइयों एवं दोषों का निरूपण किया है। वह आदर्श समाज एवं आदर्श राज्य की स्थापना का पक्षधर था। एडमण्ड स्पेन्सर (1522 – 1599) इंग्लैण्ड में पुनर्जागरण काल का एक अन्य महान साहित्यकार था। उसकी श्रेष्ठ कृति है – 'फेयरी क्वीन।' इसमें मानवीय मूल्यों का महत्व बताया गया है। पुनर्जागरण की इंग्लैण्ड की सबसे बड़ी देन शेक्सपियर (1564–1616) है। वह अपने युग का महानतम कवि एवं नाटककार था। उसके नाटकों में मानव के सांसारिक जीवन की वास्तविक अनुभूतियों का बड़ा सहज, स्वाभाविक, जीवन्त एवं हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। उसक नाटकों में 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस', 'रोमियो जूलियट', 'हैमलेट, मैकबेथ' आदि प्रमुख हैं। निःसंदेह महाकवि शेक्सपियर आज भी एक बेजोड़ नाटककार है।

अभ्यास–प्रश्न

पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं ? यूरोप में पुनर्जागरण के आगमन के कारणों का वर्णन करें। 2. पुनर्जागरण कालीन साहित्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

साहित्य, कला एवं विज्ञान पर पुनर्जागरण के प्रभाव का वर्णन करें।

पुनर्जागरण सर्वप्रथम इटली में ही क्यों आरंभ हुआ ? इसके करणों पर प्रकाश डालें।

इकाई 2

धर्म–सुधार आन्दोलन तथा प्रति धर्म–सुधार आन्दोलन

इस अध्याय के अन्तर्गत :

धर्म–सुधार आन्दोलन के उद्देश्य, अर्थ एवं परिभाषाएँ

सर्म–सुधार आन्दोलन के कारण एवं प्रमुख परिणाम

यूरोप में धर्म–सुधार आन्दोलन

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण, इसकी सफलता के मुख्य कारण और इसके प्रभाव

अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :

धर्म–सुधार आन्दोलन के उद्देश्य, अर्थ एवं परिभाषाएँ धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण एवं प्रमुख परिणाम

यूरोप में धर्म–सुधार आन्दोलन

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण, इसकी सफलता के मुख्य कारण और इसके प्रभाव

परिचय

16वीं शताब्दी में यूरोप में एक धार्मिक क्रान्ति हुई, जिसे धर्म–सुधार आन्दोलन कहते हैं । मध्यकाल में जनता पर धर्म का बहुत अधिक प्रभाव था । उस समय धार्मिक क्षेत्र में अनेक पाखण्ड, आडम्बर तथा अन्धविश्वास प्रचलित थे । पोप एवं पादरी अनैतिक तथा विलासप्रिय जीवन व्यतीत कर रहे थे । पुनर्जागरण के कारण मानव का बौद्धिक विकास हुआ। अब व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से चिन्तन करने लगा । अतः 16वीं शताब्दी में यूरोप की जनता ने कैथोलिक चर्च में व्याप्त बुराइयों को दूर करने, पोप के धार्मिक प्रभुत्व को नष्ट करने तथा धार्मिक पाखण्डों एवं अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए जो आन्दालेन चलाया, उसे धर्म–सुधार आन्दोलन के नाम से पुकारा जाता है। धर्म–सुधार आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे : (1) ईसाई लोगों के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करना । (2) पोप के धार्मिक प्रभुता सम्बन्धी अधिकारों को कम करना ।

धर्म–सुधार आन्दोलन का अर्थ एवं परिभाषाएँ

पुनर्जागरण से प्रभावित लोगों ने 16वीं शताब्दी में पोप के धार्मिक प्रभुत्व को नष्ट करने, चर्च की कुरीतियों को दूर करने एवं धार्मिक पाखण्डों तथा आडम्बरों को नष्ट करने के लिए जो आन्दोलन शुरू किया, उसे धर्म–सुधार आन्दोलन के नाम से जाना जाता है । वार्नर तथा मार्टिन का कथन है कि धर्म–सुधार आन्दोलन पोप की सांसारिकता तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध नैतिक विद्रोह था।

इतिहासकार फिशर का कथन है कि धर्म–सुधार आन्दोलन पोप की धार्मिक निरंकुशता या सत्ता तथा पुरोहितों के विशेष अधिकारों के विरुद्ध एक विद्रोह था। एक ओर इसने पादरियों के अधिकारों के विरुद्ध लौकिक विद्रोह का रूप धारण किया तो दूसरी ओर इसने धार्मिक पुनरुत्थान व ईसाई चर्च की पवित्रता तथा मौलकता को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।

धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण

धर्म–सुधार आन्दोलन के कारणों को प्रमुखतः छः वर्गों में बाँटा जा सकता है पुनर्जागरण का प्रभाव, प्प. धार्मिक कारण, राजनीतिक कारण, प्ट. तात्कालिक कारण। इन सभी करणों की विवेचना निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत की जा सकती है :

पुनर्जागरण का प्रभाव :

पुनर्जागरण के कारण यूरोपवासियों में तर्क एवं चिन्तन शक्ति का विकास हुआ। अब लोग ईसाई धर्म में प्रचलित विश्वासों तथा मान्यताओं को तर्क की कसौटी पर परखने लगे। इस बौद्धिक जागरण से मध्यकालीन धार्मिक अन्धविश्वासों तथा प्राचीन मान्यताओं पर से यूरोपवासियों का विश्वास उठ गया । मानववादियों ने चर्च में व्याप्त बुराइयों की कटु आलोचना की । देशी भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद होने के कारण साधारण लोग भी बाइबिल का अध्ययन करने लगे और धर्म के सच्चे स्वरूप को समझने में समर्थ हुए। उनके अन्धविश्वास दूर होने लगे जिससे धर्म–सुधार आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

प्प. धार्मिक कारण :

1. पोप की सांसारिकता एवं विलासप्रियता – पोप अपने धार्मिक और नैतिक कर्तव्यों को भूलकर अनैतिक और विलासप्रिय जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि पोप विवाह नहीं करते थे, परन्तु चर्चों में रहने वाली भिक्षुणियों के साथ उनके अनैतिक सम्बन्ध थे। पोप एलेक्जेण्डर षष्ठम अनैतिक चरित्रहीन और अत्यन्त क्रूर था। उस समय चर्च भ्रष्टाचार के केन्द्र बने हुए थे । बर्न्स का कथन है कि एलेक्जेण्डर षष्ठम के आठ अवैध बच्चे थे जिनमें से सात उसके पोप बनने से पहले के थे। इसी प्रकार पोप लियो दशम अनैतिक तरीकों से धन एकत्रित करता था। अतः जनसाधारण में पोप की अनैतिकता तथा सांसारिकता के विरुद्ध तीव्र आक्रोश व्याप्त था ।

2. पादरियों की अनैतिकता – पोप की भाँति पादरी भी विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे । उनके जीवन में सादगी, धार्मिकता एवं पवित्रता का अन्त हो गया था। उनमें धन–लोलुपता बहुत बढ़ गई थी। पादरी विवाह नहीं करते थे, परन्तु चर्चा में रहने वाली भिक्षुणियों से उनके अनैतिक सम्बन्ध होते थे । चर्च और मठ दुराचार तथा विलासिता के केन्द्र बने हुए थे। अतः जनसाधारण में पादरियों की अनैतिक के विरुद्ध तीव्र आक्रोश था ।

धर्माधिकारियों द्वारा अपने कर्तव्यों की उपेक्षा– इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में जो धर्माधिकारी नियुक्त थे, वे अधिकांश इटली के निवासी थे। अपने प्रभाव या धन के प्रलोभन से अपनी नियुक्ति करा लेते थे परन्तु अपनी नियुक्ति

के स्थानों पर नहीं जाते थे तथा इटली में ही रहते थे। इटली में रहते हुए वे अपना पद – सम्बन्धी धन मँगा लिया करते थे और अपने धार्मिक कर्तव्यों की अवहेलना करते थे। इस कारण भी जनता में असन्तोष था ।

धर्माधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर न होना– धर्माधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं की जाती थी । धर्माधिकारी का पद धन देकर प्राप्त किया जा सता था। इससे बुद्धिजीवी लोगों में तीव्र आक्रोश व्याप्त था ।

रोम का वैभव – मध्यकाल में रोम ईसाई धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था और पोप भी रोम में हो निवास करता था। पोप ने जनता के धन से रोम में भव्य गिरजाघरों का निर्माण करवाया। उसने रोम को वैभवशाली नगर बनाने के लिए धन को पानी की तरह बहाया। इससे यूरोपवासियों में असन्तोष उत्पन्न हुआ । मार्टिन लूथर ने कहा था, ''रोम का पोप ऐसा चोर व डाकू है जैसा आज तक पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ और न होगा । हम दीन जर्मनों को धोखा दिया गया है। छोटे पादरियों में असन्तोष– बड़े पादरी विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और अपने

7.

11

कार्यों को सम्पन्न कराने के लिए छोटे पादरियों को नियुक्त कर लेते थे। छोटे पादरी सरल और पवित्र जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु बड़े पादरी उनका मजाक उड़ाते थे। इसलिए छोटे पादरियों में भी असन्तोष था ।

धर्मयुद्ध – जेरुसलम पर अधिकार स्थापित करने के लिए ईसाइयों तथा तुर्कों में लगभग 200 वर्षों तक युद्ध चलते रहे जिनमें हजारों ईसाइयों को मौत के मुँह में जाना पड़ा। इन युद्धों में ईसाइयों की बुरी तरह से पराज्य हुई । यद्यपि ईसाइयों को पोप का आशीर्वाद प्राप्त था, परन्तु इसके बावजूद उनमें भी लोगों का विश्वास घटने लगा ।

चर्च की प्रतिक्रिया वादिता – चर्च सुधार एवं प्रगति का घोर विरोधी था । यदि कोई व्यक्ति चर्च के विरुद्ध नये विचारों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता था, तो उसे कठोरतापूर्वक दबा दिया जाता था । परन्तु पुनर्जागरण के कारण लोगों में स्वतन्त्र चिन्तन एवं ताक्रिक दृष्टिकोण का उदय हो चुका था। अब लोग प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को सहने करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके फलस्वरूप धर्म–सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

चर्च की दमन नीति– चर्च अपना विरोध सहन नहीं कर सकता था। उसने अपने विरोधियों को आतंकित करने एवं कुचलने की नीति अपनाई। चर्च के अधि ाकारियों ने अनेक धर्म–सुधारकों एवं विचारकों का वध करवा दिया। चर्च की इस दमनकारी नीति के विरुद्ध जनसाधारण में तीव्र आक्रोश व्याप्त था ।

चर्च की आन्तरिक दुर्बलताएँ– पोप – तन्त्र की शक्ति भी विभाजित हो चुकी थी। सन्

1378 ई० में पोप – तन्त्र दो भागों में विभाजित हो गया था– एक पोप रोम में

तथा दूसरा अविग्नन में रहने लगा। दोनों पोपों में एकता एवं मित्रता का अभाव था। इससे चर्च की स्थिरता तथा प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा ।

. चर्च द्वारा जनता का आर्थिक शोषण– चर्च के अधिकारी सामन्त भी थे। जिनके अधीन बहुत से किसान भी थे। वे किसानों का शोषण करते थे। पोप जनता से अनेक प्रकार के कर

वसूल करता था। जनता पर 'पीटर्स पैन्स' नामक कर लगा हुआ था। इस कर के रूप में प्रत्येक ईसाई परिवार प्रतिवर्ष एक डॉलर चर्च को देता था। इसके अतिरिक्त चर्च सभी लोगों से 'टाइथ' नामक कर भी वसूल करता था। धार्मिक अनुष्ठानों पर भी कर वसूल किये जाते थे । चर्च की इस शोषणकारी नीति के कारण जन–साधारण में तीव्र आक्रोश था ।

विभिन्न धर्म – सुधारकों का आविर्भाव – मार्टिन लूथर से पहले अनेक धर्म–सुध ाारकों का

आविर्भाव हुआ, जिन्होंने धर्म–सुधार आन्दोलन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। कुछ प्रमुख धर्म सुधारकों तथा उनके मुख्य कार्यों का वर्णन निम्नवत् है :

(प) जॉन विकलिफ (1320–1384) – चौदहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में जॉन विकलिफ ने चर्च की बुराइयों और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाया। उसने धार्मिक आडम्बरों और पाखण्डों की निन्दा की। उसने घोषित किया कि ''पोप पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं है तथा भ्रष्ट पादरियों द्वारा दिया जाने वाला धार्मिक उपदेश व्यर्थ है ।'' उसने चर्च की सम्पत्ति को जब्त किये जाने की माँग की। 1384 ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके अनुयायी 'लोलार्ड्स' कहलाये। उन्होंने उसकी शिक्षाओं का प्रचार करना जारी रखा।

(पप) जॉन हस (1369–1415) – जॉन हस बोहेमिया का निवासी था । वह प्राग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक था। उसने चर्च की बुराइयों तथा पादरियों के अनैतिक तथा भ्रष्ट जीवन की कटु आलोचना की। चर्च की आलोचना से पोप बहुत नाराज हुआ और उसने जॉन हस को 1415 ई० में जिन्दा जलवा दिया।

(पपप) सेवोनारोला (1452–1498)– सेवोनारोला फ्लोरेन्स नगर का निवासी था। उसने चर्च के पाखण्डों और आडम्बरों की कटु आलोचना की जिससे पोप अत्यध िाक क्रुद्ध हुआ । पोप ने उसे 23 मई, 1498 ई० को जिन्दा जलवा दिया।

इरैस्मस (1466–1536) – इरैस्मस हालैंड का निवासी था । वह उच्चकोटि का विद्वान, विचारकर और लेखक था । उसने चर्च की बुराइयों को दूर करने पर बल दिया। सन् 1511 ई० में उसने 'मूर्खता की प्रशंसा' नामक पुस्तक लिखी। उसने इस पुस्तक में पादरियों की अज्ञानता तथा पाखण्डों पर कटु व्यंग्य किये। इस प्रकार मार्टिन लूथर से पूर्व उपर्युक्त धर्म–सुधारकों ने 'धर्म–सुधार' आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

पजनीतिक कारण

पोप का राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप – पोप का राजनीतिक क्षेत्र में भी अत्यध िाक प्रभाव था । वह राज्य के आन्तरिक एवं वैदेशिक मामलों में हस्तक्षेप करता था । जो कोई भी राजा उसका विरोध करता था, पोप उसे धर्म – बहिष्कृत

घोषित कर देता था। पोप की स्वीकृति के बिना उस समय विवाह एवं तलाक नहीं हो सकते थे। इस प्रकार पोप के पास असीमित अधिकार थे। दूसरी ओर यूरोपीय नरेश अपने राजनीतिक कार्यों में पोप के हस्तक्षेप को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे।

।

` राजाओं की महत्वाकांक्षा – पुनर्जागरण के कारण यूरोप के राजाओं की शक्ति में वृद्धि हुई । अब यूरोपीय शासक पोप के प्रभुत्व से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से शासन करना चाहते थे । वे अपने आन्तरिक मामलों में पोप का हस्तक्षेप सहन करने को तैयार नहीं थे। वे चर्च की धन–सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए लालायित रहते थे। राजाओं ने अपने राज्यों में स्वतन्त्र चर्चों की स्थापना, की जिस पर पोप का कोई नियन्त्रण नहीं था । इस कारण भी राजाओं और पोप के बीच हुई थी।

चर्च के न्यायालय – चर्च ने अपने अलग न्यायालय स्थापित कर रखे थे। इन न्यायालयों में विवाह, तलाक, उत्तराधिकार आदि के मामलों की सुनवाई की जाती थी तथा चर्च के धर्माधिकारी उन पर अपने निर्णय देते थे। चर्च के न्यायालयों पर राजाओं का कोई नियन्त्रण नहीं था । प्रायः राजद्रोही लोग भी चर्च के न्यायालयों की शरण लेते थे । अतः यूरोपीय नरेश चर्च के न्यायालयों के घोर विरोधी
थे।

चर्च के पास अपार धन–सम्पत्ति – चर्च के पास अतुल धन–सम्पत्ति थी । चर्च के पास बहुत भूमि थी और उसे इस भूमि की उपज तथा आय पर किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था । चर्च जनता से कई प्रकार के कर वसूल करता था । राष्ट्रीय आय का बहुत बड़ा भाग रोम के चर्च के खजाने में चला जाता था। चर्च की सम्पत्ति से राष्ट्र को कोई लाभ नहीं था। दूसरी और राष्ट्रीय राजाओं की शासन – व्यवस्था एवं संगठन के लिए काफी धन की आवश्यकता थी । अतः यूरोपीय नरेश चर्च की सम्पत्ति पर अधिकार कर लेना चाहते थे ।

प्ट. आर्थिक कारण

धनिक वर्ग में असन्तोष– यूरोप का धनिक वर्ग चर्च के नियन्त्रण से मुक्त होना चाहता था क्योंकि चर्च वैभवपूर्ण जीवन का पक्षपाती नहीं था। चर्च धनिक वर्ग की इच्छाओं के विरुद्ध था ।

व्यापारी वर्ग में असन्तोष– व्यापारी वर्ग भी चर्च से असन्तुष्ट था। व्यापारियों को अपनी आय का एक बहुत बड़ा भाग चर्च को देना पड़ता था । चर्च की आर्थिक नीति से व्यापारियों में असन्तोष था। चर्च का कहना था कि सूद लेना अनैतिक और पाप है । परन्तु व्यापार के विकास के लिए ब्याज, मुनाफा,
लेन–देन आदि आवश्यक थे। चर्च की आर्थिक नीति व्यापार की प्रगति में बाध ाक थी। इस कारण व्यापारी लोग भी चर्च के प्रभाव को नष्ट करने पक्ष में थे।

ट. शिक्षा का प्रसार

पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप यूरोप में शिक्षा का काफी प्रसार हुआ । पुस्तकों

तथा पत्र–पत्रिकाओं के अध्ययन से ज्ञान और नवीन विचारों का प्रसार हुआ और मनुष्य का अन्धविश्वासों, रूढ़ियों आदि में विश्वास नहीं रहा। अनेक देशी भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद होने से सामान्य लोग भी ईसाई धर्म के मूल सिद्धातों को समझने लगे। इस प्रकार शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार ने धर्मसुधार आन्दोलन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर दीं।

तात्कालिक कारण

पापमोचन क्षमापत्रों की बिक्री– पोप लियो दशम को रोम में सन्त पीटर के गिरजाघर के निर्माण के लिए धन की आवश्यकता थी । अतः धन एकत्रित करने के लिए उसने क्षमा– पत्रों को बेचने के लिए अनेक एजेण्ट भेजे। 1517 ई० में टेटजल नामक पोप का एक एजेण्ट क्षमा– पत्रों को बेचने के लिए जर्मनी के विटनबर्ग नगर में पहुँचा। उसने अपने भाषणों में यह कहना शुरू किया कि जो व्यक्ति इन क्षमापत्रों को खरीदेगा, उसे समस्त पापों से मुक्ति मिल जायेगी। परन्तु जर्मनी के प्रसिद्ध धर्म–सुधारक मार्टिन लूथर नेइसका घोर विरोध किया। उसने विटनबर्ग चर्च के द्वार पर इसके विरोध में 95 निबन्ध लिखकर लगा दिए। उसने इस प्रश्न पर पोप टेटजल को चुनौती दी। यह चुनौती ही धर्म–सुधार आन्दोलन की शुरूआत थी। इस प्रकार मार्टिन लूथर के नेतृत्व में जर्मनी में ध र्म–सुधार आन्दोलन शुरू हो गया जो शीघ्र ही सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया।

–सुधार आन्दोलन के परिणाम

धर्म–

धर्म–सुधार आन्दोलन के प्रमुख परिणाम निम्न प्रकार है

ईसाई धर्म की एकता की समाप्ति – धर्म – सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप ईसाई धर्म की एकता समाप्त हो गई। इस आन्दोलन के कारण ईसाई धर्म दो सम्प्रदायों कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट में विभाजित हो गया। धीरे–धीरे प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय भी अनेक सम्प्रदायों में विभाजित हो गया।

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन– प्रोटेस्टेन्ट धर्म की बढ़ती हुई लोकप्रियता से कैथोलिक धर्म के लोग बड़े चिन्तित हुए। अतः कैथोलिक धर्म के अनुयायियों ने कैथोलिक चर्च में सुधार लाने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिससे प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप कैथोलिक चर्च की अनेक बुराइयों को दूर किया गया । क्षमापत्रों की बिक्री बन्द कर दी गई जैसुइट पादरियों ने प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

3. मतभेदों की उत्पत्ति– धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण ईसाई धर्म में अनेक सम्प्रदाय बन गये । विभिन्न प्रश्नों पर इन सम्प्रदायों में मतभेद उत्पन्न हो गये। कुछ सम्प्रदाय चर्च की स्वतन्त्रता के समर्थक थे, तो कुछ सम्प्रदाय चर्च पर राज्य का नियन्त्रण बनाये रखना चाहते थे। प्रोटेस्टेन्ट धर्म भी अनेक सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। कालान्तर में मैथोडिज्म, बैपटिज्म आदि विभिन्न सम्प्रदायों के उदय से मतभेदों में और भी बृद्धि हुई ।

4. धार्मिक अत्याचार – धर्म – सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप कैथोलिक

Notes

तथा प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों के बीच संघर्ष छिड़ गया। धर्म के नाम पर हजारों लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। प्रोटेस्टेन्ट राजाओं ने कैथोलिक प्रजा पर तथा कैथोलिक शासक हेनरी द्वितीय ने प्रोटेस्टेन्ट लोगों का क्रूरतापूर्वक दमन किया । इसी प्रकार स्पेन के शासक फिलिप द्वितीय ने नीदरलैण्ड के प्रोटेस्टेन्ट लोगों पर भयंकर अत्याचार किये। जर्मनी में प्रोटेस्टेन्टों और कैथोलिकों के बीच 30 वर्ष तक भयंकर संघर्ष चला जिसमें हजारों लोग मारे गए। अन्त में 1648 ई० में वेस्टफेलिया की सन्धि के द्वारा 30 वर्षीय युद्ध का अन्त हुआ।

5. नैतिक विकास – धर्म – सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप ईसाई धर्म के सभी सम्प्रदायों ने चारित्रिक शुद्धता, नैतिकता, सरल जीवन, आचरण की पवित्रता आदि पर बल दिया। धर्माधिकारियों ने अब आदर्श तथा सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। पोप ने पाप मोचन क्षमापत्रों को बेचना बन्द कर दिया। गिरजाघरों में नृत्य बन्द कर दिया गया।

6. राष्ट्रीय भावना का विकास– धर्म–सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप जनता में राष्ट्रीय भावना

का विकास हुआ। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर सभी देशों ने पोप – विरोधी आन्दोलन चलाया। विभिन्न देशों में राष्ट्रीय चर्च की स्थापना हुई। प्रोटेस्टेन्ट मत के समर्थक राजाओं पर पोप का कोई नियन्त्रण नहीं रहा। इससे राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन मिला।

7. राजाओं की शक्ति में वृद्धि – धर्म–सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप यूरोप के राजाओं की शक्ति

में वृद्धि हुई । अनेक प्रोटेस्टेन्ट राजाओं ने अपने राज्यों में राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की, जिसका सर्वोच्च अधिकारी सम्राट होता था। अनेक प्रोटेस्टेन्ट नरेशों ने चर्च की भूमि पर अधिकार करके अपनी शक्ति का विकास किया।

8. शिक्षा का विकास – धर्म–सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप शिक्षा का प्रसार हुआ। सभी धार्मिक सम्प्रदायों ने शिक्षा की प्रगति पर जोर दिया। सुधारवादी पोप तथा जेसुइट प्रचारकों ने शिक्षा की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अनेक धर्म–सुधारक कैथोलिक धर्म की बुराइयों को दूर करने के लिए शिक्षा के प्रसार पर बल देने लगे। प्रोटेस्टेन्ट तथा प्यूरिटन धर्म प्रचारकों ने भी शिक्षा के विकास पर बल दिया।

9. बौद्धिक क्रान्ति– धर्म – सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप बौद्धिक क्रान्ति भी प्रारम्भ हुई। धर्म–सुधार आन्दोलन ने अन्धविश्वासों को समाप्त कर दिया और स्वतन्त्र चिन्तन को प्रोत्साहन दिया । तथा बौद्धिक विकास का मार्ग खुल गया ।

10. वाणिज्य – व्यापार की उन्नति – चर्च सूदखोरी तथा मुनाफे का विरोधी था । परन्तु प्रोटेस्टेन्ट धर्म के नेता सूदखोरी तथा मुनाफे के समर्थक थे। उन्होंने एक उचित सीमा के अन्दर सूद लेना तथा मुनाफा कमाना उचित ठहराया। इससे वाणिज्य – व्यापार की उन्नति को प्रोत्साहन मिला। व्यापारिक उन्नति होने से राष्ट्रीय सम्पत्ति में बृद्धि होने लगी ।

स्व–प्रगति की जाँच करें :

क्या चर्च की प्रतिक्रियावादिता धर्म–सुधार आन्दोलन का एक प्रमुख कारण था?

पोप का राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप का क्या धर्म–सुधार आन्दोलन के राजनीतिक कारण थे?

धार्मिक सहिष्णुता का विकास– यद्यपि धर्म–सुधार आन्दोलन के कारण असहिष्णुता की भावना
विकसित हुई, परन्तु इस आन्दोलन ने अन्त में धार्मिक सहिष्णुता को जन्म दिया। भीषण युद्धों के बाद भी कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट एक–दूसरे का दमन नहीं कर सके, अतः धीरे–धीरे यह विचार जोर पकड़ता गया कि धार्मिक सहिष्णुता की नीति से ही राज्य में सुख और समृद्धि सम्भव है ।

व्यक्ति की महत्ता का विकास – धर्म–सुधार आन्दोलन ने व्यक्ति की महत्ता, प्रत्येक व्यक्ति को
बाइबिल पढ़कर स्वयं उसकी व्याख्या करने तथा ईश्वर के साथ प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं–सम्बन्ध पर जोर दिया। धर्म–सुधारकों की शिक्षाओं ने धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्यक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया।

धर्मनिरपेक्षता का विकास–धर्म–सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप अनेक राज्य सरकारों ने चर्च पर अपना नियन्त्रण करके तथा स्कूलों, कॉलेजो, अस्पतालों आदि की स्थापना की तथा विवाह सम्बन्धी कानून बनाएँ। इससे धर्मनिरपेक्षता का विकास हुआ।

लोक साहित्य का विकास– इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप लोक – साहित्य का विकास हुआ। धर्म–सुधारकों ने लोक भाषाओं में अनेक ग्रन्थों की रचना की । मार्टिन लूथर ने जर्मन भाषा में बाइबिल का अनुवाद किया। इसी प्रकार अन्य देशों में भी बाइबिल के अनुवाद हुए। शिक्षा एवं साहित्य का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो जाने से लोक–साहित्य का विकास हुआ।

इकाई 3

यूरोप में धर्म सुधार आन्दोलनजर्मनी में धर्म–सुधार आन्दोलन–

मार्टिन लूथर – जर्मनी में धर्म–सुधार आन्दोलन का सूत्रपात करने वाले मार्टिन लूथर थे। सात वर्ष की
आयु में उन्हें मैन्सफील्ड के लैटिन विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया तथा उच्च शिक्षा प्राप्त हेतु इरफर्ट विश्वविद्यालय में भेजा गया। 1508 ई० में वे विटनबर्ग विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र के प्राध्यापक बन गये। वहाँ उन्होंने सन्त पाल तथा आगस्टाइन की रचनाओं का अध्ययन किया।

जर्मनी के धर्म–सुधार आन्दोलन में मार्टिन लूथर के योगदान– का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है :

. रोम की यात्रा – 1511 ई० में लूथर रोम गये वहाँ जब उन्होंने पोप के

विलासमय जीवन तथा धनलोलुप चरित्र को देखा तो उन्हें रोमन चर्च से घृणा हो गई, और उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को सादगीपूर्ण जीवन बिताने एवं सत्कर्म करते हुए ईश्वर पर भरोसा करना चाहिए।

इ. पाप – विमोचन पत्रों का विरोध – 16वीं शताब्दी के शुरू में रोम में सन्त पीटर के गिरजाघर के निर्माण हेतु पोप लियो दशम ने धन एकत्रित करने हेतु पाप – विमोचन पत्र बेचने के लिए में टेटजल नामक एक एजेण्ट को जर्मनी के विटनबर्ग में पहुँचा । वहाँ उसने पोप के पाप – विमचोन पत्रों को बेचते हुए घोषित किया कि जो व्यक्ति इन क्षमा– पत्रों को खरीदेगा, उसे पापों से मुक्ति मिल जायेगी । मार्टिन लूथर ने इन क्षमा– पत्रों की कटु आलोचना करते हुए कहा, ''पाप पश्चाताप से नष्ट होता है और पश्चाताप मन का विषय है, चर्च के आडम्बरों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।'' उसने चर्च के परम्परागत अधिकारों का चुनौती पोप के विरुद्ध धर्म–सुधार आन्दोलन शुरू कर दिया।

ब.

मार्टिन

लूथर को ईसाई धर्म से निष्कासित करना– जब लूथर ने पोप के पाखण्डों की कटु आलोचना की और अपने मत के प्रतिपादन के लिए तीन पुस्तकों की रचना की । सन् 1520 ई० में

लूथर ने अपनी प्रथम पुस्तक 'एन ओपन लैटर टू दी क्रिश्चियन स्टेट में राज्य और चर्च के सम्बन्धों की व्याख्या की। उसने अपनी पुस्तक चर्च का बेबीलोनिया का कैदी' में धार्मिक पाखण्डा का विरोध किया। उसने अपनी तीसरी पुस्तक 'एक ईसाई व्यक्ति की स्वतन्त्रता' में

यह विचार व्यक्त किया कि मनुष्य को मोक्ष धार्मिक संस्कारों से नहीं, अपितु ईश्वर की कृपा से ही मिल सकता है।

लूथर के इन कार्यों से पोप लियो दशम ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर लूथर को ईसाई धर्म से बहिष्कृत कर दिया। परन्तु लूथर ने पोप के आदेश – पत्र को विटनबर्ग के बाजार में जला दिया । इस प्रकार लूथर और पोप के बीच संघर्ष और भी तीव्र हो गया ।

क. लूथर और चार्ल्स पंचम– पवित्र रोमन सम्राट चार्ल्स पंचम कैथोलिक चर्च तथा पोप का कट्टर समर्थक था। उसने 1521 ई० में लूथर के सम्बन्ध में वर्म्स नामक नगर में एक धर्म – सभा बुलाई। इस सभा में लूथर को 'नास्तिक व साम्राज्य की सुरक्षा से वंचित' घोषित कर दिया। लूथर की समस्त रचनाओं को जलाने का आदेश दिया गया। इस अवसर पर सेक्सनी के शासक फ्रेडरिक ने लूथर को वार्टबर्ग के किले में शरण दी । यहीं लूथर ने बाइबिल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया।

म.

मार्टिन लूथर की सफलता – मार्टिन लूथर ने पोप तथा चर्च का विरोध जारी रखा। उसके अनुयायियों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई । अनेक सामन्तों एवं नरेशों ने भी लूथर का साथ दिया। जर्मनी में लूथरवादी सिद्धान्तों का प्रचार

होने लगा। लूथर के समर्थकों ने कैथोलिक चर्च के विरुद्ध विद्रोह किया, चर्च की जागीरें छीन लीं व अनेक कैथोलिक मठ नष्ट–भ्रष्ट कर दिये गए।

1524 ई० में दक्षिण व मध्य जर्मनी में किसानों ने सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । किन्तु लूथर ने अपने आन्दोलन की रक्षा के लिए सामन्तों व राजाओं का पक्ष लिया। परिणामस्वरूप लूथर के सहयोग से किसानों के विद्रोह को कुचल दिया गया। इससे जर्मनी में लूथर के धर्म–सुधार आन्दोलन की प्रगति की आघात पहुँचा और मध्य व दक्षिणी जर्मनी के किसान लूथर के विरोधी हो गये। ि. जर्मनी में लूथरवाद का प्रसार– 1529 ई० में पवित्र रोमन सम्राट चार्ल्स पंचम ने स्पीयर में दूसरी धर्मसभा बुलाई। इसमें पोप के समर्थकों ने सम्राट से लूथर का दमन करने का अनुरोध किया, परन्तु मार्टिन लूथर के समर्थकों ने इसका प्रतिवाद किया । इसलिए लूथर के समर्थक प्रोटेस्टेन्ट के नाम से प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार लूथरवादी आन्दोलन का नाम प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन पड़ा। और लूथर के विचारों ने एक लोकप्रिय धर्मसुधार आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। 1546 ई० में लूथर की मृत्यु हो गई। जब सम्राट चार्ल्स पंचम ने प्रोटेस्टेन्ट का दमन करना शुरू कर दिया तो जर्मनी में 1546 से 1555 ई० तक गृह–युद्ध हुआ जो आग्सवर्ग की संधि से समाप्त हो गया।

इस सन्धि में प्रोटेस्टेन्ट मत को कानूनी मान्यता प्रदान की गई। जर्मनी के अधिकांश राज्यों में प्रोटेस्टेन्ट धर्म का प्रसार हुआ।

2. स्विट्जरलैण्ड में धर्म–सुधार आन्दोलन

स्विट्जरलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रसार में ज्विंग्ली (1484–1531) ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। ज्विंग्ली का जन्म 1484 ई० में स्विटजरलैण्ड में हुआ था। उसने वियना एवं बासेल के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। वह 1519 ई० में ज्यूरिक नगर का बिशप नियुक्त किया गया। उसने स्विट्जरलैण्ड में कैथोलिक चर्च की बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई। उसने चर्च के पाखण्डों और आडम्बरों की कटु आलोचना की। उसने क्षमापत्रों को बेचने का घोर विरोध किया। 1525 ई० में उसने कैथोलिक चर्च से सम्बन्ध विच्छेद करके एक नये प्रोटेस्टेन्ट चर्च की स्थापना की।

ज्विंग्ली ने कैथोलिक चर्च में व्याप्त पोपशही, सन्तों की पूजा, तीर्थयात्रा, पुरोहितवाद आदि का विरोध किया। उसने लैटिन भाषा में बाइबिल का अध्ययन बन्द करवा दिया, पादरियों को विवाह का अधिकार दिया गया। तथा देशवासियों से अपील की कि वे पोप की सेना में भर्ती न हों।

ज्विंग्ली के प्रयासों से स्विट्जरलैण्ड के अनेक प्रान्तों में प्रोटेस्टेन्ट धर्म का प्रसार हुआ । ज्विंग्ली के आन्दोलन के से स्विट्जरलैण्ड में दो परस्पर विरोधी दल – ज्विंग्लीवादी तथा कैथोलिक बन गये । 1531 ई० में ज्विंग्ली कैथोलिकों से युद्ध करता हुआ मारा गया ।

ज्विंग्ली के बाद – कालीवन (1509–1564) स्विट्जरलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रसार में योगदान दिया । (1484–1531) कालविन बाइबिल को सर्वोपरि मानता था । उसने आचरण की पवित्रता एवं सादा जीवन पर बल दिया। उसका कहना था कि ईश्वर मनुष्य का भाग्य उसके जन्म के समय ही निर्धारित कर देता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए वह ईश्वर में विश्वास आवश्यक मानता था । उसने स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी, पोलैण्ड, स्कॉटलैण्ड आदि देशों में प्रोटेस्टेन्ट धर्म का प्रसार किया। उसने 'ईसाई धर्म की संस्थाएँ' नामक पुस्तक लिखी जिसकी गिनती उच्चकोटि के धार्मिक ग्रन्थों में की जाती है। कालवनि ने कई स्कूल खोले तथा जिनेवा में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की। उसे 'प्रोटेस्टेन्ट का पोप' के नाम से पुकारा जाता था। उसने समस्त यूरोप में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

हॉलैण्ड में धर्म–सुधार आन्दोलन– हॉलैण्ड में भी प्रोटेस्टेन्ट मत का प्रचार–प्रसार हुआ। हॉलैण्ड स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय के अधीन था। उसने हॉलैण्ड के प्रोटेस्टेन्टों पर बहुत अत्याचार किये और अनेक लोगों को जिन्दा जलवा दिया। अतः हॉलैण्ड की जनता ने विलियम ऑफ ओरेन्ज के नेतृत्व में स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। स्पेन की सरकार ने विद्रोहियों का दमन करने का भरसक प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली । अन्त में 1609 ई में हॉलैण्ड को स्वाधीनता प्राप्त हुई। इस प्रकार हॉलैण्ड में भी प्रोटेस्टेन्ट मत का प्रसार हुआ ।

डेनमार्क में धर्म–सुधार आन्दोलन – डेनमार्क और नार्वे का शासक फ्रेडरिक प्रथम (1523 – 1533) पोप की बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित था । वह लूथर के सिद्धान्तों से प्रभावित था। अतः उसने प्रोटेस्टेन्ट धर्म को स्वीकार कर लिया। इसके बाद उसने प्रोटेस्टेन्ट मत के प्रचार–प्रसार में सहायता दी। उसने हॉलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रचारकों को आमन्त्रित किया। 1533 ई० उसकी मृत्यु के पश्चात् नार्वे में गृह–युद्ध आरम्भ हो गया जिसमें फ्रेडरिक प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र क्रिश्चियन विजयी हुआ और वह नार्वे का राजा बना। वह भी प्रोटेस्टेन्ट धर्म का समर्थक था, अतः उसके शासनकाल में प्रोटेस्टेन्ट धर्म का काफी विकास हुआ।

स्कॉटलैण्ड में धर्म–सुधार आनदोलन– स्कॉटलैण्ड भी धर्म–सुधार आन्दोलन से प्रभावित हुआ। स्कॉटलैण्ड में धर्म–सुधार का कार्य जॉन नाक्स द्वारा किया गया। जॉन नाक्स कालविन के विचारों से बड़ा प्रभावित था। अतः उसने स्कॉटलैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करना शुरू किया। स्कॉटलैण्ड की रानी मेरी स्टुअर्ट ने प्रोटेस्टेन्ट मत का दमन करने का भरसक प्रयास किया, परन्तु उसे असफलता ही मिली। जॉन नाक्स ने स्कॉटलैण्ड में एक नये प्रोटेस्टेन्ट चर्च की स्थापना की। उसके अनुयायी प्रेसबिटेरियन कहलाये ।

इंग्लैण्ड में धर्म–सुधार आन्दोलन– इंग्लैण्ड में धर्म–सुधार आन्दोलन व्यक्तिगत एवं राजनीतिक कारणों से हुआ। इंग्लैण्ड का सम्राट् हेनरी अष्टम कुछ कारणों

से पोप से नाराज हो गया। वह अपनी पत्नी कैथराइन को तलाक देकर एक अन्य स्त्री एनीबोलीन से विवाह करना चाहता था, परन्तु पोप द्वारा तलाक की आज्ञा न दिये जाने से क्रुद्ध होकर हेनरी ने पोप से सम्बन्ध विच्छेद कर लिए। सन् 1534 में हेनरी ने संसद से सर्वोच्चता का अधिनियम पास करवा लिया। जिसके अनुसार वह स्वयं इंग्लैण्ड के चर्च का प्रधान बन गया। उसने अधिकांश ईसाई मठों की धन–सम्पत्ति को जब्त कर लिया और पोप को वार्षिक करों का भेजा जाना भी बन्द करवा दिया।

हेनरी अष्टम के पुत्र एडवर्ड अष्टम (1547–1553) के समय में धर्म–सुधार आन्दोलन को और अधिक प्रोत्साहन मिला। एडवर्ड षष्टम् अल्पवयस्क था, अतः उसके संरक्षक समरसेट तथा नार्थम्बरलैण्ड के
ड्यूकों ने प्रोटेस्टेन्ट सिद्धान्तों पर आधारित नये नियम बनाये। कैथोलिक चर्च की लैटिन भाषा में लिखित 'प्रार्थना' पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। उसके समय में प्रोटेस्टेन्ट धर्म का काफी विकास हुआ।

एडवर्ड अष्टम की उत्तराधिकारिणी मेरी ट्यूडर (1553–1558) एक कट्टर कैथोलिक महिला थी । उसने इंग्लैण्ड में फिर से कैथोलिक धर्म को स्थापित किया। उसने प्रोटेस्टेंट लोगों पर भयंकर अत्याचार किये। उसके शासन काल में लगभग 300 प्रोटेस्टेन्ट लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया तथापि प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन का दमन नहीं हो सका।

महारानी एलिजाबेथ (1558–1603) के शासन काल में प्रोटेस्टेन्ट धर्म पुनः प्रतिष्ठित हो गया। उसने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया और इस धार्मिक समस्या का समाधान किया। उसने आंग्ल– चर्च के रूप में राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की। रोम से सम्बन्ध विच्छेद कर लिए और ऐंग्लिकनवाद के अतिरिक्त अन्य प्रकार की पूजा पद्धति सर्वथा निषिद्ध घोषित कर दी। इस प्रकार एलिजाबेथ की नीति से भी प्रोटेस्टेन्ट धर्म को प्रोत्साहन मिला।

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन– प्रोटेस्टेन्ट धर्म की बढ़ती हुई लोकप्रियता से कैथोलिक धर्म के नेताओं को अत्यधिक चिन्ता हुई । अतः पोप और उसके अनुयायियों ने प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति पर अंकुश लगाने का निश्चय कर लिया। प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति को रोकने और कैथोलिक चर्च की बुराइयों को दूर करने के लिए हुए आन्दोलन के फलस्वरूप प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति अवरुद्ध हो गई और कैथोलिक धर्म अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने लगा। प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के उद्देश्य थे– (1) कैथोलिक चर्च की बुराइयों को दूर करना, (2) कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तों में सुधार करना तथा (3) प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन की बढ़ती हुई प्रगति पर अंकुश लगाना।

–

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आनदोलन के कारण प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के निम्नलिखित कारण थे :

1. प्रोटेस्टेन्ट धर्म का बढ़ता हुआ प्रभाव– यूरोप के अनेक देशों में प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन का काफी प्रचार–प्रसार हुआ। कैथोलिक धर्म के प्रमुख नेता प्रोटेस्टेन्ट

आन्दोलन के बढ़ते हुए प्रभाव से अत्यधिक चिन्तित थे। अतः उन्होंने प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति पर अंकुश लगाने का निश्चय कर लिया।

2. कैथोलिक धर्म के अनुयायियों का अदम्य साहस– कैथोलिक धर्म के अनेक अनुयायी अपने धर्म के मूल सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखते थे। परन्तु वे कैथोलिक धर्म में आए हुए दोषों और बुराइयों को दूर करने के पक्ष में भी थे। वे कैथोलिक चर्च की एकता, संगठन और सैद्धान्तिक स्वरूप में परिवर्तन किये बिना ही कैथोलिक धर्म का सुधार करना चाहते थे ।

गृह–युद्ध की आशंका– प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रचार–प्रसार से कैथोलिक सम्राट भी चिन्तित थे, क्योंकि प्रोटेस्टेन्ट लोग उनकी सरकार को असफल करने का भरसक प्रयास कर रहे थे और अनेक राज्यों में की आशंका बनी हुई थी । अतः अनेक कैथोलिक सम्राट भी प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन की

गृह–युद्ध बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए पोप को सहायता देने को तैयार थे।

कैथोलिक धर्म में आस्था – यद्यपि यूरोप के कुछ देशों में प्रोटेस्टेन्ट मत का काफी प्रचार–प्रसार हुआ था, परन्तु अब भी यूरोप की अधिकांश जनता कैथोलिक धर्म में आस्था रखती थी। उनकी कैथोलिक चर्च, पोप एवं पादरियों में अटूट आस्था थी। उनकी दृष्टि में प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन पोप – विरोधी था, न कि धर्म–विरोधी । अतः उनका विश्वास था कि कैथोलिक चर्च की बुराइयाँ करने से प्रोटेस्टेन्ट धर्म की गति को अवरुद्ध किया जा सकता था।

को

दूर

5. प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों में एकता का अभाव – प्रोटेस्टेन्टों में भी एकता का अभाव था । प्रोटेस्टेन्ट धर्म अनेक शाखाओं, लूथरवादी, ज्विंग्लीवादी, कालविनवादी आदि में विभाजित हो गया था। इससे

पश्चिमी विश्व

स्व–प्रगति की जाँच करें : 3. धर्म – सुधार आन्दोलन के तत्कालिक कारण क्या थे? 4. क्या धर्म–सुधार आन्दोलन के परिणाम स्वरूप राजाओं की शक्ति में वृद्धि

प्रोटेस्टेन्टों की शक्ति बिखर गई थी। इससे भी कैथोलिक नेताओं को प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन शुरू करने की प्रेरणा मिली।

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन की सफलता के मुख्य कारक

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के सफल होने के निम्नलिखित मुख्य कारक थे

1. ट्रेन्ट की कौंसिल (1545–1563) – कैथोलिक धर्म की बुराइयों को दूर करने तथा कैथोलिक धर्म के मौलिक सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए इटली के ट्रेन्ट नामक नगर में एक कौंसिल या धर्म–सभा आयोजित की गई। इस सभा की बैठक 1545 ई० से 1563 ई० तक होती रहीं। इन बैठकों में पोप, बिशपों, आर्क–बिशपों तथा पादरियों ने भाग लिया। इन बैठकों में चर्च के पुनर्गठन,

अनुशासन और व्यवस्था में सुधार करने के लिए अनेक नियमों का निर्माण किया गया।

ट्रेन्ट की कौंसिल के सैद्धान्तिक कार्य :

1. पोप कैथोलिक धर्म का सर्वोच्च अधिकारी है तथा सभी सिद्धान्तों का अन्तिम व्याख्याता है। 2. केवल चर्च ही धर्म–ग्रन्थ का अर्थ लगा सकता है।

3. बाइबिल का लैटिन अनुवाद ही प्रामाणिक है।

4. सन्त–पूजा, मूर्ति व चित्र आदि बाह्य प्रतीक भी आवश्यक हैं।

ट्रेन्ट की कौंसिल में

सुधारात्मक

कार्य :

चर्च के पदाधिकारियों की सच्चाई, पवित्रता, नैतिकता एवं सादगी पर विशेष बल दिया गया।

बिशपों तथा पादरियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाने लगी ।

बिशप का अपने क्षेत्र में कर्तव्यों का पालन अनिवार्य कर दिया गया।

पादरियों का शिक्षित होना अनिवार्य कर दिया गया।

पापमोचन क्षमा– पत्रों की बिक्री बन्द कर दी गई।

धर्म के उपदेश सरल भाषा में दिये जाने लगे।

कैथोलिक चर्चों में पूजा की एक–सी विधि तथा एक–सी प्रार्थना – पुस्तक रखी गई।

कुछ पुस्तकों को कैथोलिकों को पढ़ने के लिए मना कर दिया गया।

जैसुइट संघ– कैथोलिक धर्म के सुधार में जैसुइट संघ ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया । 1534 ई० में स्पेन – निवासी इग्नेशियस लायोला ने इस संघ की स्थापना की थी। बाद में इसकी शाखाएँ यूरोप के अनेक देशों में स्थापित की गयीं। पोप पाल तृतीय ने 1540 में इसे मान्यता प्रदान की ।

इग्नेशियस लायोला अपने प्रारम्भिक जीवन में सम्राट चार्ल्स पंचम की सेना में सैनिक था, 1521 ई० में फ्रांस के विरुद्ध लड़ते हुए वह घायल हो गया और अस्पताल में भर्ती किया गया। वहाँ उसने महात्मा ईसा तथा अन्य धार्मिक सन्तों की जीवनियाँ पढ़ीं। उनसे प्रेरित होकर उसने कैथोलिक चर्च की सेवा करने का निश्चय कर लिया। सन् 1534 ई० में उसने पोप की स्वीकृति लेकर 'जेसुइट संघ' की स्थापना की। जैसुइट संघ के उद्देश्य :

कैथोलिक धर्म की सेवा करना ।

कैथोलिक धर्म का प्रचार करना ।

प्रोटेस्टेन्ट धर्म का विरोध करना ।

कैथोलिक धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करना था।

जैसुइट संघ का स्वरूप सैनिक था । इसका प्रधान 'जनरल' कहलाता था जिसका कार्यकाल आजीवन होता था। संघ के सदस्यों को अपने जनरल तथा अपने से ऊँचे अधिकारियों की आज्ञा मानना अनिवार्य

था। पादरी बनने के लिए पूर्ण शिक्षित होना अनिवार्य था। सदस्यों को पादरी

Notes

के पद पर नियुक्त करने से पूर्व दो वर्ष का कठोर प्रशिक्षण दिया जाता था। संघ के सभी सदस्य पोप के प्रति स्वामिभक्ति की शपथ लेते थे तथा उसकी आज्ञा का पालन करते थे। प्रत्येक सदस्य को अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, आज्ञापालन व पोप के प्रति स्वामिभक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी ।

जैसुइट संघ ने कैथोलिक धर्म के प्रचार–प्रसार में बहुत योगदान दिया। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप इटली, स्पेन, पोलैण्ड, हंगरी, पुर्तगाल, दक्षिणी जर्मनी आदि देशों में कैथोलिक धर्म पुनः प्रतिष्ठित हो गया। इस संघ ने भारत, चीन, अफ्रीका एवं अमेरिका आदि देशों में भी प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन की प्रगति को अवरुद्ध किया ।

इस प्रकार जैसुइट संघ ने कैथोलिक धर्म को सबल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अपनी निःस्थार्थ सेवा, कर्तव्यपरायणता और सेवा कार्यों से कैथोलिक धर्म को पुनः प्रबल बनाया और प्रोटेस्टेन्ट धर्म की बढ़ती प्रगति पर अंकुश लगाया।

` धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजिशन) – पोप पाल तृतीय ने 1542 ई० में रोम में ध ार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजिशन) की स्थापना की। कैथोलिक धर्म के विरोधियों को दण्डित करने, प्रोटेस्टेन्टों का दमन करने, नास्तिकों को सजा देने आदि उद्देश्यों से इस धार्मिक न्यायालय की स्थापना की गई थी। यह न्यायालय धर्म के पाखण्डियों को कठोर दण्ड देते थे। कैथोलिक धर्म के विरोधियों का दमन करते थे तथा धर्म–विरोधी पुस्तकों को जलवा देते थे। इस न्यायालय ने स्पेन, हॉलैण्ड, इटली, बैल्जियम आदि देशों में प्रोटेस्टेन्टों का कठोरतापूर्वक दमन किया। इसके आदेश से स्पेन में हजारों कैथोलिक विरोधियों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार धार्मिक न्यायालय ने आतंक के द्वारा प्रोटेस्टेन्ट ध ार्म का दमन करने का प्रयास किया और उसे अपने उद्देश्य में पर्याप्त सफलता मिली।

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के प्रभाव

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के निम्नलिखित प्रभाव पड़े :

1. ईसाई समाज विभाजित हो गयी कुछ देश कैथोलिक तथा कुछ देश प्रोटेस्टेन्ट धर्म के अनुयायी
बन गये।
2. प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रगति का अवरुद्ध हो गयी।
3. धर्माधिकारियों के जीवन में नैतिकता, सदाचार आदि का समावेश हुआ।
4. कैथोलिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ।
5. राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ।
6. शिक्षा की उन्नति हुई ।

सारांश

प्रतिवादात्मक धर्म–सुधार आन्दोलन के परिणाम स्वरूप ईसाई समाज विभाजित हो गया। कुछ देश कैथोलिक तथा कुछ देश प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी बने।

आगे प्रोटेस्टेंट धर्म की प्रगति अवरूद्ध हो गई। धर्माधिकारियों के जीवन में नैतिकता, सदाचार आदि का समावेश हुआ और कैथोलिक धर्म का प्रारूद्धार हुआ। लोगों में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ एवं शिक्षा की उन्नति हुई ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

चर्च की प्रतिक्रिया वादिता – चर्च सुधार एवं प्रगति का घोर विरोधी था । यदि कोई व्यक्ति चर्च के विरुद्ध नये विचारों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता था, तो उसे कठोरतापूर्वक दबा

दिया जाता था। परन्तु पुनर्जागरण के कारण लोगों में स्वतन्त्र चिन्तन एवं ताक्रिक दृष्टिकोण का

उदय हो चुका था। अब लोग प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को सहने करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके फलस्वरूप धर्म–सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ ।

पोप का राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप – पोप का राजनीतिक क्षेत्र में भी अत्यधिक प्रभाव था। वह राज्य के आन्तरिक एवं वैदेशिक मामलों में हस्तक्षेप करता था । जो कोई भी राजा उसका विरोध करता था, पोप उसे धर्म – बहिष्कृत घोषित कर देता था । पोप की स्वीकृति के बिना उस समय विवाह एवं तलाक नहीं हो सकते थे। इस प्रकार पोप के पास असीमित अधिकार थे। दूसरी ओर यूरोपीय नरेश अपने राजनीतिक कार्यों में पोप के हस्तक्षेप को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे।

पापमोचन क्षमापत्रों की बिक्री– पोप लियो दशम को रोम में सन्त पीटर के गिरजाघर के निर्माण के लिए धन की आवश्यकता थी । अतः धन एकत्रित करने के लिए उसने क्षमा– पत्रों को बेचने के लिए अनेक एजेण्ट भेजे। 1517 ई० में टेटजल नामक पोप का एक एजेण्ट क्षमा– पत्रों को बेचने के लिए जर्मनी के विटनबर्ग नगर में पहुँचा । उसने अपने भाषणों में यह कहना शुरू किया कि जो व्यक्ति इन क्षमापत्रों को खरीदेगा, उसे समस्त पापों से मुक्ति मिल जायेगी। परन्तु जर्मनी के प्रसिद्ध धर्म–सुधारक मार्टिन लूथर नेइसका घोर विरोध किया। उसने विटनबर्ग चर्च के द्वार पर इसके विरोध में 95 निबन्ध लिखकर लगा दिए। उसने इस प्रश्न पर पोप टेटजल को चुनौती दी। यह चुनौती ही धर्म–सुधार आन्दोलन की शुरूआत थी। इस प्रकार मार्टिन लूथर के नेतृत्व में जर्मनी में धर्म–सुधार आन्दोलन शुरू हो गया जो शीघ्र ही सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया।

राजाओं की शक्ति में वृद्धि – धर्म–सुधार आन्दोलन के परिणामस्वरूप यूरोप के राजाओं की

शक्ति में वृद्धि हुई । अनेक प्रोटेस्टेन्ट राजाओं ने अपने राज्यों में राष्ट्रीय चर्च की स्थापना की, जिसका सर्वोच्च अधिकारी सम्राट होता था। अनेक प्रोटेस्टेन्ट नरेशों ने चर्च की भूमि पर अधिकार करके अपनी शक्ति का विकास किया।

माड्यूल 2
इकाई 4
यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों का उदय

(ब्रिटेन, स्पेन, फ्रांस एवं रूस)इस अध्याय के अन्तर्गत :

☐ यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण समकालीन राजनीतिक विचार
चार्ल्स प्रथम के समय स्पेन की विदेशनीति
पवित्र रोमन साम्राज्य एवं चार्ल्स
इग्लेंड तथा चार्ल्स पंचम
साम्राज्य का विभाजन
फ्रांस में निरंकुश वाद चरम उत्कर्ष पर
प्रथम ट्यूडर सम्राट टेनरी सप्तम के शासन काल की प्रमुख उपलब्धियाँ
हेनरी अष्टम की विदेश नीति और उसके परिणाम
महारानी एलिजाबेथ की गृह एवं वैरेशिकनीति
गृह–युद्ध के कारण एवं परिणाम
चार्ल्स द्वितीय के काल की वैद्यानिक प्रगति

अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे
:
यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों के उदय के कारण और समकालीन राजनीतिक विचार
चार्ल्स प्रथम के समय स्पेन की विदेशनीति
पवित्र रोमन साम्राज्य एवं चार्ल्स इग्लेंड तथा चार्ल्स पंचम
साम्राज्य के विभाजन की समीक्षा कर सकेंगे
फ्रांस में निरंकुश वाद चरम स्थिति के कारण समझ सकेंगे
प्रथम ट्यूडर सम्राट टेनरी सप्तम के शासन काल की प्रमुख उपलब्धियाँ जान सकेंगे
हेनरी अष्टम की विदेश नीति और उसके परिणाम जान सकेंग
महारानी एलिजाबेथ की गृह एवं वैरेशिकनीति समझ सकेंगे
गृह–युद्ध के कारण एवं परिणाम की समीक्षा कर सकेंगे
चार्ल्स द्वितीय के काल की वैद्यानिक प्रगति की व्याख्या कर सकेंगे

परिचय

यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों के उदय तथा विकास में 16वीं शताब्दी के राजनीतिक विचारकों ने भी पर्याप्त सहायता पहुँचायी। समकालीन राजनीतिक विचारकों में

निकोले मैकियावेली, बोदाँ, एवं हॉब्स के नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। उनका मत था कि राजा संविधान तथा संसद से ऊपर है तथा उसकी इच्छा ही कानून

है । राष्ट्रीय राजाओं ने इसे स्वीकार कर लिया । 1513 ई० में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ीम च्तपदबम' में मैकियावेली ने बताया कि अनेक सरकारों की अपेक्षा राजतंत्र उत्तम है, राष्ट्रीय राजा की शक्ति असीमित है तथा उसकी शक्तियाँ धर्म एवं नैतिकता से अप्रभावित हैं। बोदां ने भी 1756 ई० में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जीम ेजंजम' में बताया कि शासक को सभी तरह के प्रतिबन्धों से मुक्त होना चाहिए क्योंकि वह सभी कानूनों का स्रोत है। हॉब्स ने मैकियावेली तथा बोदाँ से भिन्न निरंकुशवाद की वकालत की।

उपर्युक्त विवरण से जाहिर है कि एक शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हेतु उपयुक्त वातावरण तैयार था । राष्ट्रीय राज्यों के उदय की पृष्ठभूमि में चर्च, ६ ार्मयुद्ध, मध्यमवर्ग, गोला–बारूद एवं समकालीन राजनीतिक दार्शनिकों के चिन्तन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । पोलैण्ड, लिथुबानिया, हंगरी, नार्वे, स्वीडेन, डेनमार्क, स्पेन, फ्रांस और इंग्लैण्ड राष्ट्रीय राज्य के रूप में अवतीर्ण हुए।

यूरोपीय राष्ट्रीय राज्यों का उदय (उत्थान) तथा विकास 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :

धर्मयुद्ध – इस्लाम और ईसाई धर्मावलम्बियों के मध्य लड़े गए धर्मयुद्धों ने पश्चिमी जगत को प्राचीन राजत्व के सिद्धान्तों से परिचित किया। व्यापार–व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलने के फलस्वरूप मध्यम वर्ग का जन्म हुआ जो राष्ट्रीय राजाओं को शक्तिशाली देखना चाहता था । धर्मयुद्धों ने पुरोहितों तथा सामन्तों का ध्यान घरेलू समस्याओं से हटाकर लाभप्रद विदेशी व्यापार की ओर आकृष्ट किया। इससे राष्ट्रीय राजाओं को युद्धप्रिय सामन्तों से छुटकारा मिला और वे अपने राज्य में शान्ति–व्यवस्था कायम रखने तथा व्यापार–व्यवसाय को प्रोत्साहित करने में जुट गए। धर्मयुद्धों में कुछ सामन्त मारे गए और कुछ निकट – पूर्व की ओर प्रस्थान कर गए। इस राष्ट्रीय राज्यों के उत्थान तथा विकास में धर्मयुद्धों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

चर्च का योगदान– मध्य युगीन चर्च राजतंत्र का प्रबल विरोधी था । दोनों में सदैव प्रभुता हेतु संघर्ष चलते रहते थे। परन्तु धर्मयुद्धों तथा धर्मसुधार आन्दोलन ने चर्च को आंतरिक दृष्टि से काफी कमजोर कर दिया। फलस्वरूप, चर्च भी शक्तिशाली राजतंत्र के पक्ष में हो गया । सामन्तवादी व्यवस्था के उन्मूलन में चर्च ने मध्यमवर्ग और राजा का साथ दिया। फलतः यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान संभव हो सका।

मध्यमवर्ग का उदय– इसी समय यूरोप में मध्यमवर्ग का उदय हुआ जिसने राजतंत्र का साथ दिया।

फलतः राजा भी मध्यमवर्ग के हितों का ध्यान रखते थे।

कालान्तर में राजा राष्ट्रीय व्यवसाय के असली मालिक बन गये । मध्यमवर्ग भी इसमें हिस्सेदार था। प्रसिद्ध इतिहासकार हेज के शब्दों में, मध्यमवर्ग का उदय तथा राजतंत्र से इसका गठबंधन संभवतः संक्रान्ति काल, अर्थात् मध्ययुग से आध ुनिक युग में आगमन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। मध्यमवर्ग, जिसमें वकील, प्राध्यापक, पदाधिकारी, व्यापारी – व्यवसायी आदि सम्मिलित थे, शिक्षित तथा सम्पन्न थे। वे राष्ट्रीय सेना में भी भर्ती किए जाते थे । अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर होने वाले व्यापार–व्यवसाय में मध्यम वर्ग ने राजा का साथ दिया और राष्ट्रीय हितों के प्रति सदैव सजग रहा। उपनिवेशों की लूट–खसोट में उनका हाथ होने से राष्ट्रीय राजा भी मालामाल हो गए। फ्रांस, डेनमार्क, हॉलैण्ड, पुर्तगाल और स्पेन आदि यूरोपीय राज्यों की सम्पन्नता काफी बढ़ गयी ।

गोला–बारूद का अन्वेषण– उसी समय यूरोप में गोला–बारूद का आविष्कार हुआ। फलस्वरूप युद्धकला में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और तीर, भाला, तलवार की जगह बन्दूक, तोप आदि के

प्रयोग से किसी भी विद्रोह का आसानी से दमन किया जाने लगा। इस तरह सामन्तों की शक्ति विच्छन्न करने, विद्रोहों के दमन करने तथा विदेशी शत्रुओं का सामना करने में नवीन युद्धास्त्रों का प्रयोग किया जाने लगा। अंततः यह राजकीय निरंकुशता का अस्त्र बन गया ।

रोम कानून – राष्ट्रीय राज्यों के उदय में प्राचीन रोमन कानून का अध्ययन–अध यापन भी काफी सहायक सिद्ध हुआ। वैजनराइन साम्राज्य के सम्राट जस्टिनियन ने इन रोमन कानूनों का संकलन किया। ये कानून मध्यमयुगीन सिद्धान्तों से बिल्कुल विपरीत थे। जिनमें यह कहा गया था कि राजा या शासक सामन्ती अनुबंध तथा देश का मौलिक कानून या संविधान मानने के लिए बाध्य है। अब इस सिद्धान्त को उत्तरकालीन मध्ययुगीन राजाओं ने मानने से इन्कार कर दिया और प्राचीन रोमन कानून के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की। इसके अध्ययन–अध यापन को भी उन्होंने प्रोत्साहित किया । वकीलों ने भी 16वीं शताब्दी तक राजा के पक्ष में इसी रोमन कानून की दलील देना प्रारम्भ कर दिया।

पश्चिमी सभ्यता ग्रीस और रोम से बहुत प्रभावित हुई है। यूरोप का मध्यकाल बाह्य संसार की खोज का काल था और इसके पोषक तत्व थे– पुनर्जागरण, पूर्व (एशिया) के साथ व्यापारिक संबंधों का विकास, नौ – विज्ञान में उन्नति और नवीन राष्ट्रीय राज्यों का उदय । मध्यकालीन यूरोप के देश रोमन कैथोलिक चर्च

अन्तर्गत, धार्मिक क्षेत्र में, और राजनैतिक क्षेत्र में रोमन साम्राज्य के प्रभाव से एकता के सूत्र में बँधे थे। परन्तु सामनतवाद का बोलबाला था और भूमि सैनिक नेताओं तथा दरबारी लोगों के हाथ में थी जो बदले में राजा को सैनिक सहायता देते थे। कृषिकार्य कृषकों तथा खेतिहा श्रमिकों के हाथ में था और समुद्री व्यापार के विकास में नार्स लोगों का बहुत योगदान था । व्यापारिक विकास से नगर – सभ्यता के विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई । परिणामस्वरूप

अमीरों और कृषको के बीच एक 'मध्य – वर्ग' का उदय हुआ । केन्द्रीय राष्ट्रीय राज्यों के निर्माण में इस वर्ग का विशेष योगदान रहा, क्योंकि यह वर्ग सामन्तवाद और उससे सम्बद्ध बुराइयों से सहमत नहीं था ।

आर्थिक विकास, सुरक्षा और शिक्षा – प्रसार नये विचारों को जन्म दिया। जिसका परिणाम पुनर्जागरण के रूप में सामने आया । यद्यपि चर्च की भाषा लैटिन बनी रही तथापि ग्रीक और रोमन ग्रन्थों के अध्ययन और देशी साहित्य के विकास के भी प्रत्यन होने लगे। साथ ही साथ प्रार्थना और जादू की बजाय वैज्ञानिक और प्राविधिक विकास के बल पर प्राकृतिक वातावरण को नियंत्रित करने की चेष्टा होने लगी । वैज्ञानिक आविष्कारों में बारूद, बन्दूकें, जल और वायु से चलने वाली विविध मशीनें, नौ–निर्माण कला और तत्सम्बद्ध अनेक उपकरणों का विकास हुआ।

यूरोप में इंग्लैण्ड, फ्रांस, हॉलैण्ड, पुर्तगाल और स्पेन आदि, प्रगतिशील राष्ट्रीय राज्यों का उदय हो चुका
था।

सामुद्रिक आविष्कारों के क्षेत्र में पुर्तगाल प्रथम राष्ट्र था। 1460 तक प्रिन्स हेनरी और 1486 में डियाज के प्रयत्नों के बाद 1497–98 में वास्कोडिगामा भारत की ओर बढ़ा । जैनोआ के निवासी क्रिस्टोफर कोलम्बस 1492 में महारानी इसाबेला की आर्थिक सहायता से 90 व्यक्तियों के साथ अपने समुद्री अभियान में पूर्व के लिये नये मार्ग की खोज को चला। उसने सोचा कि वह वहाँ पहुँच चुका है जबकि वह बहामा में बेटलिंग द्वीपों पर उतरा था। उसने सोचा कि वह चीन पहुँच रहा है, जबकि वस्तुतः वह क्यूबा की ओर बढ़ रहा था। अगले वर्ष इससे भी बडे अभियान के द्वारा उसने अन्य द्वीपों की खोज की। तत्पश्चात् 1498 और 1502 के अभियानों के फलस्वरूप वह मध्य अमेरिका के कैरेबियन तट को खोजने में सफल हुआ। इसके साथ ही सामुद्रिक अभियानों में स्पेन पुर्तगाल से आगे बढ़ गया और इंग्लैण्ड व फ्रांस भी इस ओर अपने कदम बढ़ाने लगे।

जब स्पेन अमरीका में अपना साम्राज्य बना रहा था, पश्चिमी यूरोप की धार्मिक एकता अमेरिका में बस्तियाँ बनाने की होड़ में भंग हो गई। पूर्व और पश्चिम में चर्च दो भागों – कान्स्टैन्टीनोपल और रोमन चर्च में विभक्त हो गया। फिर भी पोप का धार्मिक अधिकार सभी को स्वीकार था । शीघ्र ही पश्चिमी यूरोप कैथोलिक और प्रोटेस्टेट मतों में बँट गया। साथ ही रोमन चर्च ने भी अपने में सुधार आरम्भ किये।`

इन धार्मिक उत्थानों का प्रभाव अमेरिका में उपनिवेश बनाने में महत्वपूर्ण रहा। चर्च की नीतियों के विरोधी कुछ लघु– समुदाय इंग्लैण्ड और जर्मनी से इन उपनिवेशों में आ बसे । कैथोलिक मत में व्यापार को पाप की दृष्टि से देखा जाता था जबकि प्रोटेस्टेन्ट मत में व्यापार में परिश्रम तथा ब्याज पर रकम लेने पर बल देने के कारण व्यापारिक कार्य–कलापों में वृद्धि हुई । व्यक्तिगत लाभ को बढ़ावा मिलने से उपनिवेश बनाने के लिये होड़ की भावना जाग्रत हुई। प्रोटेस्टेन्ट मत के अनुयायिओं में अमेरिका में अपने मत को प्रबल बनाने के लिये

होड़ की भावना जाग्रत हुई।

16वीं शताब्दी की महान् शक्ति के रूप में स्पेन ने उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका पर एकाधिकार कर लिया। डच, अंग्रेज तथा फ्रॉंसीसी लोगों ने स्पेन के इस एकाधिकार को चुनौती दी।

1568 में हॉलैण्ड ने स्पेन का विरोधा प्रारम्भ किया और 1609 में एक समझौते के आधार पर डच लोगों ने अमेरिका में अपने उपनिवेश बनाने आरम्भ किये। इसमें इंग्लैण्ड ने डच लोगों की सहायता की। ड्रेक ने जहाजी लुटेरा बनकर महारानी एलिजाबेथ को कई हजार प्रतिशत का लाभ दिखाया जिसने चुपके से उसके अभियान को समर्थन दिया था। इंग्लैण्ड ने जब संयुक्त नीदरलैण्ड के विरोधियों से समझौता किया तो फिलिप द्वितीय ने युद्ध की घोषणा कर दी। इसके लिए एक अत्युत्तम और बहुत बड़ा अजेय – सा जहाजी बेड़ा तैयार किया गया। 1588 में इंग्लिश चौनल में युद्ध के मध्य एक भयंकर तूफान के कारण इंग्लैण्ड को इस आरमाडा को ध्वस्त करने में सुगमता हो गयी।

–

इस युद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की संसार को सबसे बड़ी समुद्री शक्ति होने के कारण उपनिवेश बनाने से नहीं रोका जा सकता था और शीघ्र ही उत्तरी अमेरिका के अटलांटिक तट पर अपने उपनिवेश बनाने की कुंजी अंग्रेजों के हाथ में आ गयी। अनेक अंग्रेज कम्पनियों ने अपना व्यापार बढ़ाया और समुद्री – व्यापार को बढ़ावा देने की दिशा में कुछ ग्रंथ भी लिखे गये । समुद्री व्यापार की दिशा में उपनिवेशों को सबसे अच्छा साधन समझा गया। आक्सफोर्ड के एक पादरी रिचर्ड हक्लूयन ने कुछ प्रबन्ध–काव्य भी इस संबंध में लिखे । उपनिवेशों को एशिया के पश्चिमी मार्ग पर नियंत्रण करने, स्पेन – साम्राज्य पर आक्रमण करने और

मूल निवासियों (इंडियन लोगों) को प्रोटेस्टेंट बनाने का माध्यम समझा गया। अंग्रेजी उपनिवेशों के वास्तविक संस्थापक सर हम्पी गिलबर्ट और सर बाल्टर रैले थे जो कि हक्लूयन और महारानी के मित्र थे । यद्यपि इन दोनों को अधि ाक सफलता नहीं मिली फिर भी उन्होंने भविष्य के सफल उपनिवेश–संस्थापकों के लिए मार्ग–दर्शक और दिशा सूचक होने का कार्य अवश्य किया । जेम्स प्रथम के सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद रैले पर राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र का अभियोग लगाकर उपनिवेश बनाने के एकाधिकार से वंचित करके जेल भेज दिया गया और अन्ततः फाँसी दे दी गई। तत्पश्चात् राजा ने कम्पनियों तथा उनके मालिकों को उपनिवेश बनाने के लिए भूमि की स्वीकृत दी जिसकी सीमा भली–भाँति निश्चित नहीं थी । 1607 में लंदन कम्पनी द्वारा सर्वप्रथम वर्जीनिया में जेम्सटाउन की स्थापना की गयी । प्रारम्भिक कठिनाइयों को दूर करके यह सर्वप्रथम अंगेजी उपनिवेश बना । उपनिवेश बनाने का कार्य चिरकाल तक जारी रहा। 1732 तक जार्जिया की, जो कि अंतिम 13वाँ उपनिवेश था, स्थापना नहीं हुई थी।

उधर सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रांस का भी उपनिवेशी साम्राज्य स्थापित हुआ जिससे मिसिसिपी घाटी पर वह अपना अधिकार जतला सका, जबकि उसके समुद्री अभियान अटलांटिक के पार न्यूफाउण्लैण्ड के तटों तक 16वीं शताब्दी में ही पहुँच चुके थे। फ्रांसीसी कैथोलिकों को उपनिवेशों में बसाने के फ्रांस सरकार के प्रयत्नों के बावजूद इस दिशा में धीमी प्रगति हुई क्योंकि वहाँ कृषि और दस्तकारी संबंधी सुविधाओं का अभाव था। फ्रांस सरकार ने इन उपनिवेशों में अपना सर्वाधिकार रखा और मूल निवासियों से सम्पर्क बढ़ने के परिणामस्वरूप फ्रांसीसी धर्मोपदेशकों को मूल निवासियों को ईसाई बनाने में सुविधा हो गई ।

1609 में हैनरी हडसन द्वारा (जो कि मूलतः अंग्रेज था परन्तु हॉलैंड – सरकार की सेवा में था) हडसन नदी की खोज के कारण हॉलेंड को न्यू नीदरलैंड उपनिवेश बनाने का आधार मिला । स्पेनी, फ्रांसीसी और अंग्रेजी उपनिवेशों की अपेक्षा इस उपनिवेश में धार्मिक सहिष्णुता थी, अतः हडसन नदी के मुहाने पर अनेक राष्ट्रों और जातियों के लोग आ बसे । 1664 में इंग्लैण्ड और हॉलैंड की विश्वविख्यात समुद्री और व्यापारिक होड़ के कारण परस्पर युद्ध हुआ । अंग्रेजी बेड़े की विजय के परिणामस्वरूप न्यू नीदरलैंड अंग्रेजी उपनिवेश बन गया और इसका नाम न्यूयार्क पड़ गया।

1630 में चार्ल्स प्रथम की धार्मिक असहिष्णुता से पूर्ण नीति के कारण अनेक प्यूरिटन मैसेचूसेट्स कम्पनी के तत्वावधान में अमेरिका आ बसे एवं अमेरिका में मैसेचूसेट्स की स्थापना हुई। 1635–36 में कनैटीकट नदी पर चार नगर बसाए गए। 1662 में यह भी एक उपनिवेश बन गया ।

इंग्लैंड में प्यूरिटन शासन के परिणाम (जिसका उदय चार्ल्स को 1649 में शासनच्युत कर फाँसी देने पर हुआ था ।) बहुत से अंग्रेज जिन्होंने चार्ल्स की सहायता की थी, बर्जीनिया में आ बसे । 1660 में जब स्टुअर्ट शासक (चार्ल्स द्वितीय) के हाथ पुनः सत्ता आई, असंख्य प्यूरिटन न्यू इंग्लैंड में जा बसे । ध ार्मिक असहिष्णुता से भरपूर साम्राज्य की तुलना में नया संसार धार्मिक और राजनैतिक स्वतंत्रता से व्याप्त था । आरम्भ में अंग्रेजों को कृषि और जलवायु की समस्याओं के अतिरिक्त आटलॉटेक तट के मूल निवासियों से भी अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा। चार्ल्स द्वितीय ने न केवल मैसेचूसेट्स को प्यूरिटन उपनिवेश के रूप में मान्यता दी प्रत्युत 25 वर्षों के भीतर छः और उपनिवेशों को भी स्थापित किया। जॉजिर्या की स्थापना जार्ज द्वितीया के आज्ञा पत्र से 1732 में हुई और 1750 से जॉजिर्या कैरोलिया के समानान्तर उन्नति पथ पर अग्रसर हुआ।

स्पेन – निवासी जो कि उपनिवेशों में मुख्यतः धन–लोलुपता के कारण आए थे तथा फ्रांसीसी जो कि फर व्यापार में अधिक दिलचस्पी रखते थे, इन दोनों की तुलना में अंग्रेजों ने कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया। उन्होंने नये वातावरण के अनुकूल अपने कृषि – साधनों को बदला तथा मूल निवासियों से अनाज, मक्का, आलू, तम्बाकू और अन्य फसलों को रोपना सीखा।

इकाई 5
समकालीन राजनीति विचार

बर्जीनिया में मुख्यतःतम्बाकू और दक्षिणी कैरोलिना में चावल की खेती होने लगी। मध्य उपनिवेशोंकी भूमि अपेक्षाकृत कम थी और वहान प्रायः पारिवारिक सदस्य स्वयं कृषि करते थे। भूमि उपजाऊ थी और पर्याप्त अनाज उत्पन्न होता था एवं पशुपालन कीउत्तम सुविधाएँ थीं । न्यू इंग्लैण्ड में कृषि–संबंधी अनेक कठिनाइयाँ थीं और उपज कम थी । परिणमतः यहाँ के निवासी कृषि के अतिरिक्त मछलियाँ पकड़ने,जहाज बनाने तथा व्यापार करने आदि अन्य साधनों का सहारा भी लेने लगे ।चार्ल्स प्रथम के समय स्पेन की विदेश नीति–

चार्ल्स प्रथम स्पेन का एक महत्वपूर्ण शासक था । वह यूरोप के इतिहास में अपनी विशाल विरासत के लिए शार्लमा एवं नेपालियन के समान महत्व रखता है। उसकी शिक्षा–दीक्षा नीदरलैण्ड में हुई थी तथा उसे जर्मन या स्पेनिश भाषा का ज्ञान नहीं हुआ था वह स्वयं को अपने देश का राजकुमार समझता था । कहना न होगा कि प्रारम्भ में वह देशविहीन राजा था।

राज्यारोहण एवं विरासत – चार्ल्स पंचम स्पेन के सम्राट फर्डिनेंड की पुत्री इनफेंटाजुआना का लड़का था। इनफेंटाजुआना का विवाह आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंशीय शासक मैक्सिमिलियान के पुत्र फिलिप के साथ हुआ था। फिलिप की माँ बर्गेडी की मेरी थी जो नीदरलैंड की उत्तरधिकारी थी । अतएव फिलिप नीदरलैंड में था । चार्ल्स पंचम का जन्म 1500 ई० में हुआ था। संयोगवश 1516 ई० तक स्पेन के सम्राट फर्डिनेंड, फिलिप, इजाबेला एवं स्पेन के उत्तराधिकारी की मृत्यु हो गयी । अतएव चार्ल्स स्पेन, नीदरलैंड एवं हैप्सवर्ग के अधिकारियों का उत्तराधिकारी बनाकर उसके अधीन सेविल, वियना, नेपल्स, मेक्सिको, मेड्रिड, वार्सेलोना आदि प्रदेश थे। इस प्रकार चार्ल्स यूरोप के तीन विभिन्न राजवंशों के क्षेत्रों का स्वामी था। उसके अधीन जर्मनी में आस्ट्रिया की डचियाँ थीं। उत्तरी समुद्र तट पर वह नीदरलैंड का स्वामी था । नयी दुनिया के अनेक क्षेत्र – मेक्सिको, पेरू आदि पर उसका अधिकार था । कहना न होगा कि राज्यारोहण के समय चार्ल्स पंचम आस्ट्रिया, वर्गेडी तथा स्पेन का सम्राट था । इतिहास में इतना विशाल राज्य शायद ही किसी राजा को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ था। 1519 ई० में चार्ल्स पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट चुना गया।`

चार्ल्स पंचम की कठिनाइयाँ – यह सत्य है कि चार्ल्स दुनिया के एक बड़े भाग का स्वामी था, परन्तु उसका शासन काँटों का ताज था। उसे एक शक्तिशाली राज्य नहीं, अपितु विविध परम्पराओं वाले राज्यों का समूह प्राप्त हुआ था। उसके साम्राट में न तो सामान्य प्रशासनिक और न न्यायिक प्रणाली स्थापित थी। स्पेन में फर्डिनेंड एवं इजाबेला के विवाह के फलस्वरूप कास्तिल एवं अरागान का एकीकरण अवश्य हुआ था, परन्तु यह एकीकरण व्यक्तिकरण था न कि संस्थागत । चार्ल्स के प्रत्येक राज्य अपना स्वतंत्रता अस्तित्व रखते थे। साम्राज्य में राजनीतिक एवं धार्मिक कारणों से अशांति व्याप्त थी । सामन्तों एवं

लूथररवादियों से भी चार्ल्स को खतरा था । नेपल्स, सिसली एवं सार्डीनियाँ में अलग–अलग स्थानीय सरकारें कार्य कर रही थीं। उसके साम्राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत आठ कोर्टेज या संसद थे। स्पेन अनेक युद्धों में संलग्न था जिसके कारण उसकी अर्थव्यवस्था और भी कमजोर हो गयी थी । यद्यपि नयी दुनिया एक अन्य उपनिवेशों से सोना–चाँदी काफी मात्रा में आ रही थी, परन्तु इसका प्रभाव आत्मनिर्भरता के लिए अच्छा साबित नहीं हो रहा था। आर्थिक दृष्टिकोण से स्पेन एक कमजोर देश था। यह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विदेशी बाजारों एवं उपनिवेशों पर अधिक निर्भर था। इस प्रकार चार्ल्स पंचम को अपने राजवंशीय साम्राज्य के साथ–साथ रोमन साम्राज्य की समस्याओं का भी समाधान करना पड़ता था ।

स्पेन एवं फ्रांस के बीच युद्ध – चार्ल्स पंचम के समकालीन फ्रांस का सम्राट फ्रान्सिस था । वह काफी महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। फ्रासीसी नेपलस, मिलान, नर्वो आदि पर अपना दावा प्रस्तुत करता था । उसी आँखें नीदरलैण्ड के कुछ समृद्ध क्षेत्रों पर लगी हुई थीं। उल्लेखनीय है कि पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट के निर्वाचन के समय फ्रांसिस भी एक दावेदार था जिससे उसके तथा चार्ल्स के बीच कटुता व्याप्त हो गयी थी। इन्हीं कारणों से फ्रांस एवं स्पेन के बीच 1522 ई० में लम्बे समय के लिए युद्ध प्रारम्भ हो गयो

फ्रांस की सेना ने मिलान पर आक्रमण कर दिया, परन्तु पोप की सेना की सहायता से स्पेन ने उसे मिलान से खदेड़ दिया। अनेक छोटे–छोटे युद्धों के बाद चार्ल्स अपने सैनिकों सहित बंदी बना लिया गया। इस बार फ्रांस को इंग्लैण्ड से मदद मिल रही थी। फिर भी फ्रान्सिस असफल रहा तथा उसे 1529 ई० में क्रैम्बे की संधि करनी पड़ी। परन्तु उक्त संधि भी फ्रान्स एवं स्पेन के बीच स्थायी शान्ति कायम नहीं कर सकी । स्पेन एवं फ्रांस के बीच 1559 ई० तक अनेक युद्ध हुए । चार्ल्स द्वारा सिंहासन त्यागने के बाद उसके उत्तराधिकारी ने भी युद्ध जारी रखा। अंततः 1559 ई० में केटोकैम्बेसी संधि द्वारा युद्ध का अन्त हुआ । संधि की शर्तों के अनुसार राइन नदी, मेज, तौल एवं बर्दून पर फ्रांस का अधिकार स्वीकृत हुआ। इटली पर हैप्सबर्ग वंश का प्रभाव स्थापित हो गया ।

पवित्र रोमन साम्राज्य एवं चार्ल्स – चार्ल्स पंचम के काल में पवित्र रोमन साम्राज्य जर्मन भाषा–भाषी क्षेत्रों तक ही विस्तृत था। उस क्षेत्र की विविध समस्याएँ थीं। जर्मनी में अनेक छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्य थे जहाँ विभिन्न राजकुमारों का शासन था। चार्ल्स पंचम जर्मनी के राज्यों का एकीकरण करके उन पर अपना प्रभाव एवं नियंत्रण बढ़ाना चाहता था। जर्मन राज्यों में सामन्त एक ओर थे तथा राजकुमारों एवं व्यापारियों का गठबंधन अलग था । यद्यपि जर्मन सामन्तों की स्थिति अच्छी नहीं थी । फिर भी वे तत्कालीन शासन–प्रणाली को हेय दृष्टि से देखते थे। उनमें से कुछ शिक्षित एवं देशभक्त थी थे। चार्ल्स के रोमन साम्राज्य के सम्राट के निर्वाचन के समय उन्होंने काफी मदद की थी। प्रारम्भ में जर्मन सामन्तों ने चार्ल्स को राजकुमारों की शक्ति कम करने में अच्छी सहायता की थी। परन्तु धार्मिक प्रश्न पर सम्राट एवं सामन्तों के मध्य तीव्र

मतभेद उत्पन्न हो गया। उल्लेखनीय है कि जर्मनी लूथरवाद का प्रधान केन्द्र था। अधिकांश सामन्त लूथरवाद का समर्थन करते थे। दूसरी ओर चार्ल्स पंचम कट्टर कैथोलिक था तथा प्रोटेस्टेंटों को दबाना अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझता था । 1520 ई० में मार्टिन लूथर एवं पोप का संबंध विच्छेद हो गया । पोप ने चार्ल्स को उसे कैद करने का आदेश दे दिया। फलतः सामन्तों एवं चार्ल्स के बीच भी विरोध उत्पन्न हो गया ।

1522 ई० में जर्मन सामन्तों ने विद्रोह का बिगुल बजा दिया । सिकिनजेन नामक सामन्तों के नेता ने ट्रायर के कैथोलिक राजकुमार की जमींदारी पर हमला कर दिया। परन्तु वह असफल रहा क्योंकि राजकुमारों

ने आपसी मतभेद को भुलाकर ट्रायर की मदद की। इसी बीच वहाँ किसानों का विद्रोह प्रारम्भ हो गया । जर्मन कृषक राजाओं, सामन्तों एवं पादरियों के आर्थिक शोषण से प्रताड़ित थे । प्रारम्भ में लूथर ने किसानों का समर्थन किया, क्योंकि वे कैथोलिक जमींदारों पर आक्रमण करते थे। परन्तु विद्रोह के मध्य एवं दक्षिण जर्मनी में फैल जाने के पश्चात् स्थिति बदल गयी। लूथर के समर्थक जमींदार भी किसानों के आक्रमण के शिकार होने लगे । अतएव लूथर के इस इस विश्वसासघाती रवैये से उसकी लोकप्रियता में कमी आयी । चार्ल्स के शासन के अंतिम दिनों में ऑग्सबर्ग की संधि हुई । जर्मन राजकुमारों को कैथोलिक या प्रोटेस्टेन्ट धर्म को मानने की स्वतंत्रता प्रदान गयी।

इंग्लैंड तथा चार्ल्स पंचम – चार्ल्स के शासनकाल में इंग्लैंड का सम्राट हेनरी अष्टम था। उसका विदेश मंत्री थामस बुल्जें एक महत्वाकांक्षी एवं चतुर व्यक्ति था। वह यूरोप की राजनीति में इंग्लैंड को महत्वपूर्ण स्थान दिलाना चाहता था। फ्रांसीसी – स्पेनिश युद्ध के दौरान इंग्लैंड द्वारा फ्रांस की मदद की गयी थी जो बुल्ज की कूटनीति की देन थी । हेनरी अष्टम एवं कैथोरिन के संबंध विच्छेद के प्रश्न पर स्पेन तथा इंग्लैण्ड के बीच दरार उत्पन्न हो गयी थी, मेरी से कर दी। फलतः दोनों देशों में सौहार्द्र संबंध स्थापित हुआ।

नीदरलैंड एवं चार्ल्स जर्मनी की तरह नीदरलैंड भी विविधताओं का देश था। नीदरलैंड के प्रत्येक राज्य स्वयं में पूर्ण एवं स्वतंत्र था। उनमें आपसी मतभेद एवं प्रतिस्पर्द्धा भी हमेशा रहती थी। चार्ल्स पंचम ने नीदरलैंड के प्रान्तों में एकता स्थापित करने के अनेक प्रयत्न किये। उनकी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाये गये तथा उनसे कर वसूल किया गया। उसके काल में नीदरलैंड के निवासियों पर अनेक अत्याचार भी हुए। फिर भी चार्ल्स नीदरलैंड पर अपनी प्रभावशाली नियंत्रण कायम नहीं कर सका ।

साम्राज्य का विभाजन – इस प्रकार चार्ल्स का सारा समय विभिन्न संघर्षों एवं समस्याओं में ही व्यतीत हुआ। 1556 ई० में उसने साम्राज्य से मुक्त होने का निर्णय लिया। उसने अपने साम्राज्य का विभाजन कर दिया। उसने अपने पुत्र फिलिप द्वितीय को स्पेन, नीदरलैंड, इटली के राज्य एवं अमेरिका के उपनिवेशों आदि का शासक नियुक्त किया। उसने अपने भाई फर्डीनेंड को यूरोप का राज्य दे दिया। चार्ल्स स्पेन का एक महत्वाकांक्षी एवं कर्तव्यनिष्ठ शासक था। उसके

काल में स्पेन की आर्थिक समृद्धि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई द्य उसने बिखरे हुए स्पेनी साम्राज्य में एकता लाने का भरपूर प्रयास किया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप जर्मनी, नीदरलैण्ड एवं स्पेन में पूँचीवाद का विकास हुआ वह मानवतावादी विचारधारा का समर्थक था । उसे कला एवं संगीत में भी गहरी अभिरुचि थी।
.
फ्रांस
लुई चौदहवाँ फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र का सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण था । उसकी प्रसिद्ध उक्ति थी– '' मैं ही राज्य हूँ। मेरे शब्द ही कानून हैं। '' कहना न होगा कि उसके शासन काल में निरंकुशवाद फ्रांस में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। अपने पिता की मृत्यु के समय मात्र वह पाँच वर्ष का था। उसकी अल्पवयस्कता के कारण उसका प्रधानमंत्री कार्डिनल मेजारिन फ्रांस का भाग्य विधाता था । 1661 ई० के बाद उसने शासन का कार्यभार स्वयं संभाला तथा कोल्बर्ट नामक योग्य व्यक्ति को वित्तमंत्री नियुक्त किया । उसका शासन–काल लुई – चौहदवें का युग के नाम से जाना जाता है। लुई राजकीय निरंकुशवाद के सिद्धान्त का कट्टर समर्थक था ।
लुई की शिखा फ्रांसीसी बिशप बोसेत (ठवेनमज) के द्वारा हुई थी जिसने उसके मस्तिष्क पर दैवी अधिकार के सिद्धान्त को अटूट रूप से स्थापित कर दिया था। उसका मानना था कि राजा पवित्र, प्रजा का पिता, असीमित शक्ति – सम्पन्न एवं पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि होता है। इसके अनुसार राजा का विरोध ईश्वर का विरोध होता है। राजा अपने सभी कार्यों के लिए ईश्वर के प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार लुई निरंकुश राजतंत्र का कट्टर समर्थक था । यूरोप के इतिहास में शायद ही कोई सम्राट इतना निरंकुश था जितना कि लुई चौदहवाँ । लुई ने अपने निरंकुश राजतंत्र को क्रियान्वित करने के लिए अनेक उपायों का सहारा लिया।
केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना – लुई चौदहवाँ ने सम्पूर्ण देश में अपनी सत्ता को दृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य से केन्द्रीकृत प्रशासन का गठन किया। उसने उच्च राजकीय पदों पर मध्यम वर्ग के लोगों को नियुक्त किया। अधिकारीगण लुई के प्रति निष्ठावान एवं उत्तरदायी होते थे। राजा उन्हें अनेक पुरस्कारों को देकर खुश रखता था। अधिकारियों के अधिकार सीमित होते थे। राज्य के विभिन्न भागों में अधीक्षकों की नियुक्ति की गयी । इन्हें न्याय, प्रशासन एवं सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। साथ ही अधिकारगण अपने क्षेत्रों में पादरियों एवं सामन्तों पर कड़ी नजर रखते थे। उन्हें विद्रोह को दबाने एवं भूमि एवं अन्य करों की वसूली आदि का भी कार्य करना पड़ता था ।
लुई चौदहवाँ ने एस्टेट्स जनरल, प्रान्तीय पालेमा, प्रान्तीय गवर्नरों आदि के अधि ाकार छीन लिये। उसने सामन्तों की शक्तियों को नष्ट करने के लिए मध्यम वर्ग की सहायता प्राप्त की। मध्यम वर्ग में अपने हितों की रक्षा के लिए निरंकुश राजतंत्र का समर्थन किया। लुई के काल में सामन्त वर्ग शक्तिविहीन होकर पूर्णतः राजा पर निर्भर हो गये। उनकी सेनाएँ भंग कर दी गईं। इस प्रकार लुई

ने राजतंत्र के एक बड़े शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली।

धार्मिक नीति – राजनीतिक क्षेत्र की भाँति धार्मिक मामलों में भी लुई चौदहवाँ अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहता था। फ्रांस में राजनीतिक एकता एवं निरंकुश राजतंत्र की स्थापना के लिए लुई की दृष्टि में यह आवश्यक था कि फ्रांस की प्रजा धर्म के क्षेत्र में भी राजा को ही अपना सर्वोच्च अधिकारी स्वीकार कर ले। लुई ने इस बात पर बल दिया कि फ्रांस का कैथोलिक चर्च के निर्देशों की अपेक्षा राजा के आदेशों का पालन करे।

फ्रांसीसी चर्च पर अधिकार के प्रश्न को लेकर पोप और लुई में तीव्र मतभेद हो गये। विवाद की शुरूआत

'रेगाल' नामक परम्परा को लेकर हुई । इस परम्परा के अनुसार उत्तरी फ्रांस के किसी क्षेत्र में बिशप का स्थान खाली होने पर उस क्षेत्र की आय राजकोष में जमा हो जाती थी । लुई ने इस परम्परा को दक्षिण फ्रांस में लागू कर दिया। अनेक विशपों द्वारा लुई के इस कदम का विरोध किया गया । पोप ने उनका समर्थन किया। परन्तु फ्रांस की जनता लुई के साथ थी । अतएव धर्माधिकारियों की एक सभा में लुई के निर्णयों की पुष्टि कर दी गयी। कैथोलिक चर्च के धर्मज्ञ बोसेत के नेतृत्व में '' गैलिकन चर्च की स्वतंत्रताओं की घोषणा '' की गयी। इसके द्वारा यह घोषित किया गया कि–

राजाओं की लौकिक सत्ता पोप नियंत्रण से सर्वथा मुक्त है।

फ्रांसीसी चर्च की साधारण सभा का अधिकार पोप से अधिक है।

पोप को गैलिकन चर्च की परम्पराओं और नियमों का अतिर्कमण करने का अधिकार नहीं है।

फ्रांसीसी चर्च के संविधान एवं रीति–रिवाजों के अनुसार पोप एवं फ्रांस के पारस्परिक संबंध

निर्धारित होने चाहिए।

यद्यपि सैद्धान्तिक मामलों के निर्णय में पोप के अधिकार श्रेष्ठ है, परन्तु वे गैलिकन चर्च की अनुमति से ही क्रियान्वित हो सकते हैं।

उक्त प्रस्तावों को पोप इनोसेंट एकादश ने मानने से इन्कार कर दिया । लुई पोप में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई। परन्तु दोनों ही इसके लिए तैयार नहीं थे। इसी बीच पोप इनोसेंट एकादश की मृत्यु के पश्चात् इनोसेंट द्वादश पोप की गद्दी पर बैठा । नये पोप ने भी रिक्त पदों पर लुई द्वारा प्रस्तावित व्यक्तियों, धर्माधिकारी की नियुक्ति की स्वीकृति दे दी। इस प्रकार लुई का फ्रांसीसी चर्च पर प्रभाव बढ़ गयां

`प्रोटेस्टेंटों के प्रति नीति– राजनैतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में एकरूपता लाने के लिए लुई चौदहवाँ ने कैथोलिक चर्च को एक माध्यम बनाया। अतएव उसने गैर कैथोलिकों की ओर ध्यान दिया । फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंटों को लुई की कट्टर नीतियों के कारण काफी कष्ट उठाना पड़ा। उन्हें अपने धर्म `का प्रचार करने तथा सार्वजनिक रूप से उपदेश देने से रोक दिया गया । लुई ने कैथोलिक अधिकारियों को सारे देश के भ्रमण के लिए भेजा तथा प्रोटेस्टेंटों के लगभग सौ चर्च

गिरा दिये गये जो 1598 ई० के बाद बने थे। प्रोटेस्टेन्टों को कैथोलिक मत स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया गया। प्रोटेस्टेंट विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले विषयों पर भी प्रतिबंध लगाये गये। नान्तेज की घोषणाओं को रद्द कर दिया गया। इस प्रकार लुई के काल में प्रोटेस्टेंटों पर भयंकर अत्याचार हुआ। इसके परिणामस्वरूप काफी संख्या में फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंट देश छोड़कर पड़ोसी देशों में चले गये । इनका फ्रांस के लिए वरदान सिद्ध हो सकते थे, क्योंकि वे लोग उद्योग–धंधो में कुशल थे। लुई की नीतियों के चलते फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भी बुरा असर पड़ा। यूरोप के प्रोटेस्टेंट राज्य फ्रांस के शत्रु हो गये । इंग्लैण्ड तथा हॉलैण्ड के शासक विलियम तृतीय को लुई के विरुद्ध 'ऑग्सबर्ग की लीग' के गठन का एक आधार मिल गया। जैसा कि लेवीस ने लिखा है, "लुई की धार्मिक नीति के कारण राजनैतिक एवं भौतिक दृष्टि से फ्रांस पर बुरा असर पड़ा।

वर्साय से राजमहल का निर्माण– लुई अपने वैभव एवं महिमा की अभिव्यक्ति के लिए पेरिस को अपर्याप्त मानता था। उसने पेरिस से 12 मील दूर वर्साय नामक स्थान पर 10 करोड़ डालर खर्च कर नयी राजधानी का निर्माण किया। इस कार्य के लिए उसने प्रख्यात इन्जीनियरों और कलाकारों की सेवा ली। शिल्पी मनसर्ट, मूर्तिकार जिरादों, चित्रकार लूर्बे की मदद से उसने एक भारी योजना बनायी।

लुई ने अपनी व्यक्तिगत देखरेख में वर्साय के उजाड़ एवं दलदली क्षेत्र में एक विशाल राजप्रासाद का निर्माण करवाया। उसकी दीवारें मूतियाँ एवं चित्रों से सजायी गयी। बीच में शीशों का एक विशाल हॉल बनाया गया। बाहर खूबसूरत फब्बारे, कृत्रिम झील, दूर–दूर तक फैले बगीचे तथा उपवन बनाये गये। वर्साय धीरे–धीरे एक खूबसूरत राजधानी बन गयी । वर्साय अपने वैभव के कारण यूरोपवासियों की ईर्ष्या का केन्द्र बन गया ।

सांस्कृतिक विकास – पेरिस की उथल–पुथल से दूर वर्साय का दरबार हर तरह की कला का संरक्षण केन्द्र बन गया। कोरनील तथा मोलिएर एवं रासिन उस युग के महान् नाटककार थे। कोरनील तथा मेलिएर सुखायान्त नाटककार थे, जबकि रासिन दुखांत नाटककार इन तीनों नाटककारों ने फ्रांसीसी भाषा को वही गरिमा प्रदान की जो शेक्सपियर ने अंग्रेजी को तथा कालिदास ने संस्कृत की। लॉ फॉन्तेन ने अपने सरल दृष्टांतों से सामाजिक मूर्खताओं की खिल्लियाँ उड़ायीं । फेवलों ने दार्शनिक रचनाओं में प्रसिद्धि प्राप्त की। मेरी द सेगनए अपने जीवन्त हास्यपूर्ण पत्रों के लिए प्रसिद्ध थी। प्रसिद्ध लेखक एवं वैज्ञानिक पॉस्कॉल ने भी लुई के जीवन काल में अपनी रचनाओं से फ्रांसीसी भाषा एवं विचारों को संवारा। इसी समय फ्रांस में एक महान् दार्शनिक एवं गणितज्ञ हुआ जिसका नाम था– रेने देकर्त। इस युग में अनेक लेखक, दार्शनिक एवं धार्मिक विचारक हुए। उन सभी ने फ्रांसीसी भाषा की इतनी प्रतिष्ठा बढ़ायी कि राजशक्ति से अधिक सफलता भाषा को मिल गयी । इतिहासकार हेज के शब्दों में लुई का दरबार यूरोप का एक आदर्श बन गया। वर्साय ने सभ्य संसार को

फैशन प्रदान किया। फ्रांस की कला, रहन–सहन, पोशाक तथा यूरोप के लिए आदर्श बन गये।

6. आर्थिक सुधार – लुई चौदहवाँ का योग्य वित्तमंत्री कोल्बर्ट था । कोल्बर्ट का मध्यमवर्गीय परिवार का था। वह एक स्वामिभक्त मंत्री साबित हुआ। वह बीस वर्षों तक अपने राजा, देश तथा अपने वर्ग के हितों के लिए अथक परिश्रम करता रहा। वह प्रतिदिन 16 घण्टे कार्य करता था। उसके समान अर्थशास्त्री एवं स्वामिभक्त मंत्री मिलना लुई चौदहवाँ का सौभाग्य था ।

रिक्त राजकोष कोल्बर्ट के लिए सबसे बड़ी समस्या थी । अतः उसने कुछ सुध ाारात्मक कदम उठाये– 1. विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग एवं करों से मुक्त लोगों पर फिर से कर लगाने की व्यवस्था की गयी । 2. उसने अनेक ऋणों की वैधता को समाप्त कर दिया तथा सूद की दरें कम कर दीं।

जिन लोगों ने कर वसूली में बेईमानी की थी, उनका पता लगाया गया तथा उनसे बड़ी राशि वसूल की गयी। राजस्व विभाग में विश्वासपात्र कर्मचारियों की नियुक्ति की गयी तथा राजकीय व्यय में भी कमी की व्यवस्था की गयी । चुंगी एवं सीमा कर की दरें घटा दी गयीं। कोल्बर्ट ने कृषि एवं व्यापार पर विशेष ध्यान दिया। किसानों की सुरक्षा के लिए यह कानून बनाया गया कि किसी भी परिस्थिति में खेती के उपकरण उनसे छीने नहीं जा सकते। चुंगी समाप्त कर दी गयी । ताकि वस्तुएँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आवश्यकतानुसार निर्बाध रूप से पहुँचाया जा सके। उसने आयात पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगा दिये तथा निर्यात को प्रोत्साहन दिया। उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए उसने फ्रासीसी कारीगरों को देश में आकर्षित करने के लिए विशेष सुविध ााएँ दी गयीं। उसके समय सिल्क, जरी तथा धातु उद्योग काफी विकसित हुए । कोल्बर्ट की योजनाओं के फलस्वरूप फ्रांस भविष्य में यूरोप का सबसे प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन गया। यहाँ से ऐश्वर्य का सामान एवं कारखानों का उपकरण बड़ी मात्रा में विदेशों में भेजे जाते थे।

कोल्बर्ट औद्योगिक विकास के लिए स्थायी बाजारों की आवश्यकता को समझता था । ऐसे स्थायी बाजार केवल उपनिवेश ही हो सकते थे। उसी के प्रोत्साहन से फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त विश्व के अन्य भागों से व्यापार करने के लिए अलग–अलग कम्पनियाँ बनायी गयीं। इन पर राजकीय नियंत्रण था। कोल्बर्ट की नीतियों के परिणामस्वरूप भारत, अफ्रीका के सेनेगल तथा मडागास्कर तथा अमेरिका के लुसियाना आदि में फ्रांसीसी व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये गये ।

विदेशी व्यापार एवं उपनिवेशों की सुरक्षा के लिए उसने जहाज – निर्माण और बन्दरगाहों के विकास को प्रोत्साहन दिया। अपने शासन के दस वर्षों के अन्दर उसने दो सौ से अधिक जहाजों का निर्माण करवाया। . उसने अटलांटिक तट पर कैले, बेस्ट तथा लहाव नामक बन्दरगाहों को विकसित किया। उके प्रयासों के परिणाम स्वरूप फ्रांस की नौ सेना इंग्लैण्ड की उन्नत नौ सेना के समकक्ष आ

गयी ।
में
फ्रांस की औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रगति के लिए कोल्बर्ट ने वाणिज्यवाद की नीति को अपनाया। फ्रांस में यह वाणिज्यवाद उसी के नाम पर कोल्बर्टवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस नीति के अन्तर्गत सोना–चाँदी का संग्रह, व्यापारिक प्रतिद्वद्वियों के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग, व्यापारियों के पक्ष में नीतियों का क्रियान्वयन, उत्पादन में वृद्धि, उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार, फ्रांस के समुद्री व्यापार की रक्षा, विदेशी मंडियों पर कब्जा गरीबों को रोजगार आदि बातें शामिल थी। किन्तु कोल्बर्ट की नीतियों कुछ कमजोरियाँ थी। वह उत्पादन के महत्व को नहीं समझ सका । वह दुनिया के धन को सीमित समझता था और चाहता था कि फ्रांस को धनी बनाने के लिए दूसरे देशों को गरीब बनाना तथा उनका धन छीनना आवश्यक है। वह यह नहीं समझ सका कि कोई राज्य अकेला समृद्ध नहीं हो सकता। यह तथ्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में परस्पर अवलम्बित रहता है। इन मूलभूत सच्चाइयों को न समझ पाने के कारण लुई तथा कोल्बर्ट के फ्रांस के मंच पर नहीं रहने पर, फ्रांसीसी उद्योग एवं व्यापार ब्रिटेन जैसे देश के मुकाबले में नहीं टिक सका। फिर भी, इन सबके बावजूद कोल्बर्ट का महत्व कम करके नहीं आंका जा सकता। वित्त विभाग के अध्यक्ष एवं अर्थनीतिज्ञ होते हुए भी कोल्बर्ट ने रिशलू की फ्रेंच एकेडेमी को और भी सुदृढ़ बनाया। उसने 1664 ई० में विज्ञान परिषद की स्थापना की। उसने विदेशी विद्वानों को फ्रांस में बुलाकर उन्हें उपयुक्त स्थान दिया। पेरिस खगोलशाला को कोल्बर्ट ने स्थापित किया था। कठिन परिस्थितियों के बावजूद कोल्बर्ट ने फ्रांस की महानता की नींव डाली। 1683 ई० में उसकी मृत्यु से उत्पन्न रिक्तता को कोई नहीं भर सका । लुई के जिन युद्धों ने फ्रांस की सीमा का विस्तार किया और जिनके कारण फ्रांस यूरोप की महान् शक्ति बन गया, वे कोल्बर्ट की आर्थिक नीतियों के बिना संभव नहीं थीं। डेविड ऑग के शब्दों में '' लुई के राज्य में महान् आर्थिक पुनर्निर्माण का श्रेय किसी अन्य की अपेक्षा कोल्बर्ट को सर्वाधिक है।`लुई चौदहवाँ की विदेश नीति के दो मुख्य तत्व थे – (1) यूरोप की राजनीति में फ्रांस को सर्वोच्च स्थान दिलाना एवं (2) फ्रांस के लिए प्राकृतिक सीमाएँ प्राप्त करना । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसने कूटनीति एवं शक्ति दोनों का सहारा लिया। संयोगवश । लुविस जैसा योग्य सेनापति उसे प्राप्त हो गया । लुविस ने फ्रांस की सेना पुनर्गठन पर ध्यान दिया। सैनिकों के प्रशिक्षण, अस्त्र–शस्त्र एवं योग्यता आदि के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सुधार किये गये। साथ ही कोंडे, तुरेने तथा वोबॉ आदि सेनापतियों ने भी लुई की महत्वपूर्ण सेवाएँ कीं । लुई ने अपने पूर्वजों की नीति को जारी रखते हुए हैप्सबर्ग साम्राज्य को अपमानित करने की नीति अपनायी । वस्तुतः वह फ्रास का विस्तार चाहता था। वह चाहता था कि फ्रांस की सीमाएँ पश्चिमी क्षेत्र में आल्पस पर्वत तक, उत्तरी क्षेत्र में राइन नदी तक तथा दक्षिणी–पश्चिमी सीमा पिरेनीज पर्वतों तक विस्तृत हों। अपनी नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए लुई को लम्बी अवधि तक चार

महत्वपूर्ण युद्धों का सहारा लेना पड़ा। ये थे– हस्तान्तरण युद्ध, डच युद्ध तथा आग्सबर्ग संघ का युद्ध तथा स्पेनी उत्तराधिकार का युद्ध द्य प्रथम तीन युद्धों के फलस्वरूप उसने फ्रांस की सीमाओं का विस्तार किया तथा चौथे युद्ध के बाद यूट्रेक्ट की संधि हुई।

हस्तान्तरण का युद्ध – हस्तान्तरण युद्ध लुई की विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा का परिणाम था । लुई स्पेनी नीदरलैंड (बेल्जियम) पर कब्जा करने का इरादा रखता था । उल्लेखनीय है कि प्रीनिज की संधि के अनुसार लुई का विवाह स्पेन के सम्राट फिलिप चतुर्थ की बड़ी पुत्री मेरिया थ्रेसा के साथ हुआ था । स्पेनी नीदरलैंड पर अधिकार की माँग प्रस्तुत कर दी।

लुई ने पहले कूटनीति का सहारा लेते हुए स्पेन को मित्रविहीन करने का प्रयास किया। उसने हॉलैंड, स्वीडन तथा जर्मनी के प्रोटेस्टेंट राज्यों को अपनी ओर मिला लिया। पतनोन्मुख स्पेन में इतनी क्षमता नहीं थी । कि वह फ्रांस का मुकाबला कर सके । फ्रांस ने स्पेन के महत्वपूर्ण दुर्गों एवं नगरों पर कब्जा कर लिया । लुई की लगातार विजयों से यूरोप के कई देश भयभीत हो गये। इसी समय हॉलैंड तथा इंग्लैंड के बीच एक समझौता हो गया। व्यापारिक युद्ध बन्द हो गया। इंग्लैंड, हालैंड तथा स्वीडन जैसे प्रोटेस्टेंट देशों ने आपस में त्रिगुट बना लिया। स्पेन को मदद देने का निर्णय किया । लुई ने बुद्धिमता से काम लेते हुए युद्ध को रोक दिया । उसने 1668 ई० में एक्सला शपेल की संधि कर ली द्य संधि की शर्तों के अनुसार फ्रांस को काम्ते का क्षेत्र वापस कर देना पड़ा। फ्रांस को उत्तरी सीमा पर एक बड़ा भूभाग प्राप्त हुआ। लील्ल, तूर्ने तथा शार्लरूआ पर फ्रांस का अधिकार स्थापित हुआ । इस प्रकार इस युद्ध ने लुई की महत्वाकांक्षा की सीमित रूप से पूर्ति की ।

2. हालैंड से युद्ध – डिवोल्यूशन युद्ध में हालैंड की भूमिका से लुई काफी नाखुश था। इसके अतिरिक्त कई अन्य कारण थे, जिनके चलते 1672 ई० में हालैण्ड तथा फ्रांस के बीच युद्ध छिड़ गया। प्रथम हालैंड तथा फ्रांस के स्वार्थ उपनिवेशीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में टकराते थे। दूसरा लुई उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र में फ्रांस की सीमा का विस्तार करना चाहता था। इसके लिए हॉलैंड से टकराव अनिवार्य था। तीसरा, फ्रांस एवं हॉलैण्ड के बीच मतभेद का एक महत्वपूर्ण कारण प्रोटेस्टेंट धर्म के अनुयायी भी थे। जो फ्रांस से भागकर हॉलैण्ड चले गये थे। इंग्लैंड की आन्तरिक स्थिति ने भी लुई को हॉलैण्ड पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। वहाँ राजतंत्रवादियों तथा गणतंत्रवदियों में सत्ता पर कब्जा के लिए संघर्ष छिड़ा हुआ था।

लुई ने पहले त्रिगुट को तोड़ने का सफल प्रयास किया। उसने इंग्लैण्ड एवं स्वीडन को अपने पक्ष में मिला लिया तथा 1672 ई० हॉलैंड पर आक्रमण कर दिया । लुई ने सेना का नेतृत्व सँभाला। फ्रांसीसी सैनिकों ने लोरेन तथा अन्य कई व्यापारिक नगरों पर अधिकार कर लिया, परन्तु बाद में हॉलैण्ड का पक्ष लिया । इंग्लैंड की संसद ने हॉलैण्ड की सहायता का निर्णय लिया। उधर दोनो पक्ष युद्ध लड़ते–लड़ते थक चुके थे। लुई ने हॉलैंड के साथ संधि कर लेना

उचित समझा। 1687 ई० में दोनों के बीच निमेजन की संधि हुई । संधि की शर्तों के अनुसार फ्रेंच काम्ते एवं बेल्जियम के पश्चिमी विश्व कई नगर प्राप्त हुए। उससे लोरेन पर भी अधिकार प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसकी सीमा राइन नदी तक पहुँच गयी। परन्तु इस युद्ध के फलस्वरूप फ्रांस की वित्तीय स्थिति बुरी तरह प्रभावित हुई राजकोष रिक्त हो गया तथा उसके महत्वपूर्ण सेनापति तूरेन युद्ध में मारा गया ऑरुग्सबर्ग लीग के साथ युद्ध – लुई की विस्तारवादी नीति से भयभीत होकर स्वीडन स्पेन, ऑस्ट्रिया एवं सेवाय आदि राज्यों ने एक संघ का निर्माण किया जिससे ऑग्सबर्ग की लीग कहा गया है । लीग का मुख्य उद्देश्य लुई की विस्तारवादी नीति को रोकना तथा पवित्र रोमन साम्राज्य की रक्षा करना था। बाद में इंग्लैंड भी इस लीग में शामिल हो गया।

लुई ने रेनिश प्लेटिनेट कोलोन पर अपना दावा प्रस्तुत किया। मामला पोप को सौंपा गया। परन्तु पोप ने लुई के दावे को अस्वीकृत कर दिया। अतएव लुई ने सितम्बर 1688 ई० में पलेटिनेट की घोषणा कर दी, परन्तु फ्रांसीसी सैनिकों ने हॉलैण्ड के शासक विलियम ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, परन्तु फ्रांसीसी सैनिकों ने हॉलैण्ड की नौ सेनाओं को पराजित कर दिया। इटली में फ्रांस को महत्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई। उसके सैनिकों ने सेवाये के ड्यूक को हराकर कई क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। परन्तु बाद में फ्रांस की स्थिति बिगड़ने लगी। फ्रांस का राजकोष रिक्त होने लगा। इंग्लैण्ड द्वारा उसे कई क्षेत्रों में पराजित कर दिया गया। सभी पक्ष युद्ध से थक चुके थे। अतएव 1697 ई० में रिजवित की संधि हुई । संधि की शर्तों के अनुसार–

लुई ने लारेन का क्षेत्र ड्यूक को वापस कर दिया।

आल्सास तथा स्ट्रासबर्ग पर फ्रांस का अधिकार रहने दिया गया । परन्तु पुनर्मिलन सदन द्वारा प्राप्त सारे क्षेत्रों से फ्रांस ने अपना दावा छोड़ दिया।

हॉलैण्ड की स्पेनी नीदरलैंड की सीमा पर किलाबन्दों करने की स्वीकृति दे दी गई। सेवाय के जीते हुए क्षेत्र फ्रांस को वापस करना पड़ा। विलियम तृतीय को इंग्लैंड का राजा स्वीकार कर लिया गया । लुई ने जेम्स को मदद नहीं करने का वचन दिया। इस प्रकार इस युद्ध में लुई की महत्वाकांक्षा पर बहुत अंकुश लगाया। युद्ध का सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव फ्रांस की अर्थव्यवस्था पर पड़ा।

स्पेन का उत्तराधिकार युद्ध– स्पेन का शासक चार्ल्स का शासक चार्ल्स द्वितीय को कोई संतान नहीं थी । उसके मरने के पूर्व ही स्पेन की गद्दी के कई दावेदार उपस्थित हो गये थे। फ्रांसीसी शासक लुई उसके जीवन काल में ही स्पेन के विभाजन की योजना बना रहा था। स्पेन के सिंहासन के तीन दावेदार थे– लुई पौत्र आजु, क्योंकि लुई की पत्नी चार्ल्स द्वितीय की पत्नी थी। मैक्सीमिलीयन का पुत्र फर्डिनेंड ऑस्ट्रिया के सम्राट लियोपोल्ड प्रथम का पुत्र आक्रड्यूक, इस बीच फर्डिनेंड की मृत्यु हो गई। अतएव अब दो ही दावेदार बच गए। चार्ल्स द्वितीय ने मृत्यु से कुछ पूर्व अपनी वसीयत लुई के पौत्र आजू के पक्ष में कर दिया था। इस बीच लुई ने ऐसी गतिविधियाँ दिखलायीं, जिनसे यूरोपीय देशों में आतंक छा गया। 1701 ई० में इंग्लैंड के नेतृत्व में फ्रांस के विरुद्ध एक संघ का

गठन हुआ, जिसमें हालैंड, आस्ट्रिया, बैन्डेनबर्ग आदि शामिल थे। संघ का मुख्य उद्देश्य फ्रांस की महत्वाकांक्षा पर अंकुश लगाना तथा फ्रांस एवं स्पेनी राज्यों के संयोजन को रोकना था। स्पेन का उत्तराधिकार युद्ध 1702 ई० से 1713 ई० तक चला। यह युद्ध स्पेन, नीदरलैण्ड इटली, अमेरिका एवं भारत में लड़ा गया। अंततः संघ के राज्यों एव लुई के बीच 1713 ई० यूट्रेक्ट की संधि हो गयी। संधि ा की शर्तों के अनुसार–. स्पेन के साम्राज्य को विभाजित कर अंजू को स्पेनी राजा घोषित किया गया। यह शर्त रखी गयी कि फ्रांस एवं स्पेन बिल्कुल अलग रहेंगे। सार्डीनिया, नेपल्स तथा मिलन आस्ट्रिया को प्राप्त हुआ । फ्रांस से सुरक्षा के लिए इंग्लैंड को कुछ सीमावर्ती क्षेत्र मिले। अमेरिकी महाद्वीप ने न्यू फाउण्डलैंड को स्पेन से जिब्राल्टर एवं मिनोरका के क्षेत्र भी मिले। इंग्लैण्ड को स्पेनी उपनिवेशों के साथ व्यापार करने की सुविधा प्राप्त हुई। सेवाय के ड्यूक को सिसली द्वीप दिया गया। बेन्डेनवर्ग की रियासत को एक राज्य के रूप में मान्यता दी गयी। इस प्रकार उक्त युद्ध के फलस्वरूप फ्रांस के अधिकांश उपनिवेश छीन लिये गये। यूट्रेक्ट की संधि से सर्वाधिक लाभ इंग्लैंड को प्राप्त हुआ । अमेरिका के उत्तरी–पूर्वी भाग पर उसका अधिकार स्थापित हुआ । जिब्राल्टर प्राप्त हो जाने से भूमध्य सागर में उसकी सामरिक स्थिति मजबूत हो गयी। संधि के बाद इंग्लैंड की नौ सैनिक प्रधानता स्थापित हो गयी।
तात्कालिक रूप से इस संधि के फलस्वरूप फ्रांस को काफी नुकसान पहुँचा । उत्तारधिकार युद्ध ने फ्रांस की अर्थव्यवस्था को तोड़ दिया। राजकोष रिक्तता का शिकार हो गया । लुई की महत्वाकांक्षा पर पानी फिर गया। फिर उसके वंश के व्यक्ति को स्पेन की गद्दी प्राप्त हुई। स्पेन अथवा फ्रांस के बीच बाद में सहयोगपूर्ण नीति जारी रही । स्पेन की सत्ता हैप्सबर्ग देश से खिसक गयी । परन्तु उसकी शक्ति कायम रही । सेवाय एवं प्रशा के नेतृत्व में आगे चलकर इटली एवं जर्मनी का एकीकरण हुआ । इस संधि ने बूब एवं हैप्सबर्ग घराना के बीच चले आ रहे संघर्ष का अन्त कर दिया । स्पेन के हाथ से अनेक यूरोपीय प्रदेश निकल गये जिससे उसके सैनिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्वों में कमी आयी । पिरेनीज पर्वत उसकी वास्तविक सीमा बन गयी। अब स्पेन अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ध्यान केन्द्रित कर सकता था। संधि ने औपनिवेशिक संघर्ष का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस प्रकार यूट्रेक्ट की संधि ने यूरोप में एक नये युग की शुरुआत की। इंग्लैंड की शक्ति में वृद्धि हुई। प्रशा एवं रूस का उत्थान हुआ। परन्तु रूस के उत्थान ने अंततः पूर्वी समस्या को जन्म दिया बाद में फ्रांस एवं इंग्लैंड की परम्परागत शत्रुता औपनिवेशक प्रतिस्पर्द्धा में परिवर्तित हो गयी । फ्रांस में आधुनिक राष्ट्रीय राज्य की स्थापना लुई ग्प (1461–83) के शासनकाल में हुई। पिछली पाँच शताब्दियों से सबसे पहला फ्रांसीसी राजा गद्दी पर बैठा था, तब से राजा का क्षेत्राधिकार विरासत, वैवाहिक संबंध, युद्ध षड्यंत्र और सैनिक विजयों के मिले–जुले प्रयास से अपने मूल केन्द्र से बाहर की ओर फैलता रहा । लुई ग्प ने सीमा – विस्तार की नीति को जारी रखा। देश के अन्दर उसने शाही सेना का निर्माण किया, उपद्रवियों ओर

विद्रोही कुलीनों का दमन किया। संसदीय सहमति के बिना कर इकट्ठा करने में वह इंग्लैंड के ट्युडर राजाओं से भी आगे बढ़ गया था। उसके शासन काल में स्टेट्स जनरल की बैठक सिफ्र एक बार हुई। पिछली अव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए स्टेट्स जेनरल के सदस्यों ने राजा से आग्रह किया कि वह भविष्य में स्टेट् जेनरल के बिना शासन करें। अब राजा ने स्वयं कानून बनाया। स्थायी सामंतों की जगह, सरकारी अधिकारियों की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ बनाया और विभिन्न शहरों के स्थानीय चार्टर अधिकारों को समाप्त किया । पादरियों पर राजा ने व्यापक अधिकार स्थापित किए। 1438 ई० में राजा फ्रांसीसी प्रथम ने पोप लियों ग^ρ के साथ एक समझौता किया, जिस बेलोग्ना का कंकरदी कहते हैं । इस समझौते के अनुसार प्रेगमैटिक सैक्शन को रद्द कर दिया गया, पोप को फ्रांसीसी चर्च से आर्थिक आय प्राप्त होने लगी और राजा ने विशॉप और एबॉट नियुक्त करना शुरू किया। इस प्रकार, 1516 ई० से ही फ्रांस के राजा ने अपने राष्ट्रीय पादरियों पर नियंत्रण बनाये रखा था। इसलिए फ्रांस के राजा प्रोटेस्टेंटवाद की ओर आकर्षित नहीं हुए लुई ग^ρ ने सामंतों का दमन करने के लिए मध्यम वर्ग का इस्तेमाल किया। उसने मध्यम वर्ग के कई सदस्यों को प्रमुख प्रशासकीय पदों और समितियों में नियुक्त किया। दूसरी ओर उसने सड़क, बंदरगाह और जहाजों के निर्माण में तथा उद्योगों के विकास में सरकारी संरक्षण प्रदान किया। अब फ्रांस यूरोप की राजनीति में प्रधान भूमिका निभाने के लिए सक्षम हो गया था । अभी तक स्पेन कोई राज्य नहीं था। कई स्पेनी राज्य ऐरागों और कैस्टील के दो राज्यों से जुड़ गए थे। प्रायद्वीप के भूमध्यसागरीय तट पर स्थिति ऐरागो का अधकार बेल्थरीक द्वीपसमूह, सार्डेनिया, सिसली और नेपल्स पर था। 1452 ई० के बाद कैस्टील को नव – अन्वेषित अमेरिकी प्रदेश मिल गए थे। 1469 ई० में ऐरागो के फार्डेनड और कैस्टील के इसाबेला के विवाह के कारण इन दोनों राज्यों का विलय हो गया । लेकिन यह विलय केवल व्यक्तिगत था, क्योंकि दोनों राज्य दो राजाओं की मानते थे और उनकी राजनीतिक, न्यायिक और प्रशासनिक संस्थाएँ समान नहीं थीं। स्पेनी राष्ट्रीय भावना नाम की तो कोई जीच ही नहीं थी। पूरे स्पेन में अगर कोई एक समान भावना थी तो वह थी स्पेनी कैथोलिक चर्च से जुड़े होने की भावना मूरों (मुसलमानों) के विरुद्ध स्पेनवासियों ने एक होकर संघर्ष किया था। अगर किसी एक संस्था की सत्ता और उसके अधिकारियों की समान पहुँच पूरे स्पेन में थी । तो वह था इनक्यूजिशन नामक चर्च अदालत । स्पेन का चर्च काफी सशक्त अवस्था में था। 1500 ई० के तुरंत पहले कार्डिनल जिम्मेंस ने स्पेनों ने स्पेन का चर्च की उन बुराइयों और अकर्मण्यता से मुक्त किया था जिसके कारण बाकी यूरोप के चर्च आक्रांत थे। 1452 ई० में दक्षिणी स्पेन के ग्रेनाडा प्रांत को मुसलमानों से जीतकर स्पेन में मिलाया गया। इस विजय ने स्पेनी क्षेत्रों के विजातीय रूप को मजबूत किया। इस परिस्थिति में स्पेन के नए राजतंत्र ने धर्म और चर्च के नाम पर स्पेनी एकीकरण की नीति अपनायी । चर्च के इर्द–गिर्द राजनीतिक एकीकरण का प्रयास किया गया। राजाओं ने धार्मिक एकता पर जोर दिया। राष्ट्रीय भावना ही

चर्च की भावना थी। रोमन कैथोलिकवाद और स्पेनी राष्ट्रवाद एक–दूसरे में आत्मसात हो गये। पहले अन्य यूरोपीय लोगों की तुलना में स्पेनी अधिक सहिष्णु थे। वहीं ईसाई, मुस्लिम और यहूदियों साथ–साथ रह रहे थे । परंतु इस धर्म से जुड़े राष्ट्रीय उत्तेजना ने मुसलमानों और बहूदियों के विरुद्ध ध ार्म–परिवर्तन ओर उन्मूलन की नीति अपनायी। ऐसे स्पेनी बहूदी जिन्हें ईसाई ध ार्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया उन्हें मैरानो कहते हैं। जिन मुसलमानों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया उन्हें मेरिस्को कहते हैं, परन्तु इन मेरानो और मेरिस्को पर भी ईसाइयों को भरोसा नहीं था। हजारों मैरानों और मेरिस्को या तो सरकारी अत्याचार के शिकार हुए या देश छोड़कर भागना पड़ा। बाद में इनक्यूजिशन के द्वारा स्पेन को प्रोटेस्टेंटवाद से भी मुक्त किया गया। इस प्रकार स्पेन का धार्मिक एकीकरण हुआ। राष्ट्रवाद और कैथोलिकवाद एक–दूसरे से जुड़ गये थे, परन्तु शिक्षा और उद्योग–धंधों से जुड़े हुए मैरानें के भागने से स्पेन को आर्थिक और बौद्धिक क्षति सहनी पड़ी । परंतु धर्म के नाम पर स्पेन ने जो एकता स्थापित की, उसके कारण वह धर्मसुधार के कारण उत्पन्न धार्मिक संघर्षों में यूरोप में उल्लेखनीय भूमिका निभा सका। स्पेन भी पर्शिया के साथ मिल गये क्योंकि इंग्लैंड की समाप्त कर दिया और अंग्रेजों ने हैदरअली, टीपू सुल्तान एवं मराठों का हराकर धीरे–धीरे समस्त भारत पर अपना अधिकार कर लिया। स्पेन पर प्रभाव में युद्ध गुप्त रूप से स्पेन फ्रांस की सहायता की, अतएव इंग्लैंड की समुद्री सेना ने मनीला और हैवाना पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधिकार में कर लिया । यद्यपि वह दोनों इलाके स्पेन को पुनः वापस मिल गये परन्तु इस घटना से इंग्लैंड और स्पेन के मध्य शत्रुता बढ़ गयी और स्पेन इंग्लैंड को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करने लगा। कनाडा पर प्रभाव – सप्तवर्षीय युद्ध के परिणामस्वरूप कनाडा में एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ। वहाँ राजनीतिक जीवन में एक नया मोड़ आया और धीरे–धीरे उसने आन्तरिक एवं बाह्य मामलों में स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। निष्कर्ष– उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सप्तवर्षीय युद्ध एक ऐसी घटना थी जिसका प्रभाव केवल इंग्लैंड पर ही नहीं पड़ा, बल्कि संसार के विभिन्न देशों को इस युद्ध ने प्रभावित किया। इस युद्ध के बाद से विश्व की राजनीति में एक नये युग का प्रारम्भ होता है। ब्रिटेन राजाओं की निरंकुशता का बीजारोपण सर्वप्रथम हेनरी सातवाँ द्वारा इंग्लैंड से हुआ। ट्यूडर राजाओं की निरंकुशता के निम्नलिखित कारण प्रमुख माने जाते हैं निरंकुशता हेतु अनुकूल परिस्थिति– 1388 से 1485 तक युद्ध से परेशान ब्रिटिश जनता इंग्लैंड में किसी भी मूल्य पर शांति चाहती थी । ट्यूडर राजा हेनरी सप्तम ने उन्हें एक मजबूत सरकार और शांति – व्यवस्था दी । हेनरी सम्तम के चौम्बर अदालत की व्यवस्था की, जिससे आम जनता को काफी राहत मिली। फलतः निरंकुश शासन को ब्रिटिश जनता ने बखूबी अंगीकार किया। सामंतवाद का अन्तः– सामंतवाद का अन्त ट्यूडर काल तक हो चुका था क्योंकि अनेक सामंत गुलाबो की लड़ाई में, काली मृत्यु में तथा कृषक विद्रोह में मारे गए थे। ट्यूडर राजाओं की निरंकुशता काफी जम गई।`3. गोला–बारूद

का अन्वेषणः– युद्ध कला में आमूल एवं क्रातिकारी परिवर्तन गोला–बारूद का अन्वेषण तथा आविष्कार के फलस्वरूप आया। परिणामस्वरूप तोप, बंदुक आदि युद्ध से संबंधित अस्त्रों का निर्माण हुआ और राजा ने इस पर अपना कठोर नियंत्रण रखा । सामंत जब भी विद्रोह करते राजा गोला–बारूद के प्रयोग से उनका आसानी से दमन कर देता था और सामंतों को दंडित करता था। यह एक महत्वपूर्ण कारण बना ट्यूडर निरंकुशता का । चर्च की कमजोरी – हेनरी सप्तम के शासन काल में ही विकलिक क्रांतिकारी विचारों ने राजतंत्र विरोधी चर्च के दोषों को स्पष्ट किया। मानव को पुनर्जागरण ने नवीन प्रसार किया और धर्मसुधार आंदोलन के फलस्वरूप चर्च का प्रभाव कम हो गया था। फलतः राजतंत्र काफी मजबूत हो गया और बाद में निरंकुश बन गया । ाष्ट्रीयता की भावना – सप्तवर्षीय युद्ध से ही इंग्लैंड में राष्ट्रीय भावना का विकास प्रारम्भ हो गया था। अपने देश में लोग एक राजा एक भाषा एवं एक ध्वज हेतु प्रयत्नशील था। ईसाई यूरोप कई राष्ट्रीय राज्यों में विभाजित हो गया। फलतः राजा की शक्ति पर अधिक जोर दिया जाने लगा। ऐसी स्थिति में ट्यूडर राजा निरंकुश होते गए। विनीत संसदः – यद्यपि ट्यूडर राजाओं की निरंकुशता पर अंकुश डालने हेतु संसद प्रिवी कौंसिल, कॉमन लॉ आदि प्रजातांत्रिक संस्थाएँ मौजूद थीं परन्तु संसद काफी कमजोर थी । ट्यूडर शासकों के अपने लोग संसद के दोनों सदनों में थे। परन्तु संसद काफी कमजोर थी । ट्यूडर शासकों के प्रस्तावों का विरोध नहीं करते थे। लम्बी अवधि पर संसद बुलाये जाने के कारण उनके सदस्यों में मेल–मिलाप और संगठन का अवसर नहीं मिल पाता था। संसद का विकास–काल होने के कारण सदस्यों को अपने विशेषाधिकार का ज्ञान कम था और कॉमन सभा के अध्यक्ष के (जो बहुत ही शक्तिशाली होता था) की नियुक्त राज्य करता था। अतः सरकार के सभी प्रस्तावित नीतियों तथा कार्यों पर संसद की मुहर आसानी से लग जाती थी । यही कारण था कि ट्यूडर शासक स्वतंत्र होकर निर्भीक और निरंकुश रहने लगे। ट्यूडर राजाओं का चरित्र – एक या दो को छोड़कर बाकी ट्यूडर राजाओं का चरित्र सुन्दर और स्वस्थ था जिसने जनता के दिल में अपने प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया। इससे उनकी निरंकुशता बनी रही। दौरा जजों का प्रबन्ध– ट्यूडर राजाओं ने शासन के केन्द्रीकरण पर यथेष्ट ध्यान न देकर विकेन्द्रीकरण को आवश्यक माना। शासन भार स्थानीय उत्तरदायी लोगों के हाथ सौंपा गया। केन्द्रीय नौकरशाही अपेक्षा दौरा जजों की नियुक्ति की जाने लगी जो ट्यूडर राजाओं को निरंकुशता के माध्यम थे। फिर भी लोगों ने उन्हें अपना ही आदमी समझा।
मध्यम वर्ग का उदय – ट्यूडर निरंकुशता न तो तानाशाही और न एक व्यक्ति का शासन था । मध्यम वर्ग का सहयोग और सहायता सरकार को प्राप्त थी । मध्यमवर्गीय अध्यापक, डॉक्टर तथा दुकानदार (जो कृषक विद्रोह के फलस्वरूप आगे बढ़ सके थे।) की इच्छाओं का ट्यूडर राजाओं ने हमेशा ख्याल किया। शासन सेना तथा चर्च में मध्यमवर्गीय लोगों को बड़े पद दिए गए। बेटले, बूल्जे

तथा एम्पसन आदि राज्य में भी सभी मध्यम वर्ग के ही थे। मठों को सम्पति जब्त कर उनको बीच वितरित कर दी गयी थी। राजतंत्र के प्रति वे काफी कृतज्ञ थे। अतः ट्यूडर राजाओं की निरंकुशता बनी रही। संक्षेप में, उपर्युक्त वर्णित कारणों के फलस्वरूप ट्यूडर राजाओं को निरंकुश होना पड़ा। इसमें निःसंदेह ट्यूडर शासन निरंकुश नहीं था क्योंकि इसके साथ सर्वप्रथम निरंकुशता का सामान्य अर्थ लागू ही नहीं हो सकता। किसी भी हालत में यह किसी सैनिक तानाशाह तुर्की सुल्तान या रूस जारशाही की निरंकुशता नहीं थी । ट्यूडर निरंकुशता को 'प्रबृद्ध निरंकुशवाद' कहा जा सकता है। प्रसिद्ध इतिहासकार 'ट्रविलियन 'के मतानुसार ट्यूडर शासन का मूलमंत्र राजभक्ति न होकर निरंकुशता थी । वास्ताविकता यह है कि ट्यूडर राजाओं के पास न तो कोई स्थायी सेना थी और न ही कोई स्थायी नौकरशाही, जिससे लोगों का उत्पीड़न किया जा सकता था। ट्यूडर शासकों को सम्पूर्ण राष्ट्र का समर्थन प्राप्त था। लोगों का विश्वास था कि संकटमेय स्थिति का सामना करने हेतु सबल शासन अपेक्षित है, जिसका ट्यूडर राजाओं ने भरपूर लाभ उठाया। दमनकारी नीति अपनाने में भी वे अमन–चौन के नाम पर दोषी नहीं थे। इतिहासकार वार्नर, मार्टिन एवं म्योर के शब्दों में " ट्यूडर निरंकुश थे, क्योंकि इंग्लैंड के लोगों ने उन पर विश्वास किया और यह चाहा कि उन्हें निरंकुश होना चाहिए। ट्यूडर राजाओं की निरंकुशता विधिसम्मत नहीं औपचारिक थी । अतः इसके लिए संविधान में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। मध्ययुगीन कौंसिल, संसद, स्थानीय शासन–तंत्र नियमित न्यायालय के गठन में कुछ अदला–बदली और हेर–फेर किया गया था। फलतः इसमें अब मध्यम वर्ग को भी स्थान मिला । विशेष प्रकार की अदातल का गठन विशेष प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने हेतु किया गया। इन अदालतों के अधिकार असीमित थे, फिर भी लोकमत ने इनका समर्थन किया। ट्यूडरकालीन संसद विनीत थी । अतः राजाओं के प्रस्ताव का वह सदैव सत्कार करती थी। यह संसद ट्यूडर राजाओं को शासन के यर्थाचित अधिकार प्रदान करती थी। राजा को उद्घोषणा एवं अध्या देश जारी करने का भी अधिकार प्राप्त था जिसे कानूनी मान्यता प्राप्त थी । संसद की उपेक्षा करना वहाँ के राजाओं हेतु सामान्य बात थी, बहुत दिनों से फ्रांस में संसद की बैठक नहीं बुलायी गई थी। परन्तु इंग्लैण्ड में ट्यूडर वंशीय राजाओं ने संसद को कायम रखा और इसी के द्वारा अपने सभी कार्य सम्पन्न किए।

ट्यूडर राजवंश की इंग्लैण्ड में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने सदैव लोकमत का सम्मान किया और साथ–ही–साथ लोगों को अपनी ओर मिलाने हेतु, उद्योग–धंधों, खेती, जहाज–व्यवसाय इत्यादि के विकास पर विशेष ध्यान दिया। सभ्यता–संस्कृति, कला – विज्ञान आदि की काफी तरक्की हुई। राजकीय नौ सेना को देश की सुरक्षा की दृष्टि से काफी मजबूत प्रदान की गई। गरीबी एवं बेकारी की समस्या के

उन्मूलन हेतु आवश्यक कदम उठाए गए। प्रोटेस्टेंट दल को रोम से संबंध ा–विच्छेद करने के फलस्वरूप अपेक्षित प्रोत्साहन मिला। चर्च और धर्म में भी

आवश्यकतानुसार सुधार लाया गया। कैथोलिक प्रधान स्पेन को पराजित किया गया । फलस्वरूप अब आयरलैंड और स्कॉटलैंड में इंग्लैंड की तूती बोलने लगी। उपनिवेशों की स्थापना की गई तथा फ्रांस से भी मित्रता स्थापित करने की कोशिशें की गईं। जनता इन नवराजतंत्र के कार्यों से बहुत प्रसन्न थी और उनकी निरंकुशता को सहन करने हेतु सहर्ष तैयार थी। जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार ट्रेवेलिवन ने कहा है कि '' हेनरी सप्तमलालची था और हेनरी अष्टम रक्तपिपासु था। मेरी कैथोलिक थी और प्रोटेस्टेंट प्रजाओं को तरह–तरह की कठोर यातनाएँ देनी थीं। इनके बावजूद इन सबों को लोगों का समर्थन प्राप्त था । निष्कर्षस्वरूप उपर्युक्त कथनों के आधार पर ट्यूडर निरंकुशता की प्रकृति तथा इसके स्वरूप के संदर्भ में यह भली–भाँति कहा जा सकता है कि ट्यूडर राजतंत्र प्रबुद्ध राजतंत्र और प्रबुद्ध निरंकुशवाद था, जो ब्रिटिश जनता की सदिच्छा पर आधारित था । इंग्लैण्ड में 17वीं शताब्दी में राजा तथा पार्लियामेंट में परस्पर संघर्ष के निम्नलिखित कारण थे कायाकल्प – ट्यूडर काल में आंग्ल सभ्यता का पुनर्निर्माण हुआ । प्रसिद्ध इतिहासकारों का कथन है ट्यूडर काल के आलोचनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि जिस समय हेनरी सप्तम ने जो कि प्रथम ट्यूडर शासक की बागडोर हाथ में ली उस समय शासन का घोड़ा अनियन्त्रित था, रथ जीर्ण–शीर्ण दशा में एब सवारों की दशा शोचनीय थी । ट्यूडर काल की स्थापना करीब एक शताब्दी का युद्ध एवं गुलामों की लड़ाई के बाद हुई थी। इस संघर्ष काल में जनता तबाह हो चुकी थी। जनता शांति की साँस लेकर टाँगें पसार कर सोने के लिए व्याकुल थी । सामन्तों की कुप्रथाओं एवं अन्यायों को वह अधिक सहन करने के लिए तैयार नहीं थी। इन नग्न नृत्यों को वह प्रत्येक कीमत पर मिटाने के लिए प्रस्तुत थी । ट्यूडर शासकों ने सामन्तों की शक्ति पर तुषारापात किया एवं सम्राट की शक्ति को बढ़ा बढ़ा दिया। अपने शासन काल में उन्होंने राजा की सत्ता का प्रभुत्व सम्पूर्ण इंग्लैंड में स्थापित किया । राजाज्ञा राष्ट्र के प्रत्येक भाग में प्रतिष्ठित हो गई। एक लेखक का कथन है कि प्रीवि कौंसिल की लम्बी आस्तीन राज्य के प्रत्येक किनारे तक पहुँच चुकी थी। स्टुअर्ट काल शक्तिशाली सामन्तों के अत्याचार से छुटकारा पा चुका था। अब जनता की आकांक्षा थी कि जो शक्ति सामन्तों को ठिकाने लगा चुकी है, उसे सीमित एवं नियंत्रित रखा जाए। ट्यूडरों के शासन काल में कैथोलिक की ओर से उपद्रव की आशंका थी। उस काल में रोम के पोप का आधिपत्य इंग्लैंड की चर्च व्यवस्था पर था । किन्तु धार्मिक सुधारों के उपरान्त पोप का आधिपत्य नष्ट कर दिया गया और इंग्लैंड में एक राष्ट्रीय चर्च व्यवस्था का आयोजन किया गया था। कैथोलिकों का समुदाय अब इतना अशक्त हो गया था कि वे क्रान्ति का नेतृत्व नहीं कर सकते थे।`ट्यूडर काल के सिंहासन के कई उत्तराधिकारी थे जो विभिन्न यूरोपीय शक्तियों का समर्थन प्राप्त करके सिंहासन हथियाने के लिए परस्पर संघर्ष में तल्लीन थे । हेनरी सप्तम को लैम्बर्ट, सिम्लेना, पाक्रिन तथा वार्विक आदि का सामना करना पड़ा। लेडी जेन

ग्रेग के लिए विद्रोह का सामना मैरी को भी करना पड़ा। क्वीन ऑफ स्कॉट से महारानी एलिजाबेथ का जीवन – प्रयत्न संघर्ष जारी रहा। स्पेन के राजा फिलिप से महारानी को युद्ध करना पड़ा। किन्तु यह सौभाग्य की बात थी कि प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ, उस समय उसे किसी भी विरोधी तत्व से संघर्ष नहीं करना पड़ा। ट्यूडर एवं स्टुअर्ट दोनों वंशों का उत्तराधिकारी सम्राट जेम्स प्रथम था। जेम्स प्रथम का शासन–काल गृह–युद्ध तथा आंतरिक अशान्ति से भय रहित हो गया । इसलिए निरंकुश शासन स्थापित करने की आवश्यकता जाती रही। अतः जेम्स प्रथम का निरंकुश शासन न रहा । शक्तिशाली शत्रुओं ने इंग्लैंड को ट्यूडर काल में घेर लिया। जिस समय देश की सुरक्षा को हानि की सम्भावना हो उस समय संवैधानिक चर्चा करना मूर्खता होगी। अपनी योग्यता, वीरता का परिचय देते हुए ट्यूडर शासकों ने अंग्रेजों की नाविक शक्ति को समाप्त कर दिया। महारानी एलिजाबेथ के शासन काल में अंग्रेजों की नाविक शक्ति आरमेडा ने स्पेन पर विजय प्राप्त कर ली, जिसको लोग समझते थे कि विजय किया ही नहीं जा सकता। स्पेन की ओर से आक्रमण का भय समाप्त हो गया । फ्रांस इस समय इंग्लैण्ड से मित्रता की नीति ही रखना आवश्यक समझता था। स्कॉटलैंड से खतरे की आशंका का प्रश्न ही नहीं उठता, जबकि स्कॉटलैंड ने नियन्त्रण कर लिया था। इस प्रकार स्टुअर्ट युग के आरम्भ – काल में किसी भी बाहरी शक्ति के आक्रमण का भय नहीं था । मध्यम वर्ग का प्रादुर्भाव एवं नवीन जागृति– सन् 1588 ई० में आरमेडा की पराज्य के पश्चात् जिसका कि भय इंग्लैंड की जनता में छाया रहता था यहाँ की जनता में एक नवीन प्राण संरक्षक के रूप में उपस्थित हुआ। इंग्लैंड की जनता में एक नई स्फूर्ति एक अपूर्व विश्वास दृष्टिगोचर होने लगा। यह भय दूर होने की देर थी कि उसने उन्नति के क्षेत्र में कोई कोना अछूता न छोड़ा। प्रत्येक क्षेत्र में वाणिज्य, व्यवसाय, साहित्य, राजनीति में एक नई लहर दौड़ गई।

उन्नति के सम्मुख उस प्राचीन परम्परागत निरंकुश राजतंत्र का टिकना कठिन होगा। इस पुनर्जागरण का परिणाम यह हुआ कि जनता में नवीन भावनाओं का संभव हो सका। इस संदर्भ में इतिहासकार डॉ. टेनर का कथन सही प्रतीत होता है कि '' एलिजाबेथ की शान आर्मेडा की पराज्य के बाद घटने लगी। इंग्लैंड की जनता में जो आत्म–सम्मान एवं विश्वास इस जागरण के फलस्वरूप हुआ, उसके कारण यह शासन–व्यवस्था में भी हाथ डालने के लिए बेचौन हो उठी। उसी तरह महारानी एलिजाबेथ के शासन – काल के अंतिम चरण में पार्लियामेंट के अनेक सदस्य बेलगाम हो गए थे।`ार्लियामेंट का विकास – इंग्लैंड में 17वीं शताब्दी में निरंकुश शासन का टिकना पार्लियामेंट के विकास के सामने असम्भव हो गया था। पार्लियामेंट जो ट्यूडर शासकों के हाथ की कठपुतली थी, अब सजग हो गई थी। ट्यूडर शासक अपनी इच्छानुसार पार्लियामेंट को घुमा देते थे। इसलिए वे पार्लियामेंट की स्वीकृति कोई भी काम करने के पहले लेते थे। संक्षेप में ट्यूडरों की विजय ही स्टुअर्ट की पराज्य का कारण हुई। जैसा कि एक इतिहासकार का भी विचार है ट्यूडर ने पार्लियामेंट के साथ शासन किया–

पार्लियामेंट से अलग या उसके प्रतिकूल शासन नहीं किया ।
उस समय की पार्लियामेंट पर यह आरोप लगाया जाता है वह राजा की बात आँख मूँदकर स्वीकार कर लेती थी । यदि पार्लियामेंट राजा की बात मान लेती थी ता यह पार्लियामेंट के हित में थी । कारण कि पार्लियामेंट अपनी शैशव अवस्था में थी। डॉ. भटलैंड का मत है कि '' ट्यूडर पार्लियामेंट की सभ्यता ने उसे अन्त में शक्तिशाली बनने में सहायता की। पार्लियामेंट ट्यूडरकाल में सभी प्रस्तावों को बिना किसी विरोध के पास कर देती थी । अतः शासक लोग भी पार्लियामेंट का ध्यान रखते थे और उसके सी – धेपन का नाजायज फायदा उठाने में न चूकते थे । उसको ध्यान में रखते हुए शासकों ने सुअवसर हाथ से न जाने दिया और पार्लियामेंट से धर्म–सुधार संबंधी कानून, दारिद्रय नियम यहाँ तक कि घोषणा अधिनियम भी पास करा लिया। जिसमें राजा को तानाशाही के अधिकार मिल गये । ट्यूडर शासकों के लिए यह सुअवसर था कि वे चाहते तो पार्लियामेंट की उपेक्षा कर सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा न करके इंग्लैंड में पार्लियामेंट व्यवस्था की परम्परा को दृढ़ कर दिया जो शताब्दियों तक चलती रही। इसी कारण स्टुअर्ट के लिये ट्यूडरकालीन परम्पराओं को समाप्त करना असंभव – सा हो गया। अतः स्पष्ट है कि 17वीं शताब्दी का वैधानिक संघर्ष 16वीं शताब्दी की प्रगति के कारण हुआ । किन्तु यदि एक विहंगम दृष्टि इतिहास पर डाली जाय तो ज्ञात होता कि 16वीं शताब्दी के अंतिम चरण में ही पार्लियामेंट के नेता पाल वेंटवर्थ और पोटर अटवर्थ अपनी स्वतंत्रता की आवाज उठाने लग गये थे। उनके भाषणों से यह स्पष्ट होता था कि लोग पार्लियामेंट की स्वतंत्रता चाहते हैं। पार्लियामेंट को किसी सत्ता के अधीन रहना अनुचित है । वह राजा के हाथ की कठपुतली नहीं रह सकती थी । इस प्रकार एलिजाबेथ के अंतिम दिनों एवं जेम्स प्रथम के प्रारम्भिक वर्षों में कोई अन्तर नहीं रह गया था। तात्कालिक कारण धर्म संबंधी प्रश्न– संघर्ष के अतीत कारणों के अतिरिक्त कुछ तात्कालिक कारण भी थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि संघर्ष का श्रीगणेश शीघ्र ही हो गया, धार्मिक प्रश्न इन कारणों में से महत्वपूर्ण कारण था। जैसा कि विदित है कि यह युग धर्म प्रभाव का युग था । लोग अधिक धर्म प्रध ाान भावनायें रखते थे। इस काल में राजनीति से धर्म का अटूट संबंध था। इस काल का राज्य धर्म सापेक्ष राज्य था। स्टुअर्ट काल में प्रत्येक प्रधान घटना में धर्म की सबल प्रेरणा थी सत्रहवीं शताब्दी के संवैधानिक संकट पर धर्म का गहरा रंग चढ़ा हुआ था, इसी कारण संघर्ष कटु से कटुतर होता चला गया। एलिजाबेथ की चर्च व्यवस्था भी दोषमुक्त थी। इसी कारण प्यूरिटन और प्रेसविटेरियन असंतुष्ट थे। अतएव जेम्स प्रथम के शासन काल में उन्होंने राष्ट्रीय पैमाने पर धर्म – व्यवस्था में हस्तक्षेप करके परिवर्तन लाना चाहा। वे स्वतंत्र ध ार्म संघ की स्थापना के पक्ष में थे और धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहन देने के पक्ष में थे। उनके विचार गणतन्त्रात्मक थे। जेम्स तथा अन्य स्टुअर्ट शासक एग्लिंकन तथा आर्मिनियन मत के समर्थक थे तथा कैथोलिक से उनकी सहानुभूति थी। वे चर्च में विशपों की प्रधानता के पक्ष में थे। जेम्स प्रथम ने तो

बिशप व्यवस्था को राजतंत्र की नींव मान ली थी, जैसा कि राजा के इन शब्दों से स्पष्ट होता है–

"छव ठपेीवच. छव ज्ञपदह ''

राजा को बिशप व्यवस्था बनाये रखने के कारण "राजा के दैवी अधिकार'' को समर्थन प्राप्त होना था। इस प्रकार धार्मिक संघर्ष का वैधानिक महत्व और भी चरम सीमा पर पहुँच गया। राजा का कहना यह था कि राजा का धर्म ही प्रजा का धर्म होना चाहिये। किन्तु पार्लियामेंट का विचार इसके विपरीत था । पार्लियामेंट का मत यह था कि राजा का वही धर्म होना चाहिए, जो इंग्लैंड की अधिकांश जनता मानती है। इन विरोधी भावनाओं तथा सिद्धान्तों के आधार पर सत्ता पार्लियामेंट के हाथों में गई और उत्तराधिकार निर्णय कानून के द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि राजा का धर्म प्रोटेस्टेंट धर्म ही होना चाहिए। 2. वैदेशिक नीति– वैदेशिक नीति भी धर्म से बिना प्रभावित हुए न रह सकी। प्यूरिटन और प्रोटेस्टेंट लोगों की अधिकता पार्लियामेंट में थी । इन लोगों की अभिलाषा थी कि स्टुअर्ट यूरोप में प्रोटेस्टेंट धर्म को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान करें। स्पेन की राजकुमारी कैथोलिक थी। जेम्स प्रथम अपने पुत्र चार्ल्स की उससे शादी करने के विचार में था और सम्राट कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट देशों का शान्तिप्रिय यंत्र बनाना चाहता था। इंग्लैंड तथा स्पेन की शत्रुता पुरानी थी। अतः इंग्लैंड की जनता स्पेन के साथ युद्ध चाहती थी। जेम्स की स्पेन को अप्रसन्न करना नहीं चाहता था। स्पेन की अप्रसन्नता पर कोई प्रभाव न पड़े, इस कारण उसने रैल जैसे महान नेता को फाँसी पर लटका दिया था द्य जेम्स की इस नीति और कार्य से जनता की भावनाओं पर घातक आघात हुआ और जनता अधिक क्षुब्ध हुई तब चार्ल्स प्रथम ने पार्लियामेंट को धोखा देकर स्पेन की कैथोलिक राजकुमारी से गठबंधन कर लिया । चार्ल्स द्वितीय ने गुप्त रूप से फ्रांस से भी संधि कर ली थी। अतः उपरोक्त कारणों का परिणाम यह हुआ है कि स्वदेशिक नीति को लेकर राजा तथा पार्लियामेंट के बीच संघर्ष उठ खड़ा हुआ।`आर्थिक समस्या– कहा जा सकता है कि स्टुअर्ट राजा सदैव निर्धन ही रहते थे। ट्यूडर राजाओं की भाँति यह लोग किफायत शार न थे। स्टुअर्ट शासक अधिक खर्चीले थे और पैसा पानी की तरह बहते थे। इसी समय अमेरिका में सोने–चाँदी की अनेक खानों का पता चल गया था और स्पेन के कारण सोने–चाँदी से लदे जहाज यूरोप में आने लगे। यूरोप में सोना चाँदी की अधिकता के कारण मुद्रा की कीमत में कमी आ गई थी। सरकार के नवीन विभागों के कारण उसका खर्च बढ़ गया था और आय के साधन अब भी प्राचीन ही थे । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्टुअर्ट राजाओं के सम्मुख आर्थिक संकट के कारण शासक चलाना इन शासकों के लिए दूभर हो गया । शान्तिकाल में ही खर्च चलाना कठिन था, युद्ध काल की बात तो दूर रहीं। राजा को धन की स्वीकृति के लिए बार–बार पार्लियामेंट की शीघ्र बैठकों के फलस्वरूप इसके सदस्यों को राजा के सम्मुख एकत्र होकर बार–बार आलोचना करने का अवसर मिलता था। पार्लियामेंट में सदस्य प्रत्येक बैठक में धार्मिक एवं राजनैतिक प्रश्नों को उकसा कर राजा को तंग किया करते

थे। राजा क्षुब्ध होकर पार्लियामेंट की बैठक समाप्त करके नाजायज करों से खर्च को पूरा करने का प्रयत्न करता था । ऐसा न करने से पार्लियामेंट को एक दूसरा कारण आलोचना का आसानी से सुलभ हो जाना था। इस प्रकार राजा के सम्मुख चिन्ताजनक परिस्थितियाँ थी। पार्लियामेंट की बैठक बुलाने से बहस होती थी और न बुलाने पर कटुतर आलोचना होती थी। राजा की गति साँप छुछूंदर जैसी थी। दोनों दशाओं के परिणामस्वरूप असंतोष की सम्भावनायें बढ़ती गईं। पार्लियामेंट के विशेषाधिकारियों की समस्या – ट्यूअर्ट के काल तक पार्लियामेंट ने अनेक विशेषाधिकार प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। अब पार्लियामेंट को यह विशेषाधिकार प्रयोग करने का अवसर था। वह उन्हें क्रियात्मक रूप देना चाहती थी । किन्तु स्टुअर्ट शासक जिन्हें संविधान के बारे में कुछ भी ज्ञान न था, इन विशेषाधिकारों की स्वीकृति नहीं दे रहे थे। उनका कथन था पश्चिमी विश्व कि पार्लियामेंट के विशेषाधिकारी का स्रोत्र पार्लियामेंट के सदस्य नहीं किन्तु राजा है। अतः राजा उन्हें वापस भी ले सकता है।
पार्लियामेंट के सदस्य इसके विपरीत विरोधी भावनायें रखते थे। वे अपने विशेषाधिकारों को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। जिस प्रकार जमीन–जायदाद इत्यादि विरासत में प्राप्त होते हैं ठीक उसी प्रकार का विचार विशेषाधिकारों के बारे में था। इस प्रकार राजा को कोई अधिकार उस विशेषाधिकारों को वापस लेने का नहीं है। इन विरोधी तत्वों के परिणामस्वरूप भी भीषण संघर्ष उठ खड़ा हुआ । पार्लियामेंट के सदस्यों की धारणा थी कि उन्हें भाषण देने की स्वतंत्रता है । जेम्स प्रथम ने राज्य के गंभीर मामलों पर भाषण करने से मना कर दिया। पार्लियामेंट के सदस्यों को यह विश्वास था कि वे कैद नहीं किये जा सकते किन्तु राजा ने उन्हें बार–बार कैद करके उसके विशेषाधिकार का हनन किया । पार्लियामेंट के सदस्य चुनाव संबंधी झगड़ों पर अपना फैसला देना विशेषाधिकार मानते थे। जेम्स प्रथम से गूडविन का चुनाव बल प्रयोग कर अवैध घोषित कर दिया तथा उसका निर्णय चान्सरी कोर्ट द्वारा करवाया। पार्लियामेंट के अनुसार राज्यमंत्री पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी थे। राजा इसके पक्ष में नहीं था। इस प्रकार दिनों–दिनों राजा और पार्लियामेंट का संघर्ष बढ़ता गया । राजा के दैवी अधिकार का प्रश्न– इस संघर्ष का सबसे मूल एवं महत्वपूर्ण कारण भी राजा के दैवी अधिकार का सिद्धान्त था जिसमें स्टुअर्ट शासकों का पूर्ण विश्वास था। उनका कथन था कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर की छाया है। यह ईश्वर की इच्छा से राजा हुआ है। वह राजा इसलिए नहीं है कि सांसारिक मनुष्यों ने उसे राजा बनाया है। राजा की आज्ञा की अवहेलना का तात्पर्य होगा । ईश्वर की आज्ञा को न मानना जो कि धार्मिक दृष्टि से अनुचित है। पैतृक राजतंत्र पवित्र वस्तु है । वह राजाओं की व्यक्तिगत वस्तु है। अतः जनता की ओर से राजप्रासाद के किसी काम में दखल देना या आलोचना करना वास्तविकता है। यदि राजा दयालू है तो जनता का सौभाग्य है और यदि सम्राट निर्दयी है तो जनता के भाग्य का दोष है, क्योंकि राजा को ईश्वर की ओर से होता है। जैसे आँधी का आना, तूफान का अना, अकाल पड़ना, महामारी फैलना

तथा भूकंप आना। क्या जनता इस ईश्वरीय प्रकोपों पर नियंत्रण स्थापित कर सकती है। यह ईश्वरीय प्रकोप है। वह अलौकिक एवं ईश्वरीय कुचक्र है। इस प्रकार पैतृक राजतंत्र की सारी अनैतिकता ईश्वरीय है। राजा का कार्य संसार के किसी भी व्यक्ति की आलोचना का विषय नहीं होना चाहिए । राजा अपने किसी भी कुकर्म और सुकर्म के लिए ईश्वर के सामने उत्तरदायी है। जनता का कार्य राजा की सेवा करना है। जनता को राज–काज में अपना हस्तक्षेप करने की कोई आवश्कता नहीं है । जेम्स प्रथम ने एक पुस्तक लिखकर इस बात का प्रतिपाद न किया, जिसका नाम '' दि टू लाज ऑफ फ्री मोनारकीज'' था। उसका विचार था पैतृक राजतंत्र संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है ।

जेम्स प्रथम सम्राट की पदवी को निजी पद समझता था, सार्वजनिक नहीं । किन्तु पार्लियामेंट की भावनायें पूर्णतया भिन्न थीं। पार्लियामेंट सम्राट के पद को सार्वजनिक मानती थी, व्यक्तिगत नहीं । पार्लियामेंट अपने को भली–भाँति चलने के लिए किसी का बुरे कार्यों का भी निरीक्षण कर सके और यदि आवश्यक समझे तो राजा को पद से हटा सके। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वह राजा को पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी मानती थी।

6. राजा के विशेषाधिकार की समस्या– राजा के उपरोक्त अधिकार से ही संबंधित सम्राट के विशेषाधिकार का प्रश्न था । राजा यह भली–भाँति जानता था कि उसके विशेषाधिकार कानून की सीमा से परे है। अपने विशेषाधिकारों के आधार पर सम्राट के सम्मुख के सम्मुख कानून का कोई महत्व नहीं है। वह कानून को ठुकरा सकता है। राजा में सुरक्षित शक्ति विद्यमान है और उस शक्ति के आधार पर वह चाहे जो कर सकता है। राजा कानून के द्वारा बाँधा नहीं जा सकता है। राजा ही कानून का निर्माण करता है। और उसका अधिकार है कि वह कानून भी तोड़ सकता है । पार्लियामेंट का मत इससे भिन्न था। वह कानून को सर्वश्रेष्ठ मानती थी। राजा के विशेषाधिकार कानून की ही देन हैं। अतः राजा कानून की अवहेलना विशेषाधिकार के आधार पर नहीं कर सकता है राजा भी कानून के घेर के अन्दर है। कोई भी व्यक्ति कानून के उपर नहीं है। इस तरह राजा का जिस सिद्धान्त में विश्वास था पार्लियामेंट उसके विपरीत थी और कानून के स्पष्ट न होने के कारण दोनों अपना हल इंग्लैंड के संविधान में ढुंढ निकालने में सफल हो जाते थे। पार्लियामेंट मैग्नाकार्टा का आधार लेता था तो राजा ट्यूडरों के निरंकुश शासन में अपने सिद्धान्त की सत्यता देखता था कि इस प्रकार संघर्ष दिन–पर–दिन उन्नति की और अग्रसर होता रहा और इसके परिणामस्वरूप परिस्थिति और चिन्ताजनक तथा शोचनीय होती गई । पार्लियामेंट कानून को सबसे बड़ी मानती थी और राजा कहता था कि उसकी इच्छा ही कानून है । कहा जा सकता है कि संघर्ष की तैयारी पूर्ण थी, जो किसी अवसर पर विकट रूप धारण कर सकती थी। स्टुअर्ट शासकों का निजी चरित्र – इस चिन्ताजनक परिस्थिति में जबकि पार्लियामेंट के नेता अपने अधिकारों की पुष्टि पर बल दे रहे थे, आन्तरिक एवं बाह्य संकट का भय समाप्त हो गया था तथा जनता वैधानिक जटिलताओं के सुलझाने के लिए कटिबद्ध हो चुकी थी, इंग्लैण्ड

के सिंहासन पर आसीन होने वाले सम्राट का राजनीति – कुशल होना अत्यन्त आवश्यक था। हेनरी अष्टम तथा एलिजाबेथ ट्यूडरकालीन शासक सफल राजनीति थे । वे समयानुकूल शासन करने में कुशल एवं चतुर थे। किन्तु इस समय जबकि सिंहासन पर महान् राजनीतिज्ञों की आवश्यकता थी, दुर्भाग्यवश शासक बिल्कुल खोखले एवं ज्ञानहीन थे। जेम्स प्रथम की पार्लियामेंट की टक्कर उसकी प्रकृति के कारण अनिवार्य थी। वह विद्वान अधिक था किन्तु जहाँ ज्ञान की व्यावहारिकता का प्रश्न था वह इस क्षेत्र में शून्य था । वह राजा के दैवी अधिकार की सदैव वकालत किया करता था जैसा कि ज्तमअमसलंद के शब्दों से स्पष्ट है–

''जेम सपहीज ीमंक व जीम `बीवसंत `ू जनउमक इल जीम दमू पदम व ंद ंइेवसनजपेज जीमवतल व ळिवअमतउमदज.''

चार्ल्स प्रथम अत्यन्त हठी स्वभाव का व्यक्ति था । वह सदैव अपने वादे से दूर भागने का प्रयत्न किया करता था। पार्लियामेंट का समझौता इस प्रकार के व्यक्ति के साथ असंभव था। चार्ल्स द्वितीय निरंकुश राजतंत्र और कैथोलिक ध र्म का समर्थक था किन्तु वह पार्लियामेंट का विरोधी नहीं था। जेम्स द्वितीय को अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण सिंहासन ही त्यागना पड़ा। इस प्रकार संक्षेप में सभी स्टुअर्ट शासक योग्य एवं अदूरदर्शी थे। उनके साथ पार्लियामेंट का समझौता होना एक सरल बात नहीं थी।

संघर्ष का स्वरूप– 17वीं शताब्दी की वैधानिक उथल–पुथल किसी नवीन अधि ाकार की माँग के परिणामस्वरूप नहीं थी। रैम्जे म्यूर ने भी लिखा है कि '' पार्लियामेंट का नवीन अधिकार प्राप्त करने की कोई भी इच्छा नहीं थी और न ही उसे इसको कुछ कल्पना ही थी कि वह कोई नवीन अधिकार माँग रही है। ''

पार्लियामेंट के सदस्य यह समझते थे कि वे इंग्लैण्ड की प्राचीन स्वतंत्रता की रक्षा कर रहे है। उनका विचार संविधान में परिवर्तन लाने का नहीं था और परिवर्तन लाने को वे निन्दनीय समझते थे। उसकी केवल इतनी ही आकांक्षा थी कि जो स्वतंत्रता उनके हाथ से निकल गई है उन्हें दुबारा मिल जाय । किन्तु छिपे रूप में वे क्रांतिकारी परिवर्तन लाने पर तुले हुए थे। जिसमें वे चाहते थे कि राजा राज्य का प्रथम अधिकारी मात्र रहेगा यद्यपि पार्लियामेंट अपने सभी व्याख्यानों में इंग्लैंड की प्राचीन परम्पराओं की दुहाई देती थी किन्तु उन्हीं परम्पराओं को समक्ष रखती थी जिनसे उस लाभ था। वह मध्यकालीन शब्दों के आधार पर वर्तमान अर्थ लेती थी। उनके भाषणों में मैग्नाकार्टी का सदैव संदर्भ रहता था। उनके

अनुसार वह इंग्लैंड का मौलिक और अपरिवर्तनशील नियम हो । किन्तु जो संविधान लिखा न हो और इच्छानुसार मोड़ा जा सके कोई कानून अपरिवर्तनशील नहीं हो सकता। इसके अलावा मैग्नाकार्टी की धाराओं से वे ऐसा अर्थ निकालते थे जो कि आधुनिक विद्वानों के अनुसार उसमें कदापि नहीं थी । परम्पराओं के इस संघर्ष में राजा का पक्ष निर्बल न था । राजा का पक्ष अधिक सफल था।

राजा के समस्त अधिकार परम्पराओं पर ही आधारित थे। अतः जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम के दैवी अधिकार की वकालत कानून की दृष्टि से गलत नहीं हो सकती थी। इन शासकों के दैवी अधिकार के प्रयोग के बारे में कहना था कि वे इसकी अच्छाई व बुराई के लिए परम पिता परमात्मा के सामने उत्तरदायी हैं। परन्तु ऐसा वे कदापि नहीं करते थे जो उनके पूर्वजों के अधिकारों की तृष्टि न करता हो। ये भी परम्पराओं की दुहाई देते थे, किन्तु राजा और पार्लियामेंट दोनों ही परम्पराओं की पक्षपातपूर्ण व्याख्या करके संविधान का ढाँचा उसमें परिवर्तन लाकर बदलने के पक्ष में थे।

दैवी अधिकार के आधार पर आधारित राजतंत्र और पार्लियामेंटी शासन–पद्धति दोनों इंग्लैण्ड के प्राचीन सामन्तवादी में नई बातें थीं।

इस संघर्ष में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि राजा और पार्लियामेंट दोनों ही पक्ष प्राचीन परम्पराओं की दुहाई देते हुए सुने जाते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इंग्लैण्ड के लोग कानून की कितनी कद्र करते हैं। उन्हें इस प्रकार की पदवी से विरोध था जो प्राचीन परम्पराओं पर आघात करती हो । किन्तु दोनों पक्षों की यह ज्ञात नहीं था कि वे जिस शासन व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है वह नवीनता

है थी। दोनों को दलीलें नवीन सिद्धान्तों से परिपूर्ण थीं। एक सिद्धान्त यूरोप में विस्तृत था और दूसरा इंग्लैण्ड का भविष्य राजा और पार्लियामेंट के संघर्ष पर निर्भर था।

जनता और राजा की लड़ाई की संज्ञा इस संघर्ष को देना अनुचित होगा। जनता में इन सिद्धान्तों के आधार पर अत्यन्त मतभेद था। रैम्जेम्यूर का ता यहाँ तक मत है कि यदि इन सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या करके यदि जनता से मतदान लिया जाता तो अधिक मत राजा को ही प्राप्त होते यह सोचना भी गलत होगा कि इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट आजल को संस्थाओं की भाँति अपने निर्वाचन क्षेत्रों की जनता की आवाज को वेस्टमिल्सटनर भवन में सुनाती थी । वास्तविकता यह थी कि आधी पार्लियामेंट लार्ड सभा थी जिसमें खानदानी लार्ड तथा राजा द्वारा मनोनीत बिशप भरे थे और उनमें से अधिकतर राजा के समर्थक थे । कामन्स सभा के सदस्य भी अधिकतर उच्च वर्ग के लोग वकील एवं भूमिपति ही थे। थोड़े लोगों की ही ऐसी संस्था थी जो लंदन तथा कुछ व्यापारिक नगरों के व्यापारी थे। अतः हम कह सकते हैं कि कामन्स सभा भी जनता का प्रतिनिधत्व नहीं करती थी, किन्तु इस सभा के जो छोटे भूमिपति थे उसका जनता में अत्यन्त प्रभाव था। यहाँ के लोग शिक्षित थे जो वास्तव में पूरे राष्ट्र के लिये बोल सकते थे।

संघर्ष का महत्व – 17वीं शताब्दी भर राजा और पार्लियामेंट का संघर्ष जारी रहा। इस संघर्ष में प्रधान तीन प्रश्न उठाये गये– क्या राजा पार्लियामेंट के कानून द्वारा शासन करता है या अपने पैत्रिक दैवी अधिकार के आधार पर राज्य की संप्रभुता पार्लियामेंट में निहित है या राजा में या दोनों में`3. देश में राजा सर्वोपरि है या कानून । इन्हीं प्रश्नों से संबंधित पूरे प्रश्न भी थे, जैसे,

,

1.

2.

राजा को कर वसूल करने का अधिकार बिना पार्लियामेंट की स्वीकृति के है या नहीं राजा किसी व्यक्ति को बिना किसी अपराध के या बिना कारण स्पष्ट किये कैद कर सकता है या नहीं, राज्य के मंत्री राजा के व्यक्तिगत सेवक हैं या पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी । इन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए इंग्लैण्ड को पार्लियामेंट न एक राजा को फाँसी पर लटका दिया तथा दूसरे को सिंहासन छोड़ने पर विवश किया। इतना सब करने के उपरांत भी सीमित राजतंत्र की स्थापना नहीं की जा सकी क्योंकि एक सदस्य ने कहा था– इंग्लैंड की जनता अब संविधान का वास्तविक अर्थ समझने की कोशिकर रही थी । प्रथम ट्यूडर सम्राट हेनरी सप्तम के शासन काल की प्रमुख उपलब्धियाँ , ट्यूडर वंश के संस्थापक के रूप में हेनरी सप्तम का नाम इंग्लैंड के इतिहास में बड़े ही गौरव के साथ लिया जाता है। उसका शासन – काल इंग्लैंड के इतिहास में एक ऐसे जल – विभाजक की भाँति है, जिसकी विभाजक – रेखा का निश्चित निरूपण करना इतिहास के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त ही जटिल विषय है। हेनरी सप्तम के शासन की स्थापना 1485 ई० से इंग्लैंड के इतिहास में मध्यकाल का अंत और आधुनिक युग का आगमन माना जाता है। 1485 ई० से पहले विश्व मानचित्र में इंग्लैंड एक राष्ट्र के रूप में प्रतिस्थापित नहीं था । उसकी सामरिक शक्ति नगण्य थी और व्यापार सीमित था । उसका शासन असक्त था । किन्तु 1485 ई० में हेनरी सप्तम की सत्ता स्थापित होते ही इंग्लैंड यूरोप के एक महत्वपूर्ण राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित होने लगा और ट्यूटर राजवंश की अंतिम शासिका एलिजाबेथ के काल में तो इंग्लैंड की गणना संसार के प्रमुख देशों में की जाने लगी। इसी कारण इंग्लैंड के इतिहास में 1485 ई० का विशिष्ट महत्व है। लंकास्टर निवासी लेडी मारग्रेट ब्यूफार्ट का पुत्र हेनरी सप्तम का राज्यारोहरण अत्यन्त ही विषम परिस्थिति में 30 अक्टूबर, 1485 को हुआ था । बोसवर्थ की लड़ाई में रिचर्ड तृतीय को परास्त कर हेनरी सप्तम इंग्लैंड की राजगद्दी पर आसीन हुआ था। किन्तु गद्दी के रूप में उसे काँटों का सेज प्राप्त हुआ था । उस समय इंग्लैंड की राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यन्त ही प्रतिकूल थी । सर्वत्र अशंति, अव्यवस्था एवं अराजकता का साम्राज्य व्याप्त था। देश में चोर – डाकुओं की भरमार थी। कहा भी गया है– ″जीमतम पे दव बवनदजतल पद जीम ूवतसक ीमतम जीमतम ंतम ेव उंदल जीपमअमें दक तवइइमतें ंतम विनदक पद म्दहसंदक ʻʻ अतः इंग्लैंड की हताश जनता शांति एवं सुव्यवस्था के नाम पर नये सम्राट को सर्वस्व अधिकार प्रदत्त करने को उद्यत थे। दूरदर्शी हेनरी सप्तम ने जन–आकांक्षाओं का भरपूर लाभ उठाते हुए एक शक्तिशली राजतंत्र की स्थापना की। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि हेनरी सप्तम ने अपनी शक्ति का प्रयोग आवाम की भलाई के लिए किया। उसके राज्यारोहण के साथ ही देश में व्याप्त सामन्तवाद जैसी कई कुप्रथाओं का अंत हो चला और

देश की बहुमुखी प्रगति के लिए नई नूतन व्यवस्थाओं का सृजन किया गया । इसीलिए इंग्लैंड के इतिहास में हेनरी सप्तम के शासन काल को '' उपचार एवं बीजारोपण का काल'' कहा जाता है। साथ ही इसी युग से मध्यकालीन युगरूपी अंधकार का अंत और आधुनिक युगरूपी प्रकाश का आगमन भी माना जाता है। हेनरी सप्तम ने सर्वप्रथम सामाजिकता के मार्ग का सबसे बड़ा बाधक सामन्तों की शक्ति का दमन किया। अशांति एवं अराजकता को मिटाने के लिए पुलिस विभाग का गठन किया गया। इंग्लैंड की दुर्बल अर्थ व्यवस्था को सबल बनाने के उद्देश्य से कई सराहनीय प्रयत्न किये गये । पूर्व के युद्धों के कारण खाली हुए राजकोष को समृद्ध करने के लिए वैध एवं अवैध उपायों का सहारा लिया गया । राष्ट्र की समृद्धि के लिए वाणिज्य एवं व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इंग्लैंड को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से यूरोप के विभिन्न देशों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये गये । इस तरह हेनरी सप्तम के द्वारा शासन– भार सँभालते ही देश की चतुर्दिक प्रगति के सराहनीय प्रयत्न प्राप्त हैं और उसे उपचार एवं बीजारोपण के काल की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। हेनरी सप्तम के शासन काल की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताओं के कारण उसे उपचार एवं बीजारोपण की संज्ञा से विभूसित किया गया है– सामन्तशाही का अंत – सदियों से चली आ रही सामन्ती व्यवस्था इंग्लैंड के समाज में कलंक के सदृश था। लोग सामन्तों के अत्याचारों तले बुरी तरह दबे हुए थे। उसकी कराह को सुनने वाला कोई नहीं था। इतिहासकार ने भी कहा है कि " ˋ। ˙ अतः हेनरी सप्तम ने सर्वप्रथम देश से सामन्तशाही का अंत करने के लिए अनेकानेक कदम उठाये। उसने एक कोर्ट ऑफ स्टार चौम्बर की स्थापना करवाई जिसके न्यायाधीश सामन्तों के विरुद्ध अपना निर्णय देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे। कानून का उल्लंघन करने वाला सामन्त कठोर दंड के भागी होते थे । इस तरह कोर्ट ऑफ चौम्बर की स्थापना के द्वारा हेनरी सप्तम ने न केवल सामन्तों की शक्ति ही क्षीण की, वरन् उन्हें कानून के पंजे में भी ले लिया।

साथ ही हेनरी सप्तम ने सामन्तों के अस्त्र–शस्त्र पर अपना कब्जा जमा लिया। इतना ही नहीं सामन्तों को प्रशासनिक कार्यों से पदच्युत कर उनकी शक्ति को मिट्टी में मिला दिया गया शांति एवं सुव्यवस्था की स्थापना – हेनरी सप्तम के राज्यारोहण के पूर्व इंग्लैंड में शांति एवं सुव्यवस्था नामक कोई चीज नहीं थी । अतः सत्तारूढ़ होते हो हेनरी सप्तम ने देश में शति–सुव्यवस्था स्थापित करने की हरसंभव कोशिश की नामक दो न्यायालयों की स्थापना कर देश से अराजकता एवं अव्यवस्था को समाप्त किया गया। साथ ही देश में शांति एवं सुव्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से एक ब्मदजतंस ळवअमदउमदज की स्थापना की गई, जिसकी नियुक्ति इंग्लैंड की जनता करती थी ।

3. राजकोष को समृद्ध करना– पूर्व के युद्धों के कारण इंग्लैंड का राजकोष पूर्णतः खाली हो चुका था। अतः हेनरी सप्तम ने अनेक वैध एवं अवैध उपायों का अवलम्बन कर अपना राजकोष समृद्ध कर लिया, जिससे उस धन की स्वीकृति

के लिए संसद के प्रति मुँहताज नहीं रहना पड़ा । वैदेशिक व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया।

साथ ही सम्राट ने अपराधियों को कारावास देने या अन्य किसी भी प्रकार की सजा देने की बजाय उन्हें आर्थिक दंड देकर बड़ी मात्रा में धनोपार्जन किया। यह हेनरी सप्तम की बुद्धिमत्ता का ही प्रतिफल था कि अत्यन्त समय में ही इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हो चली।

हेनरी सप्तम ने सामन्तों तथा समाज के उच्च वर्ग के लोगों से बलात् कर्ज लेना शुरू किया। सामन्तों के निधनोपरांत उसका प्रान्त हड़प लिया जाता था ।

धनोपार्जन के संबंध में हेनरी सप्तम छवतमजवी थ्वतबम की नीति काफी प्रसिद्ध है। अपने मोरटन नामक मंत्री के सहयोग से हेनरी सप्तम ने समाज के सभी वर्गों के लोगों से बलात धन वसूल करके राजकोष को परिपूर्ण कर दिया। संसद की स्वीकृति से सम्राट ने टनेज एवं पाउण्डेज नामक कर भी वसूलना शुरू किया। ब्रिटेनी द्वीप के प्रश्न पर भी हेनरी सप्तम को विपुल धनराशि हाथ लगी।

4. वाणिज्य एवं व्यापार का विकास– हेनरी सप्तम ने एक आदर्श सम्राट का परिचय देते हुए जहाँ एक ओर राज्यकोष को समृद्ध बनाया, वहीं दूसरी ओर उसने आम नागरिकों की आर्थिक दशा को भी सुधार कर राष्ट्रीय सम्पन्नता बढ़ाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। इसके लिए उसने देश के वाणिज्य एवं व्यापार को बढ़ावा देने की कोशिश की तथा उसके लिए रिचर्ड द्वितीय और एडवर्ड चतुर्थ के समय के बने हुए नाविक कानूनों को लागू किया। इस कानून के अन्तर्गत यह निश्चित कर दिया गया कि विदेशी व्यापार के लिए केवल अंग्रेजी जहाजों का ही उपयोग किया जायेगा । विशेष रूप से गास्कनी की सम्पूर्ण शराब अंग्रेजी जहाजों द्वारा ही लाई जायेगी ।

हेनरी सप्तम ने देश के व्यापार को बढ़ावा देने के लिए अन्तराष्ट्रीय व्यापारिक संबंध कायम करने की नीति भी अपनाई। डेनमार्क के साथ की गई एक संधि के फलस्वरूप इंग्लैंड का व्यापार स्केण्डिनेविया और आइसलैंड से भी होने लगा। एक संधि के रीगा से भी की गयी, जिसके द्वारा इंग्लैंड के व्यापारियों को बाल्टिक सागर में भी अपना व्यापार फैलाने का अधिकार प्राप्त हो गया । इटली से भी व्यापारिक संधि स्थापित की गई। इन व्यापारिक संधियों से इंग्लैंड का व्यापार काफी विकसित हुआ तथा राष्ट्रीय आय में आशातित बृद्धि हुई । वास्तव में हेनरी सप्तम इंग्लैंड के व्यापार को अन्य यूरोपीय देशों की तरह समृद्ध देखना चाहता था। जैसा कि थ्तंबदपे ठंबवद ने भी लिखा है कि ''भ्म बवनसक दवज मदकनतम जव`मम जतंकम`पकम." अतः हेनरी सप्तम के प्रयत्नों के फलस्वरूप इंग्लैंड का वाणिजय एवं व्यापार चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया । राज्यारोहरण के तुरंत बाद ही उसने छंअपहंजपवद ।बजे पास करके अंग्रेजी जहाज उद्योग को बढ़ावा दिया। बड़े–बड़े व्यापारिक जहाजों एवं बन्दरगाहों का निर्माण किया गया। अब अंग्रेजी जहाज स्वयं गास्कनो से शराब लाने लगी। इसके पूर्व इंग्लैंड का व्यापार विदेशी जहाजों के द्वारा ही होता था ।

1496 में डंहदने प्दजमत ब्नतवने ज्तमंजल के द्वारा नीदरलैंड के बीच व्यवसाय

पर से प्रतिबंध हटा दिया गया। बर्गन्डी के फिलिप से भी व्यापारिक संधि कर हेनरी सप्तम ने इंग्लैंड के व्यापार को प्रोत्साहन किया । हेनरी सप्तम ने अच्छी धातुओं के सिक्के का प्रचलन कर देश के व्यापार को भी समुन्नत बनाने में यथेष्ट योग दिया। उसके द्वारा सामुद्रिक शक्ति को बढ़ावा दिये जाने के फलस्वरूप एलिजाबेथ के शासन काल तक आते–आते इंग्लैंड न केवल यूरोप का वरन् सम्पूर्ण विश्व का सबसे बड़ा सामुद्रिक शक्ति सम्पन्न राष्ट्र गिना जाने लगा।

5. भौगोलिक खोज– हेनरी सप्तम के समय में अनेकानेक भौगोलिक खोजें भी हुई। कोलम्बस ने अमेरिका, जॉन कैवट ने न्यूफाउण्डलैंड तथा वास्कोडिगामा ने भारत के नवीन मार्ग का पता लगाया । हेनरी सप्तम ने इन सामुद्रिक खोजों को प्रोत्साहन दिया, जिससे आगे चलकर नये–नये देशों की स्थापना संभव हो सकी। इसने विस्तृत रूप धारण कर लिया। कहा जाता है कि एलिजाबेथ के राज्य में सूर्यास्त होता ही नहीं था । इस तरह हेनरी सप्तम के प्रयासों से इंग्लैंड के राष्ट्रीय गौरव में बृद्धि हुई।

6.

–

छापाखाना का आविष्कार– हेनरी सप्तम के शासन काल में ही इंग्लैंड में छापेखाने का आविष्कार हुआ, जिससे शिक्षा के प्रचार–प्रसार में बहुत मदद मिली। लोगों में एक नयी सभ्यता का जन्म हुआ एवं व्यक्तिवाद को प्रश्रय मिला। छापेखाने के आविष्कार से इंग्लैंड में बौद्धिक क्रांति का सूत्रपात हुआ और लोग एक–दूसरे के विचारों से अवगत हुए और राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई ।

7. राष्ट्रीयता का उदय– हेनरी सप्तम शासन – काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता राष्ट्रीयता का उदय भी है। सामंतवाद के पतन के कारण शक्तिशाली साम्राज्यों का उदय हुआ । सम्पूर्ण यूरोप में राष्ट्रीयता की लहर उद्वेलित हुई। लुई 16वें ने फ्रांस की सृष्टि की। फर्डीनेंड और इजाबेल के विवाह के द्वारा स्पेन का जन्म हुआ। इंग्लैंड, फ्रांस तथा स्पेन में प्राचीन विश्वास प्राचीन साहित्य, पोपकालीन प्राचीन परम्परायें और मध्यकालीन साम्राज्य सभी का एक ओर से अंत हो गया और राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ। सामन्तों की शक्ति क्षीण हो जाने कारण इंग्लैंड में शक्तिशाली राजतंत्र की स्थापना हुई।

8.

हेनरी और संसद – हेनरी सप्तम ने ट्यूडर वंश की स्वच्छंदता की नींव भी डाली। उसे संसद को बुलाना पसंद नहीं था । उसने अपने 24 वर्षीय शासन – काल के प्रथम 11 वर्षों में केवल 6 बार तथा शेष 13 वर्षों में केवल एक बार संसद बुलायी ।

9. हेनरी की विदेश नीति– हेनरी सप्तम की विदेश नीति का मुख्य आधार यूरोप के विभिन्न राज्यों द्वारा ट्यूडर वंश को मान्यता दिलाना था । किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह धन के अपव्यय एवं यथासंभव युद्ध से वचना चाहता था।

इकाई 6
पवित्र रोमन साम्राज्य एवं चार्ल्स

1. चार्ल्स प्रथम के समय स्पेन की विदेश नीति कैसी थी ? 2. चार्ल्स ने अपने साम्राज्य का विभाजन क्यों किया?

अपनी शांतिप्रियता का परिचय देते हुए हेनरी सप्तम ने विदेशों से युद्ध नहीं के बराबर किया और अपने राजकोष को सुरक्षित रखा। उसके कुशल वैदेशिक नीति के फलस्वरूप यूरोप भर में इंग्लैंड की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गया तथा यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्र इंग्लैंड की मित्रता के लिए तरसने लगे । वस्तुतः हेनरी सप्तम ने अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर इंग्लैंड को उन्नति के प्रत्येक क्षेत्र में उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया।हेनरी सप्तम का मूल्यांकन– इंग्लैंड की गद्दीपर लगातार 24 वर्षों (1484–1509)तक सफल शासन करने के पश्चात् 21अप्रैल 1509 को हेनरी सप्तम ने अपनीजीवन लीला समाप्त की । किन्तु इंग्लैंड की जनता उनके कृत्यों का कदापिनहीं भूल सकती। उनका शासन– काल न केवल यूरोप वरन् विश्व इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा और शासकगण उनकी नीतियों से अनुप्रेरित होते रहेंगे।अपनी उपलब्धियों के कारण हेनरी सप्तम की तुलना मध्य युग के महान शासकहेनरी द्वितीय और एडवर्डप्रथम के साथ की जाती है। ट्यूडर वंश के संस्थापकके रूप में उसने केवल अपने वंश के अधिकार को इंग्लैंड की गद्दी पर सुरक्षितकिया तथा अपने राज्य कोष को समृद्ध बनाया वरन् आम नागरिकों को भीशांति एवं समृद्धि प्रदान की । अतः अनेक विद्वानों की मान्यता है कि हेनरीसप्तम ने नवीन राजतंत्र की स्थापना की थी। उनका मत है कि हेनरी सप्तम ने

अशांति, युद्ध और दुर्व्यवस्था को समाप्त कर नये राजनीतिक सिद्धान्तों को जन्म दिया। हेनरी सप्तम अपने लक्ष्य में स्पष्ट और शक्तिशाली था, जिसका अपने शासन में उन्होंने बखूबी प्रयोग किया । इतिहासकार बेकन ने भी लिखा है कि '' जो वह समझता था, वह उसने किया'' (ॅंज ीम उपदकमक ीम मदबवउचेंमक)

हेनरी अष्टम की विदेश नीति और उसके परिणामों का वर्णन

ट्यूडर वंश के संस्थापक हेनरी सप्तम के निधनोपरांत उसका छोटा पुत्र 1509 ई० में हेनरी अष्टम के नाम से इंग्लैंड के सिंहासन पर आसीन हुआ। 18 वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ होने के साथ ही हेनरी अष्टम ने यूरोप की राजनीति में इंग्लैंड की प्रतिष्ठा कायम करने की नीति पर बल देना शुरू किया, क्योंकि इन दिनों यूरोप की राजनीति शक्तिशाली राज्यों की प्रतिस्पर्धा पर आधारित थी और हेनरी उस प्रतिस्पर्धा में शामिल होकर अपनी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने के लिए उत्सुक था। अतः हेनरी ने अपनी विदेश नीति का मुख्य लक्ष्य यूरोप में अपनी प्रतिष्ठा कायम करना निर्धारित किया ।

किन्तु हेनरी अष्टम की विदेश नीति चक्र इसके शासन काल की वह धुरी है जो उसके चांसलर (प्रधानमंत्री) बुल्जे की देख–रेख में क्रियान्वित होता रहा । पूर्वी एंगलि के एक धनवान व्यापारी का पुत्र थामस बूल्जे ने 1509 ई० में पादरी का पद प्राप्त किया, 1511 ई० में वह प्रोवी कौंसघाट बनाया गया तथा 1512 में यार्क का आक्रबिशप का पद – भार सम्हाला, अगले वर्ष ही वह इंग्लैंड का चांसलर बन बैठा। पोप ने उसे कैथोलिक चर्च का कार्डिनल भी नियुक्त किया। इस तरह 1515 ई० तक आते–आते बूजे राजनीतिक एवं धार्मिक दोनों ही सत्ताओं का उपभोग करने लगा । किन्तु उसका ध्यान धार्मिक क्षेत्र से अधिक इंग्लैंड की विदेश नीति का संचालन बूल्जे ने ही किया । चान्सलर की दृष्टि से वह सम्पूर्ण शासन की देखभाल करता था। बहुत हद तक राजा के अधिकांश दायित्वों का निर्वाह वही करता था । कोर्ट ऑफ स्टार चौम्बर और प्रार्थना न्यायालय में वह स्वयं न्यायाधीश की भूमिका अदा करता था । संभवतः बूल्जे से पहले और बूल्जे के पश्चात् किसी भी चांसलर ने इतनी अधिक सत्ता का उपयोग नहीं किया जितना कि उसने । यही कारण है कि इंग्लैंड के इतिहास में हेनरी अष्टम के शासनकाल को बूल्जे – काल के नाम से भी स्मरण किया जाता है और बूल्जे की विदेश नीति ही प्रायः हेनरी अष्टम की विदेश नीति भी कहलाती है।

वस्तुतः 16वीं शताब्दी की राजनीति में बूल्जे शीर्षस्थ स्थान रखता है। कई दृ ष्टियों से वह तत्कालीन राजनीति का नियामक तथा प्रमुख प्रेरक बन बैठा था । इंग्लैंड के इतिहास में वह पहला राजनीतिज्ञ हुआ जिसने यूरोप की राजनीति को अपने पूर्ण नियंत्रण रखने में पूर्ण हैं, जब हम तत्कालीन राजनीति की पृष्ठभूमि में उसके कार्यों का लेखा–जोखा करें। प्रश्न उठता है कि तत्कालीन राजनीति की क्या विशेषताएँ थी ?

प्रो. मार्टिन ने इस संबंध में अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि मध्‍ ययुगीन धर्म प्रधान राजनीति के साथ–साथ राष्ट्रीय भावनाओं का पुनर्जागरण

तत्कालीन राजनीति की प्रमुख विशेषताएँ थीं और इस तरह की राजनीति का प्रमुख केन्द्र उन दिनों इटली था। दुर्भाग्यवश तत्कालीन राजनीति में इंग्लैंड का इटली के साथ कोई सीधा सम्पर्क नहीं था और दोनों देशों के मध्य कोई स्वार्थ भी सान्निहत न था । अतः यूरोप की राजनीति में इंग्लैंड का महत्व प्रभावहीन था। लेकिन बूल्जे ने तत्कालीन राजनीति का केंन्द्र–स्थल इटली के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर इग्लैंड की महत्ता को प्रकाश में लाने का भरपूर प्रयास किया । इस दिशा में सतत् प्रयत्नशील रहने के कारण अपने शासन के 14वें वर्ष की अवधि में बुल्जे ने इंग्लैंड को महत्व की सफलता के शिखर पर पहुँचा कर यह प्रमाणित कर दिया कि वह एक विशिष्ट कोटि का राजनीतिज्ञ था। एक राजदूत ने उसके संबंध में कितना ठीक लिखा था कि ″भ्मतम पे ं चमतेवद ़ीव तनसमे इवजीम ायदह ंदक जीम मदजपतम ायदहकवउ″.

एक अत्यन्त साधारण परिवार में जन्म लेकर बूल्जे एक ऐतिहासिक पुरुष बन बैठा। उसके पिता एक साधारण व्यापारी थे। फ्रांसीसी युद्ध के द्वितीय मुहिम में उसने अपूर्व दूरदर्शिता और चातुर्य का परिचय दिया था। जिससे हेनरी अष्टम बरबस ही उसकी ओर आकृष्ट हो गया। इस तरह देखते–ही–देखते बूल्जे साध ाारण पद से चांसलर के पद पर जा बैठा। 1516 ई० तक आते–आते वह न केवल हेनरी अष्टम का प्रमुख सलाहकार था, बल्कि चर्च का कार्डिनल, पोप का लिगेट, चर्च का यार्कविशप पर भी सुशोभित हो गया था।

यूरोप के वैदेशिक क्षेत्र में उसकी सबसे बड़ी देन शक्ति–संतुलन के सिद्धान्त का निरूपण करना था और शक्ति–संतुलन के सिद्धान्त में इंग्लैंड को विशिष्ट दर्जा दिलाने की उसने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। तत्कालीन यूरोपीय राजनीति में प्रशा और स्पेन शक्ति – संपन्न राजतंत्र के अभ्युदय से एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी । यदि उन दोनों में एक–दूसरे को पराजित कर उसे अपने अधीन कर लेता तो विजेता देश सर्वशक्ति– संपन्न बन जाता और इंग्लैंड की स्थिति नाजुक बन जाती। ऐसी स्थिति में बूल्जे ने इंग्लैंड के स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए यह घोषणा की, इंग्लैंड यूरोप के युद्धों से अलग रहेगा, इतना ही नहीं युद्ध में तटस्थता की नीति के अवलम्बन के साथ–साथ उसने यह भी कहा कि यूरोपीय देश के बीच संप्रभुता की प्राप्ति के लिए संघर्ष में इंग्लैंड पैसा का माप करेगा।

अपने अधिकारयुक्त होने के समय बूल्जे ने पाया कि इंग्लैंड के शासक हेनरी अष्टम ने स्पेन तथा रोम के पोप के साथ संधि कर ली थी और गाइनी पर अंग्रेजी के प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से फ्रांस के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया था। बूल्जे ने शक्ति–संतुलन के सिद्धान्त के परिपोषण के लिए अविलम्ब घोषणा की कि किसी भी तरह के भू–खण्ड की प्राप्ति के लिए इंग्लेण्ड युद्ध नहीं करेगा । उसने तत्काल पवित्र – संघ से इंग्लैण्ड को बहार निकाल लिया और फ्रांस के साथ संधि कर ली। इस सधि को और भी सशक्त बनाने के लिए बूल्जे ने हेनरी अष्टम की सबसे छोटी 17 वर्षीय बहन मेरी की शादी फ्रांस के 52 वर्षीय सम्राट लुई 12वें से कर दी। उस समय से फ्रांस से

मित्रता और स्पेन से शत्रुता की नीति का बीज पड़ा, यद्यपि स्वयं बुल्जे का स्पेन के प्रति स्थाई कटुता का कोई विचार न था । फ्रांस की मित्रता से इंग्लैंड का यूरोपीय राजनीति में प्रभाव स्पष्ट हो चला। किन्तु बुल्जे द्वारा फ्रांस के साथ की गई वैवाहिक संधि का महत्व लुई 12वें की 1515 ई० में मृत्यु के साथ शीघ्र ही समाप्त हो गया, जो भी हो, किन्तु कई इतिहासकारों ने बुल्जे की इस नीति को सफल कूटनीति का उदाहरण माना है। प्रो. मार्टिन ने भी बुल्जे की इस नीति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

वस्तुतः बुल्जे की नीति का सही मूल्यांकन कई शताब्दियों के पश्चात् हो सका है तत्काल तो यह कूटनीति का भ्रम – जाल ही माना गया। कुछ इतिहासकारों ने इस नीति के लिए बुल्जे की कटु आलोचना भी की है और कहा है कि बुल्जे अस्थिरता तथा अवसरवादिता का मूर्व रूप था । होली लीग से इंग्लैंड के हाथ खींचकर उसने फ्रांस के साथ संधि कर घोर अवसरवादिता का परिचय दिया। लेकिन यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि शक्ति–संतुलन के लिए बुल्जे की यूरोप को राजनीति में किसी खूँटे में बाँधकर रखना भी ठीक नहीं था। ट्रेवलीन ने ठीक ही लिखा है कि "यदि बुल्जे किसी तरह खूँट में बँधकर रहता तो वह किसी का पिछलग्गु ही बन सकता था, किन्तु निर्णायक स्थान कभी नहीं प्राप्त कर सकता था ''

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

60

वस्तुतः बुल्जे स्पेन और फ्रांस के बीच में इंग्लैंड को एक ढोलक की भाँति रखना चाहता था, किन्तु संकट की बेला में उसका झुकाव स्पेन की अपेक्षा फ्रांस की ओर ही अधिक था।

नवयौवना मेरी की शादी बूढ़े लुई के साथ कर बुल्जे इंग्लैंड और फ्रांस के धागे को मजबूत बनाना चाहता था, लेकिन 1515 ई० में लूई एकाएक काल कवलित हो गया और बुल्ज की कूटनीतिज्ञता पुनः एक बार खराद पर चढ़ गयी । लुई के उत्तराधिकारी फ्रांसीसी प्रथम ने मिलौन को प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही युद्ध प्रारम्भ कर दिया और एक बार पुनः यूरोप को फ्रांस की बढ़ती हुई शक्ति से भय हो गया। बुल्जे ने संभावित संकट को टालने के लिए बड़ी चापलूसी से हेनरी अष्टम की पुत्री का विवाह फ्रांस के शहजादे डौफिन के साथ कराने का निर्णय किया, उसी समय कुल्जे ने एक और सफलता अर्जित की। टर्की के आक्रमण का मुकाबला करने के लिए उसने लंदन में आयोजित एक सभा में एक सार्वजनिक शांति पर सम्मति कराई, जिसमें पोप, आस्ट्रिया, फ्रांस स्पेन और स्कॉटलैंड सम्मिलित थे। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि इंग्लैंड यूरोप की

राजनीति का निर्णायक बन गया था।

1519 में जब फ्रांसिस और चार्ल्स द्वितीय के बीच भ्वसल त्वउंद मउचपतम के प्रधान होने के दावे को लेकर संघर्ष छिड़ा तो बुल्जे ने तटस्थता की नीति का अवलम्बन किया ओर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि दोनों ही युद्धरत राष्ट्र ऐसा सोचते थे इंग्लैंड जिसे सहानुभूति देगा वही पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रध ाान बन सकेगा।

1

1522 ई० में जब यूरोप की राजनीति ने करवट ली और फ्रांसीसी शासक ने साम्राज्य विस्तार की नीति का अवलम्बन किया तो बुल्जे ने शक्ति–संतुलन के सिद्धान्त की सुरक्षा के लिए स्पेन की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए तत्काल स्पेन का साथ देना छोड़ दिया और फ्रांस के साथ नए सिरे से दोस्ती कर ली।

किन्तु राजनीति में जिस प्रखरता के साथ उसने तत्कालीन द्वन्द्वों का इंग्लैंड के हित में समाधान किया, धर्म के क्षेत्र में उसकी प्रखरता कुछ भी काम न कर सकी। बुल्जे की कूटनीतिज्ञता इस क्षेत्र में घातक सिद्ध हुई और उसके पतन का सर्वाधिक जिम्मेदार कारण सिद्ध हुआ ।

बुल्जे की नीति का मूल्यांकन– बुल्जे अत्यन्त महत्वाकांक्षी एवं स्वप्नदर्शी व्यक्ति था । उसकी अभिलाषाओं का कोई अन्त नहीं था। वह जीवनभर रोम के पद पर प्रतिस्थापित होने का स्वप्न देखता रहा और अंततः उसकी इस अभिलाषा ने उसे पतन के गर्त में ढकेल दिया 1527 ई० में हेनरी ने अपनी पत्नी कैथराइन तलाक देना चाहता और पोप से इसकी स्वीकृति मागी । इस समय कुल्जे बड़ा ही असमंजस में पड़ गया। यदि वह अपने शासक हेनरी अष्टम के पक्ष में अपनी राय देना चाहता तो भ्वसल त्वउंद मउचपतम उसके विरोधी हो जाते थे और उसके पोप बनने में रोड़े अटकाते और दूसरी ओर यदि वह तलाक की सहमति नहीं देता तो हेनरी अष्टम उससे रुष्ट होकर उसे पदच्युत भी कर सकता था। अब तक के राजनीतिक जीवन में बुल्जे घोर से घोर एवं जटिल समस्याओं के समाधान में सफल होता आया था, किन्तु अब ऐसी समस्या के फेर में पड़ गया जिसका निदान उसके पास बिल्कुल नहीं था। वह समस्या का तत्काल कोई समाधान न ढूँढ कर समय लेता गया। लेकिन उसकी इस कच्छप नीति ने उसके शासक को क्षुब्ध कर दिया। हेनरी अष्टम को यह बर्दाश्त न हो सका कि उसका सेवक जिससे उसने धूल

से उठाकर चांसलर जैसे महत्वपूर्ण पद आसीन कर दिया था, उसकी साधारण माँग के प्रति इस तरह आँखें मूँद लें। उसने तत्काल ही बुल्जे को पदच्युत कर दिया और उसकी सारी संपत्ति जब्त कर ली। उसे देश–द्रोही घोषित कर कैद कर लिया गया और टाबर में बन्द कर दिया गया। हेनरी अष्टम के क्रोध की परिणति संभवतः बुंल्जे की हत्या में होती, लेकिन सौभाग्यवश इस घटना से पहले ही उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई।

बुल्जे की मृत्यु से जनता में कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई, क्योंकि अपने

राजनीतिक जीवन में सफलताओं की कई सीढ़ियाँ चढ़ने के बावजूद वह जन – सामान्य में लोकप्रिय नहीं था। क्योंकि वह तो निरंकुश शासन का पक्षधर रहा था। एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है कि ''वसेमल ें मिंत इल ंसस. सवअमक इल मि ू ए उंल ेल, इल दव इवकल.''

किन्तु जनता के बीच लोकप्रिय न होने के बावजूद भी इंग्लैंड के इतिहास में बुल्जे को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वस्तुतः उसने एक ऐसी नीति की नींव डाली जिस पर भविष्य में इंग्लैंड की वैदेशिक नीति के भवन का निर्माण हो सका। साथ में वह अंतिम चर्च राजनीतिज्ञ हुआ जिसने शासन में इतनी अधिक शक्ति का उपभोग किया।

वस्तुतः बुल्जे की सफलता राष्ट्रीय न होकर व्यक्तिगत थी । उसकी नीति राष्ट्रीय हित पर आधारित थी । उसकी स्वार्थपरता के कारण इंग्लैंड की आर्थिक स्थिति दिनोदिन खराब होती चली गयी। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि बुल्जे की नीति चाहे व्यक्तिगत स्वार्थ पर आधारित हो और चाहे उससे किसी राष्ट्रीय हित की सुरक्षा तत्काल न हो पाई हो, लेकिन इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि उसकी नीतियों के फलस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप में इंग्लैंड का मस्तक ऊँचा हो गया। बुल्जे से पूर्व यूरोप की राजनीति में इंग्लैंड को कोई महत्व न था और स्पेन, फ्रांस तथा आस्ट्रिया जैसे शक्तिशाली राज्य या तो इंग्लैंड की पूर्ति के लिए एक साधन मात्र मानते थे । किन्तु यूरोपीय राजनीति में बुल्जे के हस्तक्षेप के फलस्वरूप इंग्लैंड भी एक सक्रिय राज्य के रूप में अपने को स्थापित कर लिया और अब यूरोपीय राजनीति में इंग्लैंड को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कराया और उसकी प्रतिष्ठा में अपूर्व वृद्धि की। इतना ही नहीं, इंग्लैंड में कूटनीति के दाँव–पेंचों को आरंभ करने का श्रेय बुल्जे को ही प्राप्त है।

महारानी एलिजाबेथ की गृह एवं वैदशिक नीति

एलिजाबेथ अपने पिता हेनरी अष्टम के समान साहसी दृढ़ प्रतिज्ञ, दूरदर्शी एवं दृढ़ निश्चय वाली शासिका थी। इंग्लैंड की गद्दी पर उसका राज्यारोहरण अत्यन्त ही विषम परिस्थितियों में 17 नवम्बर, 1558 ई० में मेरीट्यूर के निधनोपरांत हुआ था। उसके राज्यारोहरण के समय इंग्लैंड का राज – कोष रिक्त था, मुद्रा का मूल्य कम हो गया था, महँगाई जोरो पर थी, बेकारी और निर्धनता की सीमाएँ विकट हो गयी थीं, इंग्लैड की सेना निर्बल हो चुकी थी, उसकी नाभिक सेना नाममात्र की थी, इंग्लैंड में कैथोलिक प्रोटेस्टेन्ट धर्माविलम्बियाँ के बीच गहरा मतभेद था, यूरोप में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के विरुद्ध चल रहे ब्वनदजमत तमवितउंजपवद एलिजाबेथ के साम्राज्य के लिए संकट बना हुआ था, परन्तु इन तमाम समस्याओं के बावजूद एलिजाबेथ का हृदय तनिक भी विचलित न हुआ और अपनी योग्यता एवं दूरदिर्शता के बल पर उन समस्त विषम समस्याओं को रौंदते हुए वह लगभग 45 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन करने में सफल रही। उनकी इन सफलताओं के चलते इंग्लैंड महान राष्ट्र के रूप में सम्पूर्ण यूरोप में प्रतिष्ठित हो सका, जिसके कारण उसका शासन काल 1558– 1630 ई०

इंग्लैण्ड के इतिहास का स्वर्ण काल कहलाया ।

,

एलिजाबेथ, अपने पिता हेनरी अष्टम के समान साहसी, दृढ़ प्रतिज्ञ, दूरदर्शी एवं दृढ़ निश्चय शासिका थी । इंग्लैंड की गद्दी पर उसका राज्यारोहण अत्यन्त ही विषम परिस्थितियों में 17 नबम्बर 1558 में मेरीट्यूर के निधनोपरांत हुआ था । उसका राज्यारोहण के समय इंग्लैंड का राज – कोष रिक्त था, मुद्रा का मूल्य कम हो गया था, महँगाई जोरों पर थी, बेकारी और निर्धनता की सीमाएँ विकट हो गयी थीं, इंगलैंड की सेना निर्बल हो चुकी थी । उसकी नाभिक सेना नाममात्र की थी, इंग्लैंड में कैथोलिक प्रोटेस्टेंट धर्मावलिम्बयों के बीच गहरा मतभेद था, यूरोप में प्रोटेस्टेंट धर्म के विरुद्ध चल रहे ब्वनदजमत तमवितउंजपवद एलिजाबेथ के साम्राज्य के लिए संकट बना हुआ था। परंतु इन तमाम समस्याओं के बावजूद एलिजाबेथ का हृदय तनिक भी विचलित न हुआ और अपनी योग्यता एवं दूरदर्शिता के बल पर उन समस्त विषम समस्याओं को रौंदते हुए वह लगभग 45 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन करने में सफल रही। उनकी इन सफलताओं के चलते इंग्लैंड महान राष्ट्र के रूप में सम्पूर्ण यूरोप में प्रतिष्ठित हो सका जिसके कारण उसका शासन – काल (1558–1630) इंग्लैंड के इतिहास का स्वर्ण काल कहलाया ।

वस्तुतः एलिजाबेथ का युग आन्तरिक एवं बाह्य क्षेत्रों में प्रभूत उपलब्धियों का उसी प्रकार स्वर्ण–युग था जिस प्रकार पेटिक्लीज का युग यूनान के इतिहास में स्वर्ण युग था । दुश्चरित्र होते हुए भी एलिजाबेथ जनसामान्य में इतनी अधि ाक लोकप्रिय थी कि सम्पूर्ण इंगलैंड उस पर अपना प्राण न्योछावर करने को तत्पर थी। वास्तव में रानी एलिजाबेथ व्यक्तिगत दृष्टि से दुश्चरित्र होते हुए भी महान थी, और इंगलैंड की एकता और शक्ति का प्रमुख स्रोत थी।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

61

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

,

एलिजाबेथ की गृह नीति की सफलता देश के रक्षा एवं प्रजा की भलाई के लिए एलिजाबेथ सदैव प्रयत्नशील रहती थी, अपनी प्रजा की भलाई के लिए वह कुछ भी कर सकती थी। इस प्रसंग में उसने एक दिन संसद भवन में भाषण देते हुए स्वयं कहा भी था कि '' छवजीपदही दव ूवतसकसल जीपदह नदकमत जीम ेनउ पे ेव कमंत जव उम ेंजीम सवअम ंदक हववक ूपसस व िउल ेनइरमबज '' गरीबों को सुविधाएँ एवं बेकारों को काम देना वह अपना प्रमुख कर्तव्य समझती थी। फलस्वरूप देश की जनता का उसके पक्ष में होना स्वाभाविक ही था। अतः

उसकी आन्तरिक सफलता की दृष्टि से उसके शासन काल को स्वर्ण युग की संज्ञा से विभूबित करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

एलिजाबेथ की विदेश नीति की सफलता – अपनी आन्तरिक नीतियों की भाँति महारानी एलिजाबेथ अपनी विदेश नीति में बहुत हद तक सफल रही। उसने रोम से संबंध–विच्छेद कर एलिग्लकन चर्च की स्थापना की, जिसके द्वारा उसने इंग्लैंड को धार्मिक कलहों से मुक्त कराया। पुराने शत्रु फ्रांस और स्कॉटलैंड के साथ नवीन संबंध कायम कर एलिजाबेथ ने उनसे मित्रता स्थापित की। जैम्स को इंग्लैंड की गद्दी का उत्तराधिकारी नियुक्त कर उसने कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों धर्मावलंबियों का क्रोध शांत किया। सर्वोपरि उसके आमंडा विजय ने संपूर्ण यूरोप में इंग्लैंड को प्रतिष्ठित कर दिया। इस तरह हम कह सकते हैं कि एलिजाबेथ ने अपनी कुशल वैदेशिक नीतियों के द्वारा इंग्लैंड को केवल आपत्तियों से ही नहीं बचाया, अपितु उसे महान भी बनाया । इतिहासकार डंपत ने ठीक कहा है कि ˝पजी ीमत मदकमक जीम सवदह ंहमे व िपेसंदक ीपेजतवतल पद ˙ इस्रंम व िहिसवतल˝

एलिजाबेथ की डंबीपंअमससपंद विदेश नीति के परिणाम आपत्तियों के बादल शनैः–शनैः घटते गये और इंग्लैंड का राज्य संवेग महानता की ओर बढ़ता गया । वस्तुतः उसकी वैदेशिक नीति हर क्षेत्र में सफल रही । उसका लक्ष्य अपनी जनता की इच्छा को समझाकर उसे पूरा करना था। उसने दोनों के कार्यों का सफलतापूर्वक समाधान किया। अतः इंग्लैंड के इतिहास में एलिजाबेथ का शासन स्वर्णकाल के नाम से प्रख्यात है।

यद्यपि इंग्लैंड के चतुर्दिक विकास के लिए महारानी एलिजाबेथ ने कई प्रशंसनीय कदम उठाये, किन्तु उनके महान कार्यों में इंग्लैंड की नौशक्ति का विस्तार, साहित्य की अद्वितीय उन्नति और धार्मिक निर्णय के द्वारा ऐंग्लकन चर्च की सभ्यता आदि प्रमुख थे। रानी एलिजाबेथ के शासन काल की निम्नलिखित विशेषताओं के कारण शासन – काल इंग्लैंड के इतिहास में स्वर्ण – काल के नाम से प्रख्यात है।

1. धार्मिक निर्णय– एलिजाबेथ ने अपने योग्य मंत्री सेंसिल की सहायता से इंग्लैंड से धार्मिक कलह को दूर करने के लिए संसद की स्वीकृति से महत्वपूर्ण धार्मिक निर्णय किया। इस निर्णय में उसने मध्यम मार्ग की नीति अपनाई जो भविष्य में स्थायी सिद्ध हुई । इस निर्णय के द्वारा उसने अपने राज्य प्रोटेस्टेंट तथा कैथोलिक दोनों को संतुष्ट किया । इस निर्णय के द्वारा संसद ने मुरी ट्यूडर के सभी धार्मिक कानूनों समाप्त कर दिया। सर्वोच्चता कानून को पुनः पारित किया गया। एडवर्ड के समय के 42 धाराओं के धार्मिक कानून में से 3 धाराएँ हटा दी गईं और 39 धाराओं को यथावत लागू किया गया। बाईबिल, प्रार्थना और उपदेशों को अंग्रेजी में पढ़ने की आज्ञा की गई, आदि ।

एलिजाबेथ का उपयुक्त धार्मिक निर्णय अत्यंत सफल रहा। इस धार्मिक समझौते के आधार पर उसने एक एलिंगन चर्च की स्थापना की, जिसे इंग्लैंड की जनता ने अंगीकार कर दिया और इस प्रकार वर्षों से चले आ रहे धार्मिक कलहों से

इंग्लैंड को मुक्ति मिल गई ।

एलिजाबेथ के समय में यूरोप में प्रोटेस्टेंट धर्म और धर्म–सुधार के विरोध में ब्वनदजमत त्मवितउंजपवद नामक एक प्रबल आंदोलन का सूत्रपात हुआ, जिसका उद्देश्य प्रोटेस्टेंट धर्म विरोध और कैथोलिक धर्म का प्रचार करना था । किन्तु इतने विरोधों के बावजूद एलिजाबेथ ने कैथोलिक बनना स्वीकार नहीं किया और अपनी दक्ष कूटनीति एवं राजनीति के बल पर वह फ्रांस, स्कॉटलैंड, स्पेन आदि विरोधी शक्तियों से ब्वनदजमत त्मवितउंजपवद के प्रश्न को लेकर एक लम्बे अरसे तक संघर्ष करती रही । अतः इतिहासकारों ने ठीक ही कहा है कि–

"म्सप्रंइमजीे तमपहद पे वदम सवदह `जतनहहसम ंहंपदेज जीम वितबमे वि बवनदजमत–तमवितउंजपवद"

2. भूमि सुधार – एलिजाबेथ के शासन काल में कृषि को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला । आधुनिक तरीकों से बड़े फार्मों पर कृषि – कार्य प्रारम्भ हुआ, जिससे देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो गया। इसके पूर्व इंग्लैंड में कृषि संबंधी सुधार इतने व्यापक पैमाने पर नहीं किय गए थे।

3. औद्योगिक प्रगति – एलिजाबेथ के समय में इंग्लैंड के व्यापार एवं उद्योग की काफी प्रगति हुई । उद्योगों को विकसित करने के लिए उसने विभिनन व्यक्तियों और कम्पनियों को एकाधिपत्य देने की नीति अपनाई। अनेक कल–कारखानों खोलें गये जिससे बेकारों को आश्रय प्राप्त हुआ। साथ ही उसके शासन काल में रूस, लीवान्त, पूर्वी यूरोप और भारत से व्यापार करने लिए विभिन्न कम्पनियों को व्यापारिक एकाधिपत्य प्रदान किये गये । फलस्वरूप इंग्लैंड का वाणिज्य एवं व्यवसाय चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया और राष्ट्रीय गौरव में भी वृद्धि हुई ।

4.

सामाजिक सुधार – बड़े फार्मों पर आधुनिक पद्धति से कृषि कार्य होने एवं पशुपालन में वृद्धि होने से देश में 'बेकारी की समस्य काफी बढ़ गयी । उसके पूर्व के शासकों ने बेकारी की समस्या के समाधान के लिए असफल प्रयत्न भी किये थे लेकिन एलिजाबेथ के योग्य मंत्री सेसिल ने गंभीरता से इन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया ।

सन् 1563 ई० में `जंजनतम वि ।तजपपिबमते बनाया गया जिसके अनुसार यह तय किया गया कि देश के प्रत्येक मजदूर को कम–से–कम एक वर्ष तक नौकरी पर रखा जागए। और छुट्टी पाने के समय सभी मजदूरों को उनके कार्य संबंधी प्रमाण पत्र दिये जायेंगे । न्यायाधीशों के द्वारा विभिन्न उद्योगों में लगे हुए मजदूरों का वेतन निश्चित किया गया।

5. साहित्यिक प्रगति – सर्वोपरि " जीम चमतपवक वि म्सप्रंइमजीे जीम क्रंसपदह वनजइनतेज वि हितमंज सपजमतंजनतम" अतः इंग्लैंड की एलिजाबेथ के शासन काल की एक महत्वपूर्ण देन अंग्रेजी साहित्य की प्रगति है। उसके समय में इंग्लैंड में अनेक कवि, लेखक, नाटककार आदि हुए जिन्होंने अपनी लेखनी से वहाँ के साहित्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। रानी स्वयं अंगेजी, फ्रेंज,

इटेलियन, जर्मन आदि भाषाओं की पूर्ण ज्ञाता थी, अतः उसने विद्वानों को पूर्ण सम्मान एवं संरक्षण प्रदान किया। इस कारण उसके समय की एक महान् विशेषता अंग्रेजी साहित्य और उसमें मुख्यतया पद्य की प्रगति थी। चौंसट की मृत्यु के पश्चात् 200 वर्षों तक इंग्लैंड में काव्य–क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हो सकी थी। लेकिन एलिजाबेथ के शासन काल के प्रारंभिक 20 वर्षों के बाद इंग्लैंड में साहित्यिक रचनाओं की बाढ़ आ गयी । विलियम शेक्सपीयर जैसे प्रसिद्ध नाटककार एवं कुशल कवि ने भी इसी काल में अपनी सदाबहार रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उनकी रचनाएँ प्रत्येक युग के लिए एक समान रूप से उपयोगी हैं। इन्हीं के तरह के अन्य नाटककारों में व्युपोट और किलास्टर बहुत प्रसिद्ध थे बेन जॉन्सन शेक्सपीयर का प्रतिद्वन्द्वी नाटककार था।

इसके अतिरिक्त स्पेन्सर, लिलि, नौर्थ फिलिप, सिडनी, ग्रीन, पी, बटबीज तथा लौज जैसे प्रसिद्ध कविता लेखक तथा नाटककार भी एलिजाबेथ के शासन काल में ही अपनी–अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर अंग्रेजी साहित्य को समृद्ध बनाया। बेबस्टर, फोर्ड, चौपसन आदि ततकालीन नाटककारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते थे तथा हूकर जैसे लेखक धार्मिक लेखों में अद्वितीय स्थान बनाये हुए थे। काव्य – साहित्य की भाँति इस युग में गीत काव्य की भी अद्भुत प्रगति हुई। तत्कालीन गीत–काव्यकारों में हेपबुड, टामस – कैंपियन, लौज आदि प्रमुख माने जाते हैं। निबन्धकारों में फ्रांसिस बेकन अग्रगण्य था। सिडनी ने आर्केडिया नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी । बेकन ने गंभीर निबन्धों को लिखा।

इस तरह हम देखते हैं कि एलिजाबेथ के शासन काल में अनेक ऐसे साहित्यकारों के पद्य, गद्य, लेख, नाटक आदि लिखे गये जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य को उच्च स्तर पर पहुँचा दिया । उसके शासन काल से पूर्व अंग्रेजी साहित्य फ्रांसीसी और स्पेनिश साहित्यों की तुलना में निम्नकोटि का

पश्चिमी विश्व

छव्र्जै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

63

पश्चिमी विश्व

छव्र्जै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

64

था, लेकिन 1600 ई० में उसकी तुलना यूरोप की नहीं वरन् संसार के उच्चकोटि के साहित्य से की जाने लगी, यहाँ तक कि यूनानी साहित्य से भी ।

एलिजाबेथ साहित्यिक प्रगति का प्रभाव इंग्लैंड के कला–कौशल एवं समाज पर भी पड़ा। इंग्लैंड में वास्तुकला का समुचित विकास हुआ। नये–नये भवनों के निर्माण से लंदन नगर विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया ।

इस तरह राजनीतिक उत्कर्ष, आर्थिक समृद्धि, साहित्यिक प्रगति एवं कला–कौशल का जो बहुमुखी विकास हुआ, उसके आधार पर एलिजाबेथ का शासन – काल

इंग्लैंड के इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है।

–

6. आयरलैंड की विजय एलिजाबेथ के समय में विदेशी संकट और मुख्यतया कैथोलिक की रानी का आक्रमण के कारण आयरलैंड की विजय आवश्क बन गयी द्य ब्वनदजमत–तमवितउंजपवद के कारण आयरलैंड एक ऐसा स्थान बन गया था जहाँ से एलिजाबेथ के कैथोलिक – शत्रु सहायता प्राप्त कर सकते थे। आयरलैंड इंग्लैंड के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने के साथ–साथ वहाँ की सत्ता के विरुद्ध भी निरंतर विद्रोह करते थे। कठिन संघर्ष के पश्चात् सन् 1602 ई० में एलिजाबेथ ने इस विद्रोह को बड़ी मुश्किल से दबाया जिससे उसके सम्मान में वृद्धि हुई । इस प्रकार एलिजाबेथ की
कुशल नीति के फलस्वरूप आयरलैंड से आने वाली आपत्तियाँ भी दूर हुईं।

7. नौ सेना का विकास – एलिजाबेथ का युग सामुद्रिक शक्ति के विकास और भौगोलिक खोजों को लेकर भी स्वर्णयुग था । उसके शासन काल के पूर्व इंग्लैंड की नौ–सेना फ्रांसीसी एवं स्पेनिश नौ सेना के समक्ष शक्तिहीन थी। किन्तु एलिजाबेथ ने अपने राज्यारोहरण के कुछ ही वर्षों बाद नौ– सेना की शक्ति में विस्तार के लिए अनेक उपयोगी जहाजों एवं युद्ध सामग्रियों का निर्माण करवाया, जिससे शीघ्र ही इंग्लैंड की नौ–सेना शक्तिशाली हो गयी। इस कार्य में ॅपससपंउ भूंपदे और थ्तंबपे नफवाम जैसे साहसी नाविकों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके सहयोग से देश की नौ– सेना की शक्ति में अभूतपूर्व विस्तार हुआ । इनके अतिरिक्त डंतजपद थ्वतइदपेजमत ने पश्चिमोत्तर मार्ग की खोज की द्य म्कूंतक थ्मदजवद ने ग्रीनलैंड की खोज की। जीवउं ब्ूंदकपी ने अनेक बार स्पेनिश उपनिवेशों पर आक्रमण किया और श्रवीद क्ंअपे ने आक्रटिक की कई यात्राएँ कीं ।ॅसजमत त्ंसमपही ने दूरस्थ टपतहपदप का उपनिवेशीकरण किया, धीरे–धीरे इंग्लैंड में ऐसी साहसिक नाविक पीढ़ी का निर्माण हुआ जिसने न केवल स्पेन के आर्मडा विजय से एलिजाबेथ की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गया।

इसी तरह, एलिजाबेथ के शासन काल में इंग्लैंड की नौ–शक्ति का इतना अधि ाक विस्तार हुआ कि अन्ततोगत्वा इंग्लैंड संसार में अपनी जल–शक्ति की श्रेष्ठता स्थापित कर सका और अपने लिए इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर सका कि उसके विषय में यह कहा गया कि " ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य कभी नहीं छिपता '' ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एलिजाबेथ ने अपने शासन काल में इंग्लैंड में चच व्यवस्था, धार्मिक निर्णय, भूमि सुधार, उद्योग–धन्धों एवं व्यापार का विकास एवं विशेषकर आर्मडा विजय आदि महत्वपूर्ण कार्यों में सफलताएँ । प्राप्त की, जबकि उसके पूर्व के ट्यूडर शासकों ने वैसी सफलता प्राप्त करने की कोशिशों के बावजूद असफलता ही देखी थी।

उपर्युक्त कारणों के चलते ही इंग्लैंड के इतिहास में महारानी एलिजाबेथ का शासन–काल स्वर्ण–काल के नाम से प्रख्यात है द्य

हेनरी सप्तम द्वारा 1485 ई० ट्यूडर वंश की स्थापना के पूर्व ही इंग्लैंड में अत्यन्त

शक्तिशाली संसद की स्थापना हो चुकी थी। इस तथ्य का सहज अनुमान तो केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन दिनों राजा संसद की आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य था । यद्यपि राजा संप्रभु होता था, फिर भी वह संसद की अनुमति के बगैर कोई भी कार्य नहीं कर सकता था। देश के शक्तिशाली सामंत इस संसद
के सदस्य हुआ करते थे। इन सदस्यों की पूर्वानुमति के बिना राजा अपनी प्रजा पर कोई कर आदि भी नहीं लगा सकता था। किसी भी कानून का निर्माण करने तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए राजा को संसद की स्वीकृति लेना अनिवार्य था। इस प्रकार हम देखते हैं कि ट्यूडर के आगमन के पूर्व ब्रिटिश सम्राट का प्रभुत्व वहाँ की संसद के दोनों सदनों (भ्वनेम व बिवउउवदे तथा भ्वनेम व स्विके) के सम्मुख नगण्य था। राजा संसद की इच्छा के विरुद्ध जाने की हिम्मत नहीं कर सकता था। वास्तव में इंग्लैंड के शासकों पर वहाँ के संसद पर पूरा–पूरा प्रभाव छाया हुआ था।
हेनरी सप्तम के राज्यारोहण की परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम थीं । निरन्तर 30 वर्षों तक चलने वाले गुलाबों के
युद्ध
की विभीषिका से आम जनता त्रस्त थी । लोग किसी भी कीमत पर देश में शांति एवं सुव्यवस्था की स्थापना चाहते थे। जनता की इस प्रवृत्ति के कारण ही ट्यूडर शासक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी हुए । गुलाबों के युद्ध में अनेक शक्तिशाली सामंतों के मारे जाने के कारण संसद की शक्ति में अप्रत्याशित कमी आ गई थी। इस परिस्थिति का भरपूर लाभ उठाते हुए ट्यूडर शासकों ने संसद की शेष शक्ति को क्षीण करके उस पर अपना पूरा–पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कालांतर में सम्राट ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना शुरू कर दी ताकि उसकी निरंकुशता में वृद्धि होती रहे । अब राज्य की किसी भी समस्या के निदान के लिए सम्राट की इच्छा ही सर्वोपरि थी । संसद अब उसकी सलाह एवं कार्यों का केवल अनुमोदन ही कर सकती थी, किन्तु राजा यथासंभव पोप के विचारों का आदर करता तथा उन्हें मान्यता भी प्रदान करना
था ।
हेनरी सप्तम तथा संसद–
हेनरी सप्तम ने संसद के द्वारा यह नियम बनवाया कि अब से कोई भी सामन्त अपने अनुचरों को लिए एक विशेष प्रकार की पोशाक पहनने के लिए बाध्य नहीं हो सकते थे। इस नियम की अवज्ञा करने वाले सामंतों पर मुकदमे चलाये जाएँगे जिसका निर्णय एक विशेष न्यायालय में हुआ करेगा। इस न्यायालय का नाम ”ब्वनतज व ेजवत बैंउइमत'' रखा गया। संसद ने हेनरी सप्तम के इन नियमों को शीघ्र ही मान्यता प्रदान कर उसकी स्वेच्छाचारिता को बल प्रदान किया। दूसरी ओर राजा संसद को एक सीमा तक ही छूट देने के लिए तैयार थे। वस्तुतः हेनरी सप्तम ने संसद को केवल उतने ही अधिकार प्रदान किये जितने

के बिना काम नहीं चल सकता था। उसने अपनी सर्वशक्ति सम्पन्नता को बनाए रखा। संसद उसके कार्यों में दखल नहीं दे सकती थी।

हेनरी अष्टम तथा संसद–

संसद के साथ संबंध में हेनरी अष्टम ने भी हेनरी सप्तम का ही अनुकरण किया। अपने देश को पोप के प्रभुत्व से मुक्त करने के लिए उसने धार्मिक आंदोलनों का सूत्रपात किया । अतः उसने सुधाकर पार्लियामेंट की स्थापना की, जो दीर्घकालीन संसद से किसी प्रकार भिन्न न थी । जहाँ एक ने पोप की शक्ति को छिन्न–भिन्न किया वहीं दूसरी ने राजा की शक्ति एवं अधिकारों पर कुठाराघात किया। दोनों संसदों में एक और अन्तर यह था कि दीर्घकालीन संसद का कार्यक्रम जहाँ अपनी निजी शक्ति पर निर्भर था, वहीं सुधारक संसद का बल हेनरी अष्टम में निहित था । वस्तुतः सुधारक संसद के जरिए ही हेनरी पोप से अपना संबंध–विच्छेद करने में सफलता प्राप्त की। भय एवं स्वार्थ में डूबे लोगों ने अपने राजा की नीतियों का तनिक भी विरोध न किया । चर्च की ओर से किये गए साधारण विरोध को हेनरी अष्टम ने संसद के जरिये दबा दिया। पोप की सत्ता से मुक्त होने के उद्देश्य से उसने संसद के अधिवेशन में ।बज व ि।द्दंजमें, ।बज व ि।चचमंसे तथा ।बज व िनचतमउंबल इत्यादि पालन करवाए।

हेनरी अष्टम के शासन काल में संसद के नौ अधिवेशन बुलाये गये जिनमें अनेक कानून पालन कराकर राजा ने इंग्लैंड की धार्मिक समस्याओं का समाधान किया।

एडवर्ड षष्ठ तथा संसदः –

हेनरी अष्टम के उत्तराधिकारी एडवर्ड षष्ठ के शासन काल में भी संसद की बैठक लगभग प्रतिवर्ष होती रही। उसके समय में धीरे–धीरे संसद शक्तिशाली होने लगी थी तथा ऐसा माना जाता है कि यदि एडवर्ड

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ञै

ऽमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

65

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ञै

ऽमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

66

कुछ

और समय तक राज्य किया होता तो निश्चय ही संसद एक शक्तिशाली संस्था का रूप ले लेती।

मेरी ट्यूडर तथा संसदः –

एडवर्ड षष्ठ के निधनीपरान्त इंग्लैंड की गद्दी पर उसकी बहन मेरी का राज्यारोहण हुआ । उसके शासन काल में पुनः संसद तथा सम्राट की स्थिति में परिवर्तन आया। वह एक कट्टर कैथोलिक और निरंकुश शासिका थी । उसने संसद की

बची–खुची शक्ति को भी समाप्त कर दिया। उसका शासन – काल आतंक से परिपूर्ण था और उसने अपने समस्त कार्यों की मान्यता अपने समय की संसद सदस्य भी कैथोलिक में से मनोनीत किये जाते थे। अतः वह मनमाना कार्य करती रही और उसे निरन्तर रूप से संसद का समर्थन मिलता रहा।

महारानी एलिजाबेथ प्रथम तथा संसदः–

अपने पिता हेनरी अष्टम की भाँति महारानी एलिजाबेथ ने भी अपने शासन–प्रबन्ध को संसद पर ही आधारित करने का प्रयत्न किया । किन्तु उसकी दूरदर्शिता ने उसे इस बात से भली–भाँति अवगत भी करा दिया कि बदले हुए युग में इस बात की आशा करना मूर्खता होगी कि उसके प्रत्येक कार्य को संसद (भ्वनेम व बिवउउवदे तथा भ्वनेम व स्वितके) स्वीकृति दे ही देंगे। प्रारम्भ में संसद का उसके साथ मधुर संबंध बना रहा क्योंकि साम्राज्य की इच्छानुरूप संसद धन स्वीकृत करती रही थी। किन्तु साम्राज्ञी के विवाह के प्रश्न पर संसद के साथ मनमुटाव शुरू हो गया क्योंकि संसद चाहती थी कि वह अपना विवाह प्यूरिटन अथवा प्रोटेस्टेंट शासक के साथ करे जबकि महारानी एलिजाबेथ कैथोलिक थी । संसद के प्रति महारानी एलिजाबेथ की नीति की व्याख्या करते हुए एक इतिसकार महोदय ने लिखा है कि उसने संसद के साथ यथासंभव कम–से–कम सम्पर्क बनाये रखने का प्रयत्न किया। अतः उसने मितव्यता से काम लिया ताकि संसद का अधिवेशन बुलाने का उसे कम–से–कम अवसर प्राप्त हो सके। यही कारण है कि उसके 45 वर्षीय दीर्घ शासनकाल में केवल 13 बार संसद का अधिवेशन बुलाया गया था द्य भ्वनेम व बिवउउवदे के अधि िवेशन में उसने उसे सदैव अपने अनुकूल बनाये रखने का प्रयत्न किया। साथ ही उसने कई छोटे–छोटे बड़े वीरों की स्थापना की जहाँ से उसके द्वारा मनोनीत किये गये सदस्य चुनकर आते थे।

महारानी एलिजाबेथ ने अत्यन्त बुद्धिमानी के साथ संसद के साथ व्यवहार किया। उसने समय की माँग के अनुरूप या तो अपना उल्लू सीधा करने का प्रयास किया था या संसद की सलाह को माना । यह उसकी दूरदिर्शता का ही परिणाम है कि एक लम्बे अरसे तक भ्वनेम व बिवउउवदे को उसकी नीतियों में पूर्ण आस्था बनी रही। कुछ वस्तुओं पर महारानी एलिजाबेथ के एकाधिकार के प्रश्न को लेकर संसद उनके विपक्ष में हो गयी थी। कुछ वस्तुओं पर महारानी एलिजाबेथ समर्थकों को अनेक प्रकार की व्यापारिक स्वतंत्रता प्रदान करने के साथ–साथ उन्हें कुछ वस्तुओं पर एकाधिकार भी प्रदान कर दिये थे। फलतः वस्तुओं की कीमत में मनमानी वृद्धि हो चली और नमक का मूल्य 16 डी से बढ़कर 15 एस हो गया । किन्तु भ्वनेम व बिवउउवदे द्वारा एकाधिकार के प्रश्न पर आपत्ति प्रकट किये जाने के कारण महारानी एलिजाबेथ ने शीघ्र ही बढ़ते हुए मूल्यों वाली समस्त वस्तुओं पर से एकाधिकार हटा लेने की घोषणा की। साथ ही इसके लिए उसने संसद का आभार भी प्रकट किया कि उसने जनमानस के हित से संबंधित मसलों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट कराया। उसके इस आभार में हमें सत्यता का आभास होता है क्योंकि वास्तव में वह प्रजा

के उत्थान के सिद्धान्तों पर शासन करना चाहती थी। जैसा कि संसद के एक अधिवेशन में उसने कहा भी था कि " अपनी प्रजा की भलाई तथा उत्थान से जितना मुझे प्रेम है उतना और कोई मुझे प्रिय नहीं है । "

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महारानी एलिजाबेथ प्रथम का उसकी संसद के साथ सम्पूर्ण शासन – काल में मधुर संबंध बना रहा। वार्नर एवं मार्टिन महोदय का कथन है कि " रानी शासनरूपी नौका खेती रही और संसद मूकदर्शक बनी देखती रही। जब संसद को यह बात भली–भाँति समझ में आ जाती कि रानी ठीक मार्ग पर नहीं चल रही है, तभी वह उसके कार्यों में दखल देने की

कोशिश करती । वास्तव में उनकी समझ में रानी सचमुच गलत मार्ग पर थी, जब उसने विवाह न करने का निश्चय कर राज्य सिंहासन को उत्तराधिकार से वंचित रखा। "

मूल्यांकन– उपयुक्त विवरणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि ट्यूडरकालीन शासन व्यवस्था में संसद का महत्वपूर्ण स्थान था । यद्यपि ट्यूडर शासकों की शक्तियाँ असीमित तथा अपरिमित थीं, तथापि उन्होंने संसद का पूर्ण परित्याग कदापि नहीं किया। उन्होंने संसद का प्रयोग अपनी आवश्यकतानुसार ही किया । वस्तुतः ट्यूडरकालीन संसद नाममात्र की थी तथा यह सम्राट की निरंकुशता पर कोई विशेष नहीं डाल पाती थी । यदि संसद सम्राट के कार्यों में हस्तक्षेप करती थी तो वह संसद के अधिवेशन को बुलाना ही बन्द कर देता था । उदाहरणार्थ– हेनरी अष्टम के शासन काल के अंतिम चरण में सम्राट की नीतियों का संसद द्वारा विरोध किये जाने के कारण 13 वर्षों तक संसद का कोई अधिवेशन ही न बुलाया गया। इसी तरह के दृष्टान्त अन्य शासकों के लिए भी दिया जा सकता है। एलिजाबेथ ने तो अपने 45 वर्षों के लम्बे शासन–काल केवल 13 बार ही संसद के अधिवेशन को बुलाया। दूसरी ओर कुछ ऐसा भी उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है कि ट्यूडरयुगीन संसद ने भी सम्राट पर अपना प्रभुत्व के लिए 28 लाख पौंड माँग की तो संसद ने उसे अस्वीकार कर दिया तथा सम्राट को बहुत थोड़ा ही धन प्राप्त हो सका। इसी तरह महारानी एलिजाबेथ को भी संसद के विरोध के कारण एकाधिकार नियम वापस लेना पड़ा था ।

इस तरह यदि हम ट्यूडरकालीन की आधुनिक संसद के क्रियाकलापों के साथ तुलना करें तो हम पाते हैं कि तत्कालीन संसद आधुनिक संसदों से पर्याप्त मात्रा में भिन्न थी। आज की भाँति उस समय की संसद के पास ऐसी कोई भी शक्ति नहीं थी। जिसके द्वारा वह राजा के ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबंध आदि लगा सकती। तत्कालीन राजा यदि थोड़ी भी दूरदर्शिता से काम लेता तो वह निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी बन सकता था। वस्तुतः संसद ने उनकी शक्ति पर किसी प्रकार का अंकुश न लगाकर उन्हें और भी अधिक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी एवं शक्तिशाली बनने का सुअवसर प्रदान किया। परन्तु इसके बावजूद संसद की महत्ता में बराबर वृद्धि होती रही। निरंकुश होते हुए भी ट्यूडर शासक संसद की

Notes

पूर्ण उपेक्षा नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी कि किसी भी शासन – तंत्र को सुचारुरूपेण चलाने के लिए उसके शासक को अपने विरोधियों का भी परामर्श लेते रहना चाहिए। उनके इसी विचार के कारण संसद की महत्ता में निरन्तर उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही।

महारानी एलिजाबेथ का शासन – काल (1558–1630 ई०) इंग्लैंड में स्वर्णकाल के नाम से प्रख्यात है। अपने पिता हेनरी अष्टम को इच्छानुसार वह अपनी बहन मेरी ट्यूडर के निधनोपरांत 17 नवम्बर 1558 ई० को इंग्लैंड के सिंहासन पर उससे अधिक अधिकार स्कॉटलैंड की रानी मेरी का था किंतु हेनरी अष्टम की इच्छा को संसद के द्वारा स्वीकार की गयी थी, निर्णयात्मक थी ।

लेकिन सिंहासनारूढ़ होने के समय एलिजाबेथ के समक्ष कई समस्याएँ समाध ाान के लिए मुँहबाये उपस्थित थी। इन तमाम समस्याओं के समाधान के लिए उसकी धार्मिक समस्याओं को महत्वपूर्ण माना जा सकता है, क्योंकि उन दिनों सम्पूर्ण यूरोप धार्मिक दृष्टि से विभाजित था और वहाँ प्रोटेस्टेंट धर्म के विरुद्ध ब्वनदजमत त्मवितउंजपवद नामक एक तीव्र आंदोलन उठ खड़ा हुआ था, जिसका प्रभुत्व आक्रमण प्रोटेस्टेंट इंग्लैंड पर था।

मेरी ट्यूडर के समय तक इंग्लैंड में धार्मिक समझौता न हो सका था। उसके समय में एक बार फिर न केवल पोप की सत्ता को स्वीकार किया गया अपितु कैथोलिक धर्म को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न भी किया गया, जो जनमानस की इच्छा के सर्वथा विरुद्ध था । इस कारण एलिजाबेथ को एक ऐसा धार्मिक समझौता करना था जिसे इंग्लैंड की जनता सहर्ष स्वीकार कर ले। परिस्थितियों के अनुसार एलिजाबेथ के लिए प्रोटेस्टेंट धर्म का समर्थन करना आवश्यक था क्योंकि कैथोलिक ने हेनरी अष्टम के साथ उसकी माँ ऐना बोलेनी माँ के विवाह को अनुचित माना था। उसके राज्याभिषेक के अवसर पर केवल एक कैथोलिक विशेष को छोड़कर बाकी सभी ने उसे इंग्लैंड की रानी स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। इस कारण एलिजाबेथ के लिए पोप की सत्ता को समाप्त करने के साथ–साथ प्रोटेस्टेंट धर्म का समर्थन करना आवश्यक हो चला था। परन्तु एलिजाबेथ इन धार्मिक संकटों से विचलित होने वाली नहीं
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्े
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
67
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्े
थी। उसने अत्यन्त ही धैर्य एवं दूरदर्शिता का परिचय देते हुए अपनी तमाम कठिनाइयों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। वह अपने समय के सभी शासकों में सर्वाधिक योग्य और चतुर सिद्ध हुई । यद्यपि उसकी सफलता में उसके सेसिल, बर्गले, बेकन, जॉन हॉकिन्स, बाल्टन, रेले, फ्रांसिस ड्रेक जैसे योग्य

मंत्रियों की महान् भूमिका थी, किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि एलिजाबेथ स्वयं अत्यन्त दक्ष राजनीतिज्ञ एवं सफल कूटनीतिज्ञ शासिका थी और जिन्होंने इनमें से कई व्यक्तियों को महान बनाने में अप्रत्यक्ष रूप से भी भाग लिया था। फ्रांस की राजमाता, स्कॉटलैंड के कुलीन सरदार, स्पेन के शासक फिलीप और विदेशों के अनेक राजदूतों के मुकाबले वह इंग्लैंड की अकेली कूटनीतिज्ञ थी। अपने इन्हीं गुणों के बल पर उसने धार्मिक समस्याओं का सफल निदान ढूँढने का प्रयत्न किया । किन्तु वह एक ऐसा धार्मिक समझौता चाहती थी, जिससे प्रोटेस्टेंट तो प्रसन्न हो ही जायें, किन्तु कैथोलिक भी उससे अत्यधि ाक असंतुष्ट न हो जाएँ। इस समझौते के लिए संसद की स्वीकृति लेना आवश्यक समझा । प्रारम्भ में संसद सदस्य उसके कानूनों का विरोध करते गये, परन्तु धीरे – धीरे उनकी उपयोगिता भी उनकी समझ में आती गई। अन्ततः दो विशपों को छोड़कर बाकी सभी कैथोलिक विशपों ने महारानी के धार्मिक समझौते को प्रायः स्वीकार कर लिया।

सन् 1559 ई० में एलिजाबेथ ने ।बज विनचमतउंबल को पास कराने के लिए संसद का अधिवेशन बुलाया। संसद ने धार्मिकता के लिए निम्नलिखित कानून बनाये –

1.
मेरी ट्यूडर के समय सभी धार्मिक कानून समाप्त कर दिये गये।
ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

68

2.
1524 ई० का कानून समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार, एक बार पुनः इंग्लैंड से पोपशाही का अंत कर दिया गया और हेनरी अष्टम के धार्मिक काननू स्वीकार कर लिये गये।

3. सर्वोच्चता कानून (।बज विनचमतउंबल) को पुनः पारित किया गया। जिससे एलिजाबेथ इंग्लैंड के चर्च की प्रधानता हो गई। परन्तु इस बार उसमें चर्च के प्रध ाान शब्दों के स्थान पर चर्च के गवर्नर शब्दों का प्रयोग किया गया।

4. ।बज वन्दिपजवितउपजल के अनुसार एडवर्ड के समय की द्वितीय प्रार्थना पुस्तक को पुनः आरम्भ किया गया । परन्तु इसमें उन शब्दों को कोई स्थान नहीं दिया गया जिससे कैथोलिकों की भावनाओं पर प्रहार हो सकता था। वस्तुतः इस कानून में प्रथम एवं द्वितीय दोनों प्रार्थना पुस्तकों के अच्छे शब्दों और नियमों को शामिल करने का प्रयास किया गया ।

5. एडवर्ड षष्ठ के शासनकालीन 42 धाराओं के धार्मिक कानून में से 3 धाराएँ हटा दी गयीं और 39
धाराओं का पूर्ववत् लागू किया गया।

यद्यपि संसद द्वारा पारित उपर्युक्त धार्मिक कानून में कोई नयापन नहीं था और इसकी सभी धाराओं से इंग्लैंडवासी पूर्व परिचित थे । परन्तु यह उल्लेखनीय है कि धार्मिक समझौते के पीछे एलिजाबेथ का मूल उद्देश्य इसकी राजनीतिक

महत्वाकांक्षा थी, जिसकी पूर्ति में वह बहुत हद तक सफल रही। वस्तुतः वह ध
र्म के आधार पर राष्ट्र की एकता चाहती थी । इस धार्मिक समझौते की सफलता ही इसकी अच्छाई का सबसे बड़ा सबूत था ।

वास्तव में महारानी एलिजाबेथ का उपर्युक्त धार्मिक समझौता अत्यन्त सफल रहा। इस समझौते के आधार पर उसने इंग्लैंड में ।दहसपबंद बैनमबी नामक एक नवीन चर्च की स्थापना की, जिसे इंग्लैंड की जनता ने धीरे–धीरे स्वीकार कर लिया। प्रोटेस्टेंट धर्म का समर्थन करने वाली यह धार्मिक समझौता कैथोलिकों को भी संतुष्ट करने में सफल रहा। अतः इंग्लैंड के कैथोलिक भी एलिजाबेथ जैसी महान साम्राज्ञी के पक्ष में हो गये, जिनकी छत्रछाया में इंग्लैंड दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करता आ रहा था। एलिजाबेथ के धार्मिक समझौते की सफलता में निम्नलिखित तत्व कार्य कर रहे थे–

1. इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट धर्म स्वतः लोकप्रिय होता जा रहा था।
2. एलिजाबेथ का धार्मिक समझौता अत्यधिक उदारता पर निर्भर था और इसका क्रियान्वयन भी उतनी ही उदारतापूर्वक किया गया था। कैथोलिकों को क्षुब्ध करने वाले सभी शब्द इसमें से निकाल दिये गये तथा धर्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति को दण्डित करने का प्रावधान इस समझौता में नहीं था ।
3. एलिजाबेथ के शासन काल में इंग्लैंड की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में अप्रत्याशित वृद्धि हुई । उसका युग निरन्तर प्रगति एवं सफलताओं की ओर अग्रसर था । अतः देशभक्त जनता ने उसके धार्मिक समझौते को स्वीकार करने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं प्रगट की।
4. दीर्घावधि (45 वर्षों) तक देश पर शासन करने के कारण एलिजाबेथ को अपने समझौते के सफल
कार्यान्वयन का भरपूर समय मिला ।
5. एलिजाबेथ के सभी विदेशी शत्रु कैथोलिक ही थे । अतः इंग्लैंड कैथोलिकों ने राज्य की समृद्धि एवं
सुरक्षा के हित में महारानी का समर्थन किया।

इस तरह उपर्युक्त प्रमुख कारणों से एलिजाबेथ के धार्मिक निर्णय को सफलता मिली और इंग्लैंड को उस बड़ी समस्या से मुक्ति मिली, जिसके कारण पिछले कई दशकों से वहाँ संघर्ष होता चला आ रहा था । वस्तुतः अगर हम तथ्यों का समालोचनात्मक अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि एलिजाबेथ की इस महत्वपूर्ण सफलता में इंग्लैंड की संसद की निर्णायक भूमिका थी।

नवीन धार्मिक समझौता करते हुए एलिजाबेथ यह नहीं भूली थी कि उसके किसी भी शब्द से जनता की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँची । अतः उसने भरपूर प्रयास किया था कि धार्मिक समझौता को प्रोटेस्टेंट के समान कैथोलिक भी स्वीकार कर ले। उसमें ऐसी कोई भी बात शामिल न हो जिसे स्वीकार करने अथवा उसके प्रति उदासीन न रहने के स्थान पर उसकी कैथोलिक जनता उसके विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तत्पर हो जाय और उसके राज्य में धार्मिक संघर्ष निरन्तर चलता रहे। इसी कारण सर्वोच्चता – कानून में चर्च के प्रधान

शब्दों के स्थान पर चर्च के गवर्नर शब्दों का प्रयोग किया गया। प्रार्थना पुस्तक एक कोई भी शब्द नहीं रखे गये जो पोप के विरुद्ध हों। सन् 1552 ई० वाली प्रार्थना पुस्तक में थोड़ा बहुत संशोधन करके वह भविष्य धर्म– पुस्तक के रूप में स्वीकार कर ली गई। एलिजाबेथ इस बात के लिए सतर्क थी कि इंग्लैंड की जनता उसे उसे केवल प्रोटेस्टेंट समर्थक ही न समझ बैठे। सन् 1563 ई० में 42 सूत्रीय सिद्धान्तों पर आधारित 39 सूत्रीय विधान को सरल तथा कम से कम कष्टकारक बनाने के विचार से उनमें पूर्णरूपेण संशोधन भी किया। इस तरह यद्यपि देखने में एलिजाबेथ की धार्मिक नीति एडवर्ड षष्ठ जैसी थी, परन्तु वास्तव में उसकी आत्मा सॉममेट नहीं थी ।

इकाई 7
गृह युद्ध के कारण एवं परिणाम

इतिहासकारों के मध्य गृह–युद्ध के कारणों के प्रश्न पर मतैक्य नहीं है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि गृह–युद्ध एक धार्मिक एवं राजनीतिक संघर्ष था । वस्तुतः यह धर्म की आड़ में राजनीतिक और वैधानिक स्वतंत्रता का संघर्ष था। संघर्स का मूल कारण संप्रभु शक्ति के अस्तित्व का था। वास्तविक संप्रभुता राजा में निहित रहे या राजा और संसद दोनों में सम्मिलित रूप से रहे, यही मूल प्रश्न था । इतिहासकार रास का मत है कि इंग्लैंड का गृह युद्ध जनता की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए नहीं लड़ा गया था । यद्यपि राजा के विपक्ष में इंग्लैंड का काफी प्रभावशाली वर्ग था, तथापि यह कहना अनुचित होगा कि इंग्लैंड की प्रजा ने निरंकुश सत्ता के विरुद्ध किया था । वस्तुतः गृह–युद्ध राजा अधिकारों को सीमित करने के उद्देश्य से भी नहीं लड़ा गया था, बल्कि युद्ध का मूल कारण संसद के एक शक्तिशाली वर्ग का अपने में विभाजित हो जाना था। युद्ध में संसद के सदस्य और प्यूरिटन दल एक साथ हो गये थे और उनका नेतृत्व पीम और हैम्पडन जैसे शक्तिशाली नेता कर रहे थे, जबकि राजा की ओर से हाइड फॉकलैंड जैसे संसद के प्रभावशाली सदस्य थे। दोनों पक्षों के बीच कुछ ऐसे ध ार्मिक मतभेद का समाधान केवल युद्ध के द्वारा ही संभव था क्योंकि युद्ध ही राजा के विरुद्ध उन्हें एकता प्रदान कर सकता था।

इस तरह गृह–युद्ध का मुख्य कारण राजा और प्रजा अथवा राजा और संसद का झगड़ा मात्र नहीं था बल्कि स्वयं संसद और प्रजा के शक्तिशाली वर्ग के पारस्परिक मतभेद थे। उन्हें समाप्त करने के लिए राजा के

पश्चिमी विश्व 89

पश्चिमी विश्व

प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

विरुद्ध युद्ध करना एक साधन बनाया गया था। अतः इंग्लैंड की अधिकांश जनता युद्ध के प्रति उदासीन थी । चार वर्षों तक चलने वाले इस युद्ध में भाग लेने वाली प्रजा की संख्या डेढ़ लाख तक भी नहीं पहुँच पाई थी।

वस्तुतः गृह–युद्ध के लिए किसी एक कारण को ही उत्तरदायी ठहराना युक्तिसंगत नहीं होगा, बल्कि सत्यता तो यह है कि युद्ध अनेक कारणों के समन्वय का परिणाम था । राजनीतिक धार्मिक और सामाजिक आदर्शों के संबंध में राजा के समर्थकों और संसद के समर्थकों के दृष्टिकोण में काफी अन्तर था। दिनानुदिन परिस्थितियाँ उग्र से उग्रतर रूप धारण करती चली गई और दोनों ही पक्ष युद्ध के लिए कृतसंकल्प हो चले। इस प्रकार गृह–युद्ध के अनेक कारण थे, जिन्हें हम सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक नामक दो कोटि में विभक्त कर सकते हैं।

राजा किस आधार से शासन कर सकता है,

2.

राजा के विशेषाधिकार क्या हैं?

3.

राज्य – सत्ता कहाँ निवास करती है?

जबकि गृह–युद्ध के व्यावहारिक कारणों में निम्नलिखित प्रमुख थे–

1.

जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम की विदेश नीति की असफलता।

2.

दोनों शासकों में अनुभव की कमी एवं नवीन सुधारों की माँग को समझने, पूरा करने या टालने की क्षमता का प्रभाव,

ै मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

70

3. विदेशी आक्रमण के भय की समाप्ति

4.

समाज में विभिन्न वर्गों के पास धन की वृद्धि जबकि राजा के पास धन की कमी,

5. इंगलैंड में हुए नवीन धार्मिक परिवर्तन और प्यूरिटन तथा कैथोलिक मतावलम्बियों के मतभेदों

में वृद्धि और पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता ।

निष्कर्षतः गृह–युद्ध के कारणों का विवरण निम्नलिखित के अन्तर्गत दिया जा सकता है–

1.

2.

राजा के विशेषाधिकार और संसद की सुविधा का प्रश्न– ट्यूडरकालीन राजाओं को उनकी संसदों ने ही विशेषाधिकारी प्रदान करके उन्हें निरंकुश शासक का जामा पहनाया था । किन्तु राजा की निरंकुशता के विरोध की शक्ति ट्यूडरकालीन संसद में नहीं थी। दूसरी ओर राजा भी अपने विशेषाधिकारी का प्रयोग संसद की प्रतिष्ठा एवं जनहित को देखते हुए भी किया। अतएव उस समय राजा और संसद के बीच कोई विरोध उत्पन्न नहीं हुआ। किन्तु स्टुअर्टकालीन राजाओं ने अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग अधीरतापूर्वक करना प्रारंभ किया। उन्होंने जनता पर नये–नये करों का बोझ लादना शुरू किया और वे न्यायिक मामलों

में भी हस्तक्षेप करने लगे। मंत्रियों की नियुक्ति एवं पदच्युति में भी राजा में भी राजा स्वेच्छाचारी होने लगे । यहाँ तक कि वे संसदीय चुनाव और संसद की कार्यवाही तथा सुविधा पर भी प्रश्नचिन्ह लगा देते थे। राजा को यह स्वेच्छाचारिता न तो संसद की मर्यादा के अनुकूल थी और न जनहित के हित में ही । फलतः संसद अपने अधिकार की रक्षा के नाम पर अधिक जागरूक हो गयी और इन्हें जनसमर्थन भी प्राप्त होने लगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही पक्षों के लिए अपनी–अपनी सर्वोपरिता सिद्ध करना आवश्यक प्रतीत होने लगा और वे युद्ध के लिए उतावले हो चले।

सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन– स्टुअर्ट कालीन संसद सदस्य धनी होने के कारण हठी और अकृतज्ञ थे। स्टुअर्ट राजाओं ने जब देश के धनाढ्यों पर प्रहार करना शुरू किया तो स्वतः वे संसद सदस्य राजा के प्रति अत्यधिक रुष्ट हो चलो। पुराने करों को पुनर्जीवित कर राजा ने धनी एवं मध्यम वर्ग की सहानुभूति खो दी। विरोध करने वालों को जेल की हवा तक खानी पड़ी। संसद भी अनुचित करों का विरोध करने के लिए कृतसंकल्पे थी, क्योंकि इसे वह अपने अधिकार का अपहरण

समझती थी। इस तरह आर्थिक प्रश्न राजा और संसद के बीच निरन्तर संघर्ष का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुआ ।

इंगलैंड में हुए नवीन धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन भी गृह–युद्ध का कारण बना। इंग्लैंड के समाज में ट्यूडरकाल से ही कुलीनों के विभिन्न वर्ग पारस्परिक प्रतिस्पर्धा में लगे

हुए थे। उनमें धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक सम्मान के प्रश्न पर परस्पर मतभेद था । एकमात्र राजा का विरोध ही उन्हें एकता के सूत्र में आबृद्ध कर सकता था । इस तरह उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा से जो सामाजिक तनाव उत्पन्न हो रहा था, उसने भी गृह–युद्ध की भूमिका तैयार की। संसद में उनके सदस्यों की संख्या में वृद्धि होने के कारण उन्होंने संसद को राजा से संघर्ष करने का एक साधन बना लिया।

3. धार्मिक मतभेद – गृह–युद्ध का एक प्रमुख कारण स्टुअर्ट काल में राजा और संसद के बीच परस्पर धार्मिक मतभेद का होना था। चर्च का प्रधान होने के नाते धर्मसुधार राजा के द्वारा ही संभव था। अतः प्यूरिटन द्वारा राजा के समक्ष धर्मसुध ाार का प्रस्ताव रखा गया, जिस जेम्स प्रथम द्वारा अस्वीकृत किये जाने के कारण प्यूरिटनों में व्यापक असंतोष फैला। अब वे संसद के माध्यम से अपने धर्म की रक्षा करना चाहते थे। सौभाग्यवश उन दिनों प्यूरिटनों का वर्चस्व था । अतः स्वाभाविक रूप से संसद के सदस्य विशप – व्यवस्था के विरोधी थे। इंग्लैंड में स्थापित चर्च – व्यवस्था को मिटाने के प्रश्न पर संसद के सदस्य दो सशक्त दलों में विभाजित हो गये । यद्यपि संसद के दोनों सदनों द्वारा धर्म–सुधार बिल स्वीकृत नहीं हो पाया परन्तु इससे संसद की एकता भी भंग हो गयी और गृह–युद्ध के असर परिलक्षित होने लगे । इय धार्मिक मतभेद गृह–युद्ध का एक प्रधान कारण सिद्ध हुआ ।

4. राजा का चरित्र – स्टुअर्ट वेश के राजाओं के समक्ष टयूडर वंशीय शासकों की भाँति कोई आंतरिक एवं वैदेशिक समस्या नहीं रह गई थी । वाणिज्य व्यापार में वृद्धि के फलस्वरूप इंग्लैंड धन–धान्य से परिपूर्ण था। ऐसी सुखद परिस्थिति को निरन्तर गति प्रदान करने के लिए आकर्षक चरित्र देश को और अधिक सुखदायी बनाने की बजाय अभिशापमयी सिद्ध हुआ । जैम्स प्रथम को जहाँ एक ओर विद्वता का घमण्ड था वहीं दूसरी ओर चार्ल्स प्रथम जिद्दी और अदूरदर्शी थे। उन्होंने सत्ता पर अपना नियंत्रण कायम रखने के लिए जरूरत से अधिक अधीरता का परिचय दिया। अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण वे शासन के अधिकारी वर्ग को भी संतुष्ट रखने में कामयाब न हो सके। अन्ततः राजा के प्रबल विरोधियों ने व्यक्तिगत शत्रुता को धार्मिक एवं संवैधानिक रूप देकर परिस्थिति को इतना संगीन बना दिया कि राजा और संसद में गृह–युद्ध अनिवार्य हो गया।

5. चार्ल्स प्रथम के सलाहकार – गृह–युद्ध का वातावरण तैयार करने में स्वयं चार्ल्स की चारित्रिक की भाँति उसके प्रमुख सलाहकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसके धार्मिक मामलों के सलाहकार विलियम लॉर्ड कैथोलिकों का कट्टर समर्थक था। अतः ब्वनतज व`िजंत बिंउइमत और ब्वनतज व`िभ्पही बवउउपेपवद में प्यूरिटनों को कुचला जाने लगा जिससे देश में बेचौनी फैलने लगी। लॉर्ड की भाँति चार्ल्स के असैनिक मामलों के सलाहकार बेण्टवर्थ ने अपनी नीतियों से कॉमन्स सभा के सदस्यों के साथ–साथ देश की साधारण जनता को भी राजा का कोपभाजन बना डाला। इस तरह चार्ल्स ने अपने दोनों विवादास्पद व्यक्तित्व वाले सलाहकारों के कारण अपनी लोकप्रियता खो दी थी।

6. चार्ल्स प्रथम का व्यक्तिगत शासन– चार्ल्स प्रथम की निरंकुशवादिता गृह–युद्ध का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुई । चार्ल्स ने लगातार 11 वर्षों तक बिना संसद की सहायता के शासन कर प्रजा की स्वतंत्रता एवं संसद के सम्मान को गहरा आघात पहुँचाया था। अपने निरंकुश शासन के जरिए वह एक बार पुनः देश में दैवी अधिकार के सिद्धान्त को पुनस्थापित करना चाहता था। अतः देश की प्रगति की आशा में बैठी जनता के असंतोष को चार्ल्स ने अपने व्यक्तिगत शासन के जरिए और भी भड़का दिया। स्कॉटलैंड ने नेताओं से गुप्त समझौता किये जाने के कारण राजा संसद एवं प्रजा के संदेह के घेरे में आ गया।

पश्चिमी विश्व

छव्जे

स्व–प्रगति की जाँच करें : 3. लुई चौदहवाँ फ्राँस में निरंकुश राजतंत्र का सर्वाधि ाक ज्वलंत उदाहरण था– कैसे?

4. क्या लुई चौदहवाँ के वित्तमन्त्री कोल्बर्त की देख–रेख में फ्रांस का काफी आर्थिक सुधार हुआ ?

`मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

7. आयरलैंड का विद्रोह – अक्टूबर 1641 ई० में आयरिश कैथोलिकों ने प्रोटेस्टेंट के विरुद्ध कर इंग्लैंड के लगभग पाँच हजार प्रोटेस्टेंटों की हत्या कर दी। विद्रोहियों ने यह अफवाह भी फैला दी कि वे चार्ल्स के इशारे पर ही ऐसा काम कर रहे हैं। अतः देश के प्रोटेस्टेंटों का खून खौलने लगा। साथ ही संसद भी राजा के कैथोलिक विरोधी नीति से परिचित हो गई ।

8. महान विरोध पत्र – आयरलैंड के विद्रोह ने संसद को राजा के प्रति पूर्णतः अविश्वासी बना दिया था। अतः उग्रवादियों ने एक महान विरोध – पत्र तैयार किया जिसमें राजा के दुष्कर्मों की सूची, संसद के सुधार और शासन तथा चर्च संबंधी सुधार की योजनाओं का जिक्र किया गया था। इस विरोध – पत्र के प्रश्न पर संसद में जोरदार बहस हुई। अन्ततः राजा के पक्षधर शक्तिशाली हो गये और हिंसात्मक उपायों से संसद को दबाने की चेष्टा करने लगा।

9. पाँच नाइटों का मामला– चार्ल्स प्रथम की पत्नी फ्रांस की कैथोलिक राजकुमारी थी ।अतः इंग्लैंड में यह अफवाह फैल गई कि रानी यूरोप से सैनिक सहायता प्राप्त कर संसद का कुचलवा देगी, अतः चार्ल्स की भाँति उनकी रानी भी संदेह के घेरे में आ गई द्य कॉमन्स सभा को पाँच सदस्यों ने रानी के कार्यों की निन्दा की थी ।उत्तेजित होकर राजा ने स्वयं सैकड़ों सैनिकों के साथसभा भवन को घेर लिया, किन्तु उससे पूर्व ही ये सदस्यगण सभा भवन से भाग निकलने में सफल हो चुके थे। इस घटना से संसद सदस्य उत्तेजित हो उठे और इस तरह गृह–युद्ध सिर पर मडराने लगा ।

10. मिलिशिया बिल गृह– युद्ध में भाग लेने के पूर्व राष्ट्रीय सेना पर नियंत्रण रखना आवश्यक था । इसी उद्देश्य से संसद ने मिलिशिया बिल पास किया, जिसे राजा ने स्वीकृति नहीं दी ।अतः दोनों पक्ष अब युद्ध की तैयारी में पूर्णतः जुट गये।

11. 19 निवेदनों की अस्वीकृति – 1 जून 1641 ई० को 19 निवेदन के रूप में संसद ने राजा के समक्ष
कार्यकारिणी, न्याय चर्च एवं सेना के नियंत्रण के संबंध में एक प्रस्ताव रखा, जिसे राजा ने पुनः अस्वीकृत कर दिया। क्योंकि इस प्रस्ताव को स्वीकृति के साथ ही दोनों पक्षों के बीच गृह–युद्ध प्रारंभ हो गया।

गृह–युद्ध के परिणाम (म्मिबजे व िबपअपस ूत)

गृह–युद्ध में संसद की विजय हुई और चार्ल्स प्रथम को फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ा। चार्ल्स प्रथम की हत्या के बाद इंग्लैंड में संविधानिक विकास का मार्ग साफ हो गया। उसकी हत्या के साथ ही देश से निरंकुश राजतंत्र की इतिश्री हो गयी। लेकिन यह, उल्लेखनीय है कि गृह–युद्ध अपने सर्वप्रथम उद्देश्य की पूर्ति में सफल न हो सका। गृह–युद्ध के बाद भी इंग्लैंड में शांति और सुरक्षा की व्यवस्था लागू न की जा सकी। राजा की हत्या का क्रॉमवेल ने क्रूर

आवश्यकता की संज्ञा दी। राजा की हत्या के बाद सैनिक अधिनायकवाद का नया दौर प्रारम्भ हुआ और स्थानीय सरकार (स्वबंस ैमसा ळिवअमतदउमदज) की समस्या उत्पन्न हो गयी । फलस्वरूप इंग्लैंड में ब्वउउवद ूमंसजी सरकार की स्थापना हुई। इस सरकार के अन्तर्गत लॉर्डस सभा तथा राजतंत्र की समाप्त कर उसकी जगह ैजंजम ब्वनदबपस नामक एक प्रशासनिक संस्था की स्थापना की गई। राजा की हत्या के कारण देश में राजा के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ी और बहुत से लोग राजतंत्र के समर्थक हो गये । अतः 1600 ई० में इंग्लैंड में राजतंत्र पुनः स्थापित हुआ। कॉमनवेल्थ की सरकार का स्वागत लोगों ने उज्ज्वल भविष्य की आशा में किया था लेकिन कॉमनवेल्थ की सरकार वास्तव में सैनिक शासन की प्रतीक थी। यही कारण है कि स्थिति अब पहले जैसी नहीं रही । सिद्धान्ततः राजा अभी भी प्रधान था, किन्तु अब वास्तविक शक्ति संसद में निहित हो गयी। राजा को धन की स्वीकृति के लिए अब संसद की स्वीकृति पर निर्भर रहना पड़ता था। अब विशेषाधिकार प्राप्त न्यायालयों का निर्माण नहीं हो सकता था । राष्ट्रीय चर्च के रूप में भी परिवर्तन हुआ। स्थायी सेना के संबंध ों में राष्ट्रीय पैमाने पर प्रतिक्रिया हुई। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गृह–युद्ध का परिणाम इंग्लैंड के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ ।

1223

72

चार्ल्स द्वितीय के संवैधानिक प्रयोगों की प्रगति

चार्ल्स द्वितीय स्टुअर्ट शासकों में सर्वाधिक योग्य था । वह अत्यन्त दूरदर्शीता धूर्त एवं व्यावहारिक था । वह परिस्थितियों के अनुसार कार्य करता था। अपने शासन के अंतिम चार वर्षों में उसने भी प्रायः निरंकुश शासन किया।

वह भी इंग्लैंड में अपना निरंकुश शासन स्थापित करना चाहता था । स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना के अलावा वह यह भी चाहता था कि कैथोलिकों को आंग्ल चर्च के समान की विलासिता तथा आरामपरस्ती जीवन व्यतीत करता था परन्तु फिर भी उसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बड़ी चतुराई और लगन से काम किया है।

1. डोबर की गुप्त संधि – चार्ल्स द्वितीय की हार्दिक इच्छा थी कि पार्लियामेंट पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो। अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु लुई चौदहवें के साथ, जो कि फ्रांस का सम्राट था, एक गुप्त संधि की। यह संधि डोबर के स्थान पर की गई थी। अतः इसे डोबर की गुप्त संधि का नाम दिया जाता है।

2.

में

इस संधि के अनुसार सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने कैथोलिक बन जाना स्वीकार किया ओर उसने प्रतिज्ञा की इंग्लैंड के लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करेगा। इसके अतिरिक्त उसने यह भी प्रण किया कि सुअवसर मिलते ही वह यह घोषणा भी कर देगा कि वह कैथोलिक हो गया है। इसक बदले बहुत बड़ी आर्थिक सहायता फ्रांस से ली। लुई ने यह भी वचन दिया कि क्रांति के समय

पर वह चार्ल्स को सैनिक सहायता भी देगा। इस आर्थिक सहायता के आधार पर चार्ल्स द्वितीय एक बहुत बड़ी फौज रखने में समर्थ हो गया। सेना रखने का उद्देश्य उसके सम्मुख यह भी था कि देश में विद्रोह हो जाये तो सेना के आध ार पर उसे कुचला जा सके। इस सैनिक शक्ति का परिणाम यह हुआ कि पार्लियामेंट की शक्ति क्षीण हो गई। इस संधि का कुछ भाग प्रकाशित भी किया गया। इस प्रकाशन में हॉलैंड में युद्ध के बारे में वर्णन था और वह भाग नहीं लिखा गया था जिसके आधार पर वह कैथोलिक बना था। उसके मंत्री भी इस बात को जानते थे। उससे यह ज्ञात होता है कि उसने प्रोटेस्टेंटों को दबाने के लिए यह संधि को और अपने देशवासियों के हितों को बिल्कुल तिलांजलि दे दी। फ्रांस की आर्थिक सहायता के लिए वह लुई को प्रत्येक कीमत पर प्रसन्न करना
चाहता था।

इलजैंस की घोषणा – गुप्त संधि के आधार पर सन् 1672 में चार्ल्स द्वितीय ने ‘‘ दया की घोषणा ’’ प्रकाशित की। इसके आधार पर चार्ल्स ने देश के डिसन्टरों को खुले रूप से पूजा–पाठ करने की आज्ञा दे दी। इसके द्वारा कैथोलिक तथा प्यूरिटन की उपासना पर लगी हुई पाबंदियाँ हटा ली गयीं। इस प्रकार की घोषणाएँ का तात्पर्य था धार्मिक स्वतंत्रता की ओर कदम उठाना। उसके बाद यह स्थिति देखकर पार्लियामेंट को भय हुआ कि चार्ल्स द्वितीय कैथोलिकों को उच्च सरकारी नौकरियाँ देने लगेगा, जिसके परिणामस्वरूप अन्य देशवासियो के राजनीतिक अधिकारों पर आघात होगा। इस प्रकार इंग्लैंड की स्वतंत्रता खतरे में पड़ेगी । सम्राट को घोषणा वापस लेनी पड़ी और जनता के सम्मुख झुकना पड़ा।

3. टैस्ट ऐक्ट– सन् 1673 ई० तक पार्लियामेंट के सदस्यों को यह भली–भाँति ज्ञात हो गया कि सम्राट का झुकाव कैथोलिक धर्म की ओर है । पार्लियामेंट के अधिवेशन में चार्ल्स की आलोचना की गई। चार्ल्स ने इस विरोध की तीव्रता को देखकर घोषणा को रद्द कर दिया किन्तु पार्लियामेंट को इससे भी संतोष न हुआ। पार्लियामेंट ने अंत में एक ऐक्ट जाँच करने के लिए पास करवाया, जिसका नाम टैस्ट ऐक्ट था। इसके अनुसार प्रत्येक सरकारी अधिकारी को कार्य – भार ग्रहण करने से पूर्ण एग्लिंकन चर्च के प्रति शपथ लेनी पड़ती थी। कहा जा सकता है कि टैस्ट ऐक्ट एक प्रकार की परीक्षा थी जिसे प्रत्येक सरकारी अध िकारी के लिए पास करना अनिवार्य था। बिना इसके वह अपने पद पर आसीन नहीं रह सकता था। इस नियम का परिणाम यह निकला कि क्लीफोर्ड तथा आलिंगटन नामक दो मंत्रियों को त्याग पत्र देना पड़ा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि इसी अधिनियम के
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
73

प्रभाव से सम्राट के भाई को श्रंउमे क्नाम व ल्ंता को जन–सेनानी के पद से भी त्याग–पत्र देना
पड़ा।

4. पवर्जन बिल – श्रंउमे क्नाम व ल्ंता जो कि सम्राट चार्ल्स द्वितीय का उत्तराधि ाकारी था और वह कैथोलिक धर्म का अनुयायी था। टैस्ट ऐक्ट उसके मार्ग में अवरोध के समान था । इंग्लैंड की भी जनता इस पक्ष में न थी कि कोई कैथोलिक उन पर राज करे ।अतः पार्लियामेंट ने सन् 1679 में अपवर्जन नामक बिल पास करना चाहा। इसके अनुसार क्नाम व लंता के स्थान क्नाम व डनदउवनजी को सम्राट का उत्तराधिकारी होना था अर्थात् चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् क्नाम व डनदउवनजी को राजा होना था । किन्तु सम्राट को यह बात सहन न हो सकी और उसने पूरी तरह इसका विरोध किया और यह प्रस्ताव पारित न होने दिया। इसी कारण सम्राट ने पार्लियामेंट को तीन बार अवैध घोषित किया और पार्लियामेंट के अधिकारों में कमी लाने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहा। इसी प्रकार उसने पार्लियामेंट की इच्छा के विरुद्ध सफलता प्राप्त की ।

5. बिग दल का बहिष्कार – धार्मिक झगड़े के आधार पर इंग्लैंड में राजनीतिक पार्टियों का जन्म हुआ और आज भी उसी आधार पर इंग्लैंड की दो बड़ी पार्टियाँ आधारित है। प्रारम्भ से ही बिग दल राजतंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध था और वह राजतंत्र की पुनः स्थापना के पक्ष में न था । इसके विपरीत ज्वतल च्तजल का विश्वास राजतंत्र में था । सम्राट ने टोरी दल को प्रोत्साहन प्रदान किया और बिग दल की ओर ध्यान भी न दिया । सम्राट ने लंदन तथा अन्य बड़े–बड़े नगरों के चार्टर्स में कुछ इस प्रकार के परिवर्तन किये जिसके कारण टोरी दल का निर्वाचन में सफल होना निश्चित हो गया । बिग दल की नीव कमजोर हो गई। बिग दल के अशक्त होने से सम्राट अत्यंत शक्तिशाली हो गया।

6. बिना पार्लियामेंट के चार्ल्स का शासन – सन् 1681 से 1685 तक सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने बिना
पार्लियामेंट के निरंकुश शासन किया। उसने एग्लिंकन चर्च पर भी आघात करने का प्रयत्न किया ओर कैथोलिक धर्म की स्थापना का प्रयास किया। चार्ल्स राजकीय न्यायालयों के न्यायाधीशों को अपने इशारों पर कार्य करने का आदेश दिया और विरोधी दलों को दंडित करने के लिए इन न्यायाधीशों का उपयोग किया। दूसरों शब्दों में कहा जा सकता है कि उसने अत्याचार किये। बिग दल से बदला लेना प्रारम्भ किया और बिग दल नेता शोफसवरी को इतना आतंकित किया कि उसने देश छोड़ दिया। बिग दल ने परेशान होकर उसे तथा उसके भाई क्नाम व ल्वता को समाप्त करने का निश्चय किया किन्तु त्अमभ्वनेम के षड्यंत्र द्वारा राजा को इस स्कीम का पता चल गया, और बिग की स्कीम असफल हो गई और अनेक लोग बंदी बनाए गये। लॉर्ड संक्षिप्त और सिडनी को

समाप्त कर दिया । चार्ल्स द्वितीय अपने पिता के समान स्वेच्छाचारी शासन के पक्ष में था । उसने देहा के कानूनों को अपने हाथों में लेकर समस्त विरोधियों को मार्ग से हटा दिया। इस प्रकार राजा के दैवी अधिकार तथा स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन का फिर से शिलान्यास हो गया ।

चार्ल्स द्वितीय के काल की वैधानिक प्रगति

1. मंत्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त – राजा को अभी तक अपने मंत्री चुनने का अधिकार चला आता था। राजा द्वारा चुने गए मंत्री राजा के अधीन होते थे। वह अपने प्रत्येक कर्त्तव्य के लिए राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे । किन्तु पार्लियामेंट इन सब बातों को पसंद नहीं करती थी । पार्लियामेंट ने राजा को विवश कर दिया कि वह अपने मंत्री जिसका नाम कलैरन्डन और डूब्बी था। उन्हें पार्लियामेंट का विश्वास प्राप्त न था । अतः पार्लियामेंट ने पार्लियामेंट ने सम्राट को विवश किया कि वह इन मंत्रियों को मंत्रिमण्डल से निकाल दे, इसके अतिरिक्त राजा के पक्ष में जो मंत्री थे अथवा इनके आदेशों के अनुसार चलते थे उन्हें बहुत तंग किया और सत्तारूढ़ नहीं रहने दिया । इस सिद्धान्त के अनुसार अब मंत्री लोग राजा के स्थान पर पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होने लगे। डम्बी पर पार्लियामेंट ने मुकदमा चलाया और स्पष्ट कर दिया कि मंत्री पार्लियामेंट के अधीन है।

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

74

इसके साथ–साथ अन्य वैधानिक समस्यायें इन मुकदमों के सन्दर्भ में सम्मुख आयीं। वे इस प्रकार थीं जब पार्लियामेंट की ओर से डम्बी पर मुकदमा चल रहा था तो उसने राजा से क्षमा याचना की किन्तु पार्लियामेंट ने यह निश्चय किया कि मुकद्मों के दौरान राजा किसी को क्षमा नहीं कर सकता।

2. वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा– इससे पूर्व राजा को अधिकार था कि वह बिना मुकदमा चलाये किसी भी व्यक्ति को बंदी बना सकता था। अन्य शब्दों में राजा बिना अपराध के बंदी बना सकता था। पार्लियामेंट को इस बात का भय था कि राजा अपने अधिकार का प्रयोग अनुचित रीति से न करे। इससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाप्त हो सकती थी । अतः लोकसभा के नेता अर्ल ऑफ शेफसवरी ने सन् 1679 ई० में एक कानून पास कराया जिसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण ऐक्ट भ्ंइमें ब्वतचने ।बज कहते हैं। ब्वनचने लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है– "जेंज लवन ींअम ं इवकल" इसके अनुसार जेलर कैदी को न्यायालय में पेश करने का अधिकार दिया जाता है ताकि न्यायालय यह तुरंत देख कर कि उसे कैद में रखना उचित है अथवा नहीं। इस ऐक्ट को चार्ल्स द्वितीय के विरुद्ध एक सुदृढ़ हथियार के रूप में प्रयोग किया।

3. पार्टी शासन का सिद्धान्त– पार्लियामेंट के सदस्यों में अपवर्जन बिल के परिणामस्वरूप भारी मतभेद उत्पन्न हो गया था और भवन में दो पार्टियों उत्पन्न हो गयी थीं। एक पार्टी ड्यूक ऑफ यार्क को सिंहासन देने के पक्ष में बिल्कुल नहीं थी । इस दल का नेता अर्ल आफ शेफसवरी थी । इस पार्टी को पेटोशनर्स

कहते थे। सदन की दूसरी पार्टी उपवर्जन बिल के विरुद्ध थी और जेम्स को सम्राट बनाने के पक्ष में थी। इस पार्टी का नाम टोरी था। यह लोग सम्राट के पक्ष में था । उपवर्जन बिल के समर्थक लोग बिग कहलाये । इस प्रकार इंग्लैंड के जीवन में राजनीतिक पाटियों का प्रदुर्भाव हुआ और इस प्रकार पार्टी प्रथा ने शासन में जन्म लिया। इसी समय से यह दोनों पार्टियाँ अपनी–अपनी नीतियों के अनुसार कार्य करने लगी । इंगलैंड के वर्तमान राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ उपरोक्त राजनीतिक पार्टियों के परिणामस्वरूप हुआ।

4. सम्राट के विरुद्ध जूरी को अपना निर्णय देने के अधिकार सम्राट के विरुद्ध जूरी को निर्णय

–

देने का अधिकार नहीं था। चार्ल्स द्वितीय के शासन काल में जूरी को भी राजा के विरुद्ध न्यायिक शक्ति का अधिकार प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त सम्राट के हाथों में से राजकीय क्रोध का अधिकार भी पार्लियामेंट के हाथों में चला गया। अभी तक सम्राट को अपनी इच्छानुसार धन व्यय करने के लिए पार्लियामेंट की स्वीकृति आवश्यक थी ।

चार्ल्स द्वितीय स्टुअर्ट शासकों में सबसे अधिक योग्य था । चरित्र एवं व्यक्तित्व की दृष्टि से वह अपने पिता चार्ल्स प्रथम तथा भाई जेम्स द्वितीय से भिन्न था। वह अत्यन्त दूरदर्शी, धूर्त और व्यावहारिक था । वह परिस्थितियों को समझकर उसके अनुसार कार्य करता था । उसे यह भी ज्ञान था कि पार्लियामेंट के सम्मुख किस प्रकार झुकना पड़ता है। फिर भी वह अनुकूल परिस्थिति देखकर राजा की शक्ति बढ़ाने का प्रयास करता है

उसके जीवन के दो मुख्य उद्देश्य थे– प्रथम, शासन व्यवस्था के राजा के खोये हुए व्यक्तिगत अधिकार को यथासंभव वापस करना । द्वितीय, कैथोलिक धर्म को सरकार द्वारा स्वीकृत वैध धर्म के स्तर पर ले

आना।

–

कैवेलिय पार्लियामेंट 8 मई सन् 1661 ई० को चार्ल्स द्वितीय की प्रथम पार्लियामेंट का अधिवेशन हुआ । चार्ल्स के लौटने के पश्चात् देश में राजा और आंग्ल चर्च के पक्ष में अनेक तीव्र प्रतिक्रियाएँ हुईं। अतः इस पार्लियामेंट में एग्लिंकन सदस्य और राजा के पक्ष वाले लोगों का बहुमत था । यह पार्लियामेंट इतिहास में कैवेलियन पार्लियामेंट के नाम से विख्यात है। ऐसा विश्वास है कि पार्लियामेंट सदस्यों से भी अधिक त्वलंतपेज और विशपों से भी अधिक एंग्लिकन थे। इसके कार्यों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम धार्मिक और द्वितीय वैधानिका इस पार्लियामेंट का कार्य – काल 18 वर्षों तक चलता

रहा।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

75
पश्चिमी विश्व
क्लैरंडन कोड – इस पार्लियामेंट ने धार्मिक क्षेत्र में क्लैंरडन कोड पास किया, जिसके अन्तर्गत चार कानून
1.
सन् 1661 का कार्पोरेशन एक्ट ।
2.
एक्ट ऑफ यूनिफार्मिटी द्य
छव्ज्ै
3.
सन् 1664 ई० का कन्वेर्क्टिकल ऐक्ट ।
4.
सन् 1665 ई० का फाइव माइल्स एक्ट ।
थे–
ॅमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
76
इन कानूनों के प्रचालित होते ही इंग्लैंड में राष्ट्रीय चर्च का अन्त हो गया। अब उसका स्वरूप स्थापित चर्च के समान हो गया। प्रेसटेरियनों का इस चर्च में कोई स्थान नहीं रहा । इसलिए उन्हें बड़ी गई द्य इनकी संख्या अधिक होने के कारण अब इन पर धार्मिक अत्याचार नहीं हो सकता था और इन्हीं के चलते सहिष्णुता नियम पास हुआ। इंग्लैंड की चर्च व्यवस्था में एकरूपता आई तथा अब नानक कन्फस्टों को डिसेन्टर कहा जाने लगा। प्रेस विटेरियनों के लिए राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने
राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के सभी रास्ते बन्द हो गए। इसलिए उनमें से अधि ाकांश धीरे–धीरे एंग्लिकन हो गये ओर उनके कारण ही बाद में बिग दल की शक्ति बढ़ने से राजतंत्र की प्रतिष्ठा बढ़ी तथा दैवी अधिकार की चर्चा पुनः होने लगी।
धार्मिक अनुग्रह की घोषणा – परन्तु इससे चार्ल्स को संतोष नहीं हुआ। वह कैथोलिकों से सहानुभूति रखता था, उनहें सुविधा देना चाहता था। इसलिये सन् 1662 ई० प्रथम धार्मिक अनुग्रह की घोषणा के द्वारा एलान किया कि उसे ऐसा विशेषाधिकार प्राप्त है जिसके द्वारा वह किसी कानून के पालन करने के बन्धन से किसी को मुक्त कर सकता है और उसने यह घोषणा की वह अपने इस विशेषाधिकार का प्रयोग पार्लियामेंट की सहमति से डिसेन्टरों को धार्मिक प्रतिबंध से मुक्त करने के लिये करेगा परन्तु पार्लियामेंट इसके लिए तैयार नहीं हुई । अतः उसका यह प्रयत्न असफल रहा। दस वर्ष के बाद राजा से पुनः ध ार्मिक अनुग्रह की घोषणा की और इस बार उसने बिना पार्लियामेंट के स्वीकृ त सभी धार्मिक प्रतिबंध संबंधी कानूनों को स्थगित कर दिया।
इस घोषणा के कारण पार्लियामेंट के 40 कानून स्थगित हो गये। पार्लियामेंट ने

इस का विरोध किया।
इस पर राजा ने अपनी घोषणा वापस ले ली। अब राजा ने यह समझ लिया कि विशेषाधिकार के प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा वह कैथोलिकों को सुविधा नहीं दे सकता है। इसलिए उसने शासन में राजा की शक्ति सर्वोच्च बनाने का निश्चय किया। के
टेस्ट ऐक्ट या परीक्षा नियम— सन् 1663 ई० इस नियम तक पार्लियामेंट को स्पष्ट पता चला गया कि राजा का झुकाव कैथोलिकों की ओर है। उसका भाई जेम्स द्वितीय तो खुलकर अपने को कैथोलिक कहता था। अतः पार्लियामेंट ने कैथोलिकों के खतरे को रोकने के लिए सन् 1677 ई० में पार्लियामेंटी टेस्ट एक्ट अनुसार पार्लियामेंट के सभी सदस्यों को इसी प्रकार शपथ लेना अनिवार्य कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि कैथोलिक मत मानने वाले व्यक्ति सरकारी पद पर या पार्लियामेंट में कहीं भी न रह सके। उनहें सभी जगह अपना स्थान छोड़ना पड़ा। इसी एक्ट के कारण चार्ल्स के भाई जेम्स को भी नौ सेनापति के पद से हटना पड़ा। कबाल के दो मंत्री क्लिफोर्ड तथा आग्लिटन को त्याग—पत्र देना पड़ा, जिससे कबाल मंत्रि—मंडल का पतन हो गया।
एक्ट क्लजन बिल या बहिष्कार बिल — इसी समय टाइटस ओट्स द्वारा पोपिश फ्लॉट के संबंध में फैलाई गई झूठी अफवाह के कारण चार्ल्स ने कैबोलियर पार्लियामेंट को भंग कर दिया परन्तु नई पार्लियामेंट में उसके विरोधियों की संख्या और भी अधिक थी। इस पार्लियामेंट को भंग कर दिया। तीन बार पार्लियामेंट में यह बिल पेश किया गया और तीन बार चार्ल्स ने पार्लियामेंट को भंग कर बिल पास नहीं होने दिया। चार्ल्स को अपने भाई को बचाने का एक ही साधन था— पार्लियामेंट को भंग करना। उसने यह भी नहीं कहा कि पार्लियामेंट को गद्दी के हकदार को बदलने का वैधानिक अधिकार नहीं है ।
पार्टी प्रथा का जन्म — धार्मिक झगड़े को लेकर ही इंग्लैंड में राजनीतिक पार्टियों का भी जन्म हुआ और तब से आज तक उन्हीं सिद्धान्तों पर इंग्लैंड को दोनों बड़ी पार्टियाँ स्थापित है। जिन सिद्धान्तों पर सत्रहवीं
शताब्दी में उनका जन्म हुआ था। राजा तथा इंग्लिकन चर्च के समर्थक जो कन्ट्री पार्टी कहलाते थे अनुदार विचार के व्यक्ति थे। इनके विरोधी जो कन्ट्री पार्टी कहलाते थे, सुधारवादी थे। ऐक्ट—क्लूजन बिल के समय चार्ल्स ने देखा कि पार्लियामेंट में उसके विराधियों की संख्या अधिक है, इसलिये चुनाव के पश्चात् भी वह पार्लियामेंट में बैठक को टालना चाहता था । सम्राट के विरोधि ायों ने बैठक करने के लिये राजा के पास प्रार्थना—पत्र भेजना प्रारम्भ किया। वे आवेदन—पत्र भेजने वाले च्मजपजपवदमते कहलाये। दूसरी ओर वे सदस्य थे जो पार्लियामेंट द्वारा राजा के अधिकार — क्षेत्र में हस्तक्षेप को अनुचित समझते थे और इस च्मजपजपवदमते को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए इनको ।ईीवमतमे अर्थात घृणा करने वाले कहा गया,
यहीं च्मजपजपवदमते और ।ईीवतमते अन्त में बिग और टोरी दल के नाम से विख्यात हुए ।

निरंकुश शासन– चार्ल्स द्वितीय ने चार साल निरंकुश शासन किया। यह सन् 1681 से सन् 1685 ई० तक का काल था । चार्ल्स से सन् 1681 ई० में एक ही सप्ताह के बाद पार्लियामेंट को भंग कर दिया। इसका कारण यह था कि पार्लियामेंट एक्टक्लूजन बिल पास करने वाली थी। इस समय फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें से उसकी गुप्त संधि हो गई। इस गुप्त संधि के आधार पर उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलने लगी। इस कारण उसे पार्लियामेंट के सम्मुख हाथ पसारने की आवश्यकता न पड़ी । पोषिश प्लांट के कारण भी राजा के पक्ष में एक तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। हाई हाउस प्लांट भेद खुलने के बाद विरोधी दल बिल्कुल निरंकुश बना लिया। अपने शासन के अंतिम चार वर्षों में वह ट्यूडरों की तरह ही निरंकुश हो गया।

राजा ने पराज्य स्वीकार कर कैथोलिकों को सुविधा देने का प्रयत्न छोड़ दिया। दूसरी बात यह थी कि उसका निरंकुश शासन संस्था के रूप में न था और न इसे किसी प्रकार की मान्यता ही प्राप्त हुई थी। विरोधी दल के अभाव के परिणामस्वरूप वह कुछ काल के लिए निरंकुश शासन करने में सफल हो सका। लंदन तथा अन्य बड़े नगरों में विरोधी दल की शक्ति बहुत अधिक थी । इसलिए चार्ल्स द्वितीय ने इन शहरों का अधिकार – पत्र छीन लिया। इन नये अधिकार – पत्र में थोड़े लोगों को नगरपालिका अधिकार दे दिये गये थे तथा नगर पालिका शासन का अधिकार प्रत्येक नगर में ऐसे ही व्यक्तियों को दिया गया जिसमें राजा का पूर्ण विश्वास था। राजा के पास संयुक्त आवेदन–पत्र देने के अधिकार पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। राजा का विरोध करना पाप समझा जाने लगा था । पार्लियामेंट को निर्धारित समय पर न बुलाने की तैयारी भी कर ली गई थी। इस प्रकार निरंकुश शासन करने का बलात् प्रयत्न चार्ल्स ने किया, किन्तु वास्तविकता यह थी कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में आकर इस प्रकार के प्रयत्न के सफल होने की कोई आशा न थी। संयोग से चार्ल्स की मृत्यु हो गई और उसके पश्चात् जेम्स द्वितीय जैसे मूर्ख और हठी राजा का राज्यारोहण हुआ, जिसने अपनी अदूरदर्शिता और अधीनता के आधार पर बना–बनाया खेल बिगाड़ दिया।

वैधानिक प्रगति

बन्दी प्रत्यक्षीकरण या हैबियस कॉरपस एक्ट– चार्ल्स की दूसरी पार्लियामेंट ने विरोधी दल के नेता के सुप्रसिद्ध हैबियस कॉरपस एक्ट सन् 1679 ई० में पास किया। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना अदालती जाँच के अनिश्चित काल के लिये जेलों में बंद नहीं रखा जा सकता था। किसी गिरफ्तार व्यक्ति को राजा के न्यायालय से भ्ंइमें ब्वतचने अथवा बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लेख प्राप्त करने का अधिकार था। भ्ंइमें ब्वतचने लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है– जेंज लवन िंअम ं इवकल इस लेख के द्वारा जेलर के कैदी के न्यायालय में पेश करने का आदेश दिया जाता है, ताकि न्यायालय यह तुरन्त देश सके कि उसे कैद में रखना उचित है या नहीं। इसका महत्व खासकर इसलिए अत्यधिक था कि इस लेख के बाद कैदी को अदालत में पेश करना आवश्यक था। दूसरी ओर

किसी कैदी के माँग करने पर न्यायाधीश के लिये भी यह लेना–देना अनिवार्य था। जमानत पर कैदियों को छोड़ने की प्रथा भी प्रारम्भ की गई। इस प्रकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता की दृष्टि से यह कानून के पश्चात् भी अरावेला स्टुअर्ट इलियट, वेलनटाइन, स्ट्रीट इत्यादि जेलों में तब तक सड़ते रहे जब तक कि उनकी मृत्यु अथवा क्रांति ने उन्हें मुक्ति न दिलाई। इससे ज्ञात होता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता की समस्या अब भी शेष थी ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस.िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

77

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस.िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

78

डैनवी पर महाभियोगः कबाल के पतन के पश्चात् सम्राट ने सर टामस आसबर्न को जो बाद में लार्ड डैनवी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध चार्ल्स की आज्ञानुसार फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें से धन प्राप्त करने के उद्देश्य से एक गुप्त पत्र लिखा था। चूँकि डैनवी राजा की फ्रांसीसी नीति का विरोधी था, अतः लुई ने डैनवी का पतन कराने के लिये यह पत्र इंग्लैंड की कॉमन सभा में भेज दिया। अब कॉमन सभा आगबबूला हो उठी। उसने डैनवी पर महाभियोग चलाया। डैनवी ने सम्राट की आज्ञा का सहारा लेकर वचने का प्रयत्न किया परन्तु कॉमन सभा ने राजाज्ञा के आधार पर उसे नहीं छोड़ा, तब डैनवी ने अपनी जान बचाने के लिए राजा का क्षमा– पत्र पेश किया। परंतु कॉमन सभा ने कहा कि राजा के क्षमा– पत्र से किसी अभियुक्त की जाँच को कॉमन सभा में रोका नहीं जा सकता। इसके पश्चात् ।बज व ैमजजसमउमदज में स्पष्ट भी किया गया। चार्ल्स ने डैनवी को बचाने के लिये पार्लियामेंट को भंग कर दिया। परन्तु दूसरी पार्लियामेंट जब तक बैठी तो उसने पुनः डैनवी की जाँच इस सिद्धान्त पर प्रारम्भ की कि पार्लियामेंट के भंग होने से ही महाभियोग जो प्रारम्भ हो चुका वह समाप्त नहीं किया जा सकता । अनत में डैनवी को पार्लियामेंट ने सजा देकर यह सिद्ध कर दिया कि राज्यमंत्री पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी है, न कि राजा के प्रति। साथ ही डैनवी की जाँच ने महाभियोग के अस्त्र में जुलो त्रुटियाँ थीं, उन्हें सदैव के लिये समाप्त कर दिया। अब कोई मंत्री अपने को पार्लियामेंट से बचा नहीं सकता था । किन्तु कैबिनेट प्रथा के प्रारम्भ के पश्चात् महाभियोग की आवश्यकता हो जाती रही, क्योंकि उसके पश्चात् मंत्री पार्लियामेंट के प्रति सिद्धान्ततः ही उत्तरदायी हो गयी ।

आय – व्यय की जाँच की तालिका – कार्यपालिका पर पार्लियामेंट्री नियंत्रण

का आधुनिक तरीका यह है कि पार्लियामेंट धन स्वीकृत करते समय उसे किसी विशेष पद हेतु स्वीकृत करती है कि और फिर स्वीकृत धन के व्यय जाँच बड़ी तत्परता के साथ करती है। यह तरीका वास्तव में चार्ल्स द्वितीय के राज्य–काल से ही प्रारम्भ हुआ। वैसे तो चार्ल्स के पहले भी एक आध बार धन स्वीकृति के समय पार्लियामेंट ने इसका उद्देश्य निश्चित कर दिया था किंतु उसकी कोई भी परम्परा निर्धारित न हो सकी थी । सन् 1665 में कैबोलियर, कॉमन सभा ने राजा को धन स्वीकृति करते समय यह स्पष्ट कर दिया कि वह धन डचों से युद्ध के हेतु ही दिया गया है। दूसरे वर्ष भी ऐसा ही किया गया। तीसरे वर्ष सन् 1667 में इसने दिये हुए धन के खर्च की जाँच के लिए यह कानून पास किया जिसके अनुसार सरकारी खर्च की जाँच के लिए ।बबवनदजे ब्वउउपे. `पवदमत नियुक्त किये गए। इस कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर नौ– सेना के खजाँची जॉर्ज कारट्रेट की कॉमन सभा से निकाल दिया गाया चूँकि उसने बिना उचित प्रकार के ही रुपया दे दिया था, जो अवैधानिक था। हाईड अर्ल ऑफ कैलेरेन्डन ने, जो इस समय प्रधानमंत्री था,

कॉमन सभा के इस कार्य – विस्तार को रोकना चाहा किन्तु सन् 1868 ई० में कॉमन सभा ने उस पर भी राजद्रोह का महाभियोग चलाकर उसे देश छोड़ने के लिए बाध्य किया। यह घटना इंग्लैंड के वैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण है। कार्यपालिका के व्यय की जाँच करने का यह अधिकार भी आधुनिक कॉमन सभा की शक्ति का मूल स्रोत है। कॉमन सभा में अधिकार के कारण कैबिनेट उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हो सका ।

लार्ड टेम्पुल की कमेटी तथा कबाल के निर्माण द्वारा कैबिनेट प्रथा का बीजारोपण – चार्ल्स द्वितीय के शासन काल में कॉमन सभा ने सरकारी खर्च की जाँच करने की प्रथा द्वारा जहाँ एक ओर कैबिनेट उत्तरदायित्व का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, वहाँ दूसरी ओर हिग और टोरी पार्टियों के निर्माण द्वारा कैबिनेट प्रथा को चलाने की शक्ति तैयार हुई। चार्ल्स द्वितीय के शासन काल में ही इन कैबिनेट का बाहरी ढाँचा भी तैयार करना आरम्भ किया गया। शासन– कार्य अब तक प्रिवी कौंसिल के शासन – काल तक इतना विशाल हो गया था कि इसका इससे सर्वदा सलाह लेना संभव नहीं था । अतः राजा इसके प्रमुख सदस्यों से सलाह ले लेता था। कभी–कभी बाहरी आदमियों से भी सलाह लेता था। इस युग में लोगों में इस आवश्यकता का अनुभव किया कि राजा और पार्लियामेंट के बीच एक ऐसी संस्था का होना आवश्यक है जो दोनों के बीच की कड़ी का काम करे और जिसे दोनों का सहयोग प्राप्त हो। इसलिए लार्ड टेम्पुल की सलाह के अनुसार राजपक्ष और विरोधी दल दोनों को मिलाकर एक कमेटी बनाई गई। यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। वास्तव में आधुनिक कैबिनेट प्रथा का बीज संयुक्त मंत्रिमंडल में था भी नहीं, परन्तु सिद्धान्त रूप में यह बात लोग समझने लगे कि एक ऐसी संस्था का होना आवश्यक है, जिसके जरिये कार्यपालिका और विधान मंडल एक ही नीति का अनुसरण करें।

सारांश

महारानी एलिजाबेथ प्रथम का उसकी संसद के साथ सम्पूर्ण शासन काल में मध ुर संबंध बना रहा। वार्नर एवं मार्टिन महोदय का कथन है कि '' रानी शासनरूपी नौका खेती रही और संसद मूकदर्शक बनी देखती रही। जब संसद को यह बात भली–भाँति समझ में आ जाती कि रानी ठीक मार्ग पर नहीं चल रही है, तभी वह उसके कार्यों में दखल देने की कोशिश करती । वास्तव में उनकी समझ में रानी सचमुच गलत मार्ग पर थी, जब उसने विवाह न करने का निश्चय कर राज्य सिंहासन को उत्तराधिकार से वंचित रखा । ''

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. चार्ल्स प्रथम स्पेन का एक महत्वपूर्ण शासक था। वह यूरोप के इतिहास में अपनी विशाल विरासत के लिए शार्लमा एवं नेपालियन के समान महत्व रखता है। उसकी शिक्षा–दीक्षा नीदरलैण्ड में हुई थी तथा उसे जर्मन या स्पेनिश भाषा का ज्ञान नहीं हुआ था वह स्वयं को अपने देश का राजकुमार समझता था। कहना न होगा कि प्रारम्भ में वह देशविहीन राजा था।

2. इस प्रकार चार्ल्स का सारा समय विभिन्न संघर्षों एवं समस्याओं में ही व्यतीत हुआ। 1556 ई० में उसने साम्राज्य से मुक्त होने का निर्णय लिया। उसने अपने साम्राज्य का विभाजन कर दिया। उसने अपने पुत्र फिलिप द्वितीय को स्पेन, नीदरलैंड, इटली के राज्य एवं अमेरिका के उपनिवेशों आदि का शासक नियुक्त किया। उसने अपने भाई फर्डीनेंड को यूरोप का राज्य दे दिया । चार्ल्स स्पेन का एक महत्वाकांक्षी एवं कर्तव्यनिष्ठ शासक था। उसके काल में स्पेन की आर्थिक समृद्धि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। उसने बिखरे हुए स्पेनी साम्राज्य में एकता लाने का भरपूर प्रयास किया। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप जर्मनी, नीदरलैण्ड एवं स्पेन में पूँचीवाद का विकास हुआ वह मानवतावादी विचारधारा का समर्थक था। उसे कला एवं संगीत में भी गहरी अभिरुचि थी।

3. लुई चौदहवाँ फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र का सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण था । उसकी प्रसिद्ध उक्ति थी– '' मैं ही राज्य हूँ। मेरे शब्द ही कानून हैं। '' कहना न होगा कि उसके शासन काल में निरंकुशवाद फ्रांस में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। अपने पिता की मृत्यु के समय मात्र वह पाँच वर्ष का था। उसकी अल्पवयस्कता के कारण उसका प्रधानमंत्री कार्डिनल मेजारिन फ्रांस का भाग्य विधाता था । 1661 ई० के बाद उसने शासन का कार्यभार स्वयं संभाला तथा कोल्बर्ट नामक योग्य व्यक्ति को वित्तमंत्री नियुक्त किया। उसका शासन–काल लुई – चौहदवें का युग के नाम से जाना जाता है। लुई राजकीय निरंकुशवाद के सिद्धान्त का कट्टर समर्थक था ।

लुई की शिखा फ्रांसीसी बिशप बोसेत (ठवेनमज) के द्वारा हुई थी जिसने उसके मस्तिष्क पर दैवी अधिकार के सिद्धान्त को अटूट रूप से स्थापित कर दिया था। उसका मानना था कि राजा पवित्र, प्रजा का पिता, असीमित शक्ति – सम्पन्न एवं पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि होता है। इसके अनुसार राजा का विरोध ईश्वर

का विरोध होता है। राजा अपने सभी कार्यों के लिए ईश्वर के प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार लुई निरंकुश राजतंत्र का कट्टर समर्थक था । यूरोप के इतिहास में शायद ही कोई सम्राट इतना निरंकुश था जितना कि लुई चौदहवाँ । लुई ने अपने निरंकुश राजतंत्र को क्रियान्वित करने के लिए अनेक उपायों का सहारा लिया।

4. आर्थिक सुधार – लुई चौदहवाँ का योग्य वित्तमंत्री कोल्बर्ट था । कोल्बर्ट का मध्यमवर्गीय परिवार का था। वह एक स्वामिभक्त मंत्री साबित हुआ। वह बीस वर्षों तक अपने राजा, देश तथा अपने वर्ग के हितों के लिए अथक परिश्रम करता रहा। वह प्रतिदिन 16 घण्टे कार्य करता था। उसके समान अर्थशास्त्री एवं स्वामिभक्त मंत्री मिलना लुई चौदहवाँ का सौभाग्य था ।

रिक्त राजकोष कोल्बर्ट के लिए सबसे बड़ी समस्या थी । अतः उसने कुछ सुध ाारात्मक कदम उठाये–

ेमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

79

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

1. विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग एवं करों से मुक्त लोगों पर फिर से कर लगाने की व्यवस्था की गयी । 2. उसने अनेक ऋणों की वैधता को समाप्त कर दिया तथा सूद की दरें कम कर दीं।

3. जिन लोगों ने कर वसूली में बेईमानी की थी, उनका पता लगाया गया तथा उनसे बड़ी राशि

अभ्यास–प्रश्न

1.

16वीं शताब्दी में यूरोपीय राज्यों के उदय तथा विकास के क्या कारण थे?

2. चार्ल्स प्रथम के समय स्पेन की विदेश नीतियों की समीक्षा करो?

3.

लुई चौदहवाँ के अधीन फ्रांस की आन्तरिक प्रगति की समीक्षा करें।

4. इंग्लैण्ड में ट्यूडर राजाओं की निरंकुशता के कारणों की विवेचना कीजिये ।

5.

इंग्लैंड में 17वीं शताब्दी में पार्लियामेंट तथा शासन के मध्य संघर्ष का स्वरूप क्या था? वर्णन करें।

ेमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

80

6.

महारानी एलिजाबेथ की गृह एवं विदेश नीति को समीक्षा करें।

7. इंग्लैण्ड में गृह युद्ध के कारणों का एवं परिणामों का वर्णन करें ।

8. चार्ल्स द्वितीय स्टुअर्ट के समय पार्लियामेंट एवं संविधान के विकास पर टिप्पणी लिखें।

अध्याय – 4

आधुनिक पाश्चात्य जगत के आर्थिक स्रोत

इस अध्याय के अन्तर्गत :

□ वाणिज्यवाद की उत्पत्ति एवं परिभाषा

आर्थिक वातावरण की अनुकूलता

वाणिज्यवाद एवं इसका मूल्यांकन

□ उपनिवेशवाद का उदय, औद्योगिक क्रान्ति के कारण एवं

राष्ट्रवाद का उदय

,

औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र तथा परिणाम

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :

वाणिज्यवाद की उत्पत्ति एवं परिभाषाएँ जान सकेंगे आर्थिक वातावरण की अनुकूलता समझ सकेंगे

वाणिज्यवाद का विश्लेषण कर सकेंगे तथा इसका मूल्यांकन कर सकेंगे

□ उपनिवेशवाद के उदय का कारण समझ सकेंगे तथा औद्योगिक क्रान्ति के कारण एवं राष्ट्रवाद के उदय की समीक्षा कर सकेंगे औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र तथा परिणाम की व्याख्या कर सकेंगे

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

81

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

82

वाणिज्यवाद (डमतबंदजपसपेउ)

परिचय

पुनर्जागरण का युग मध्यकाल के अवसान तथा आधुनिक काल के आगमन की सीमा विभाजक रेखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। पुनर्जागरण ने राजनीतिक निरंकुशता एवं धर्मांधता के समक्ष प्रश्नवाचक चिन्ह उपस्थित कर दिया था। जब राजनीति एवं धर्म को तार्किकता की कसौटी पर परखने का प्रयास आरम्भ हुआ तो मानव जीवन के सभी पक्षों में उथल–पुथल अथवा गतिशील आयी । वाणिज्यवाद का सिद्धान्त और व्यवहार स्पष्ट रूप से पुनर्जागरण की विचारधारा का अभिन्न अंग रहा है। इसे सही अर्थों में आधुनिक युग का संवाहक कहा जाना प्रासंगिक है। इसे अनेक समाजशास्त्रियों ने वाणिज्यिक क्रान्ति के रूप में परिभाषित किया है। यूरोप में भौगोलिक खोजों

के पीछे दो ही उद्देश्य प्रमुख रहे, पहला धर्म प्रचार तथा दूसरा व्यापार । यूरोप के साहसी नाविक या तो पोप की आज्ञा से देशों
सुदूर में धर्म–प्रचार हेतु समुद्री यात्रा पर निकले अथवा राजाज्ञा द्वारा व्यापारिक क्रियाओं के लिये समुद्र पार यात्रायें कीं। एक स्थिति यह आयी कि जो धर्म प्रचार हेतु निकले थे। वे धनार्जन के कार्य में संलग्न हो गये। यह अध्यात्म के ऊपर अर्थ की विजय थी, जिसने वाणिज्यवाद को गति प्रदान की ।

उत्पत्ति एवं परिभाषा

——

वाणिज्यवाद की उत्पत्ति के सम्बंध में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इस प्रवृत्ति का आरम्भ चौदहवीं सदी के आन्त से मानते हैं जबकि सर्वमान्य मत सोलहवीं से अठारहवीं सदी के काल को वाणिज्यवाद की विचारधारा का युग मानते हैं। यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चौदहवीं व पन्द्रहवीं सदी में वाणिज्यवाद का अंकुरण हो चुका था एवं सोलहवीं से अठारहवीं सदी के अन्त तक वाणिज्यवाद ने सम्पूर्ण यूरोप की अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति एवं राजनीति को प्रभावित किया एवं यह आधुनिक काल का संवाहक बना । वाणिज्यवाद को परिभाषित करने का प्रयास इसके समर्थकों ने कभी नहीं किया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्कॉटलैण्ड के अर्थशास्त्री एडम स्थिम ने 1776 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' में किया। इसके माध्यम से एडम स्मिथ ने वाणिज्यवाद की कटु आलोचना की है। सत्रहवीं सदी में इसके प्रखर समर्थकों में इंग्लैंड के थॉमस मून एवं सर जैम्स स्टुअर्ट फ्रांस के जीन वैपटिस्ट कॉलबर्ट तथा इटली के एन्टोनियो सेरा प्रमुख रहे हैं। इन्होंने कभी भी वाणिज्यवाद शब्द का प्रयोग न करते हुये इसके समर्थक विचार प्रतिपादित किये, संक्षेप में वाणिज्यवाद के बारे में यह कहा जा सकता है कि सोलहवीं से अठारहवीं सदी के यूरोप में समान रूप से प्रचलित वह आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यवहार था जो राजकीय नियमों के द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अनुकूल प्रोत्साहित किया गया जिसके पीछे किसी भी शक्तिशाली राष्ट्र के विकास की भावना कार्य कर रही थी ।

वाणिज्यवाद शब्द की उत्पत्ति वाणिज्य के माध्यम से किसी राष्ट्र में अधिकाधिक सम्पदा प्राप्त करने से हुई हैं अर्थात व्यापार को एक मुहिम या अभियान के रूप में संचालित करने को वाणिज्यवाद कहा गया है। यूरोप के विभिन्न देशों के विचारकों ने इस सम्बन्ध में जो विचार प्रतिपादित किये, वे वाणिज्यवाद के नाम से जाने जाते हैं। राजकीय नियन्त्रण के अन्तर्गत वाणिज्यवाद की विचारधारा पनपी ।

वाणिज्यवाद के उदय के कारण

वाणिज्यवाद को वाणिज्यक क्रान्ति के नाम से भी परिभाषित किया गया है। इसने जहाँ दो सदियों तक यूरोप को प्रभावित किया वहीं इसने आधुनिक युग को गति प्रदान करने वाली औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया । अतः इसके उदय के कारणों पर निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत प्रकाश डाला गया है।

पुनर्जागरण

14वीं एवं 15वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में घटित पुर्नजागरण ने परम्परागत जीवन–शैली को प्रभावित किया । अध्यात्म के नाम पर जो जड़वादी प्रवृत्तियाँ समाज को जकड़े हुई थीं, पुनर्जागरण ने भौतिक विचार को मानववादी विचार में परिवर्तित किया । पुनर्जागरण काल की भौगोलिक खोजें और वैज्ञानिक आविष्कार

मानव सभ्यता को आगे की ओर ले जाने वाले कारक बने । अब पारलौकिक जीवन के स्थान पर इहलौकिक अथवा सांसारिक जीवन को अधिक महत्व दिया जाने लगा । भौतिक सुख–समृद्धि को महत्व दिया जाने लगा जो धन–दौलत द्वारा सहज प्राप्य था। धन–दौलत प्राप्त करने का साधन वाणिज्य था जिसने वाणिज्यवाद को जन्म दिया। कोलम्बस और वास्कोडिगामा जैसे साहसी नाविकों के समुद्री मार्ग से नये देशों की खोज ने वाणिज्यवादी गतिविधियों में संलग्न लोगों को भरपूर क्षेत्र उपलब्ध करवाया। यूरोप के पुर्तगाली, डच, फ्रान्सीसी तथा अंग्रेजों ने अमेरिका, एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित किये। इनके द्वारा संचालित लाभदायक व्यापार ने यूरोप के सभी देशों को व्यापारिक क्रियाओं में संलग्न कर उत्साहित किया।

धर्म–सुधार आन्दोलन

धर्म–सुधार आन्दोलन भी सोलहवीं सदी के प्रारम्भ की एक बहुत बड़ी घटना थी । जहाँ एक ओर धर्म–सुधार आन्दोलन ने अंधविश्वासी सोच को कमजोर दिया, वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिक सोच को जन्म दिया । धर्म–सुधार आन्दोलन ने राज्य पर चर्च नियन्त्रण को कमजोर बनाया । व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर भी धर्म का अंकुश ढीला पड़ा जिसने भौतिकवादी व वैज्ञानिक विचारधारा को जन्म दिया। इहलोक में कष्ट पाकर परलोक में सुख प्राप्त करने की विचारधारा के स्थान पर वर्तमान सांसारिक जीवन में सुख प्राप्त करने की लालसा अधिक बलवती हुई जो आर्थिक क्रियाओं की संवृद्धि से ही पूर्ण हो सकती थी । इसी ने वाणिज्यवादी विचारधारा के अनुकूल माहौल उत्पन्न किया ।

जनसंख्या में वृद्धि

पुनर्जागरण काल में यूरोप की जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई । बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आर्थिक विकास आवश्यक हो गया था। वैज्ञानिक आविष्कारों ने कृषि में उत्पादन बढ़ाने की अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं। कृषि के अतिरिक्त प्रमुख आर्थिक क्षेत्र व्यापार ही हो सकता था। इससे यूरोप के राष्ट्रों में आन्तरिक व्यापार बढ़ा जिसने विदेशी व्यापार का मार्ग प्रशस्त किया। विदेशी व्यपार अधिक लाभदायक, आकर्षक व साहसिक कार्य था जिसने अधिक–से–अधिक लोगों को अपनी ओर मोड़ा।

राजनीतिक सोच में परिवर्तन

पुनर्जागरण एवं धर्म–सुधार आन्दोलन ने नई सोच को जन्म दिया। राजनीतिक सोच में परिवर्तन इसी का परिणाम कहा जा सकता है। अब आदर्श राजा और राज्य की चर्चा होने लगी। मध्यकालीन राजनीतिक व धार्मिक वर्जनाओं ने यूरोप

के निवासियों के जीवन को सीमित और संकुचित बना दिया था। नये राजनीतिक सोच के अन्तर्गत चर्च की शक्ति के स्थान पर राज्य की शक्ति को महत्व प्राप्त हुआ । मैकियावली ने अपनी कृति 'द प्रिन्स' में स्पष्ट किया कि लोकप्रिय शासक को अपने कार्यों में नैतिकता की आवश्यकता नहीं है, बशर्ते कि वह राज्य के हित में उचित कार्य करना चाहता हो। राज्य का कार्य अपनी शक्ति को बढ़ाना और भौतिक संवृद्धि करना माना गया। इस समय शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यों का उत्थान हुआ। राष्ट्रीय राज्यों को और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये मूल्यवान धातु और सम्पदा संचय को आवश्यक माना गया जिसने वाणिज्यवाद को न केवल जन्म दिया बल्कि गति प्रदा की ।

झ

आर्थिक वातावरण की अनुकूलता

—

उपर्युक्त बिन्दुओं से यह स्पष्ट है कि पुनर्जागरण, धर्म–सुधार, जनसंख्या वृद्धि, राजनीतिक सोच इत्यादि ने अनुकूल आर्थिक वातावरण उत्पन्न किया। जिसने वाणिज्यवाद को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। मध्यकालीन यूरोप में आन्तरिक व्यापार का माध्यम वस्तु विनिमय था, किन्तु 16वीं सदीं में मुद्रा के प्रचलन ने व्यापार के आकार और स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया । आन्तरिक और विदेशी व्यापार एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते, जहाँ विदेशी व्यापार की प्रगति आन्तरिक व्यापार को गति देती है वहीं आन्तरिक व्यापार की प्रगति विदेशी व्यापार को गति देती है । 16वीं सदी में बैंकों का जन्म हुआ तथा

पश्चिमी विश्व

छव्ज़ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

83

पश्चिमी विश्व

छव्ज़ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

84

बैंकों ने आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार के संवर्धन तथा पूँजी संचय व निर्माण में भारी सहायता प्रदान की, जिससे वाणिज्यवादी विचारधारा व व्यवहार बलवती हुआ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 14वीं एवं 15वीं सदी में घटित पुनर्जागरण वाणिज्यवाद के विकास का प्रमुख कारक था। इसी की धुरी पर आधुनिक युग का चक्र घूमने लगा । तत्कालीन ऐतिहासिक शक्तियों व परिस्थितियों ने वाणिज्यवाद को जन्म दिया। हम चाहे इसकी कितनी भी आलोचना करें। किन्तु इस तथ्य से नकार नहीं सकते कि इसने एक युग में प्रगतिशील भूमिका निभाई, जिसने मानव समाज के विकास को गतिशीलता प्रदान की ।

वाणिज्यवाद एवं मूल्यांकन

वाणिज्यवाद एक युग की लोकप्रिय विचारधारा रही जिसके इर्द–गिर्द यूरोप की अर्थव्यवस्था संचालित होती रही। वाणिज्यवाद के अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के सामयिक एवं दूरगामी परिणाम निकले, जिन्होंने विश्व इतिहास को लम्बे समय तक प्रभावित किया। इसके परिणामों अथवा प्रभावों का बिन्दुवार विवरण निम्नानुसार है–

उपनिवेशवाद का उदय

वाणिज्यवादी सिद्धान्त के अनुसार व्यापार के माध्यम से अधिकाधिक सम्पदा संचय करना था । यह विदेशी अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से सम्भव था । विदेशी व्यापार के माध्यम से वाणिज्यवादी शक्तियों ने अपने उपनिवेश अथवा बाजार स्थापित किये। इन उपनिवेशों का वाणिज्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये खुलकर पोषण और धन दोहन किया जाने लगा । औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् उपनिवेशवाद और अधिक विस्तृत हो गया था। उपनिवेशों का उपयोग निर्मित माल के उपभोक्ता बाजार तथा कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले स्रोत के रूप में किया जाने लगा। इसी उपनिवेशवाद का विकसित रूप अन्तर्राष्ट्रीय शोषक और उत्पीड़क साम्राज्यवाद के रूप में अस्तित्वमान हुआ । औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के मध्य व्याप्त अन्तर्विरोधों के परिणमस्वरूप दो विनाशक विश्वयुद्ध हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् नव उपनिवेशवाद एवं नवसाम्राज्यवाद संसार में गरीब और अविकसित राष्ट्रों का आर्थिक पोषण कर रहा है। ऐसी अमानवीय उपनिवेशवादी सिद्धान्त और व्यवहार को जन्म दिया। वाणिज्यवाद ने। 16वीं से 18वीं सदी के दौरान पुर्तगाली, डच, फ्रान्सीसी, अंग्रेज, स्पेनवासी, हॉलैण्डवासी आदि यूरोपीय शक्तियों ने एशिया, अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों में उपनिवेश स्थापित किये। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध ा में जर्मनी और इटली जैसे देश भी उपनिवेशों की स्थापना की होड़ में सम्मिलित हुए ।

मध्यमवर्ग का उदय

वाणिज्यवादी प्रवृत्तियों एवं गतिविधियों के संचालन में संलग्न नये वर्गों का उदय एक स्वाभाविक परिणाम था। यह नवोदित मध्यवर्ग आधुनिक काल का संवाहक बना। वाणिज्यवाद को प्रारम्भिक समर्थन सामंती एवं राजतन्त्रात्मक व्यवस्थाओं से प्राप्त हुआ, किन्तु एक समय बाद मध्यमवर्ग अस्तित्व में आया। यह मध्यम वर्ग सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन का अगुवा बन गया । मध्यम वर्ग की आवश्यकतायें परम्परा से अलग हटकर थीं, इसी ने सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

आर्थिक जीवन की गतिशीलता

वाणिज्यवाद के जन्म के पूर्व परम्परागत सामन्तवादी कृषि अर्थव्यवस्था सदियों से चली आ रही थी । वाणिज्यवाद के जन्म के परिणामस्वरूप विपणन, मण्डी, बाजार मुद्रा, बैंकिंग अथवा महाजनी जैसी आर्थिक क्रियाएँ अस्तित्व में आयीं जिन्होंने आर्थिक जीवन को गतिशीलता प्रदान की । परम्परागत अर्थव्यवस्था में जो लम्बी जड़ता आ गयी थी वह वाणिज्यवाद के प्रभाव में समाप्त हो गयी ।

औद्योगिक क्रान्ति

वाणिज्यवाद को औद्योगिक क्रान्ति के प्रमुख कारकों में से एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। वैसे आर्थिक जीवन में उत्पन्न हुई गतिशीलता का स्वाभाविक परिणाम था । औद्योगिक क्रान्ति । वाणिज्यवाद के
परिणामस्वरूप यूरोप में भारी धन–संचय हुआ जिसने उद्योगों हेतु पर्याप्त धन उपलब्ध करवाया। अधिक धन–संचय के कारण व्यापार से इतनी अधिशेष पूँजी का निर्माण हुआ जिससे व्यापारिक पूँजी का औद्योगिक पूँजी में रूपान्तरण हो सका, जिसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया।

भौगोलिक खोजें एवं वैज्ञानिक प्रगति

व्यापारिक क्रियाओं को सफल बनाने के लिये अनेक भौगोलिक खोजें हुईं। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों व देशों के समुद्री मार्ग खोजे एवं विकसित किये गये । व्यापारिक अभियानों को सुगम, सरल एवं सफल बनाने के लिये जल परिवहन के अच्छे साधनों का विकास हुआ, जिसने वैज्ञानिक प्रगति को सहायता प्रदान की । व्यापारिक क्रियाओं के माध्यम से विश्व ज्ञान का जो आदान–प्रदान हुआ वह विज्ञान के विकास में
सहायक रहा।

नवीन राजनीतिक विचारधारा का विकास

मध्यकालीन यूरोप में चर्च की सत्ता के साथ – साथ निरंकुश राजतन्त्रात्मक सामन्ती व्यवस्था का बोलबाला था । वाणिज्यवाद के अनुकूल मध्यकलीन राजनीतिक व्यवस्था अपर्याप्त थी। नये व्यापारिक मध्यमवर्ग भी परम्परागत राजनीतिक संरचना में सहजता का आभास नहीं कर पा रहा था। अतः नये सन्दर्भों में नवीन राजनीतिक विचारों का जन्म हुआ। जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को समर्थन मिला तथा अनेक संकीर्ण राजनीतिक वर्जनाओं का अन्त हुआ अथवा ढीली पड़ी राजनीतिक कठोरता के स्थान पर उदारता की ओर सोच बढ़ने लगी जिससे अनेक राजनीतिक परिवर्तन भी आये । इंग्लैण्ड में घटित 1688 की रक्तहीन क्रान्ति इसका एक जीता–जागता नमूना है।

उपर्युक्त बिन्दुओं से निष्कर्ष निकलता है कि वाणिज्यवाद ने परम्परागत आर्थिक व्यवस्था को झकझोर दिया था जिससे मानव समाज के सभी पक्ष प्रभावित हुए। वाणिज्यवाद से केवल आर्थिक जीवन ही नहीं बल्कि राजनीतिक, सामाजिक जीवन भी प्रभावित हुआ। इससे अनेक विश्व व्यवस्थायें भी उत्पन्न हुईं तथा विज्ञान, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में भी नयी प्रवृत्तियाँ आरम्भ हुईं। वाणिज्यवाद का मूल्यांकन उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर बखूबी किया जा सकता है। यदि एक वाक्य में कहें तो वाणिज्यवाद ने जो उथल–पुथल आरम्भ की उससे विश्व इतिहास के आधुनिक काल का शुभारम्भ हुआ ।

औद्योगिक क्रान्ति

कृषि, हस्तशिल्प (कुटीर उद्योग) अर्थव्यवस्था से उद्योग प्रधान एवं मशीनों द्वारा उत्पादन में परिवर्तन की प्रक्रिया को औद्योगिक क्रान्ति कहा गया हैं। यह अचानक अथवा एक तिथि में घटित न होकर एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम

थी। इसके पूर्व मानव एवं पशु श्रम व ऊर्जा उत्पादन प्रक्रिया के आधार रहे थे। औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ 18वीं सदी में इंग्लैंड में हुआ एवं वहाँ से विश्व के अन्य भागों में इसका प्रसार हुआ। यूँ तो औद्योकि क्रान्ति शब्द का प्रथम प्रयोग फ्रांसीसी लेखकों ने किया, किन्तु औद्योगिक क्रान्ति शब्द को सर्वप्रथम इंग्लैंड के आर्थिक इतिहाकार अर्नाल्ड टॉयनबी (1852–83) ने 1760 से 1840 तक इंग्लैण्ड के आर्थिक विकास का वर्णन करते हुये लोकप्रिय बनाया। टायनबी के समय से यह शब्द व्यापक रूप में प्रयोग में लाया गया। औद्योगिक क्रान्ति ने मानव जीवन को तीव्र गति से अत्यधिक गहरे रूप में प्रभावित किया । सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव सभ्यता क्रमिक रूप से आगे बढ़ी एवं सदियों के अन्तराल में धीमे विकास दृष्टिगोचर हुए किन्तु औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव अधिक तीव्र एवं व्यापक रहा।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण

पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार

इसे यूरोप का नवजागरण कहा जाय तो अधिक उपर्युक्त होगा। इन दोनों घटनाओं का प्रभाव इस अर्थ में महत्वपूर्ण हो जाता है कि अंधविश्वास से मुक्त होकर यूरोपीय समाज प्रकाश की ओर अग्रसर हुआ । भौतिक एवं ताक्रिक विचारों की प्रगति ने विज्ञान के विकास में सहयोग प्रदान किया तथा विज्ञान के विकास ने

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

85

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

86

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी का विकास किया। इसकी ताक्रिक परिणति पहले वाणिज्यवाद एवं बाद में औद्योगिक क्रान्ति के रूप में हुई। यूरोपीय समाज पुनर्जागरण एवं धर्म–सुधार के प्रभाव में आध्यात्मिक व पारलौकिक क्षेत्र के स्थान पर भौतिक एवं इहलौकिक क्षेत्र में विकास की ओर अग्रसर हुआ । भौगोलिक खोजें पुनर्जागरण का कारण और परिणाम दोनों ही था । इस तत्व को औद्योगिक क्रान्ति के सहायक तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है। भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप यूरोप के लोगों को भौतिक एवं मानव संसाधनों का एक विस्तृत खजाना प्राप्त हो गया था।

वाणिज्यवाद

वाणिज्यवाद अथवा वाणिज्यिक क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति का प्रमुख प्रेरक तत्व थी । वाणिज्यवाद के तहत व्यापार वाणिज्य में भारी वृद्धि हुई जिससे यूरोप के व्यपारियों के पास भारी धन सम्पदा संचित हो गयी थी । व्यापार में पूँजी का

आवश्यकता से अधिक धन यूरोप में संग्रहित हो चुका था जिसे अधिशेष धन कहा जा सकता है। इस अधिशेष धन ने व्यापारिक पूँजी का औद्योगिक पूँजी में रूपान्तण का मार्ग साफ किया। व्यापारिक पूँजी विनिमय तुरन्त लाभ प्राप्ति चाहता है। अब व्यापारियों के पास व्यापापारिक पूँजी से अधिक पूँजी उपलब्ध थी जिसका विनिमय लम्बे समय के बाद प्राप्त होने वाले लाभ के लिये किया जा सकता था । संक्षेप में कहा जा सकता है कि 16वीं से 18वीं सदी के दौरान यूरोप में हुई व्यावसायिक क्रान्ति (वाणिज्यवाद) के परिणामस्वरूप यूरोप के देशों ने मुख्यतः विदेशी व्यापार के माध्यम से अथाह धनराशि अर्जित की थी। जिसका उपयोग औद्योगिक विकास में
हुआ।

जनसंख्या में वृद्धि

यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि के कारण रोजी–रोटी के नये–नये तरीकों की खोज होने लगी । बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति के लिये कृषि क्षेत्र में अधिक–से–अधिक उत्पादन बढ़ाना आवश्यक हो गया था। यह विज्ञान एवं तकनीकी के उन्नत साधनों के द्वारा ही सम्भव था । अतः कृषि की उन्नति औद्योगिक क्रान्ति का आधार बनी। बढ़ती जनसंख्या के दबाव में कृषि एवं पशुपालन के स्थान पर वैकल्पिक संसाधनों की तलाश की जाने लगी। विकल्प के रूप में व्यापार एवं उद्योग नवीन अग्रगामी क्षेत्र थे । बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण दैनिक उपभोग की वस्तुओं की माँग में भारी वृद्धि हुई। इस बढ़ी हुई माँग की आपूर्ति परम्परागत कृषि और कुटीर उद्योग से सम्भव नहीं थी । परिणामतः बड़े स्तर पर उत्पादन करने हेतु मशीन एवं कारखाना आधारित उद्योगों के अनुकूल वातावरण तैयार हुआ।

रहन–सहन में परिवर्तन

16वीं से 18वीं सदी के दौरान यूरोप में आयी आर्थिक समृद्धि ने तथा वाणिज्यवाद ने एक नवीन मध्यमवर्ग को जन्म दिया। यह वर्ग भोग–विलास की सामग्री की ओर आकर्षित था । इनकी आवश्यकतायें परम्परागत उच्च वर्गों से भिन्न थीं। फैशन और शान–शौकत के नये साधन एवं सामान की माँग बढ़ती जा रही थी जिसकी आपूर्ति आधुनिक मशीनों द्वारा निर्मित उच्च कोटि की सामग्री द्वारा सम्भव थी । अतः रहन–सहन में परिवर्तन ने औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

फ्रान्स की क्रान्ति का योगदान

फ्रांस की 1789 ई० की क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति को बढ़ाने में भारी सहयोग प्रदान किया। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के अनुकूल राजनीतिक व्यवस्था पहले से ही मौजूद थी । अतः इंग्लैण्ड के औद्योगिक विकास में कोई राजनीतिक अवरोध नहीं था। फ्रांस की क्रानित ने सम्पूर्ण यूरोप में उदारवादी एवं प्रजातान्त्रिक राजनीतिक पद्धति को लोकप्रिय बनाया । स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की लोकप्रियता फ्रांस की क्रान्ति की देन थी । निरंकुश राजतन्त्र और घोर सामन्ती पोषण और दमन के अन्तर्गत आर्थिक प्रगति की सम्भावना क्षीण थी । उदारवादी

राजनीतिक व्यवस्था व राजनीतिक संस्कृति ही आर्थिक प्रगति का सहायक तत्व मानी जा सकती है। फ्रांस की क्रान्ति ने उदारवादी राजनीति सोच को न केवल जन्म दिया, बल्कि आगे भी बढ़ाया। बदलते राजनीतिक परिदृश्य ने औद्योगिक क्रान्ति को सहयोग प्रदान किया।

राष्ट्रवाद का उदय

राष्ट्रीयता की भावना 19वीं सदी में प्रखर रूप से सामने आने लगी थी। राष्ट्र की परिकल्पना मध्ययुग के अवसान व आधुनिक युग के आगमन के संक्रमण काल में उत्पन्न हुई। वाणिज्यवाद ने राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक आगे बढ़ाया। भौगोलिक खोजों, विज्ञान, तकनीकी की क्षेत्र में उपलब्धियों, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा प्रतियोगात्मक एवं तुलनात्मक समृद्धि, उपनिवेशों की स्थापना एवं विस्तार से एक राष्ट्र की शक्ति और हैसियत का आकलन किया जाने लगा। राष्ट्रीयता राष्ट्र से ऊँचा बनाने व सिद्ध करने में लगा था। जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई और उसने यूरोप में अपनी सर्वश्रेष्ठता स्थापित व सिद्ध की तो यूरोप के अन्य राज्य राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित होकर औद्योगिक विकास के कार्य में प्रवृत्त हुए । राष्ट्रवाद के कारण बड़े राष्ट्रों में व्यापारिक और औद्योगिक प्रतिस्पर्धा आरम्भ हुई। इस प्रतिस्पर्धा में वे ही राष्ट्र आगे बढ़ सकते थे जो अधिक–से–अधिक उत्पादन और व्यापार करने में सक्षम हों।

फैक्ट्री सिस्टम

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व यूरोप में वाणिज्यवाद के तहत विकसित कारखाना पद्धति औद्योगिक क्रान्ति का महत्वपूर्ण सहायक कारण बनी । औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व किसी भी व्यापार करने वाले कम्पनी के कारिन्दे को फैक्टर नाम से जाना जाता था तथा उसके कार्यालय को फैक्ट्री कहा जाता था। फैक्ट्री के साथ कम्पनी के गोदाम होते थे जहाँ व्यापारिक सामग्री को एकत्रित करने वाली संस्था फैक्ट्री कहलाने लगी। इस संगठन से यह विचार उत्पन्न हुआ कि जिस सामग्री को विभिन्न क्षेत्रों से एकत्रित किया जाता है। यदि उसका निर्माण भी एक स्थान पर ही किया जाय तो अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। औद्योगिक व्यवस्था के प्रारम्भिक काल में पश्चिमी यूरोप में उत्पादन पुटिंग आउट पद्धति पर आधारित था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीपति व्यापारी कारीगरों को कच्चा माल देता था तथा करीगर अपने निवास पर ही अपनी कुशलता व औजारों से उत्पादन करते थे । पूँजीपति उत्पादित सामान को इकट्ठा कर बाजार में बेचता था । पूँजीपतियों ने अपनी सुविधा के लिये सारे कारीगरों को एक जगह इकट्ठा कर उत्पादन आरम्भ करवाने की योजना बनाई तो स्वतः ही कारखाना पद्धति का जन्म हुआ जिसने औद्योगिक क्रान्ति के लिये आधारभूत ढाँचा उपलब्ध करवाया । एक जगह कारीगरों को एकत्रित करने से माल इकट्ठा करने में होने वाली समय की बरबादी से बचा जाने लगा। एक स्थान पर उत्पादन होने से माल की गुणवत्ता को बनाये रखने में मदद मिली एवं समय पर कारीगार से कार्य पूरा करवाना भी सम्भव हो सका। दूसरी ओर बदलती पद्धति के अन्तर्गत साधारण औजार उन्नत बने जिससे मशीनों का

Notes

विश्व का इतिहास

विकास हुआ। अब प्रबन्धक, निरीक्षक, अभियन्ता जैसे कारिन्दों के पद सृजत हुए और कारखाना पद्धति विकसित होने से श्रम विभाजन और कार्यदक्षता बढ़ी जिससे स्वतः ही उत्पादन की क्षमता बढ़ी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल यान्त्रिक सुधार औद्योगिक क्रान्ति का संवाहक नहीं हो सकता। वैसे सम्पूर्ण यूरोप (मुख्यतः पश्चिमी यूरोप) में उत्पादन प्रक्रिया में अनेक यान्त्रिक सुधार 17वीं सदी के आरम्भ से ही आने लग गये थे। औद्योगिक क्रान्ति की सफलता के लिये आवश्यक था कि उत्पादन इतना अधिक और सस्ता व सुलभ हो कि बाजार में न केवल उसकी माँग बढ़े बल्कि खपत भी हो। यह तभी सम्भव था जब यान्त्रिक सुधारों के साथ–साथ कार्यकौशल बढ़े, श्रम का विभाजन हो व आधारभूत घटनीय ढाँचा उपलब्ध हो। यह औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व विकसित कारखाना पद्धति के द्वारा सम्भव हो सका।

औद्योगिक क्रान्ति का क्षेत्र

औद्योगिक क्रान्ति का क्षेत्र बहुत व्यापक रहा है। औद्योगिक क्रान्ति ने जहाँ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया वहीं आथर्थक जीवन पद्धति की कायापलट कर दी थी। मोटे तौर पर औद्योगिकी क्रान्ति को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है। पहला चरण 1750 से 1850 तक तथा दूसरा चरण 1850 से 1950 तक माना जा सकता है। प्रथम चरण में मुख्यतः इंग्लैण्ड ही औद्योगिकी क्रान्ति का कार्यक्षेत्र रहा। 19वीं शदी के उत्तरार्द्ध अर्थात् 1850 के उपरान्त औद्योगिक क्रान्ति की व्यापकता सम्पूर्ण यूरोप की ओर से प्रसारित हुई। इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में यहाँ औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्रों का अध्ययन प्रासंगिक है।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

स्व–प्रगति की जाँच करें

1. क्या आप ऐसा मानने को तैयार हैं कि वाणिज्यवादी प्रवृत्तियों और गतिविधियों के संचलान में मध्यम वर्ग का भी योगदान रहा है?

2.

व्यापारिक क्रियाओं को

सफल बनाने के लिए भौगोलिक खोजें और वैज्ञानिक प्रगति की क्या भूमिका रही है?

े मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

87

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

े मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

88

कृषि क्षेत्र में विकास

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व कृषि क्रान्ति का उल्लेख हम पिदले पृष्ठो

में कर चुके हैं। कृषि की प्रगति ने औद्योगिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया था, किन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने कृषि क्षेत्र को पुनः प्रभावित किया, जिससे कृषि क्षेत्र में भारी उन्नति हुई । कृषि का आधुनिकीकरण औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम था । कृषि को औद्योगिक क्रान्ति ने ही उद्योग का दर्जा प्रदान किया । कृषि योग्य भूमि का विस्तार इसका एक सीधा–सादा प्रभाव था। वैज्ञानिक तरीकों से बन्जर भूमि तक को कृषि के अन्तर्गत लाया गया। प्रति एकड़ उपज में वृद्धि हुई । पशुपालन वैज्ञानिक तरीके से किया जाने लगा। कृषि क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिक के प्रयोग से जो नवीन परिवर्तन आये वे औद्योगिक क्रान्ति के ही परिणाम थे।

सर्वप्रथम वक्रशायर के एक अंगेज भूस्वामी जिथ्रोटुल (1674–1740) ने ड्रिल नामक एक यन्त्र बनाया, जिसके माध्यम से बीज बोने का कार्य किया जाने लगा । इसी मशीन का आविष्कार उसने 1701 में किया। इसके पूर्व बीजों को हाथ द्वारा फैलाकर (छितराकर) बोया जाता था जिसमें काफी बीज व्यर्थ हो जाते थे तथा मानवश्रम पर आधारित होने के कारण समय भी बहुत लगता था। अब इस मशीन के माध्यम से सीधी रेखाओं में बीज का व्यवस्थित वितरण होता था तथा रेखाओं में पड़े बीज के मिट्टी में दबने से उसके शत–प्रतिशत अंकुरण को सुनिश्चित कर दिया गया । यह मशीन सीधी लकीरें बनाती, यही बीज का क्रमिक समान वितरण रेखा के अन्दर करती तथा रेखा में गिरे हुए बीज को मिट्टी से ढकती थी । इससे मानव श्रम की बचत, समय पर बुआई, अच्छी उन्नत फसल सुनिश्चित हो सकी तथा बड़े पैमाने पर कृषि कार्य सम्भव हुआ। यह मशीन घोड़ों के द्वारा खींची जाती थी । टुल ने घोड़ों से खीचे जाने वाले एक कृषक (पाटा) उपकरण का भी आविष्कार किया जिससे जुताई– बुआई के पूर्व भूमि को तैयार किया
जाता था।

एक अन्य अंग्रेज जमींदार डाउनसैण्ड (1674–1738) ने फसल चक्र की खोज की। इसके अनुसार फसल बदल–बदलकर बोई जाय तो कभी भूमि को खाली नहीं छोड़ना पड़ता तथा इससे भूमि की उर्वरता बढ़ेगी या बनी रहेगी । भूमि में उपलब्ध खनिज और लवणों का अभाव उत्पन्न हो जाता है। यदि एक विशेष फसल भूमि में प्राप्त दूसरी फसल उगायी जायेगी तो वह पृथक खनिजों का उपयोग अपने पोषण के लिये करेगी। अतः बदल–बदल कर फसल बोने को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो गया। फसल चक्र के अतिरिक्त मिश्रित फसलों का चलन भी इसी पद्धति का अंग बन गया। अब भूमि को उर्वरकता प्राप्त करने के लिये खाली छोड़े की भी आवश्यकता नही रह गयी ।

एक अन्य अंग्रेज धनी किसान रार्बट बैकवेल (1725–1795) ने 1770 में पशुओं के वैज्ञानिक प्रजनन की नई प्रणाली खोजी जिससे पशुओं की नस्ल सुधार को सम्भव बनया जा सका। इसके प्रजनन सम्बन्धी खोज ने पशु–पालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना दिया। मवेशियों को अधिक दुधारू तथा मांस प्रदान करने वाला बनाया गया। भेड़ों की ऐसी नस्ल तैयार की गयी जो अधिक ऊन

तथा मांस देने वाली हो । इस पद्धति से बैकवेल ने भेड़ की लेसेस्टर नस्ल उत्पन्न की जो सामान्य भेड़ से दुगने वजन की थी। वैज्ञानिक प्रजजन पद्धति ने अन्य पशुओं जिनमें गाय, घोड़ा मुख्य हैं की नई नस्लों का विकास किया। बैकवेल के बाद उसी की प्रणाली को विकसित कर चार्ल्स कोलिंग ने भी भेड़ों की एक नवीन नस्ल का आविष्कार किया।

इंग्लैण्ड के एक धनी किसान आर्थरयंग (1744 – 1820) ने कृषि के नये तरीकों को आगे बढाने एवं किसानों में उन्हें लोकप्रिय बनों के लिये भारी परिश्रम किया । वह एक जिज्ञासु प्रवृत्ति का व्यक्ति था । उसे इंग्लैण्ड के इतिहासकार ट्रेवेलियन ने तो नई खेती का अवतार कहा है। आर्थरयंग ने इंग्लैण्ड, फ्रांस आयरलैण्ड आदि देशों का भ्रमण कर वहां की कृषि प्रणालियों का गहन अध्ययन किया तथा कृषि की नई प्रणाली को जन्म दिया। उसके विचार में छोटी जोतें अनार्थिक एवं अनुपजाऊ होती हैं। छोटी जोतें अधिकांश खुली हुई अर्थात् बाड़बन्दी विहीन थीं, जिनमें जानवरों और प्राकृतिक प्रकोप के कारण फसल को भारी क्षति पहुँचती थी। अतः आर्थरयंग के अनुसार छोटी जोतों को मिलाकर बड़े कृषि फार्म बनाये जाने चाहिए। इन कृषि फार्मों की बाड़ाबन्दी की जानी चाहिए। इसके अनुसार बड़े कृषि फार्मों पर मशीनों

का उपयोग आसनी से सम्भव होता है। बड़े स्तर पर कृषि यंत्रों रसायनों खादों आदि का प्रयोग सुगम व लाभदायक पाया गया। उसने अपने विचारों को प्रचारित वह प्रसारित करने के लिये अनेक पुस्तकें एवं लेख लिखे। उसने अपने प्रयासों को गति प्रदान करने के ध्येय से ऐनाल्स ऑफ एग्रीकल्चर नामक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। उसके प्रयासों का ही परिणाम था कि वैज्ञानिक कृषि पद्धति एवं आधुनिक कृषि को गति प्रदान करने के लिये इंग्लैण्ड की सरकार ने बोर्ड आफ एग्रीकल्चर की स्थापना की।

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व मुख्यतः परम्परागत खादों का प्रयोग होता था। 1840 में जर्मनी के दो रसायन शास्त्रियों बॉन लीविग एवं फ्रेडरिक वोहलर ने अपनी शोध में उद्घाटित किया कि भूमि में कुछ रसायनिक तत्व होते हैं जो फसलों की खुराक का काम करते हैं। इन तत्वों में पोटाश, नाइट्रोजन और फास्फोरस प्रमुख

हैं। फसलों के निरन्तर पैदा होने से भूमि में इन तत्वों की कमी हो जाती है जिससे भूमि की उर्वरता कम हो जाती है। यदि उपरोक्त तत्वों को कृत्रिम तरीके से भूमि में डाल दिया जाय तो न केवल भूमि की उर्वरता को निरन्तर बनाये रखा जा सकता है बल्कि उसकी उर्वरता में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार 1840 के उपरान्त अर्थात् 19वीं सदी के उत्तरार्ध से रसायनिक खादों का उपयोग किया जाने लगा, जिससे कृषि उत्पादन में क्रान्ति आ गयी था।

,

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप कृषि का वैज्ञानिककरण बढ़ता ही चला गया। 1793 में अमेरिका निवासी व्हीट ने कॉटनजिन नाम कपास औटने की मशीन का आविष्कार किया। उसी ने कॉटनजिन की पद्धति पर भूसे को अनाज

से अलग करने वाली मशीन का आविष्कार किया। इसी क्रम में एक अन्य महत्वपूर्ण आविष्कार अमेरिका निवासी साइरसहॉल मैककोरमिक ने 1834 में किया, जिसने फसल काटने की मशीन बनाई। इसी अवधि में और भी अनेक आविष्कार हुए जिसमें घोड़े से खीचा जाने वाला पाचा (पाँच हलों का यन्त्र) लोहे का हल और तवेदार हैरा (पटला) आदि प्रचलन में आये। बाद में घोड़े के स्थान पर भाप इंजन, गैसोलिन इंजन आदि का प्रचलन कृषि क्षेत्र में बढ़ा। ऑटोमोबाइल इंजनों मोटरों तथा विद्युत चालित यन्त्रों व मशीनों के प्रयोग ने कृषि में क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

उपरोक्त प्रगति के अतिरिक्त कृषि उत्पादों के संरक्षण हेतु उनेक तरीके निकाले गये । अनोजों व अन्य खाद्य पदार्थों को सड़ने से बचाने के लिये वैज्ञानिक पद्धति पर भण्डारन आरम्भ किया गया।

वस्त्र उद्योग

औद्योगिक क्रान्ति की स्पष्ट झलक सर्वप्रथम वस्त्र उद्योग में दिखाई देती है। इस क्षेत्र में क्रान्ति 1733 में आयी जब जॉन के नामक एक अंगेज में फ्लाई शटल नामक कपड़ा बुनने की मशीन का आविष्कार किया, जिससे कपड़ा बुनने के कार्य में तेजी आयी। इस मशीन के आविष्कार ने सूत की माँग में वृद्धि की। इसी का परिणाम था 1764 में जेम्स हार ग्रीब्स ने एक ऐसे चरखे का आविष्कार किया। जिसके द्वारा आठ तकुओं पर एक साथ आठ धागे काते जा सकते थे। यह साधारण लकड़ी की बनी मशीन थी जिसमें आठ तकुओं को एक पहिये के साथ जोड़ा गया था जिससे आठ तकुओं एक साथ घुमते थे। हार ग्रीब्स ने इस मशीन का नाम स्पिनिंग जैनी (कॉटनजैनी) रखा जो उसकी पत्नी जैनी के नाम पर था।

1770 में रिचर्ड आक्रराइट ने सूत कातने की मशीन का आविष्कार किया जिसे वॉटर फेम (पनचौखट) के नाम से जाना गया। इस मशीन का संचालन हाथ या पैर के स्था पर जल शक्ति से होने लगा। अब पहली बार मानव श्रम के स्थान पर जलशक्ति का प्रयोग किया गया। इस मशीन केद्वारा स्पिनिंग जैनी की तुलना में अधिक मात्रा में मजबूत सूत बनाया जा सकता था । यह मशीन विशाल एवं तकनीकी जटिलताओं से युक्त थी कि उस एक विशेष भवन में लगाया जाता था, ऑक्रराइट ने इस मशीन से भारी अर्जित किया, जिससे आगे बढ़ते हुए उसने मेनचेस्टर में एक कपड़े की विशाल मिल स्थापित की।

कपड़ा उद्योग का ताक्रिक विकास निरन्तर होता रहा। 1779 में लंकाशयर के एक जुलाहे सैमुअल क्रॉम्प्टन ने स्पिनिंग जैनी और वॉटरफ्रेम दोनों को मिलाकर एक मशीन बनाई जिसे म्युल अर्थात खच्चर (मिश्रित) कहा गया। इसके माध्यम से ओर भी अधिक मीन सूत काता जाने लगा। अब धागा कातने के क्षेत्र में मात्रात्मक एवं गुणात्मक वृद्धि हुई। सैमुअल क्रॉम्प्टन की मशीन की गति पहले की सभी मशीनों की तुलना

पश्चिमी विश्व

छव्र्जै

`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
89
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
90

में अधिक थी । धागे की अधिक उपलब्धि ने कपड़ा बुनाई की नयी मशीनों के आविष्कार की आवश्यकता उत्पन्न की। 1785 में एडमण्ड कार्टराइट ने शक्तिचालित करघे (बुनाई मशीन) का आविष्कार किया, जिसे पॉवरलूम के नाम से जाना गया। इस मशीन को जल एवं वाष्प दोनों की शक्ति के द्वारा चलाया जा सकता था। 1785 से कपड़ा उद्योग में वाष्प शक्ति से चलने वाले करघे के प्रचलन ने कपड़ा उद्योग को भारी बढ़ावा प्रदान किया। इस मशीन से अत्यधिक बढ़िया किस्म का कपड़ा उत्पादित होने लगा, जिसमें लागत भी कम आती थी, जिससे बाजार में इसकी माँग अच्छी थी। कुछ ही वर्षों बाद सभी कपड़ा मिलों में इस मशीन का उपयोग होने लगा । जलशक्ति के प्रयोग की अपनी भौतिक सीमायें थीं, क्योंकि इतने जलस्रोत उपलब्ध ही नहीं थे, जिनके किनारे उद्योग लगाये जा सकें। जल स्रोतों के दूर स्थिति होने के कारण कारखाना व नगर विकसित होना सम्भव नहीं था। अतः जल शक्ति के स्थान पर वाष्प शक्ति का प्रयोग अधिक लोकप्रिय एवं प्रभावी साबित हुआ। वाष्प इंजन का आविष्कार 1712 में ऑमसन न्यूकोमेन नाम अंग्रेज ने खदानों से पानी बाहर निकालने के लिये किया था। 1769 ई में स्कॉटलैण्ड के इंजीनियर जेम्सवाट ने न्यूकोमेन के इंजन के दोषों व कमियों को दूर करते हुए एक नये और उन्नत वाष्प इंजन का आविष्कार किया जो कम खर्चीला और अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। 1775 में जेम्सवॉट ने मैथ्यू बोल्टन नामक उद्योगपति की साझेदारी में वाष्प इंजन बनाने का कारखाना स्थापित किया। लगभग सभी सूती वस्त्र मिलों में जेम्स वॉट के इंजन का उपयोग होने लगा। 1825 में रिचर्ड रॉबर्टस ने एक स्वचालित कपड़ा बुनाई मशीन का आविष्कार किया तथा 1846 में अमेरिका निवासी एलियस होवे ने सिलाई मशीन के आविष्कार के पश्चात् 1793 में एक अमेरिकी अध्यापक ऐली व्हिट ने कपास ओटने की मशीन का आविष्कार किया जिसे कॉअन जिन के नाम से जाना गया। इसके द्वारना कपास से बिनौलों को तीव्र गति से अलग किया जा सकता था। यह मशीन एक दिन में हाथ से काम करने वाले 50 मजूदरों के समान कार्यक्षमता रखती थी।

लौह एवं इस्पात उद्योग में क्रान्ति

मशीन और यन्त्रों के निर्माण में सबसे बड़ी आवश्यकता लौह एवं इस्पात की के चक्कर में इंग्लैण्ड के जंगल नष्ट होने लगे जिससे ऊर्जा के इस स्रोत का अभाव पैदा हुआ। लौह उद्योग में ईंधन की भारी आवश्यकता थी । लौह अयस्क से लोहा बनाने एवं लोहे से इस्पात बनाने के कार्य में भारी ईंधन की आवश्यकता थी। 1750 के आसपास से ही लकड़ी के विकल्प के रूप में पत्थर के कोयले का

चलन होने लगा। यह कोयला आसानी से उपलब्ध और सस्ता भी था एवं अधिक तीव्र ऊष्मा उत्पन्न करने के कारण कार्यक्षमा को बढ़ाने वाला था । अतः 1750 के बाद माँग बढ़ने के कारण पत्थर के कोयले के खनन कार्य में प्रगति हुई। लौह उद्योग में पत्थर के कोयले के उपयोग का श्रेय अब्राहम डर्बी (1677–1717) तथा जॉन रोबक (1718– 1794) को जाता है। लौह उद्योग में विकास इस्पात के उत्पादन के रूप में और अधिक हुआ। लोहे से बनी मशीनें भारी, वजनदार एवं जंग लगने वाली होती हैं, इसी प्रकार साधारण लौह का उपयोग अन्य भारी कार्यों जैसे पुल निर्माण आदि में भी होता था । 1754 में स्टील के उत्पादन हेतु बेलन (रोलिंग) मशीन का आविष्कार हुआ जिससे लोहे के स्थान पर इस्पात के प्रयोग में वृद्धि हुई। इससे लौह उद्योग के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। लोहे का स्थान इस्पात ने ले लिया जो हल्का, मजबूत, जंगरोधी और लचकदार था। 1856 के पहले तक इस्पात बनाने की विधि‍ा काफी खर्चीली थी किन्तु 1856 में ही एक अंग्रेज हेनरी बेस्सेमर ने इस्पात बनाने की सस्ती विधि का आविष्कार किया। इसके द्वारा तीव्र गति से इस्पात उत्पादन सम्भव हुआ जिससे इसके पश्चात् वाले समय को इस्पात युग के नाम से जाना जाता

जाना जाता है। इस्पात उद्योग के कारण कोयला जैसे खनिज के दोहन का कार्य आगे बढ़ा एवं कोयले का उपयोग वाष्पचालित मशीनों, रेलइंजनों इत्यादि में भी बढ़ा। खदान की नवीन तकनीकी काम में ली जाने लगी इससे कोयला खदानों को कारखाना पद्धति से चलाया जाने लगा जिससे औद्योगिक क्रान्ति को बल मिला।

परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में क्रान्ति

औद्योगिक क्रान्ति ने परिवहन एवं संचार के साधनों को बढ़ाने में महती भूमिका निभाई। कच्चे माल को कारखानों तक पहुँचाना और उत्पादित माल को बाजार तक पहुँचाना परिवहन एवं यातायात के साधनों में सुधार द्वारा ही सम्भव था। 18वीं सदी के उत्तराध में सड़क निर्माण के क्षेत्र में अच्छी प्रगति हुई । स्कॉटलैण्ड के निवासी एक अभियन्ता जॉन लूडो मकाडम (1756–1836) ने सड़क निर्माण की नई विधि का आविष्कार किया। उसने सड़कों के सबसे नीची परत में भारी पत्थरों का प्रयोग, उसके बाद छोटे–छोटे पत्थरों की परत और उसके ऊपर तारकोल की परत जमाई। मकाड़म की सड़कें अधिक टिकाऊ और उपयोगी साबित हुईं। ये इतनी लोकप्रिय हुईं कि इंग्लैण्ड के अतिरिक्त कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में इस विधि का अनुसरण सड़क निर्माण में किया जाने लगा। सड़क मार्ग के विकास में इंग्लैण्ड ने भारी उपलब्धि अर्जित की एवं 1830 तक इंग्लैण्ड में लगभग 20 हजार मील लम्बे

सड़क मार्ग का निर्माण हो चुका था जो इंग्लैण्ड के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों से जुड़ा हुआ था ।

के

नहरों के द्वारा परिवहन एवं यातायात के मार्गों का विकास औद्योगिक क्रान्ति का

परिणाम था। ब्रिजवाटर ड्यूक नामक एक अंग्रेज कोयला खदान मालिक ने जेम्स ब्रिडले नामक अभियन्ता को एक नहर बनाने का कार्य सौंपा। 1761 में जब यह नहर बनकर तैयार हुई तो उससे माल परिवहन का खर्च पहले से आधा रह गया। इस सफलता से उतसाहित होकर जहाँ अन्य कम्पनियां भी नहर बनाने के लिये उत्साहित हुईं वहीं सरकारी प्रयास भी हुए । 18वीं सदी के अन्त तक इंग्लैण्ड में लगभग 3000 मील लम्बी नहरों का निर्माण हो चुका था, जिनका उपयोग माल ढोने के लिये किया जाने लगा। 1869 में एक फ्रान्सीसी अभियन्ता फर्डिनाद लैस्सैप ने स्वेज नहर का निर्माण पूरा करवाया जो भूमध्य सागर को लाल सागर से मिलाने लगी एवं इस नहर के बन जाने से यूरोप द भारत के मध्य की दूर की एक तिहाई कम हो गयी ।

नहरों व जलमार्ग के परिवहन और यातायात को तीव्रगति बनाने के प्रयास किये जाने लगे। एक अमेरिकी इंजीनियर रार्बट फुल्टन ने 1807 में पहली एक वाष्पचालित नौका का आविष्कार किया, जिससे जल परिवहन के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी । फुल्टन क्लेरमोन्ट नामक से एल्बानी तक की 150 मील लम्बी यात्रा 5 मील प्रति घंटे की रफ्तार से 30 घंटे में तय की। इसके पश्चात् समुद्री मार्ग पर वाष्पचालित जहाजों का निर्माण व चलन आरम्भ हुआ। 1838 में पहली स्टीमबोट में अटलांटिक महासागर को 15 दिनों के अन्तराल में ही पार कर लिया जबकि सामान्य जहाजों में इसको दुगना समय लगता था। बाद में टर्बाइन, पेट्रोल एवं डीजल इंजन के आविष्कारों ने जहाज रानी को और अधिक बढ़ा दिया ।

परिवहन एवं यातायात क्षेत्र में सबसे उल्लेखनीय विकास रेलवे के भाप इंजन के आविष्कार से हुआ। लोहे की पटरियों पर चलने वाले वाष्पचालित रेल इंजन का आविष्कार न केवल औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम था बल्कि इसके आविष्कार ने औद्योगिक क्रान्ति को तीव्र गति प्रदान की। विकसित वाष्प इंजन का आविष्कार तो 1769 में जेम्सवॉट कर चुके थे जिसका उपयोग कपड़ा उद्योग में बुनाई मशीनों के संचालन, खदानों से पानी निकालना बाद में जहाजरानी आदि में खुलकर उपयोग होने लगा। रिचर्ड ट्रेविथिक नामक अंग्रेज ने 1801 में वाष्पचालित रेल इंजन का निर्माण कर लिया था किन्तु इसका व्यापक उपयोग सम्भव नहीं हो पाया उसने 1808 में इसका संचालन किया जो बतौर प्रयोग तक ही सीमित रहा। इसके पश्चात् 1814 में जार्ज स्टीफेन्सन (1781 – 1848) ने रेल के वाष्प इंजन का विकसित रूप तैयार किया, जिसे प्रसिद्ध वाष्प इंजन रॉकेट नाम से जाना गया। 1830 में मैनचेस्टर से लिवरपुल शहरों के मध्य प्रथम रेलगाड़ी का संचालन आरम्भ हुआ। दोनों शहरों की दूरी 30 मील थी जिसे इस प्रथम रेलगाड़ी ने एक घंटे की अवधि में पूरा कर लिया, जिससे संसार आश्चर्यचकित हुआ। कुछ ही समय में रेल परिवहन न केवल इंग्लैण्ड बल्कि अन्य देशों में भी काफी लोकप्रिय हो गया था। यह सस्ता और सुलभ परिवहन व यातायात का साधन सिद्ध हुआ । माल परिवहन के साथ ही इसका उपयोग मानव के यातायात में भी किया जाने लगा। रेल आधारित उद्योगों का विकास

भी इसका एक स्वाभाविक परिणाम था। इसने अभियान्त्रिकी एवं तकनीकी उद्योग को न केवल जन्म दिया बल्कि उसको आगे भी बढ़ाया। रेलों के इंजन, पटरियाँ मालगाड़ी एवं सवारीगाडी के डिब्बे, सिग्नल, टेलीग्राफ आदि का बड़े स्तर पर उत्पादन आरम्भ हुआ तथा इंग्लैण्ड ने अपने उपनिवेश देशों व गैर उपनिवेशों में रेल उद्योग से भारी धन अर्जित

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि– प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

पश्चिमी विश्व

छव्जै

किया। रेलवे एक लाभदायक उद्योग और व्यवसाय बन गया था। भारत में रेल परिवहन की शुरुआत मात्र 23 वर्ष बाद अर्थात् 1853 में हो चुकी थी। 19वीं सदी के अन्तिम दो दशकों के दौरान गैसोलीन अर्थात् पेट्रोल चालित मोटर इंजन के आविष्कार ने सड़क परिवहन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन कियां प्रारम्भ में इसका उपयोग सवारी तक सीमित रहा किन्तु बाद में इसका उपयोग लारियों में होने लगा जो परिवहन के अच्छे साधन थे ।

औद्योगिक क्रान्ति के कारण परिवर्तित उद्योग एवं व्यापार के स्वरूप की आवश्यकता थी। संचार व्यवस्था मेँ सुधार रोलैण्ड हिल (1795–1879) नामक अंग्रेज ने आधुनिक डाक व्यवस्था की नींव डाली। 1840 में उसकी इस डाक व्यवस्था का स्वरूप सफलता पूर्वक सामने आया जब एक पेन्स के टिकट से इंग्लैण्ड के किसी भी स्थान पर पत्र भेजा जा सकता था। दूसरे देशों भी यह प्रणाली लोकप्रिय हुई। भारत में 1854 में डाक व्यवस्था इसी प्रकार विकसित हुई। आगे चलकर 1874 में अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ की स्थापना हुई जिसके माध यम से एक देश से दूसरे देश में डाक भेजने व प्राप्त करने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था अस्तित्व में आयी। 1844 में अमेरिका निवासी सैमुअल मॉर्श ने एक तार यन्त्र का आविष्कार किया। इसके माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवश्यक सन्देश संक्षिप्त रूप में भेजना आसान हो गया। इस सुविधा का विसतार विश्व के अन्य देशों में भी होने लगा। 1891 में एक अर्न्तराष्ट्रीय तार व्यवस्था के द्वारा इंग्लैण्ड और फ्रांस जुड़ गय। 1866 में एक अमेरिकी साईरस फील्ड ने अटलांटिक सागर के मध्य अटलांटिक केबल बिछाने में सफलता प्राप्त की, जिसके माध्यम से इंग्लैण्ड और अमेरिका तार द्वारा जुड़ा गये। इससे यूरोप और अमेरिका दोनों महाद्वीपों के मध्य संचार सम्बन्ध स्थापित हो गये। 1876 में अमेरिका निवासी ग्राहम बेल ने टेलीफोन का आविष्कार कर संचार व्यवस्था का क्रान्तिकारी विकास किया। इसी क्रम में 1901 में इटली निवासी वैज्ञानिक मार्कोनी ने बेतार के तार और रेडियो का आविष्कार किया । इसके पश्चात् रेडियो, टेलीफोन एवं तार व्यवस्था में और सुधार होते चले गये ।

यातायात के क्षेत्र में सबसे बड़ी खोज हवाई जहाजों का आविष्कार थी। सभ्यता के प्राचीनकाल से ही मनुष्य उड़ने की कल्पना करता रहा है । पुनर्जागरण काल

के प्रसिद्ध इटली निवासी वैज्ञानिक लियानार्डो– द बिन्सी ने भी उड़ने का विज्ञान विकसित करने का प्रयास किया था, जिसमें उसे अधिक सफलता नहीं मिली। 1903 में पहली बार इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई, जब बिलवार और ओरतिवले राइट दो अमेरिकी इंजीनियरों ने उड़ने वाली मशीन का निर्माण कर लिया। इसी के साथ वायुयान निर्माण उद्योग स्थापित हुए । 1920 के पश्चात् विमान सेवाओं का अन्तर्राष्ट्रीय जाल छा गया।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम

औद्योगिक क्रान्ति के विवरण के पश्चात् इसके परिणामों की जानकारी अपने आप हो जाती है कि किस प्रकार मानव और पशु श्रम के स्थान पर ऊर्जा और मशीनी शक्ति का प्रयोग आरम्भ हुआ । उत्पाद पद्धति गहरे रूप में प्रभावित हुआ । उत्पादन में मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन आया। कृषि सुधार से गैर कृ षि जनसंख्या के खाद्य सामग्री की आपूर्ति को सम्भव और सुनिश्चित बनाया गया। औद्योगिक क्रान्ति ने धन सम्पदा में भारी वृद्धि की। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाया। विश्व के सभी देश एक–दूसरे के अत्यधिक समीप आये । औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का विस्तार भी औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम था। इससे व्यापक सामाजिक परिवर्तन आये, शहरों का विकास हुआ एवं नये वर्गों का उदय हुआ। श्रमिक वर्ग के आन्दोलनों का जन्म और विकास हुआ। व्यापक रूप में सांस्कृतिक रूपान्तरण भी औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप अस्तित्वमान हुये । श्रमिक के कार्यों में भारी परिवर्तन आया। अब यह हाथों के औजार से काम करने वाले शिल्पकार के स्थान पर मशीन चालक बन गया। इस क्रान्ति से समाज में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया। प्राकृतिक संसाधनों के अधिकतम दोहन व प्रयोग एवं प्रकृति पर अधिकार या विजय प्राप्त करने की योग्यता से मानव का आत्मविश्वास ऊँचा हुआ । औद्योगिक क्रान्ति के परिणामों का क्रमिक विश्लेषण बिन्दुवार निम्नानुसार किया गया है–

`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

92

आर्थिक परिणाम

उत्पादन में असाधारण वृद्धि

औद्योगिक क्रान्ति का एक सापेक्ष परिणाम था – उत्पादन में भारी वृद्धि । अब कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन जल्दी कुशलता से भारी मात्रा में अच्छी किस्म का होने लगा। इन औद्योगिक उत्पादों को आन्तरिक और विदेशी बाजारों में पहुँचाने के लिये व्यापारिक गतिविधयाँ तेज हुईं जिससे आर्थिक क्षेत्र में भारी प्रगति का द्वार खुल गया था। औद्योगिक देश धनी बनने लगे। एक जानकारी के अनुसार इंग्लैण्ड में 1760 में सूती वस्त्रों के उत्पादन की कीमत एक लाख पौण्ड वार्षिक थी जो 1810 में अर्थात् 50 वर्षों में बढ़कर 600 लाख पौण्ड हो गयी। इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था में उद्योगों का स्थान प्रमुख हो गया था । उदाहरणार्थ 1750 के आस–पास कुल राष्ट्रीय आय का 45 प्रतिशत भाग कृषि

से प्राप्त होता था। जो 1851 में घटकर 20 प्रतिशत ही रह गया था। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कृषि के क्षेत्र में अवनति हुई, बल्कि इससे यह पता चलता है कि इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान होने के स्थान पर उद्योग प्रधान में रूपान्तरित हो चुकी थी । इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड के वस्त्र, लोहे एवं इस्पात उद्योग में आश्चर्यजनक गति से वृद्धि हुई । वाष्प इंजनों, मशीनों, रेलों, पानी के जहाजों और कोयला उत्पादन के क्षेत्र में भी इंग्लैण्ड ने अपनी औद्योगिक सर्वश्रेष्ठता स्थापित कर ली थी। इस प्रकार इंग्लैण्ड में औद्योगिक पूँजीवाद का जन्म हुआ तथा कारखाना पद्धति का विकास हुआ। औद्योगिक व व्यापारिक निगमों का विस्तार हुआ। कारखाना प्रबन्धकों का जन्म हुआ । औद्योगिक निगमों ने अपना विस्तार करने के लिये अपनी पूँजी की प्रतिभूतियाँ (शेयर) बेचना आरम्भ किया। संक्षेप में हम यह जान लें कि उत्पादन की असाधारण वृद्धि ने एक नई आर्थिक पद्धति को जन्म दिया।

आर्थिक असन्तुलन

औद्योगिक क्रान्ति से आर्थिक असन्तुलन अन्तर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में सामने आया । विकसित और पिछले देशों के मध्य आर्थिक असमानता और असन्तुलन की खाई गहरी होती चली गयी। उद्योगों की एकाधिपत्य प्रणाली ने उपभोक्ता को इनकी दया पर निर्भर कर दिया । औद्योगिक क्रान्ति के बाद आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रों की आपसी आश्रित बहुत अधिक बढ़ गयी जिससे एक देश में घटने वाली घटना दूसरे देश को सीधे प्रभावित करने लगी । अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तेजी और मन्दी का युग आरम्भ हुआ। धनी और औद्योगिकृत राष्ट्र अविकसित राष्ट्रों का खुलकर शोषण करने लगे। आर्थिक साम्राज्यवाद का युग आरम्भ हुआ। इससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर औपनिवेशिक साम्राज्यावादी व्यवस्था मजबूत हुई ।

शहरीकरण

औद्योगिक क्रान्ति ने शहरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया। आधुनिक काल में शहर व्यापार और उद्योग का केन्द्र बन गये थे। बदलते आर्थिक परिदृश्य के कारण रोजगार की तलाश में ग्रामीण जनसंख्या शहरों की ओर निष्क्रमण करने लगी, जिससे स्वाभाविक तौर पर शहरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी । क्रान्ति के पूर्व मेनचेस्टर, बमिघम, लीड्स, लंकाशायर, यार्कशायर जो छोटे कस्बे थे वे अब महानगर का रूप धारण करने लगे थे। नये शहर अधिकतर उन औद्योगिक केन्द्रों के आसपास विकसित हुये जो लोहे, कोयले और पानी की व्यापक उपलब्धता वाले स्थानों के निकट थे । पुराने शहरों की जनसंख्या भी बढ़ने लगी थी। लंदन शहर की जनसंख्या 1600 में 2 लाख थी जो 1800 में बढ़कर 10 लाख हो गयी। 1851 तक 1 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों की संख्या 29 थी तथा 50 हजार से ऊपर जनसंख्या वाले शहरों में कुल इंग्लैण्ड की जनसंख्या का एक–तिहाई भाग रहता था। शहरीकरण की प्रक्रिया केवल इंग्लैण्ड तक ह सीमित नहीं रही बल्कि फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली, स्वीडन, नीदरलैण्ड में भी नगरीकरण तीव्र गति से होने लगा था।

मुक्त व्यापार

19वीं सदी के आरम्भ में इंग्लैण्ड में निर्यात और आयात के अनेक बन्धन लगे हुये थे। संरक्षण की नीति अपनाते हुये ऐसे कानून बनाये गये थे जो व्यापारिक प्रगति में बाधा पहुँचा रहे थे । औद्योगिक क्रान्ति के

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

˜मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

93

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

फलस्वरूप संरक्षणवाद के स्थान पर मुक्त व्यापार की नीति समय की आवश्यकता बन चुकी थी। अतः 1813 के चार्टर एक्ट के अन्तर्गत ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक एकाधिपत्य पूर्णतः समाप्त करते हुए मुक्त व्यापार को बढ़ावा दिया गया। एडम स्मिथ जैसे अर्थशास्त्री मुक्त व्यापार के खुले समर्थक थे। एडम स्मिथ ने 1776 में अपनी पुस्तक 'द बेल्थ ऑफ नेशन्स' में वाणिज्यवाद विचारध् ाारा पर कड़ा प्रहार किया। वह आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का विरोधी था । पूँजीवादी उत्पादन वितरण के लिए मुक्त व्यापार एवं बाजार की उसने वकालत की।

बैंक एवं मुद्रा का विकास

औद्योगिक क्रान्ति ने सम्पूर्ण आर्थिक परिदृश्य का बदल दिया था। उद्योग और व्यापार में बैंक एवं मुद्रा की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी। औद्योगिक उपक्रमों के लिये बैंकों द्वारा व्यापक पैमाने पर ऋण दिये जाने लगे। व्यापार द्वारा अर्जित पूँजी वाणिज्यवाद के दौरान बैंकों में संचित होने लगी थी । औद्योगिक क्रान्ति के दौरान बैंकों ने उद्यमियों को सस्ती ब्याज दरों पर पूँजी उपलब्ध करवायी थी । अतः औद्योगिक सफलता व विकास के साथ–साथ बैंकों के महत्व को स्वीकार किया गया। बैंकों के माध्यम से एक दूसरी कम्पनियों के लेन–देन सुगमता से होने लगे । अब नकदी के स्थान पर चौक और ड्राफ्ट का प्रयोग बढ़ गया। पूँजी का इतना व्यापक प्रसार हुआ कि बैंकों के बगैर लेन–देन कराना सम्भव ही नहीं रह गया था। व्यापारी और उद्योगपतियों को बैंकों की साख की आवश्यकता होने लगी। मुद्रा के क्षेत्र में भी विकास हुआ। धातु के स्थान पर कागजी मुद्रा का प्रचलन हुआ । मुद्रा के स्थान पर साख पत्रों का विस्तार हुआ । कुटीर उद्योगों का विकास

औद्योगिक क्रान्ति का नकारात्मक परिणाम था कुटीर उद्योगों का विनाश। औद्योगिक उत्पादन में मशीनों के अधिकतम प्रयोग एवं उनसे निर्मित अच्छी, सस्ती एवं टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन ने कुटीर उद्योगों का विनाश कर दिया । वास्तव में इंग्लैण्ड में कुटीर उद्योगों के विनाश का विपरीत प्रभाव श्रमिकों, कारीगरों, शिल्पकारों, शिल्पसंघों एवं अर्थव्यवस्था पर बिल्कुल ही नहीं पड़ा। इससे बेरोजगारी का जन्म और विस्तार भी नहीं हुआ । कुटीर उद्योगों के

विनाश से बेरोजगार हुए लोगों को नवीन उद्योगों के रूप में एक विकल्प प्राप्त हो गया था। यूरोप के अन्य देशों में भी परम्परागत कुटीर उद्योगों के पतन का विपरीत प्रभाव दिखाई नहीं देता । कुटीर उद्योगों के कारीगार अपनी कुशलतानुसार उद्योगों को अच्छा रोजगार प्राप्त करने लगे थे। नियमित वेतन और काम के घंटों की निश्चितता से वे और भी अच्छा महसूस करने लगे थे । औद्योगिक क्रान्ति के कारण औद्योगिकृत देशों के उपनिविशों में जो कुटीर उद्योगों का नाश हुआ, वह निश्चित रूप से भयावह था । उपनिवेशों के बाजार इंग्लैण्ड के उद्योगों से उत्पादित माल से भर गये थे । सस्ता और टिकाऊ सामान होने के कारण उद्योगों द्वारा उत्पादित माल लोकप्रिय होने लगा । औपनिवेशिक नीति उपनिवेशों में औद्योगिकरण के विरुद्ध थी क्योंकि वे इनका उपयोग कच्चे माल के स्रोत एवं निर्मित माल के बाजार के रूप में ही करना चाहते थे। जैसे हम भारत का ही उदाहरण लें तो पाते हैं कि इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप भारत में कुटीर उद्योगों का विनाश हुआ, जिससे लाखों शिल्पकार. बेरोजगार हो गये थे। विकल्प के रूप में उनके पास कृषि क्षेत्र ही रह गया था जो पहले से ही दबाव में था।

सामाजिक परिणाम

जनसंख्या में वृद्धि

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप न केवल इंग्लैण्ड बल्कि सम्पूर्ण यूरोप में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। 1750 से 1950 के बीच यूरोप में जनसंख्या की वृद्धि की प्रवृत्ति निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट होती है :–

वर्ष

1750

1800

1850

1900

1950

ैमसस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

जनसंख्या (10 लाख में)

140

180

401

540

जनसंख्या वृद्धि अनेक सामाजिक और आर्थिक अर्थो में महत्वपूर्ण हो जाती है। गरीब देश में जनसख्याँ वृद्धि अशिकांशतः गरीबी को और बढ़ाती है। किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप आई आर्थिक समृद्धि के कारण यूरोप की जनसंख्या में वृद्धि समृद्धि की ओर ही ले जाने वाली सिद्ध हुई । जनसंख्या वृद्धि का महत्वपूर्ण कारण अधिक अन्न उपजाना और यातायात के उन्नत साधनों के माध्यम से माँग के क्षेत्रों में खाद्यान्न की पूर्ति करना सम्भव हुआ । खाद्यान्न की

गुणवत्ता बढ़ने से पौष्टिकता भी बढ़ी। विकसित स्वास्थ्य और औषधि विज्ञान के कारण जीने की औसत आयु बढ़ी जनसंख्या में वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में अधिक हुई।

नये सामाजिक वर्ग का उदय

औद्योगिक क्रान्ति ने मुख्य रूप से तीन नये वर्गों को जन्म दिया। प्रथम पूँजीपति वर्ग जिसमें व्यापारी और उद्योगपति सम्मिलित थे, द्वितीय श्रमिक वर्ग जो अपने श्रम और कौशल से उत्पादन करते थे एवं तीसरा आधुनिक मध्यम वर्ग था जिसमें कारखानों के प्रबन्धक, निरीक्षक, लेखाकार, अन्य पर्यवेक्षकीय स्टाफ, दलाल, एजेन्ट, ठेकेदार, खुदरा व्यापारी, सामान विक्रेता आदि शामिल थे। विभिन्न वर्गों के उदय ने सामाजिक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न की। पूँजीपति वर्ग आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं राजनैतिक क्षेत्र में भी प्रभावी हो गया था। उद्योगपतियों ने अपने संगठन बना लिये थे। 1785 में ही इंग्लैण्ड में जनरल चेम्बर ऑफ मैन्यूफेक्चरर्स नमक संगठन स्थापित हुआ जो उद्योगपतियों का संगठन था ।

मध्यमवर्ग मुख्यतः पूँजीपतियों का अनुचर वर्ग ही था । यह वर्ग कभी – कभी स्वतन्त्र विचार और व्यवहार भी करने का प्रयास करता है। यह ऊपर की ओर बढ़ने के लिये महत्वाकांक्षी होता है एवं अनेक बार सफलता न मिलने पर उच्च वर्ग का विरोधी हो जाता है। यह वर्ग उच्च वर्ग पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए श्रमिकों को अपने साथ लेने का प्रयास करता है। मध्यम वर्ग में अध्यापक, चिकित्सक, वैज्ञानिक, इंजीनियर, प्रोफेसर, विचारक आदि भी सम्मिलित थे। जिनकी सापेक्ष सामाजिक भूमिका आरम्भ हुई। इनके कार्यों से जनकल्याण का विचार और व्यवहार आगे
बढ़ा।

औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न श्रमिक वर्ग भी एक नया सामाजिक वर्ग था । इस श्रमिक वर्ग का परिवेश क्रान्ति के पूर्व के श्रमिक वर्ग से एकदम भिन्न था। जहाँ क्रान्ति के पूर्व श्रमिक वर्ग अपने आप में शिल्पकार था जो स्वयं के औजारों से घरेलू स्तर पर उत्पादन कर व्यापारी अथवा उपभोक्ता को देता था, वहीं अब वह निश्चित वेतन पाने वाला श्रमिक बन गया। उसके श्रम को उद्योगपति निश्चित धनराशि में खरीदने लगे। प्रारम्भ में तो उसे यह व्यवस्था उचित लगी । किन्तु कुछ ही समय बाद उसे अपना पोषण स्पष्ट दिखाई देने लगा। श्रमिकों को प्रायः 12 से 15 घन्टे तक कार्य करना पड़ता था। महिलाओं एवं बच्चों को भी औद्योगिक कार्यों में श्रमिक के रूप में लगाया जाने लगा। कम उम्र के बच्चों से भी बड़े आदमी की तरह काम लिया जाने लगा । कारखानों में प्रकाश, वायु स्वच्छता का अभाव रहता था ।, मशीनों से दुर्घटनायें आम बात थी, क्योंकि प्रारम्भिक तौर पर कोई सुरक्षात्मक उपाय नहीं किये गये थे। श्रमिकों के आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन आदि का उचित प्रबन्ध नहीं होने के कारण इनका जीवन नारकीय होने लगा था। उद्योगपतियों को तो अत्यधिक समृद्धि प्राप्त हुई किन्तु श्रमिक वर्ग गरीबी में डूबने लगा था । श्रमिकों के बढ़ते असन्तोष ने श्रमिक

आन्दोलन को जन्म दिया, जिससे सामाजिक तनाव भी उत्पन्न
हुआ।

मानवीय सम्बन्धों में गिरावट .

समाज में नये वर्गों के उदय ने समाज में नये व्यवहार और सम्बन्ध को जन्म दिया। परम्परागत भावनात्मक मानवीय सम्बन्धों का स्थान आर्थिक सम्बन्धों ने ले लिया था। जिन श्रमिकों के बल पर उद्योगपति समृद्ध हो गये थे उनसे मालिक न तो परिचित था न ही परिचित होना चाहता था । मानवीय सम्बन्धों का स्थान अर्थ ने ले लिया। उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली मशीन और तकनीक ने मानव को भी उसी का एक हिस्सा बना दिया था। अतः मशीनीकृत जीवन को प्रमुखता मिलने लगी । कृषि एवं व्यापार प्रधान अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार प्रथा का काफी महत्व था, किन्तु औद्योगीकरण के बाद संयुक्त परिवार प्रथा छिन्न–भिन्न होने लगी। इस प्रकार सामाजिकता के स्थान पर व्यक्तिवाद महत्वपूर्ण होने लगा था।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

स्व–प्रगति की जाँच करें

3. क्या राष्ट्रवाद के उदय ने वाणिज्यवाद को प्रेरित किया और औद्योगिक प्रतिस्पर्धा शुरू हुई ?

4. क्या आप ऐसा मानते हैं कि औद्योगिक क्रान्ति ने बैंक एवं मुद्रा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी ?

ै मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

95

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ै मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

96

नैतिक मूल्यों में गिरावट

नये औद्योगिक समाज में नैतिक मूल्यों में गिरावट आयी । भौतिक प्रगति से शराब और जुए का प्रचार बढ़ा । अधिक समय तक काम करने के बाद थकावट मिटाने के लिये श्रमिकों में शराब का चलन और बढ़ा, औद्योगिक केन्द्रों पर वेश्या वृद्धि फैलने लगी।

शहरी जीवन में गिरावट

शहरों में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि के कारण निचले तबके को आवास, भोजन और पेयजल आदि का अभाव भुगताना पड़ता था। अत्यधिक जनसंख्या के कारण औद्योगिक केन्द्रों के आस–पास कच्ची बस्तियों का विस्तार होने लगा। गन्दगी के कारण कच्ची बस्तियों में महामारी का प्रकोप भी होने लगा। स्वास्थ्य की सुविधाओं के अभाव एवं प्रदूषण के कारण श्रमिक वर्ग का स्वास्थ्य विपरीत रूप से प्रभावित होने लगा।

सांस्कृतिक परिवर्तन

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तन आये। जाति, नस्ल, कुल आदि पर आधारित सांस्कृतिक परम्पराओं का लोप होने लगा। इसके स्थान पर नये सामाजिक वर्गों ने नई संस्कृति को जन्म दिया। पुराने रहन–सहन के तरीकों, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, धार्मिक मान्यता, कला, साहित्य सब कुछ बदल गये। मनोरंजन के साधनों में परिवर्तन आने लगा । होटलों, क्लबों, बारों, जुआघरों आदि का प्रचलन बढ़ने लगा। रंगमंच एवं सिनेमाघरों में मनोरंजन के साधनों ने कायाकल्प ही कर दिया। परम्परागत शिक्षा पद्धति के स्थान पर रोजगारपरक एवं तकनीकी शिक्षा का विकास हुआ।

राजनीतिक एवं वैचारिक प्रभाव

प्रजातन्त्र की माँग

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली अधिक लोकप्रिय होने लगी। इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व राजनीतिक उदारता का भाव निहित था । अधिकांश देशों में सामन्तवादी निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली थी जो पूँजीपति वर्ग के हित में नहीं थी । नवोदित औद्योगिक पूँजीपति एवं मध्यम वर्ग राजनीतिक अधिकारों का आकांक्षी था और यह वर्ग अपनी बौद्धिक और आर्थिक समृद्धि के कारण शासन प्रणाली को प्रभावित करने में समर्थ था । कुलीन तन्त्र के विरुद्ध पूँजीपति, मध्यमवर्ग एवं श्रमिकों ने संगठित होकर प्रजातन्त्र का विस्तार प्रशस्त किया। इंग्लैण्ड में संसदीय प्रणाली एवं प्रजातन्त्र का विस्तार अनेक नवीन राजनीतिक आन्दोलनों के प्रभाव में हुआ। फ्रांस की क्रन्ति, इटली जर्मनी का एकीकरण, अस्ट्रिया में प्रजातन्त्र आदि इसी का परिणाम थे ।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में परिवर्तन

औद्योगिक रूप से मजबूत देशों की औपनिवेशिक आवश्यकता ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विदेश नीति को प्रभावित किया । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक गुटों का निर्माण होने लगा। अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित करना ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ध्येय रह गया था। इससे अनेक युद्ध हुये, जिनसे मानवता के समक्ष चुनौती उपस्थित हो गयी । औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धाओं की चरम परिणति प्रथम विश्व युद्ध के रूप में हुई। आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय भी औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम था । यही राष्ट्रवाद आगे चलकर उग्र राष्ट्रवाद का रुप धारण करता है, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्धों की शुरुआत हुई।

श्रमिक आन्दोलन

श्रमिकों ने अपनी कार्य– दशाओं एवं जीवन स्थितियों को सुधारने के लिये अपने संगठन स्थापित किये। इन संगठनों के माध्यम से जहाँ उन्होंने उद्योगपतियों को अपने अनुकूल व्यवस्थायें यथा काम के घंटे, वेतनवृद्धि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि करने के लिये मजबूर किया, वहीं सरकार को श्रमिक कानून बनाने के लिये भी बाध्य किया । 1825 में इंग्लैण्ड में श्रमिक संघों (ट्रेड यूनियन) को औपचारिक मान्यता प्रदान कर दी गयी। 1881 में अमेरिका में एक शक्तिशाली मजदूर

फेडरेशन की स्थापना हुई । चार्टिस्ट आन्दोलन के माध्यम से इंग्लैण्ड के श्रमिकों ने राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के प्रयास किये। यह आन्दोलन तुरन्त सफल नहीं हुआ, किन्तु इसी को ध्यान में रखते हुए 1867 के सुधार अधि ानियम के तहत श्रमिकों

को मतदान का अधिकार मिल गया । इंग्लैण्ड में 1870 के बाद श्रमिकों ने लेबर पार्टी नामक राजनीतिक दल का गठन कर लिया।

वैचारिक प्रभाव

अहस्तक्षेप की विचारधारा बलवती हो गयी थी। एडम स्मिथ जैसे अर्थशास्त्री इसके पक्षधर थे। इसके अन्तर्गत औद्योगिक और आर्थिक क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप को कम किये जाने की बात पर जोर दिया जाने लगा। इसका 19वीं सदी के आर्थिक चिन्तन पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। एडम स्मिथ के विचार में सरकार का कार्य पुलिस की तरह सम्पत्ति की रक्षा करना तथा कानूनों का पालन करवाना था। नवोदित पूँजीवादी वर्ग में यह आर्थिक दर्शन बहुत लोकप्रिय हुआ । एडमस्मिथ मुक्त व्यापार का भी पक्का समर्थक था। कुल मिलाकर आर्थिक उदारवाद के सिद्धान्त का जन्म हुआ, जो उद्योगपतियों के हित में था । समाजवादी विचारधारा का जन्म भी औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम था । गरीबों की स्थिति में सुधार के लिये कुछ लोगों ने उत्पादन के साधनों पर सरकारी स्वामित्व की माँग की। इन लोगों को समाजवादी कहा गया। इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति 1848 में हुई जब कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र प्रकाशित किया। इसके माध्यम से उन्होंने, दुनिया के मजदूरों एक हो का नारा लागया तथा श्रमिकों को पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा दी। 1848 के पूर्व जो समाजवादी विचारधारा उपस्थिति थी उसे काल्पनिक (यूटोपियाई) समाजवाद कहा गया। 1848 में मार्क्स एवं एगेल्स ने वैज्ञानिक समाजवाद को आगे बढ़ाया। औद्योगिक श्रमिकों को इन्होंने सर्वहारा की संज्ञा दी, जिसके पास खोने के लिए पाँव की बेड़ियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था तथा जीतने के लिए सारा संसार पड़ा था । कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति दास कैपिटल में अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुये यह साबित किया कि श्रमिकों को उनके श्रम और कौशल का पूरा लाभ नहीं मिलता है । पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं। अतः समाजवादी व्यवस्था ही श्रमिकों को शोषण से मुक्ति दिला सकती है। इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था काफी लोकप्रिय हो गयी । अन्य वैचारिक धारणाएँ भी औद्योगिक क्रन्ति के कारण उत्पन्न हुईं जिसमें उपयोगितावाद, स्वच्छन्दतावाद आदि प्रमुख हैं, कुल मिलाकर औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप वैचारिक क्षेत्र में भी क्रान्ति आयी ।

उपर्युक्त विवरण एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रान्ति ने मानव समाज को गहन रूप में प्रभावित किया। इसके परिणाम स्वरूप नई अर्थव्यवस्था ने एक नवीन समाज की रचना की जिसकी तार्किक परिणति राजनीतिक, वैचारिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक इत्यादि क्षेत्रों में परिवर्तन के रूप में हुई। इसी परिवर्तन को क्रान्ति नाम शब्द से सम्बोधित किया गया । इसलिये औद्योगिक

Notes

विश्व का इतिहास

क्रान्ति के प्रभाव अर्थव्यवस्था तक ही सीमित न रहकर सभी क्षेत्रों में व्यापकता पूर्वक हुए ।

सारांश

19वीं सदी के आर्थिक चिन्तन पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। एडम स्मिथ के विचार में सरकार का कार्य पुलिस की तरह सम्पत्ति की रक्षा करना तथा कानूनों का पालन करवाना था। नवोदित पूँजीवादी वर्ग में यह आर्थिक दर्शन बहुत लोकप्रिय हुआ । एडमस्मिथ मुक्त व्यापार का भी पक्का समर्थक था। कुल मिलाकर आर्थिक उदारवाद के सिद्धान्त का जन्म हुआ, जो उद्योगपतियों के हित में था। समाजवादी विचारधारा का जन्म भी औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम था । गरीबों की स्थिति में सुधार के लिये कुछ लोगों ने उत्पादन के साधनों पर सरकारी स्वामित्व की माँग की। इन लोगों को समाजवादी कहा गया। इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति 1848 में हुई जब कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र प्रकाशित किया। इसके माध्यम से उन्होंने, दुनिया के मजदूरों एक हो का नारा लागया तथा श्रमिकों को पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा दी। 1848 के पूर्व जो समाजवादी विचारधारा उपस्थिति थी उसे काल्पनिक (यूटोपियाई) समाजवाद कहा गया। 1848 में मार्क्स एवं एगेल्स ने वैज्ञानिक समाजवाद को आगे बढ़ाया। औद्योगिक श्रमिकों को इन्होंने सर्वहारा की संज्ञा दी, जिसके पास खोने के लिए पाँव की बेड़ियों के अतिरिक्त कुछ नहीं था तथा जीतने के लिए सारा संसार पड़ा था । कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति दास कैपिटल में अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुये
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ँमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
97
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
यह साबित किया कि श्रमिकों को उनके श्रम और कौशल का पूरा लाभ नहीं मिलता है । पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं। अतः समाजवादी व्यवस्था ही श्रमिकों को शोषण से मुक्ति दिला सकती है। इस प्रकार समाजवादी व्यवस्था काफी लोकप्रिय हो गयी। अन्य वैचारिक धारणाएँ भी औद्योगिक क्रन्ति के कारण उत्पन्न हुईं जिसमें उपयोगितावाद, स्वच्छन्दतावाद आदि प्रमुख हैं, कुल मिलाकर औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप वैचारिक क्षेत्र में भी क्रान्ति आयी ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. वाणिज्यवादी प्रवृत्तियों एवं गतिविधियों के संचालन में संलग्न नये वर्गों का उदय एक स्वाभाविक परिणाम था। यह नवोदित मध्यवर्ग आधुनिक काल का संवाहक बना । वाणिज्यवाद को प्रारम्भिक समर्थन सामंती एवं राजतन्त्रात्मक व्यवस्थाओं से प्राप्त हुआ, किन्तु एक समय बाद मध्यमवर्ग अस्तित्व में आया।

यह मध्यम वर्ग सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन का अगुवा बन गया । मध्यम वर्ग की आवश्यकतायें परम्परा से अलग हटकर थीं, इसी ने सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया।

2. व्यापारिक क्रियाओं को सफल बनाने के लिये अनेक भौगोलिक खोजें हुईं। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों व देशों के समुद्री मार्ग खोजे एवं विकसित किये गये । व्यापारिक अभियानों को सुगम, सरल एवं सफल बनाने के लिये जल परिवहन के अच्छे साधनों का विकास हुआ, जिसने वैज्ञानिक प्रगति को सहायता प्रदान की। व्यापारिक क्रियाओं के माध्यम से विश्व ज्ञान का जो आदान–प्रदान हुआ वह विज्ञान के विकास में सहायक रहा ।

3. राष्ट्रीयता की भावना 19वीं सदी में प्रखर रूप से सामने आने लगी थी। राष्ट्र की परिकल्पना मध्ययुग के अवसान व आधुनिक युग के आगमन के संक्रमण काल में उत्पन्न हुई। वाणिज्यवाद ने राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक आगे बढ़ाया। भौगोलिक खोजों, विज्ञान, तकनीकी की क्षेत्र में उपलब्धियों, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा प्रतियोगात्मक एवं तुलनात्मक समृद्धि, उपनिवेशों की स्थापना एवं विस्तार से एक राष्ट्र की शक्ति और हैसियत का आकलन किया जाने लगा। राष्ट्रीयता राष्ट्र से ऊँचा बनाने व सिद्ध करने में लगा था। जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई और उसने यूरोप में अपनी सर्वश्रेष्ठता स्थापित व सिद्ध की तो यूरोप के अन्य राज्य राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित होकर औद्योगिक विकास के कार्य में प्रवृत्त हुए। राष्ट्रवाद के कारण बड़े राष्ट्रों में व्यापारिक और औद्योगिक प्रतिस्पर्धा आरम्भ हुई। इस प्रतिस्पर्धा में वे ही राष्ट्र आगे बढ़ सकते थे जो अधिक–से–अधिक उत्पादन और व्यापार करने में सक्षम हों।

4. औद्योगिक क्रान्ति ने सम्पूर्ण आर्थिक परिदृश्य का बदल दिया था। उद्योग और व्यापार में बैंक एवं मुद्रा की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी । औद्योगिक उपक्रमों के लिये बैंकों द्वारा व्यापक पैमाने पर ऋण दिये जाने लगे। व्यापार द्वारा अर्जित पूँजी वाणिज्यवाद के दौरान बैंकों में संचित होने लगी थी। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान बैंकों ने उद्यमियों को सस्ती ब्याज दरों पर पूँजी उपलब्ध करवायी थी । अतः औद्योगिक सफलता व विकास के साथ–साथ बैंकों के महत्व को स्वीकार किया गया। बैंकों के माध्यम से एक दूसरी कम्पनियों के लेन–देन सुगमता से होने लगे । अब नकदी के स्थान पर चौक और ड्राफ्ट का प्रयोग बढ़ गया । पूँजी का इतना व्यापक प्रसार हुआ कि बैंकों के बगैर लेन–देन कराना सम्भव ही नहीं रह गया था। व्यापारी और उद्योगपतियों को बैंकों की साख की आवश्यकता होने लगी। मुद्रा के क्षेत्र में भी विकास हुआ। धातु के स्थान पर कागजी मुद्रा का प्रचलन हुआ । मुद्रा के स्थान पर साख पत्रों का विस्तार हुआ।

ekM;ly 3
bdkbZ 8

औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र एंव परिणाम

गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारणगौरवपूर्ण क्रान्ति की प्रकृति
ध 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणाम
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे
गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारण जान सकेंगे
क्रान्ति की प्रकृति समझ सकेंगे
क्रान्ति के परिणाम की व्याख्या कर सकेंगे
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ॅमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
99
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ॅमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
100
परिचय

ग्लोरियस क्रान्ति ने देश के प्रशासकीय ढाँचे में वह परिवर्तन ला दिया जो कि पहले कभी नहीं हुआ । इसके परिणामस्वरूप जेम्स द्वितीय को इंग्लैण्ड से फ्रांस भाग जाना पड़ा और उसके स्थान पर उसका लड़का मैरी (डंतल) तथा उसके जामाता विलियम ऑफ ओरेंज (ॅपससपंउ व् व्तंदहम) सिंहासनारूढ़ हुए। यह अद्‌भुत परिवर्तन जेम्स द्वितीय के कुछ कार्यों को करने तथा कुछ कार्यों को न करने का परिणाम था। इस क्रान्ति के कारण अनेक प्रकार के थे, जो इस प्रकार हैं–

1.
टैस्ट लॉ पुनर्स्थापित करने का प्रयास – पहली बात जिसने कि पार्लियामेंट

तथा सम्राट के संबंधों को कटु बना दिया था, टैस्ट लॉ का पुनर्स्थापित करना था। जेम्स द्वितीय टैस्ट लॉ की पुनर्स्थातिप करना चाहता था क्योंकि इसके बिना वह कैथेलिक का संरक्षक नहीं बन सका था, परन्तु संसद ने इसका विरोध किया । यद्यपि जेम्स इसमें सफल न हुआ लेकिन उसने इस कार्य से संसद को सशंकित तथा क्रोधित कर दिया और उसकी कटुता को बढ़ाने के लिए जेम्स ने कानून को चुनौती देकर कैथोलिकों को ऊँचे–ऊँचे पद दे दिये। सेवा तथा प्रिवी कौंसिल के समस्त रिक्त स्थान पोप मतानुयायियों से राजा के द्वारा भर दिये जाते थे।

2. स्थाई सेना – स्थाई सेना को बनाये रखने के प्रश्न ने राजा की लोकप्रियता में कमी कर दी। इस कारण जेम्स ने लंदन शहर के निकट बहुत विशाल कैथोलिक सेना नियुक्त कर दी तथा सेना में निरन्तर वृद्धि करने का प्रयास किया। इस घटना ने प्रजा के कान चौकन्ने कर दिये क्योंकि ऐसी घटना पहले कभी नहीं हुई थी।

3. शत्रुओं के साथ निर्दयता का व्यवहार– जेम्स द्वितीय ने शत्रुओं के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया। मन्माउथ ने ड्यूक्स (क्नामे वि्डिवदउवनजी) तथा एग्रिल (।हतलसस) और उनके अनुयायियों के साथ पशुता का व्यवहार इसलिए किया गया क्योंकि इन्होंने जेम्स द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह किया था। इसी के नियंत्रण में ही तीन सौ आदमियों को मौत के घाट उतारा गया तथा कई हजार आदमियों को वेस्टइंडीज में जाकर बसने की सजा दी गई।

4.

शक्तियों को सीमित करने तथा स्थगित करने का प्रयास– राजा की लोकप्रियता को कम करने में इसका हाथ कम न था । स्थगित करने की शक्ति से एक विशेष कानून कुछ के लिए अव्यवहार्य (प्दंचचसपबंइसम) हो गया। इसके अतिरिक्त कोई भी कानून सबसे कुछ काल के लिए रोका जा सकता था। इन बातों से प्रजा में आतंक फैल गया इंग्लैंड का राष्ट्र इसे सहन नहीं कर सकता था ।

5. प्रेरोगेटिव कोर्ट्स का पुनरूत्थान (त्मअपंस व्िचतमतवहंजअपअम ब्वनतजे) – यह राजा के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ । राजा ने इसकी आलोचना करनी प्रारम्भ कर दी तथा इसमें इसका अंत हो
गया।

6. विश्वविद्यालय में कैथोलिकों की नियुक्ति– उसने विश्वविद्यालयों में पोप मतानुयायियों को नियुक्त करने के लिए शक्ति का भी प्रयोग किया। उसने मैगडालेन कॉलेज (डंहंसमद बवससमहम) के पच्चीसों सदस्यों को नामकरण कर दिया क्योंकि वे कैथोलिकों के विरोधी थे। कैम्ब्रीज में भी उसने वाइस चांसलर का बहिष्कार कर दिया। क्योंकि उसने बेनेवडाइन मॉक (ठमदमबकपदं उंदा) को डिग्री प्रदान करने से इंकार कर दिया था। उसने क्राइस्ट चर्च आक्सफोर्ड को इस बात के लिए बाध्य किया कि वह पोप मतानुयायी को अपना डीन युक्त करे। इस प्रकार जेम्स ने अपने को बहुत बुद्धिमान वर्ग से अलग कर

लिया।

7. आयरलैंड तथा स्कॉटलैंड के प्रति मूर्खतापूर्ण नीति– जेम्स की आयरिश तथा स्थाटिश नीति बुद्धिमतापूर्ण न थी । स्कॉटलैंड में प्रेविटीरयन्स को पीड़ित करने की नीति उसके लिए घातक सिद्ध हुई टिरेकानेल (ज्लतमबवदमस) को आयरलैंड का लार्ड लेफ्टिनेंट चुना जाना भी जेम्स के लिए लाभप्रद न हुआ।

8. इंडल्जेन्सेज की घोषणा– अभी तक तो राजा तथा प्रजा के मध्य संघर्ष सक्रिय नहीं था। इंडल्जेन्सेज

9.

की घोषणा से यह सक्रिय हो गया। सन् 1687 ई० में जेम्स द्वितीय ने पहला इंडल्जेन्सेज – डिक्लेरेशन प्रचारित किया जिसके द्वारा उसने प्रत्येक धर्म को पूजा करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। इसके अतिरिक्त उसने यह भी निश्चित कर दिया कि भविष्य में सरकारी पद पाने के लिए किसी प्रकार की आर्थिक परीक्षा नहीं होगी। इससे जनता चिढ़ गई। जेम्स ने इसकी परवाह न की । उसने कैथेलिक मतानुयायियों को टाउन की काउन्सिल में भरना शुरू कर दिया ताकि नवीन संसद इसकी रुचि के अनुसार बन सके द्य उससे जनता की क्रोधाग्नि को और भी प्रचण्ड कर दिया ।

सात विषयों की कठोर परीक्षा – जेम्स ने उपर्युक्त प्रस्ताव पर कोई ध्यान न दिया । उसने उल्टे सात विशपों को लंदन के टावर में डाल देने की आज्ञा दी। उस समय तक जेम्स ने परिस्थिति की गंभीरता को नहीं समझा था। 30 जून सन् 1688 ई० को विशपों के मुक्त हो जाने पर सारे लंदन ने खुशी मनायी ।

10. एक पुत्र का जन्म होना– इसी समय जेम्स की पत्नी क्वीन मेरी ऑफ मोडेना (फनममद उंतल व्‍िडिवकमदं) ने एक पुत्र को जन्म दिया। लोगों ने सोचा कि एक नये उत्तराधिकारी के उत्पन्न हो जाने से उनको कैथोलिक शासन से मुक्ति नहीं मिल सकेगी। इस पर राष्ट्र ने क्रांतिकारी कदम उठाया । हिग तथा टोरी दोनों ने मिलकर जेम्स द्वितीय की प्रोटेस्टेन्ट लड़की मैरी के पति विलियम ऑफ हालैंड ॅ(पससपंउ व्‍िभ्वसमसंदक) को आमंत्रित किया।

विलियम तथा मेरी को आमंत्रण – हिग दली नेता हेनरी सिडनी तथा टोरी दलीय नेता उन्वी को शामिल करते हुए सात नेताओं ने विलियम को बुलाने के लिए हॉलैंड को आमंत्रण भेजा ।

ये सभी घटनाएँ विलियम को बुलाने तथा सन् 1688 की क्रांति को लाने में समर्थ थे। यदि विलियम को इनकी सहायता की आवश्यकता फ्रांस के राजा के विरुद्ध न पड़ती। विलियम फ्रांस के अत्यधिक शक्तिशाली राजा लुई चौदहवें (स्वनपे ग्प्ट) के विरुद्ध छोड़ने वाला था। उसका समस्त राज्य हॉलैंड खतरे में था और उसे सहायता की परमावश्यकता थी । उसने इस आमंत्रण पत्र को ईश्वरीय वरदान समझा। यदि उसे सहायता की आवश्यकता न होती तो वह इस आमंत्रण–पत्र को शायद स्वीकार न करता या कम–से–कम इसे स्वीकार करने के लिए सोच–विचार अवश्य कर लिया होता ।

नवम्बर, सन् 1688 ई० में विलियम ने हॉलैंड को छोड़कर 1500 सिपाहियों के साथ टार्वे (ज्वतइंल) की ओर प्रस्थान किया । जेम्स द्वितीय ने 20 हजार सिपाहियों के साथ उसका सामना करने का इरादा किया। जब वह सैलिसवरी पहुँचा तो उसे पता चला कि उसके कुछ विश्वस्त अनुयायियों ने उसे छोड़ दिया और कुछ छोड़ने की बातें सोच रहे थे ।

यहाँ तक कि लार्ड चर्चिल तथा राजा की निजी पुत्री ने भी शत्रुओं का साथ दिया। अन्त में जेम्स ने निरुत्साहित होकर राजधानी को छोड़ दिया तथा भागकर कहीं शरण लेने का विचार किया । जेम्स का भागना और विलियम तथा मैरी का इंग्लैण्ड में सिंहासनारोहण ही इसके पश्चात् की मुख्य घटनाएँ हैं।

जेम्स का भागना तथा जेम्स एवं मेरी का इंग्लैण्ड में सिंहासनारोहण – जब रास्ते खड़े थे–

पश्चिमी विश्व

छव्जै

1.

कुछ शर्तों पर जेम्स द्वितीय का पुनरामंत्रण द्य

2.

प्रिन्स ऑफ वेल्स के पक्ष में एक संरक्षण समिति की स्थापना करना ।

3. राजकुमारी मेरी को साम्राज्ञी बनाना, अथवा

4. विलियम तथा मेरी की संयुक्त रूप से कतिपय निश्चित शर्तों के साथ सम्राट घोषित करना । काउन्सिल के सदस्यों ने स्टुअर्ट राजाओं की अच्छाइयों तथा बुराइयों को अच्छी तरह देख लिया था । इसलिए प्रथम दो बातों को वे किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते थे। जहाँ तक तीसरी बात का प्रश्न

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

101

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

102

है यह अव्यवहार्थ थी क्योंकि मेरी अपने पति के बिना राजगद्दी नहीं स्वीकार कर सकती थी । इसलिए काउन्सिल के सदस्यों ने मेरी तथा उसके पति विलियम को इंग्लैंड का सम्राट मान लिया। अन्त में लार्ड्स सभा तथा विलियम ने एक पार्लियामेंट को आमंत्रित करने का इरादा किया। पार्लियामेंट की बैठक 22 जनवरी सन् 1689

सन् 1689 में हुई। पहले तो एक प्रस्ताव किया कि जेम्स द्वितीय ने अपने आप ही राजसिंहासन का अधिकार खो दिया, इसलिए गद्दी खाली है।

ऐसे समय में डिक्लेरेशन ऑफ राइट्स के रूप में कुछ शर्ते प्रस्तुत की गयीं जिसके अनुसार नये राजा को शासन करना था । विलियम तथा मेरी ने उन शर्तों को स्वीकार कर लिया। इस पर पार्लियामेंट ने विलियम तथा मेरी को ताज

पहना दिया।

गौरवपूर्ण क्रान्ति की प्रकृति

ठतनाम ने गौरवपूर्ण क्रान्ति को । भ्‍चचल ंदक ळसवतवने त्मअवसनजपवद" कहा है।

यह संदेहहीन है कि इंग्लैंड ने सुगमता सहित निरंकुश स्वेच्छाचारी शासकों का अन्त करके वैधानिक राज्य की स्थापना की। यह गौरवपूर्ण विषय है कि इतना महान् परिवर्तन बिना किसी रक्तपात के संभव हो सका। इस परिवर्तन के अन्तर्गत न तो राजा रानी को मृत्यु–दंड ही दिया गया था और न गृह–युद्ध ही दृष्टिगोचर हुआ । फ्रांस ने भी इस नीति के आधार पर परिवर्तन किया किन्तु वहाँ यह 100 वर्षों के पश्चात् संभव हो सका। फ्रांस में इस परिवर्तन के कारण अनेक लोगों को काल के गाल में भेज दिया गया। फ्रांस के रानी तथा राजा के गुलेटिन का आलिंगन करना और करीब दो सप्ताह तक पेरिस की गलियाँ रक्त से ओत–प्रोत रहीं। इन दोनों तुलनात्मक अध्ययनों के आधार पर इंग्लैंड की इस क्रान्ति को गौरवपूर्ण क्रान्ति की संज्ञा अवश्य दी जाती है और यह नामकरण अनुपयुक्त न होगा ।

ट्रेवोलियन तथा रैम्जे म्यूर के अनुसार यह क्रान्ति सभी दलों की इच्छा का परिणाम है। क्योंकि प्रथम बारह हिग तथा टोरी दलों के लोग अपने मतभेदों को भूल गये और उन्होंने स्वेच्छाचारी रोम कैथोलिक शासकों से छुटकारा पाने के लिए निश्चय कर लिया। सन् 1215 के मैग्नाकार्टा की भाँति यहाँ थ्मदकमस स्वबबउमउ नदी थी बल्कि वह समस्त राष्ट्र का कार्य था ।

गौरवपूर्ण क्रान्ति की प्रकृति

1. सम्राट की शक्ति का सीमित किया जाना– इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप सम्राट की शक्ति सीमित हो गई। इसके अतिरिक्त यह सिद्ध कर दिया कि सम्राट में कोई भी दैवीय शक्ति नहीं है। वह सिंहासन का अधिकारी केवल जनता की इच्छा से है, ईश्वर की इच्छा से नहीं। इससे राजा के दैवी अधिकार पर तुषारापात हुआ । बिल ऑफ राइट्स के आधार पर राजा के अधिकारों की सीमित कर दिया गया। सम्राट आपनी इच्छा के आधार पर किसी भी कानून को अवैध घोषित नहीं कर सकता था। अब सम्राट किसी भी बाहरी सेना को देश में नहीं रोक सकता था। इतना अवश्य किया गया कि पार्लियामेंट ने एक साल तक के लिए रुपया व्यय करने का अधिकार दे दिया विशेष उद्देश्य की पूर्ति के हेतु खर्च के लिए पार्लियामेंट की स्वीकृति आवश्यक थी। लोगों की इच्छा के विपरीत सम्राट कोई कार्य नहीं कर सकता था। सम्राट पर प्रत्येक प्रकार के प्रतिबंध लगाये जा सकते थे। वह बिना लोगों की स्वीकृति कर न लगा सकता था और न कानून पास कर सकता था, अर्थात् यह निश्चित कर दिया कि वैध ाानिक प्रभुता न राजा की और न पार्लियामेंट की । किन्तु वास्तविक अर्थ में प्रभुता दोनों की है–

''त्मंस ेवअमतपहदजल स्पमेपदह ापदह ंदक पद च्तसपंउमदज इवजी''

2. पार्लियामेंट की प्रवृति– पार्लियामेंट की अवधि तीन वर्ष के लिए निश्चित हो

गई। यह ट्रीनियल ऐक्ट के पास होने के पश्चात् संभव हो गया। इस पार्लियामेंट का प्रभुत्व अब देश के समस्त महत्वपूर्ण अंगों पर होने लगा। इसका तात्पर्य यह था कि सम्राट को अनिश्चित काल तक के लिए पार्लियामेंट को अपने अधीन कार्य करने के अधिकार से वंचित कर दिया।

3. प्रोटेस्टेन्ट धर्म की कैथोलिक धर्म पर विजय ऐक्ट ऑफ सेटिलमेंट द्वारा यह निश्चित कर दिया

4.

गया कि कैथोलिक धर्मावलम्बियों अथवा इससे संबंध रखने वाले व्यक्तियों से शासन करने का अधिकार छीन लिया गया। इस धर्म पर गहरा आघात कैथोलिक शासकों की समाप्ति के कारण हुआ। अब इस मत को राष्ट्रीय मत को महत्ता नहीं दी जा सकती थी और न विवशतापूर्वक किसी को यह मत मानने के हेतु बाध्य ही किया जा सकता था। कैथोलिकों ने प्रोटेस्टेन्ट से पराज्य पाई थी।

धार्मिक स्वतंत्रता – सन् 1689 में पार्लियामेंट ने ज्वसमजतपजपवद ।बज पास किया। इस ऐक्ट के अनुसार देश की प्रजा को अपनी इच्छानुसार धर्म – पालन का अधिकार प्राप्त हो गया । किन्तु जो लोग पोप के मत के अनुयायी थे उन्हें यह धार्मिक स्वतंत्रता न दी गई। क्योंकि उनकी धर्म विदेशी था। इस प्रकार एक महान् समस्या का समाधान संभव हो सका जिसने ट्यूडर तथा स्टुअर्ट शासकों को परेशानी में डाल रखा था।

5. प्रेस की स्वतंत्रता – गौरवपूर्ण क्रान्ति के पूर्व प्रेस पर काफी नियन्त्रण था, इस प्रतिबंधों के कारण

जनता की आवाज सम्राट तक न पहुँच सकती थी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आवाज काल की कठोरता में समा गई थी। यह प्रतिबन्ध विलियम ने आते ही समाप्त कर दिया। प्रेस जनमत एकत्र करने का एक उपयुक्त साधन है। आज भी इसका योगदान राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर है।

6. न्यायाधीशों की सम्राट के प्रभुत्व से मुक्ति गौरवपूर्ण क्रान्ति ने अनेक सुधार किए। इन सुधारों ने न्यायाधीश भी वंचित न हुए, न्यायाधीशों ने सम्राट की अध ीनता से मुक्ति पाई। इसके पूर्व न्यायाधीश का स्वतंत्र अस्तित्व न था । उन्हें सम्राट की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था । उनकी नियुक्ति तथा निलम्बित करने का अधिकार सम्राट के हाथ में था । यह महत्वपूर्ण अधिकार अब सम्राट के हाथ से जाता रहा। न्यायाधीश की सेवायें उसी दशा में समाप्त की जाती थीं जब वह कोई जुर्म करता था। न्यायाधीश का वेतन निर्धारित कर दिया गया और उनके अधिकार सुरक्षित हो गए। अब वास्तव में न्यायाधीशों का नाम सार्थक हुआ। अब यह उचित अवसर था कि इंग्लैंड की जनता अपनी स्वतंत्रता अधिक अनुभव करने लगी थी।

7. कैबिनेट सिस्टम का प्रारम्भ– इंग्लैंड में कैबिनेट प्रणाली का प्रादुर्भाव विलियम तृतीय के शासन– काल से प्रारम्भ हुआ। यह एक ऐसा कदम था जो कि अभी तक के इतिहास में अद्वितीय था। उन मंत्रियों का निर्वाचन हुआ जिनका जनता

में बहुमत था। यह मंत्री जनता की आम राजनीतिक पार्टी से ही होते थे। इंग्लैंड में इस प्रकार कैबिनेट प्रणाली का प्रारम्भ हुआ अब देश में एक वैधानिक नियम बना दिया गया। सम्राट अपने मंत्री जनता के बहुमतानुसार ही बना सकेगा । इस कैबिनेट की सारी शक्ति पार्लियामेंट के हाथों में आ गई और कैबिनेट को पार्लियामेंट के सम्मुख उत्तरदायी होने का नियम बना दिया गया।

8. यूरोप में इंग्लैंड का शक्तिशाली हो जाना – विलियम तृतीय के पूर्व चार्ल्स द्वितीय तथा जेम्स द्वितीय फ्रांस के सम्राट के इशारों पर नाचते । किन्तु यह परिस्थिति पूर्णतया विलियम के सिंहासनारूढ़ होते ही बदल गई। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप देश की वैदेशिक नीति पूर्णतया बदल गई। अब विलियम तृतीय फ्रांस के हाथ का खिलौना न था । किन्तु वह अब फ्रांस का शत्रु था। वह फ्रांस की पनपती हुई शक्ति को समाप्त करना चाहता था। सन् 1815 ई० तक यह शत्रुता बराबर चलती रही । अन्त में सन् 1815 ई० में इंग्लैंड ने नेपालियन को वाटरलू के स्थान पर पराजित करके सदैव के लिए पंगु बना डाला। अब इंग्लैंड यूरोप की प्रथम एवं प्रमुख शक्ति बन गया ।

9. जनता की राजनीतिक स्वतन्त्रता – जनता को अपने अधिकारों को बनाए रखने तथा सुरक्षित रखने के लिए सम्राट के पास प्रार्थना–पत्र भेजने का अधि ाकार प्राप्त हो गया था। पार्लियामेंट के वार्षिक अधिवेशन इसी पूर्ति के लिए होने लगे। इस कारण लोगों के कष्टों की सुनवाई होने लगी और उन्हें समाप्त करने के उपाय सोचने लगे। धार्मिक तथा प्रेस स्वतन्त्रता ने भी जनता को समुचित लाभ पहुँचाया। अब कोई भी व्यक्ति अकारण बन्दी नहीं बनाया जाता था ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

स्व–प्रगति की जाँच करें : 1. क्या गौरपूर्ण क्रान्ति के परिणाम स्वरूप प्रेस की स्वतंत्रता दी गई ? 2. क्या गौरवपूर्ण क्रान्ति के फल–स्वरूप न्यायाधीशों को सम्राट के प्रभुत्व से मुक्ति मिली?

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

103

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

104

10. म्यूटिनी ऐक्ट – इसके अनुसार भविष्य में सैनिक अनुशासन भंग करने वाले सैनिकों को कोर्ट मार्शल के आधार पर दण्डित किया जाने लगा । सम्राट की किसी प्रकार की सेना बिना पार्लियामेंट की स्वीकृति के रखने का अधिकार नहीं था। इस आधार पर सेना पूर्णतया पार्लियामेंट के अधीन हो गई। यह नियम अभी एक वर्ष के लिए ही पास किया था। एक बजट देश की वित्तीय प्रणाली के लिए बनया जाने लगा। पार्लियामेंट का वार्षिक अधिवेशन इस बजट के

कारण आवश्यक था क्योंकि पार्लियामेंट की उपस्थिति में ही बजट बनाया और पास किया जाता था। इस प्रकार के ऐक्ट पास होने का परिणाम यह निकला कि सम्राट की शक्ति क्षीण हो गई तथा पार्लियामेंट की शक्ति बढ़ गई।

1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणाम

1660 ई० में चार्ल्स द्वितीय के समक्ष कोई शर्त नहीं रखी गयी थी, इसलिये बाद में वह संविधान पर प्रहार कर सका। भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति को रोकने के उद्देश्य से मेरी और विलियम तृतीय को संसद द्वारा और तैयार अधिकार वि॰ ोयक स्वीकार करने पर ही संयुक्त शासक घोषित किया गया। यह घोषणा पत्र हिबग दल के राजतंत्र विषयक सिद्धान्त पर आधारित था, जिसके अनुसार वे राजा और प्रजा के सम्बन्ध को एक अनुबन्ध मानते थे। अधिकार विधेयक द्वारा शासन विधान की रूपरेखा निश्चित कर दी गई थी । निरंकुश राजतंत्र के स्थान पर नियमानुमोदित शासन को स्थापना हुई। राजा का अधिकार सीमित हो गया और मौलिक अधिकार और स्वतंत्रता की बातें थीं। अधिकार विधेयक में इंग्लैंड के निवासियों के मौलिक अधिकार और स्वतंत्रता की बातें थीं। अधिकार वि॰ ोयक द्वारा धार्मिक न्यायालयों की स्थापना संसद के चुनावों में गलत तरीकों का प्रयोग संसद की स्वतंत्रता में बाधा डालना, निलम्बन और विमोचन अधिकारों का प्रयोग करना आदि राजा के सभी अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। अर्थ कानून के द्वारा राजा के व्यय को नियंत्रित करने के अधिकार, विद्रोह कानून द्वारा सेना पर अधिकार और त्रैवार्षिक कानून द्वारा प्रत्येक तीन वर्ष के बाद नवीन संसद संगठित करने का अधिकार भी संसद को प्राप्त हो गया 1688 ई० की क्रान्ति द्वारा हिबग दल के उस राजनीतिक सिद्धान्त की पूर्ति हुई कि राजा कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है और यदि वह अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति नहीं कर सकता तो उसे पदच्युत किया जा सकता है। इस प्रकार इस क्रान्ति ने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को इंग्लैंड में हमेशा के लिए समाप्त कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय तक भी इंग्लैंड में जनता में सर्वोच्च सत्ता के प्रयोग का समय नहीं आया था। परन्तु राजा के विरुद्ध संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त इस क्रान्ति द्वारा अवश्य स्वीकार कर लिया गया था। इस प्रकार जिस संघर्ष का आरम्भ जेम्स प्रथम के शासन काल में हुआ था और राजा खुले तौर से कभी भी सांसद की सत्ता का विरोध नहीं किया ।

वैधानिक दृष्टि से क्रान्ति का संवैधानिक स्थिरिकरण कई महत्वपूर्ण अधिनियमों जैसे अधिकार विधेयक त्रैवार्षिक अधिनियम और उत्तराधिकार निर्णायक अ॰ ािनियम द्वारा हुआ। अधिकार विधेयक द्वारा विलियम और मेरी को राजा–रानी घोषित किया गया और राज्य का उत्तराधिकारी उनकी सन्तान को । राजगद्दी पर स्टुअर्ट वंश के दावे को, रोमन कैथोलिक या कैथोलिक से विवाह करने वाले को उत्तराधिकार से वंचित करके समाप्त कर दिया गया। इस नियम ने राजा के किसी अधिनियम को स्थगिम करने, किसी व्यक्ति को किसी कानून से बरी करने और हाई कमीशन जैसे विशेषाधिकार युक्त न्यायालयों की स्थापना को अवैध घोषित कर दिया। राजा के शान्ति काल में सेना रखना अवैध घोषित किया

गया। इसके अतिरिक्त, संसद का चुनाव निर्बन्ध कर दिया गया, संसद के सदस्य को बोलने की स्वतंत्रता दी गयी तथा संसद का अधिवेशन नियमित कर दिया गया। अब संसद की अनुमति के बिना कर नहीं लगाया जा सकता था । संसद के समक्ष मंत्रियों के उत्तरादायित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। विधान की सम्पूर्ण सत्ता संसद के हाथ में आ गयी। राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया गया। तीन अन्य अधिनियमों ने क्रान्ति के स्थिरीकरण को पूरा किया । गदर अधिनियम के द्वारा सेना में अनुशासन बनाये रखने के लिए प्रतिवर्ष संसद से स्वीकृति लेनी पड़ती थी । 1694 ई० के त्रैवार्षिक अधि ानियम द्वारा संसद की अवधि तीन वर्षों के लिए निश्चित कर दी गयी। उत्तराधि ाकार निर्णायक अधिनियम से उत्तराधिकार के प्रश्न को सुलझाया गया। रोमन कैथेलिक को विशेष रूप से उत्तराधिकार से वंचित रखा गया और

।

भविष्य में राजा को इंग्लैंड में चर्च का सदस्य होना अनिवार्य कर दिया गया। राजा संसद की आज्ञा के बिना विदेश यात्रा नहीं कर सकता था और उसकी विदेशी रियासत के लिए इंग्लैंड युद्ध में भाग नहीं लेता । 1689 ई० के सहिष्णुता अधिनियम से भविष्य में पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता स्थापित करने की सहायता मिली।

सरकारी अधिकारी कॉमन्स सभा के सदस्य नहीं होते। राज्य के सारे कार्य राज्य की परंपरा और कानून के अनुसार प्रिवी काउन्सिल राजा के द्वारा न्याय व्यवस्था में हस्तक्षेप को रोकने के लिए यह व्यवस्था की गयी कि राजा स्वेच्छा से किसी न्यायाधीश को पदच्युत नहीं करेगा। कोई भी न्यायाधीश संसद के दोनों सदनों की सम्मिलित राय के आधार पर अपराधी सिद्ध होने पर पदच्युत किया जा सकता था। वैयक्तिक स्वतंत्रता के दृष्टिकोण से यह एक महत्वपूर्ण कदम था। कॉमन्स सभा जिन व्यक्तियों पर महाभियोग लगा चुकी हो, उन्हें राजा क्षमा प्रदान नहीं कर सकता था। इस अधिनियम से राज्य के प्रत्येक कार्य में मंत्रियों का उत्तरदायित्व बढ़ गया था। डच, जर्मन तथा अन्य विदेशियों के किसी महत्वपूर्ण कार्य में भाग लेने वंचित करने के उद्देश्य से यह निश्चित किया गया कि ब्रिटेन से बाहर जन्म लेने वाला व्यक्ति न कोई नागरिक या सैनिक पद प्राप्त कर सकता है और न भूमि का स्वामी ही हो सकता है।

राजा के दैवी एवं पैतृक अधिकार का सिद्धान्त, जो 1660 ई० में पुनः स्थापित राजतंत्र का आधार था, समाप्त हो गया । सांविधानिक दृष्टि से राजा पर अनेक महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिए गये थे । इसने राजा के किसी कानून को स्थगित तथा किसी अवसर – विशेष पर बरी कर देने के अधिकार को समाप्त कर दिया। अब संसद राजा को युद्ध की सामग्री तथा सेना में कटौती की धमकी दे सकती थी । इस कारण भी संसद पर राजा की निर्भरता बढ़ गयी थी। राजद्रोह अधिनियम ने संसद की नियमित बैठक अनिवार्य कर दी । त्रैवार्षिक अधिनियम ने तो संसद पर पूर्ण प्रभुता स्थापित कर दी। इसने संसद की नियमित बैठक और तीन वर्ष की अवधि पूरा होने पर उसका भंग होना निश्चित कर दिया।

संसद के अधिवेशन को तीन वर्ष तक सीमित करने से राजा अपने पक्ष की संसद नहीं बना सकता था।

लेकिन उपर्युक्त प्रतिबन्धों के होते हुए भी राज्य की नीति पर संसद का नियंत्रण स्थापित नहीं हो सका । राजा अभी भी प्रशासन का अध्यक्ष था । विदेश नीति के बारे में राजा के परमाधिकार को चुनौती नहीं दी गयी थी। 1692 ई० और 1693 ई० के बीच विलियम ने पाँच बार विशेषाधिकार का प्रयोग किया था। 1689 में चर्च और राजा पर संसद का प्रभुत्व स्थापित हो गया। संसद लगातार राजा के काउन्सिल सम्बन्धी अधिकारों का अपहरण कर रहीं थीं, जबकि उसे राजा द्वारा संसद के अधिकारों में हस्तक्षेप बिल्कुल ही नामंजूर था ।

क्रान्ति के स्थिरीकरण का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था। प्रथम बार 1690 में कॉमन्स सभा ने नौ– सेना, थल सेना आदि के व्यय के ब्यौरे तथा ऋण का अनुमान लगाया । सर्वप्रथम विलियम तृतीय की संसद ने राजा के व्यय को व्यक्तिगत व्यय के रूप में निर्धारित किया। सरकारी खर्च के लिए सात लाख पौण्ड की वार्षिक रकम निश्चित की गयी जिससे प्रतिवर्ष संसद से पास कराना पड़ता था । यह राजतंत्र पर एक प्रभावशाली प्रतिबन्ध था जो राजा को प्रतिवर्ष संसद में बैठक बुलाने के लिए बाध्य करता था। प्रशासन के क्षेत्र में इस क्रान्ति ने कॉमन्स सभा में बहुमत दल वाले मंत्रियों को नियुक्त करने की परिपाटी को जन्म दिया। 1689 से 1693 तक विलियम तृतीय हिबग और टोरी दोनों दलों से अपना मंत्री नियुक्त करता रहा, किन्त 1693 में केवल हिबग दल का मंत्रिमण्डल बनाया । सफलतापूर्वक शासन संचालन करने पर यह परिपाटी बन गयी और रानी एन के राज्यकाल में बनी रहीं ।

धार्मिक क्षेत्र में भी समझौता करने का प्रयास किया था। धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया गया । 1689 ई के सहिष्णुता अधिनियम के द्वारा अन्य ध् ार्मावलम्बियों को भी धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी, किन्तु उन्हें राजनीति में भाग लेने से वंचित कर दिया गया। उन्हें राजभक्ति की शपथ लेने के लिए कहा गया। निगम अधिनियम तथा परीक्षा अधिनियम के उन्मूलन न होने से भी अन्य धर्मावलम्बियों और कैथोलिक को प्रशासकीय एवं सैनिक पदों से वंचित रखा गया । अतएव कुछ उच्च श्रेणी के पादरियों ने विलियम तृतीय को राजा स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप जेम्स द्वितीय के समय के छः विशपों और उनके चार

स्व–प्रगति की जाँच करें : 3. क्या गौरवपूर्ण क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड में प्रजातंत्र के विकास का मार्ग खुला ?

106

सौ अनुयायियों को उनके धार्मिक पदों से वंचित कर दिया गया। ये नॉन ज्यूरर अर्थात् शपथ न लेने वाले कहलाये। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में एक नये उप सम्प्रदाय का जन्म हुआ। धार्मिक क्षेत्र में इस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि थी, सह अस्तित्ववाद की भावना, जिसको सहिष्णुता अधिनियम के प्रगतिशील सिद्धान्तों ने संभव बनाया।

क्रान्तिकारी व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यकारिणी को व्यवस्थापिक के अधीन लाने का प्रयास किया गया था। राजा के विशेषाधिकारों और दैवी अधिकार के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया गया। सिद्धान्त में राजा की कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका से सम्बद्ध अधिकारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन व्यवहार इन अधिकारों का वह, न करने वाली संसद के प्रति उत्तरदायी हो गया, धीरे–ध ीरे राजा की असीम शक्ति पर संसद का अंकुश लग गया। क्रान्ति के बाद संसद द्वारा ही राजा की गद्दी पर बैठाया गया था और उसे खर्च की वार्षिक रकम की मंजूरी दी गयी थी। सेना संगठन के लिए भी प्रतिवर्ष संसद से राजा को अनुमति लेनी पड़ती थी। राजा कार्यकारिणी का प्रधान होते हुए भी अब पुराने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता था । निरंकुश राजतंत्र और स्टुअर्ट राजाओं द्वारा संविधान को व्याख्या का युग अब समाप्त हो गया। पुराने अधिकारों को प्राप्त करने की चेष्टा अब राजा नहीं कर सकता था और भविष्य में किसी ने ऐसा प्रयास भी किया तो उसे सफलता नहीं मिल सकी।

अब संसद का प्रभाव कार्यकारिणी और न्यायपालिका पर कायम हो गया। राजा के हाथों से संप्रभुता का हस्तान्तरण कॉमन्स सभा के हाथों हो गया। सेना और वित्त पर संसद का नियंत्रण कायम हो चुका था। न्यायाधीशों का कार्य–काल अब संसद की इच्छा पर निर्भर हो गया । राजनीतिक दलों और मंत्रिमंडल प्रथा के विकास के फलस्वरूप अब स्वेच्छानुसार मंत्रियों का चुनाव करने का अधिकार भी राजा के हाथ से निकल गया। मंत्रियों का व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरादायित्व ने संसद का कार्यकारिणी पर नियंत्रण बढ़ा दिया । वास्तव में क्रान्ति के बाद ही राजा की कार्यकारिणी शक्ति पर कॉमन्स सभा का प्रभाव बढ़ा।

क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड में प्रजातंत्र के विकास का मार्ग खुला। राजा पर वैध ानिक अंकुश लगा दिये गए। संसद शासन का मुख्य अंग बन गयी। राजस्व पर संसद का एकाधिपत्य हो गया। फिर भी यह कहना गलत होगा कि क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लैंड में प्रजातंत्र की स्थापना पूर्ण रूप से हो गयी थी। अभी तक संसद जनता का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती थी । जनसाधारण का राजनीति में अभी भी कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। संसद पर अभी भी अमीरों का प्रभाव था । वास्तव में शक्ति राजा के हाथ से निकलकर बड़े–बडे भूपतियों के हाथ में चली आई थी। भूपतियों के आधिपत्य को नष्ट करने का प्रयास 1832 ई० के संसदीय सुधार कानून द्वारा किया गया था।

क्रान्ति का प्रभाव इंग्लैण्ड की विदेश नीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। प्रारम्भिक स्टुअर्ट राजाओं के समय फ्रांस इंग्लैंड पर हावी बना रहा किन्तु

विलियम तृतीय के शासन काल में फ्रांस से युद्ध का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। विलियम यूरोप में फ्रांस के राजा लुई चौदहवाँ के शासन काल के विरुद्ध अभियान का नेता था, जिसके फलस्वरूप फ्रांस की पराज्य हुई। इंग्लैण्ड ने एक नई यूरोपीय नीति अपनायी । विलियम के आने से इंग्लैण्ड और हॉलैण्ड की पुरानी शत्रुता समाप्त हो गयी तथा दोनों के बीच मित्रता स्थापित हुई। शक्तिशाली विदेश नीति का प्रभाव इंग्लैण्ड के वाणिज्य – व्यापार पर भी पड़ा। यूट्रेक्ट की संधि के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड का अधिकार भूमध्य सागर और लौरेंस नदी के दोनों किनारों पर स्थापित हो गया। इससे इंग्लैंड का व्यापारिक क्षेत्र में अत्यधिक लाभ हुआ और पूर्वी देशों में आवागमन का मार्ग प्राप्त हो गया। स्पेन से उसे गुलामों के व्यापार का एकाधिकार भी प्राप्त हो गया ।

1688 ई० की क्रान्ति को परिणामों को वेस्टइण्डीज में तथा उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशों में शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लिया गया । सर्वत्र विलियम तृतीय और मेरी के राजा–रानी होने की घोषणा की गयी। उपनिवेशों में केन्द्रिय अथवा संघीय संगठन के अभाव में समूचे सम्राट के लिए सामान्य कानून बनाने वाली और शासन करने वाली एकमात्र सत्ता अब ब्रिटिश सरकार और उसको नियंत्रित करने वाली संसद थी। इस पर न केवल शाही व्यापार पद्धति की योजना बनाने और इसे बनाये रखने का उत्तरदायित्व था, अपितु इस पर साम्राज्य की रक्षा का व्यय एवं समूची जिम्मेदारी थी। इन कार्यों को करने के लिए 1696 ई० में व्यापार और बस्तियों का बोर्ड बनाया गया जो उपनिवेशों में केन्द्रीय संगठन के अभाव को दूर करता

था । क्रान्तिकारी ने औपनिवेशिक सरकारों के इंग्लैण्ड की सरकार के साथ सम्बन्धी को परिवर्तित किया । इसके दो मुख्य पहलू आर्थिक और राजनीतिक थे। उस समय मुख्य सिद्धान्त यह था कि सरकार और संसद का मुख्य कर्तव्य यह था कि वे अपनी सभी अधिकारों का प्रयोग इंग्लैंड के उत्पादक उद्योगों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से करे । क्रान्ति के फलस्वरूप उपनिवेशों के कानूनों और कर संबंधी स्वयत्तता को भी स्वीकार कर लिया गया । राजनीतिक रूप से क्रान्ति उपनिवशों में एकता स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुई । रोड आइलैंड और कनेक्टीकट को छोड़कर शेष उपनिवेश राजा की संरक्षा में आ गये।

क्रान्ति का प्रभाव स्कॉटलैंड और आयरलैंड पर भी पड़ा। स्कॉटलैंड को इस क्रान्ति से महत्वपूर्ण सांविधानिक और आर्थिक लाभ प्राप्त हुए। मार्च 1689 में एक कन्वेंशन द्वारा अधिकार–पत्र तैयार किया गया जिसके अनसार जेम्स द्वितीय के कार्यों को अवैध घोषित किया गया और उसको गद्दी से वंचित कर दिया गया। विलियम और मेरी को राजमुकुट दिया गया। कन्वेशन ने विलियम को विशप–व्यवस्था को समाप्त करने के लिए बाध्य किया । प्रेस्बिटेरियन चर्च को पुनः स्थापित किया गया। प्रेस्बिटेरियन चर्च की स्थापना से स्कॉटलैंड के निवासियों को एक राष्ट्रीय प्रजातंत्रीय संस्था मिली, जो 1701 ई० की एकता के पहले तक अंग्रेजों के नियंत्रण से बची रही।

किन्तु आयरलैंड पर क्रान्ति का प्रभाव दुखपूर्ण था । जहाँ स्कॉटलैंड के निवासी

अपने संघर्ष में विजयी हुए, आयरलैंड में कैथोलिकों को केवल पराज्य और तिरस्कार मिला। यहाँ कैथोलिकों के बहुमत ने जेम्स द्वितीय का पक्ष लिया था। 1689 ई में ही जेम्स द्वितीय और उसके कैथोलिक समर्थकों ने अंतिम बार अंग्रेजी सेना को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया था। किन्तु वे विलियम द्वारा बॉइन के युद्ध में पराजित हुए। 1691 ई० में इंग्लैंड की संसद ने यह नियम बनाया कि आयरलैंड की संसद में केवल प्रोटेस्टेंट ही बैठ सकते हैं। विलियम और एन के शासन काल में संसद ने दंड विधि द्वारा कैथोलिकों को संसद प्रशासन सेना, स्थानीय प्रशासन, कानून तथा अध्यापन कार्य से वंचित कर दिया। इसके अनुसार वे भूमि प्राप्त नहीं कर सकते थे और स्वामी के मरने पर उसकी सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारी को न मिलकर उसकी सभी सन्तानों में विभाजित कर दी जाती। आयरलैंड और इंग्लैंड के बीच व्यापार संबंधी कानून को, जिससे इंग्लैंड को लाभ और आयरलैंड को हानि होती थी और भी विस्तृत कर दिया गया। आयरलैंड का ऊन का व्यापार भी नष्ट हो गया क्योंकि ऊन का निर्यात इंग्लैंड के अतिरिक्त अन्य देशों के लिए निषिद्ध कर दिया गया था। इस प्रकार क्रान्ति का बुरा प्रभाव आयरलैंड पर पड़ा ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्

सारांश

स्कॉटलैंड को इस क्रान्ति से महत्वपूर्ण सांविधानिक और आर्थिक लाभ प्राप्त हुए। मार्च 1689 में एक कन्वेंशन द्वारा अधिकार–पत्र तैयार किया गया जिसके अनसार जेम्स द्वितीय के कार्यों को अवैध घोषित किया गया और उसको गद्दी से वंचित कर दिया गया। विलियम और मेरी को राजमुकुट दिया गया। कन्वेशन ने विलियम को विशप – व्यवस्था को समाप्त करने के लिए बाध्य किया । प्रेस्बिटेरियन चर्च को पुनः स्थापित किया गया। प्रेस्बिटेरियन चर्च की स्थापना से स्कॉटलैंड के निवासियों को एक राष्ट्रीय प्रजातंत्रीय संस्था मिली, जो 1701 ई० की एकता के पहले तक अंग्रेजों के नियंत्रण से बची रही।

किन्तु आयरलैंड पर क्रान्ति का प्रभाव दुखपूर्ण था। जहाँ स्कॉटलैंड के निवासी अपने संघर्ष में विजयी हुए, आयरलैंड में कैथोलिकों को केवल पराज्य और तिरस्कार मिला । यहाँ कैथोलिकों के बहुमत ने जेम्स द्वितीय का पक्ष लिया था। 1689 ई में ही जेम्स द्वितीय और उसके कैथोलिक समर्थकों ने अंतिम बार अंग्रेजी सेना को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया था । किन्तु वे विलियम द्वारा बॉइन के युद्ध में पराजित हुए । 1691 ई० में इंग्लैंड की संसद ने यह नियम बनाया कि आयरलैंड की संसद में केवल प्रोटेस्टेंट ही बैठ सकते हैं। विलियम और एन के शासन काल में संसद ने दंड विधि द्वारा कैथोलिकों को संसद प्रशासन सेना, स्थानीय प्रशासन, कानून तथा अध्यापन – कार्य से वंचित कर दिया। इसके अनुसार वे भूमि प्राप्त नहीं कर सकते थे और स्वामी के मरने पर उसकी सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारी को न मिलकर उसकी सभी सन्तानों में विभाजित कर दी जाती। आयरलैंड और इंग्लैंड के बीच व्यापार संबंधी

को, जिससे इंग्लैंड को लाभ और आयरलैंड को हानि होती थी और भी विस्तृत कर दिया गया। आयरलैंड का ऊन का व्यापार भी नष्ट हो गया क्योंकि ऊन का निर्यात इंग्लैंड के अतिरिक्त अन्य देशों के लिए निषिद्ध कर दिया गया था। इस प्रकार क्रान्ति का बुरा प्रभाव आयरलैंड पर पड़ा ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. प्रेस की स्वतंत्रता – गौरवपूर्ण क्रान्ति के पूर्व प्रेस पर काफी नियन्त्रण था, इस प्रतिबंधों के कारण जनता की आवाज सम्राट तक न पहुँच सकती थी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आवाज काल की कठोरता में समा गई थी। यह प्रतिबन्ध विलियम ने आते ही समाप्त कर दिया। प्रेस जनमत एकत्र करने का एक उपयुक्त साधन है। आज भी इसका योगदान राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से दृ ष्टिगोचर है।

2. न्यायाधीशों की सम्राट के प्रभुत्व से मुक्ति– गौरवपूर्ण क्रान्ति ने अनेक सुधार किए। इन सुधारों ने न्यायाधीश भी वंचित न हुए, न्यायाधीशों ने सम्राट की अध ीनता से मुक्ति पाई। इसके पूर्व न्यायाधीश का स्वतंत्र अस्तित्व न था। उन्हें सम्राट की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था । उनकी नियुक्ति तथा निलम्बित करने का अधिकार सम्राट के हाथ में था। यह महत्वपूर्ण अधिकार अब सम्राट के हाथ से जाता रहा। न्यायाधीश की सेवायें उसी दशा में समाप्त की जाती थीं जब वह कोई जुर्म करता था। न्यायाधीश का वेतन निर्धारित कर दिया गया और उनके अधिकार सुरिक्षत हो गए। अब वास्तव में न्यायाधीशों का नाम सार्थक हुआ। अब यह उचित अवसर था कि इंग्लैंड की जनता अपनी स्वतंत्रता अधिक अनुभव करने लगी थी ।

3. क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड में प्रजातंत्र के विकास का मार्ग खुला। राजा पर वैध ाानिक अंकुश लगा दिये
गए। संसद शासन का मुख्य अंग बन गयी। राजस्व पर संसद का एकाधिपत्य हो गया। फिर भी यह कहना गलत होगा कि क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लैंड में प्रजातंत्र की स्थापना पूर्ण रूप से हो गयी थी। अभी तक संसद जनता का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। जनसाधारण का राजनीति में अभी भी कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। संसद पर अभी भी अमीरों का प्रभाव था। वास्तव में शक्ति राजा के हाथ से निकलकर बड़े–बड़े भूपतियों के हाथ में चली आई थी। भूपतियों के आधिपत्य को नष्ट करने का प्रयास 1832 ई० के संसदीय सुधार कानून द्वारा किया गया था ।

अभ्यास–प्रश्न

1.

1688 ई० की गौरवपूर्ण क्रान्ति के कारणों पर प्रकाश डालें।
2. गौरवपूर्ण क्रान्ति की प्रकृति तथा इसके महत्व की विवेचना करें ।
3.
1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति के परिणामों की समीक्षा कीजिये ।
ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
108
अध्याय – 6
अमरीकी क्रान्ति
इस अध्याय के अन्तर्गत :
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण
अमेरिकी स्वाधीनता संग्राम के परिणाम तथा महत्व
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की पराजय और उपनिवेशों की विजय के कारण
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे
:
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारणों को भली–भाँति समझ सकेंगे
अमेरिकी स्वाधीनता संग्राम के परिणाम तथा महत्व समझ सकेंगे
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की पराजय और उपनिवेशों की विजय के कारण समझ सकेंगे
पश्चिमी विश्व
छव्ज्ञै
ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
109
पश्चिमी विश्व
छव्ज्ञै
ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
110
परिचय
1492 में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया था। धीरे–धीरे यहाँ यूरोप, विशेषतः इंग्लैण्ड के लोगों ने वहाँ के मूल निवासियों (रैड इण्डियन्स) को जंगलों में खदेड़कर अपने–अपने देश की प्रभुसत्ता के अन्तर्गत उपनिवेश स्थापित कर लिए। यूरोप में धार्मिक अत्याचारों से पीड़ित प्यूरिटन मतावलम्बी भी भाग कर अमेरिका पहुँच गये थे। अमेरिका के उत्तरी भाग में इंग्लैण्ड वालों के 13 उपनिवेश स्थापित हुए थे। सबसे पहले इन्हीं उपनिवेशों ने विद्रोह शुरू किया, यह विद्रोह इतना महत्वपूर्ण था कि इसे ही अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम कहा जाता है।
अमरीकी स्वतन्त्रता संग्राम के कारण (ब्नेमे वि ।उमतपबंद त्मअवसनजपवद)

अमरीकी स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

1. पारस्परिक सद्भावना का अभाव – इंग्लैण्ड छोड़कर जो लोग अमेरिका चले गये थे और जिन्होंने वहाँ उपनिवेश स्थापित कर लिए थे, उनमें इंग्लैण्ड के प्रति सद्भावना अथवा प्रेम का अभाव था । ये लोग इंग्लैण्ड के स्टुअर्ट राजाओं के धार्मिक अत्याचारों से तंग आकर अमेरिका में बसने को बाध्य हुए थे। इसके अतिरिक्त, इंग्लैण्ड की सरकार ऐसे लोगों को अमेरिका भेज देती थी, जिन्हें देश निष्कासन का दण्ड दिया जाता था। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों में से किसी की भी इंग्लैण्ड के प्रति सद्भावना नहीं थी । ऐसी स्थिति में जब अन्य कारणों से उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया तो वहाँ के उपनिवेशों की सहानुभूति इंग्लैण्ड के साथ नहीं थी ।

2. उपनिवेशवासियों में स्वतन्त्रता की भावना– अमेरिकन उपनिवेशों के निवासी इंग्लैण्ड के लोगों से अधिक उत्साही व स्वतन्त्रता प्रेमी थे। इन उपनिवेशों के 90 प्रतिशत निवासी अंग्रेज थे, जो इंग्लैण्ड के निवासियों की अपेक्षा जनतन्त्र शासन प्रणाली के कट्टर समर्थक थे। इनमें जनतन्त्र शासन प्रणाली और स्वतन्त्रता की भावना का इंग्लैण्ड से भी अधिक प्रचार था। उपनिवेशों के अधिकांश निवासी व्यापारी, किसान और शिल्पी थे, जिनमें स्वभावतः स्वतन्त्रता की भावना कूट–कूटकर भरी हुई थी।

3. दृष्टिकोणों की विभिन्नता उपनिवेशवासियों एवं इंग्लैण्ड के लोगों के दृ ष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर था। इंग्लैण्ड में कुलीनों का शासन था, मताधिकार भी कुछ थोड़े लोगों को ही प्राप्त था और वहा की राजनीति में गरीबों के लिए कोई स्थान नहीं था । उपनिवेशवासी जनतन्त्र के कट्टर समर्थक थे। उनकी राजनीति में धनी, गरीब सभी समान थे। अंग्रेज साम्राज्यवादी थे, परन्तु अमेरिकनों में साम्राज्यवाद की भावना का अभाव था। इसके अतिरिक्त, इंग्लैण्ड के अधिकांश लोग इंग्लैण्ड के चर्च के अनुयायी थे, जबकि उपनिवेशों के अधि ाकांश लोग प्यूरिटन थे। इस प्रकार अमेरिका के लोग प्रगतिशील थे, जबकि इंग्लैण्ड के लोग रूढ़िवादी थे।

4. दोषपूर्ण शासन व्यवस्था – उपनिवेशों की शासन व्यवस्था में अनेक त्रुटियाँ थीं, जिनके कारण वहा के निवासियों में बहुत असन्तोष रहता था। अमेरिका में इंग्लैण्ड के अधीन 13 उपनिवेश थे, जिन पर कोई केन्द्रीय सरकार नहीं थी, जो उनकी ओर से प्रतिनिधित्व करती अथवा सारी बस्तियों पर एक इकाई के रूप में राजनीतिक अनुशासन को बनाये रखती । उपनिवेशों के गवर्नर प्रायः इंग्लैण्ड के सम्राट की ओर से नियुक्त किये जाते थे और उसी के प्रति उत्तरदायी थे। उपनिवेशों के लोग इस व्यवस्था से असन्तुष्ट थे। वे चाहते थे कि इन गवर्नरों को उनकी व्यवस्थापिकाओं के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा निर्मित कानूनों का उपनिवेशों के लोग विरोध करते थे और अपने कानूनों का निर्माण स्वयं करना चाहते थे। कर लगाने के सम्बन्ध में भी दोनों पक्षों के बीच मतभेद बहुत बढ़ गये ।

5. उपनिवेशों के बारे में गलत धारणा – इंग्लैण्ड की सरकार का उपनिवेशों के

प्रति यह दृष्टिकोण था, "उपनिवेश इंग्लैण्ड को लाभ पहुँचाने के लिए हैं।'' इस नीति पर चलते हुए इंग्लैण्ड ने उपनिवेशों का भरपूर शोषण किया, जिससे वहाँ के लोगों में उसके प्रति असन्तोष व्याप्त हो गया ।
इंग्लैण्ड अपने निर्मित माल को खपाने के लिए अमेरिकन उपनिवेशों को अच्छा बाजार समझता था । परन्तु उपनिवेशवासियों को इंग्लैण्ड के हितों की वृद्धि करने में कोई रुचि नहीं थी ।
6. जातीय समानता – उपनिवेशवासी भी अंग्रेज जाति के ही थे । वे अपनी मातृभमि इंग्लैण्ड के स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों से पूर्ण प्रभावित थे। स्वतन्त्रता की भावना उनको विरासत में मिली थी । अतः स्वतन्त्रता – प्रेमी उपनिवेशवासी अपनी ही जाति के लोगों की गुलामी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। अतः वे हर प्रकार का बलिदान देकर अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कटिबद्ध थे।
7. सप्तवर्षीय युद्ध (1756– 1766 ई0) – सप्तवर्षीय युद्ध (1756–1763) अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच यूरोप में ही नहीं, बल्कि अमेरिका में भी लड़ा गया, जिसमें अंग्रेजों की जीत हुई और कनाडा पर उनका अधिकार हो गया। अब उपनिवेश फ्रांसीसी संकट से मुक्त हो गये और उनको अपनी रक्षा के लिए इंग्लैण्ड की आवश्यकता नहीं रही। अब उपनिवेश के लोग इंग्लैण्ड से शीघ्र व सीधी टक्कर लेने के लिए तैयार हो गये। अब उपनिवेशवासी इंग्लैण्ड की पहले से अधिक अवहेलना करने लगे। फ्रांस के विरुद्ध अंग्रेज सैनिकों के साथ उपनिवेशों के सैनिक भी लड़े थे, जिसके फलस्वरूप उनको सैनिक अनुभव प्राप्त हुआ और उन्होंने अपनी शक्ति को पहचान लिया।
8. नव – विजित क्षेत्रों की समस्या– सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस की पराज्य के फलस्वरूप अमेरिका का समस्त फ्रांसीसी क्षेत्र इंग्लैण्ड के अधिकार में आ गया था। इस क्षेत्र में मुख्यतः फ्रांसीसी कैथोलिक एवं आदिवासी (रैड इंडियन्स) रहते थे, जो अंग्रेजों से घृणा करते थे। अतः इंग्लैण्ड इस प्रकार की नीति अपनाना चाहता था कि इन असन्तुष्ट लोगों को सन्तुष्ट किया जाए। उधर उपनिवेशों के लोग इन नव – विजित प्रदेशों का स्वयं लाभ उठाना चाहते थे और अपनी तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को वहाँ बसाना चाहते थे। उपनिवेशों ने यह दावा किया कि पश्चिम में मिसीसिपी नदी तक उन्हें अपनी सीमा बढ़ाने का अधिकार है। इंग्लैंड की सरकार ने 1763 में एलेगनीज, फ्लोरिडा, मिसीसिपी और क्यूबेक के बीच का समस्त क्षेत्र रैड इंडियन्स के लिए सुरक्षित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप उपनिवेशों के लोगों का पश्चिम की ओर प्रसार रुक गया और वे इंग्लैण्ड की सरकार को उनका अहित करने का दोषी समझने लगे।
9. फ्रांस की नीति – सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांस को इंग्लैण्ड से पराजित होकर बहुत हानि उठानी पड़ी थी। फ्रांसीसी अपने इस अपमान को नहीं भूले थे और वे इंग्लैण्ड से बदला लेना चाहते थे। अतः उन्होंने उपनिवेशों के लोगों को इंग्लैण्ड के विरुद्ध भड़काना शुरू कर दिया। फ्रांसीसियों ने उनको यह भी वचन दिया कि यदि वे इंग्लैण्ड के विरुद्ध विद्रोह करेंगे, तो फ्रांस उनको हर प्रकार की

सहायता देगा।
10. लेखकों का योगदान– उपनिवेशवासियों में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न करने में तत्कालीन लेखकों और दार्शनिकों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन लेखकों में टॉमस पेन, सेम्युअल एडम्स, जेम्स, पेट्रिक हेनरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। टामस पेन की पुस्तक सामान्य ज्ञान (ब्वउउवद ैमदेम) ने उपनिवेशवासियों को अत्यधिक प्रभावित किया। इसमें स्वतन्त्रता की प्रशंसा और राजा के दैवी अधिकारों की आलोचना की गयी थी। इस प्रकार लेखकों और दार्शनिकों ने इंग्लैण्ड की सरकार की दूषित शासन व्यवस्था अवं स्वार्थपूर्ण आर्थिक नीति का पर्दाफाश किया और उपनिवेशवासियों को अपने राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु उत्तेजित किया।
11. उपनिवेशों का आर्थिक शोषण– इंग्लैण्ड की सरकार उपनिवेशों का आर्थिक शोषण करना चाहती थी। अतः उसने अपने लाभ की दृष्टि से व्यापार और उद्योग सम्बन्धी निम्नलिखित कानून पास किये।
(प) नौ–संचालन कानून– इंग्लैण्ड की सरकार ने ऐसे नौ–संचालन कानून पास किये जिनके द्वारा 1651 ई० में यह व्यवस्था की गई कि उपनिवेशों में व्यापार कार्य केवल इंग्लैण्ड आयरलैण्ड
पश्चिमी विश्व
छव्जम्े
ैमस–िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
111
पश्चिमी विश्व
छव्जम्े
ैमस–िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
112
तथा स्वयं उपनिवेशों के जहाजों के माध्यम से ही हो सकता था। यह भी व्यवस्था की गई कि सभी प्रकार के कच्चे माल को, जिसकी इंग्लैण्ड को आवश्यकता थी, बिना इंग्लैण्ड के बन्दरगाहों पर लाए उपनिवेशों से दूसरे स्थानों पर निर्यात नहीं किया जा सकता था।
(पप) व्यापारिक अधिनियम– इन नियमों के अनुसार अमरीकी उपनिवेशवासी कुछ वस्तुओं जैसे चावल, तम्बाकू, लोहा, कच्चा चमड़ा एवं नौसैनिक सामान आदि का निर्यात केवल इंग्लैण्ड को ही कर सकते थे, अन्य देशों को नहीं
(पपप) औद्योगिक नियम 1689 ई० में अमेरिका से ऊनी माल के निर्यात को बन्द कर दिया गया। 1732 ई० में टोपों के निर्यात को बन्द कर दिया गया । 1750 ई० में उपनिवेशों में लोहे के कारखाने स्थापित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
जब इंग्लैण्ड की सरकार ने उपर्युक्त नियमों का कड़ाई से पालन करवाना शुरू किया, तो उपनिवेशों में तीव्र आक्रोश उत्पन्न हुआ।

Notes

विश्व का इतिहास

12. नई आर्थिक नीति– इंग्लैण्ड की सरकार ने अपनी नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित
अधिनियम पास किये जिनसे उपनिवेश वासियों में तीव्र असन्तोष उत्पन्न हुआ।

(प) शुगर एक्ट 1764 ई० इंग्लैण्ड की सरकार ने शुगर एक्ट पारित किया जिसके अनुसार विदेशी रम का आयात बन्द कर दिया गया, शोरे पर कर लगा दिया गया और शराब, काफी आदि पर भी कर लगा दिया गया। इससे उपनिवेश वासियों में तीव्र असन्तोष उत्पन्न हुआ और उन्होंने इस अधिनियम का विरोध करना शुरू कर दिया ।

(पप) करेन्सी एक्ट– 1764 ई० में ब्रिटिश संसद ने करेन्सी एक्ट पास किया जिसके अनुसार उपनिवेशों को पत्र – मुद्रा चलाने के अधिकार से वंचित कर दिया गया तथा उनसे कहा गया कि उनके पास जितनी भी कागज की मुद्रा है, उसे सरकार को लौटायें । इस कानून से उपनिवेशियों का आर्थिक संकट बढ़ गया, क्योंकि उनके पास नकद रूपयों की कमी थी। अतः उपनिवेशियों ने इस कानून का विरोध करना शुरू कर दिया।

(पपप) खोज वारेन्ट अधिनियम – इंग्लैण्ड की सरकार ने तस्कर व्यापार को रोकने के लिए खोज
वारेन्ट अधिनियम पास किया जिसके अनुसार राजस्व अधिकारियों को अमेरिकन लोगों के मकानों की तलाशी लेने का अधिकार मिल गया । उपनिवेशियों ने इस कानून का भी विरोध किया, क्योंकि वे इसे अपने मौलिक अधिकारों का अपहरण समझते थे।

13. ग्रेनविल का स्टम्प एक्ट– अमेरिकन उपनिवेशों से धन प्राप्त करने के उद्देश्य से ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ग्रेनबिल ने 1765 में एक स्टाम्प एक्ट पारित करवाया, जिसके अनुसार समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, न्यायालयों में सरकारी दस्तावेजों के क्रय–विक्रय पर सरकार द्वारा निर्धारित शुल्क के टिकटों का लगाना अनिवार्य कर दिया गया। इस एक्ट से उपनिवेशों के लोग क्रुद्ध हुए। वे कहने लगे कि जब उनकी ओर से अंग्रेजी पार्लियामेंट में कोई प्रतिनिधि नहीं है, तो अंग्रेजी सरकार का उन पर टैक्स लगाना अनुचित व असंवैधानिक है। प्रतिनिधित्व नहीं, तो कर नहीं (छव ज्•जपवद पजीवनज त्मचतमेदजंजपवद) का नारा इसी समय से बुलन्द हो गया। अब उपनिवेशवासियों ने अंग्रेजी माल का बहिष्कार शुरू कर दिया। इस एक्ट ने उपनिवेशों के लोगों में एकता भी उत्पन्न कर दी और उन्होंने पारस्परिक झगड़ों को भूलकर इंग्लैण्ड के विरुद्ध सामूहिक रूप से संघर्ष छेड़ने का निश्चय किया।

1766 में राकिंघम मन्त्रिमण्डल ने स्टाम्प एक्ट को तो रद्द कर दिया, परन्तु उसके स्थान पर पार्लियामेन्ट ने एक दसरा एक्ट पारित कर दिया, जिससे इस बात को दोहराया गया कि अंग्रेजी सरकार को अपने उपनिवेशों पर कर लगाने का अधि िकार है। उपनिवेशों के लोगों ने इसका भी विरोध किया। उनका कहना था कि बिना उनको प्रतिनिधित्व प्रदान किये उन पर कोई बाह्य सत्ता कर नहीं लगा

सकती तथा उनकी व्यवस्थापिकायें ही ऐसा कर सकती है।

14. आयात कर अधिनियम– 1767 ई० में इंग्लैण्ड के वित्तमन्त्री चार्ल्स टाउनसैंड ने चाय, कागज, शीशे और रंग पर आयात कर लगा दिया, जिससे उससे होने वाली आय को उपनिवेशों में ब्रिटिश सरकार की ओर से नियुक्त गवर्नरों तथा राजकीय कर्मचारियों के वेतन और अन्य खर्चों के भुगतान के लिए व्यय किया जा सके। इसके विरुद्ध उपनिवेशों में कई स्थानों पर दंगे हुए और अंग्रेजी माल का बहिष्कार जारी रहा।

15 बोस्टन हत्याकाण्ड– उपनिवेशों के विद्रोह की आशंका से इंग्लैण्ड की सरकार ने बोस्टन नगर के गवर्नर की सुरक्षा के लिए, वहाँ दो सैनिक टुकड़ियाँ नियुक्त कर दीं। 5 मार्च 1770 को बोस्टन के निवासियों तथा ब्रिटिश सैनिकों के बीच झगड़ा हो गया, जिसमें 5 उपनिवेशवासी मारे गए। इसे 'बोस्टन हत्याकाण्ड' कहते हैं। इस घटना से उपनिवेशवासियों में तीव्र आक्रोश उत्पन्न हुआ। एक अमरीकी इतिहासकार ने लिखा है कि '' इस घटना को बोस्टन हत्याकाण्ड की संज्ञा देकर इसे नाटकीय ढंग से ब्रिटिश हदयहीनता तथा नृशंसता के प्रमाण के रूप में चित्रित किया गया, जिसका बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा।'

16. बोस्टन की टी पार्टी – लार्ड नार्थ ने प्रधानमन्त्री बनने के बाद उपनिवेशों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने चाय के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं पर कर हटा दिये। उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी भारत से सीधा अमेरिका को चाय भेजने का अधिकार दे दिया और उस पर नाममात्र का कर लगाया गया। यद्यपि अब उपनिवेशों के लोगों को बहुत सस्ते मूल्य पर चाय मिलने लगी, किन्तु वे प्रसन्न होने के बजाय इस आधार पर भड़क उठे कि अंग्रेजी सरकार को उन पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है।

अब उपनिवेशों में अव्यवस्था फैलने लगी। जब इंग्लैण्ड की सरकार ने विद्रोहियों को दबाने का प्रयत्न किया तो स्थिति और बिगड़ गई। 26 दिसम्बर 1773 को राम को 50–60 व्यक्तियों ने आदिवासियों का भेष धारण कर, बोस्टन बन्दरगाह पर भारत से चाय लेकर आये जहाज पर धावा बोल दिया और चाय की 340 पेटियों को समुद्र में फेंक दिया। यह घटना इतिहास में बोस्टन टी पार्टी के नाम से विख्यात है। इस घटना से उपनिवेशवासियों तथा इंग्लैण्ड की सरकार के बीच कटता और बढ़ गई।

17. दमनकारी कानून– बोस्टन टी पार्टी की दुर्घटना से ब्रिटिश सरकार की क्रोध ाग्नि भड़क उठी और उसने उपनिवश वासियों को दण्ड देने के उद्देश्य से अनेक दमनकारी कानून बनाये। 'बोस्टन पोर्ट एक्ट' के द्वारा बोस्टन का बन्दरगाह बन्द कर दिया गया जिससे हजारों व्यक्ति बेकार हो गये। 'मैसाच्युसेट्स गवर्नमेन्ट एक्ट' के द्वारा उपनिवेशों में स्वशासन को समाप्त कर दिया गया। इस एक्ट के अनुसार उपनिवेशों के राजनीतिक अधिकार का अन्त कर दिया गया। क्यूबेक एक्ट के द्वारा कनाडा के कैथोलिक लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी गई, जिससे प्यूरिटन लोग काफी नाराज हुए। ब्रिटिश सरकार के इस दमनकारी कानूनों ने उपनिवेशवासियों में तीब्र असन्तोष उत्पनन कर दिया।

18. प्रथम एवं द्वितीय महाद्वीपीय कांगेस– ब्रिटिश सरकार के दमनात्मक कानूनों से भी उपनिवेशवासी तनिक भी निरुत्साहित नहीं हुए। अपने पारस्परिक अधि ाकारों की रक्षा के लिए उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने 5 सितम्बर, 1774 ई० में फिलाडेल्फिया नामक स्थान पर एक सभा की। इस सभा में यह प्रस्ताव पास किया गया कि अंग्रेजी सरकार को उपनिवेशों पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है । इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा पास किये गये कानूनों की कड़ी आलोचना की गयी । युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व उपनिवेशों ने ओलिव ब्रांच पिटीशन नामक एक प्रार्थना–पत्र अंग्रेजी सरकार को भेजा, जिसमें उन्होंने 1765 ई के पश्चात् ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा पास किये गये लगभग 13 कानूनों को रद्द करने की माँग की। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस प्रार्थना–पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया। 19 अप्रैल, 1775 को लेक्सिंगटन गाव के निकट ब्रिटिश सेना का मार्ग रोकने के प्रयास में आठ उपनिवेशवासी मारे गए। इससे उपनिवेशों में घोर असन्तोष फैल गया। 10 मई, 1775 को फिलाडेल्फिया
पश्चिमी विश्व
छव्ज्मै
स्व–प्रगति की जाँच करें : 1. क्या अमेरिकी उपनिवेशवासियों में स्वतंत्रता की भावना ने अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरणादी
थी ?
2. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में तत्कालीन लेखकों का क्या योगदान था ?
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
113
पश्चिमी विश्व
छव्ज्मै
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
114
में द्वितीय महाद्वीपीय कांग्रेस का सम्मेलन शुरू हुआ। इसमें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष शुरू करने की घोषणा की गई। दूसरी ओर 23 अगस्त, 1775 को इंग्लैण्ड की सरकार ने उपनिवेशों को विद्रोही घोषित कर दिया। इस प्रकार अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम का सूत्रपात हुआ । 4 जुलाई, 1776 को 13 उपनिवेशों ने इंग्लैण्ड से स्वतन्त्रता प्राप्ति की घोषणा कर दी और स्वतन्त्रता के घोषणा–पत्र का अनुमोदन कर दिया।
अमेरिकी स्वाधीनता संग्राम के परिणाम तथा महत्व
(त्मेनसजे ंदक प्उचवतजंदबम व िजीम ॅंत व िप्दकमचमदकमदबम)
अमेरिकन स्वतन्त्रता संग्राम के परिणाम एवं महत्व
अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के परिणामों एवं महत्व का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–
1. इंग्लैण्ड पर प्रभाव – अमेरिकन स्वतन्त्रता संग्राम के इंग्लैण्ड पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े–

.

इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को आघात – इस युद्ध के पश्चात् विश्व समुदाय में इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा को अत्यधिक आघात पहुचा। इंग्लैण्ड के निवासी अजेय हैं, यह ध ारणा इस युद्ध के पश्चात् समाप्त हो गयी तथा अन्य उपनिवेशों में भी इंग्लैण्ड के विरुद्ध आवाज उठने लगी।

इ. उपनिवेश हाथ से निकल जाना– इस युद्ध के फलस्वरूप इंग्लैण्ड के वे 13 उपनिवेश जो उन्होंने उत्तरी अमेरिका में स्थापित किये थे, हाथ से निकल गये। इन उपनिवेशों से अंग्रेजों को अत्यधिक राजनीतिक एवं व्यापारिक लाभ था। अब अंग्रेज इस लाभ से वंचित हो गये थे। उपनिवेशों के स्वतन्त्र हो जाने से ब्रिटेन के व्यापार तथा वाणिज्य में कमी हो गयी।

ब. ब्रिटिश साम्राज्य की औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन– इस स्वातन्त्रय युद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी नीति में परिवर्तन हुआ। अब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि बचे हुए उपनिवेशों को अपने अधिकार में रखने के लिए शोषण की नीति को छोड़कर उदारता से काम लेना होगा। अतः इस युद्ध के पश्चात् आयरलैण्ड, कनाडा और आस्ट्रेलिया के साथ इंग्लैण्ड ने उदारता की नीति अपनाई ।

क. राजा के व्यक्तिगत शासन का अन्त– इस युद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में वहाँ के राजा जार्ज तृतीय के व्यक्तिगत शासन का अन्त हुआ। इंग्लैण्ड की पराज्य के लिए जार्ज तृतीय को मुख्य रूप से दोषी ठहराया गया और हाउस आफ कामन्स में डनिंग नामक व्यक्ति ने राजा के अधिकारों को सीमित करने का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव पास हो गया। उसके प्रधानमन्त्री लार्ड नार्थ को भी पद त्याग करना पड़ा। इसके बाद वहाँ वैधानिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो गया ।

म. इंग्लैण्ड के लिए नई समस्याएँ – इस युद्ध के परिणामस्वरूप अंग्रेजों के लिए कुछ नवीन समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। 20,000 के लगभग इंग्लैण्ड के राजभक्त उपनिवेशवासी अमेरिका छोड़कर कनाडा चले गये। उनके वहाँ बस जाने से कनाडा में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में झगड़ा होने लगा। इसके अतिरिक्त इस युद्ध के पहले इंग्लैण्ड के राजनीतिक कैदियों को देश निकाला देकर अमेरिका भेज दिया जाता था, परन्तु अब जब अंग्रेजों का यह अमेरिकी उपनिवेश समाप्त हो गया तो उन्हें आस्ट्रेलिया और न्यूजीलेण्ड भेजा जाने लगा। इससे एक नये अंग्रेजी साम्राज्य का जन्म हुआ।

ि. इंग्लैण्ड की आर्थिक अवस्था का दयनीय होना– अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान इंग्लैण्ड को विपुल धन राशि खर्च करनी पड़ी, जिससे उसकी आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई। अमरीकी उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने के कारण इंग्लैण्ड के व्यापार को आघात पहुँचा। इस कारण भी इंग्लैण्ड की आर्थिक अवस्था दयनीय हो गयी ।

ह. वाणिज्यवादी नीति का परित्याग– अब तक इंग्लैण्ड की नीति उपनिवेशों में वाणिज्यवादी सिद्धान्तों पर आधारित थी । उपनिवेशों का आर्थिक शोषण करना

ही इंग्लैण्ड का प्रमुख उद्देश्य था। परन्तु अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के परिणाम स्वरूप इंग्लैण्ड को वाणिज्यवादी नीति का परित्याग करना पड़ा। अब उसने एक नवीन नीति अपनाई, जो अधिक उदार तथा उपनिवेशवासियों के लिए हितकर थी। अब उसने उपनिवेशों में प्रशासनिक सुधारों को प्रोत्साहन दिया ।

2. अमेरिका पर प्रभाव – अमेरिकन स्वतन्त्रता संग्राम के स्वयं अमेरिका पर निम्न प्रभाव पड़े–

2. स्वतन्त्र राष्ट्र का प्रादुर्भाव – अमेरिकी स्वातन्त्रय युद्ध के परिणामस्वरूप अमेरिका के 13 उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये और एक नये स्वतन्त्र राष्ट्र का प्रादुर्भाव हुआ । इतिहासकार स्वेन के कथनानुसार '' इस युद्ध का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि अमेरिका एक स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाने लगा ।'' उपनिवेशों की पुरानी व्यवस्था समाप्त हो गयी और विश्व के इतिहास में एक नवीन राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका (न्दपजमक ैजंजमे व ि।उमतपबं) का प्रादुर्भाव हुआ ।

इ. संघात्मक शासन व्यवस्था – सन् 1787 ई० में फिलाडेल्फिया में एक संवैध ाानिक सभा ने

अमेरिका की एक संघात्मक शासन व्यवस्था स्वीकार की । अमेरिका में पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। आधुनिक विश्व में सर्वप्रथम अमेरिका ने ही प्रजातन्त्र शासन के क्षेत्र में सफल प्रयोग किये। इस संघात्मक शासन व्यवस्था को कालान्तर में अन्य देशों ने भी अपनाया।

ब् अमेरिका की औद्योगिक और आर्थिक उन्नति – युद्ध के समय अमरीकी सैनिकों को अस्त्र–शस्त्र, कपड़े एवं भोजन की आवश्यकता पड़ती रहती थी, जिसे बहुत कुछ तो फ्रांसीसी और डच जुटाते थे, परन्तु इसके बाद भी उन्हें पूरी चीजें नहीं मिल पाती थीं। अतः इस कमी को

पूरा

करने के लिए अमेरिका के घरेलू उद्योग–धन्धों की प्रोत्साहन दिया गया। इससे लोहे, सूती कपड़े और अन्य उद्योगों का काफी विकास हुआ। आर्थिक उन्नति के साथ–साथ अमेरिका में वित्त सम्बन्धी स्वतन्त्रता भी स्थापित हुई ।

क. सामाजिक उत्थान– इस युद्ध के परिणामस्वरूप अमेरिका का सामाजिक उत्थान भी हुआ। अमरीकी क्रान्ति के कारण अमरीकन नारियों में जागृति उत्पन्न हुई । युद्ध के समय स्त्रियों ने गुप्तचर का कार्य करने, अस्त्र–शस्त्र बनाने आदि अनेक कार्यों में सहयोग दिया। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप ऐसे हजारों लोगों को अमेरिका छोड़कर इंग्लैण्ड भागना पड़ा, जिनकी सहानुभूति अंग्रेजी सरकार के प्रति रही थी। इसके अतिरिक्त अमेरिका में उत्तराधिकार के नये नियम बने । इसके अनुसार कोई भी जमींदार अपनी समस्त जायदाद केवल अपने बड़े पुत्र को नहीं दे सकता था, अपितु उसे जमीन एवं जायदाद सभी उत्तराधिकारियों में बाँटनी पड़ती थी जिनमें नारियाँ भी थीं।

म. धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना– इस क्रान्ति के फलस्वरूप अमेरिका में राज्य से धर्म का सम्बन्ध हटा दिया गया । संविधान के अनुसार चर्च को राज्य से अलग कर दिया तथा कांग्रेस को यह अधिकार नहीं दिया गया कि वह कानून

के द्वारा किसी धर्म की स्थापना करे अथवा किसी धर्म के स्वतन्त्र पालन को रोके । इस प्रकार आधुनिक विश्व में अमेरिका ने ही सबसे पहले धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की।

3. फ्रांस का प्रभाव – अमेरिकन स्वातन्त्र्य संग्राम के फ्रांस पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े–

.

.

खोये हुए सम्मान की प्राप्ति – इस युद्ध के परिणामस्वरूप फ्रांस को विश्व में अपने खोये सम्मान की पुनः प्राप्ति हुई। इंग्लैण्ड से सप्तवर्षीय युद्ध में पराजित होने के बाद फ्रांस को कनाडा, नोवास्कोशिया और वेस्टइंडीज के कुछ द्वीपों से वंचित होना पड़ा था, परन्तु 1783 ई० की वर्सीय की संधि के अनुसार फ्रांस को टोबेगोलैण्ड और सेनेगाल प्राप्त हुए। भारत में चन्द्रनगर की व्यापारिक कोठी भी फ्रांस को प्राप्त हुई। इस सबसे फ्रांस की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसी–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

115

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसी–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

116

इ. फ्रांसीसी क्रान्ति पर प्रभाव – फ्रांस ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध उपनिवेशवासियों की ओर से युद्ध में भाग लिया था । वहाँ से जब ये सैनिक विजय प्राप्त करके वापस फ्रांस लौटे तो उन्होंने अनुभव किया कि जिस सिद्धान्त एवं आदर्श के लिए अमेरिका में उन्होंने युद्ध किया था, फ्रांस में उसका उल्लंघन हो रहा है। इसलिए फ्रांस की शासन पद्धति में परिवर्तन करना आवश्यक है। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर अमेरिका के युद्ध से लौटी हुई सेनाओं से फ्रांस में क्रान्ति लाने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। इसके अतिरिक्त अमेरिका में युद्ध करते–करते फ्रांसिसियों का बहुत–सा धन खर्च हो गया था। इससे फ्रांस की सरकार दिवालिया हो गई। इस आर्थिक दिवालियापन ने ही फ्रांस की क्रान्ति को अत्यधिक निकट ला दिया था।

4. आयरलैण्ड पर प्रभाव– अमेरिका के स्वतन्त्रता–संग्राम ने आयरलैण्ड को भी प्रभावित किया। उस समय आयरलैण्ड की जनता अपनी राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए इंग्लैण्ड के विरुद्ध संघर्ष कर रही थी। इस युद्ध तथा इसमें उपनिवेशों की सफलता ने आयरलैण्ड के लोगों को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष तेज करने की प्रेरणा दी। अमेरिकनों के प्रतिनिधित्व नहीं, तो कर नहीं के नारे ने आयरलैण्ड के लोगों को बहुत प्रभावित किया और वे भी आर्थिक शोषण और राजनीतिक दासता से मुक्ति पाने के लिए बड़े उत्साह से जुट गये।

5.

घ्घ

भारत पर प्रभाव – अमेरिका के स्वतन्त्रता – संग्राम ने भारत को भी प्रभावित किया। उस समय अंग्रेजों ने भारत में अपने पैर जमाना शुरू कर दिया था। इस युद्ध के बाद अनेक अंग्रेज राजनीतिज्ञों जैसे – फाक्स, पिट और बक्र आदि ने इस बात पर बल दिया कि भारत में इंग्लैण्ड को अपनी अमेरिका वाली औपनिवेशिक नीति नहीं दोहरानी चाहिए और प्रजा के हितों का ध्यान रखना चाहिए। आगे चलकर अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम ने भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के प्रेरणा दी तथा स्वतन्त्र भारत के संविधान को भी प्रभावित किया। अमेरिकन स्वतन्त्रता – संग्राम ने एशिया के अन्य देशों को भी स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रेरणा दी।

6. वाणिज्य सिद्धान्त का गलत सिद्ध होना– अमेरिका के स्वतन्त्रता–संग्राम के परिणामस्वरूप वाणिज्य सिद्धान्त (डमतबंदजपसम जीमवतल) का अन्त हो गया और उसके स्थान पर एक नवीन नीति का विकास हुआ। वाणिज्य सिद्धान्त के अनुसार वही देश सबसे अधिक धनी समझा जाता था, जिसके पास सबसे अधि
ाक सोना–चाँदी हो। इसी सिद्धान्त के आधार पर स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, हालैण्ड, इंग्लैण्ड आदि ने नवीन देशों की खोज की और वहा अपने–अपने उपनिवेश स्थापित किये। इन देशों की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा ने अनेक युद्धों को जन्म दिया। उपनिवेशों से सस्ती दरों पर कच्चा माल प्राप्त करना तथा ऊँची दरों पर उन्हें निर्मित माल खरीदने के लिए विवश करना उपनिवेशवादी देशों की नीति बन गई थी।

परन्तु अमेरिका के स्वतन्त्रता – युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि आर्थिक समृद्धि के लिए उपनिवेशों का होना आवश्यक नहीं है। अमेरिकन उपनिवेशों के स्वतन्त्र होने से कुछ समय के लिए तो इंग्लैण्ड के आयात–निर्यात को धक्का, लगा, किन्तु कुछ ही वर्षों बाद इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच व्यापार पहले से बहुत अधिक हो गया ।

अमरीकी क्रान्ति का महत्व –

1. जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना– अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम ने राजा के दैवी अधिकारों और कुलीनतन्त्र का अन्त करने में बहुत योग दिया । उसने जनतन्त्र पर आधारित एक नवीन शासन प्रणाली को जन्म दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का प्रथम देश था, जिसने राजतन्त्र का परित्याग कर प्रजातन्त्र की स्थापना की। यही पहला देश था, जिसने लिखित संविधान एवं संघीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात किया ।

2. अन्य देशों पर प्रभाव – अमेरिकन स्वतन्त्रता संग्राम ने विश्व के अनेक देशों को प्रभावित किया। इससे आयरलैण्ड तथा फ्रांस के लोगों को प्रेरणा मिली। इसने फ्रांस की 1789 की क्रान्ति को
प्रोत्साहन मिला। फ्रांसीसी क्रान्ति के मुख्य सिद्धान्त – स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व अमेरिकी संघर्ष में ही निहित हैं।

3. धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना– धर्म – निरपेक्ष राज्य की स्थापना सर्वप्रथम

अमेरिका में ही हुई । 4. साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा– संयुक्त राज्य अमेरिका साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए पराधीन राष्ट्रों को प्रेरणा देता रहा और प्रजातान्त्रिक आदर्श की स्थापना के लिए विभिन्न देशों में आन्दोलन चल पड़ा।

5. इंग्लैण्ड की औपनिवेशिक एवं वाणिज्यवादी नीति में परिवर्तन– अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की पुरानी औपनिवेशिक नीति एवं वाणिज्यवादी नीति में भारी परिवर्तन
आया।

अमरीकी क्रान्ति का स्वरूप– अमरीकी क्रान्ति का स्वरूप मुख्यतया मध्यमवर्गीय था। इस संघर्ष में मध्यमवर्गीय लोगों ने बढ़चढ़ कर भाग लिया। मध्यम वर्ग के लोग सुशिक्षित एवं धन–सम्पन्न थे। वे लेखकों एवं दार्शनिकों के विचारों से सर्वाधिक प्रभावित थे। वे किसी भी प्रकार के शोषण एवं भेदभाव के विरुद्ध थे। अतः मध्यम वर्ग के लोगों ने इस क्रान्ति में प्रमुख भाग लिया । स्वतन्त्रता की घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाले लोगों में अधिकांश मध्यम वर्ग के लोग ही थे । परन्तु इसे मध्यम वर्ग की क्रान्ति कहना तर्क–संगत नहीं है क्योंकि इस क्रान्ति में जनसाधारण ने बढ़–चढ़कर भाग लिया था ।

कुछ विद्वानों के अनुसार अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजों के विरुद्ध एक संघर्ष मात्र था। संघर्ष का मलू कारण उपनिवेशियों के माने हुए अधिकारों पर अंकुश लगाना था । किन्तु अधिकांश विद्वानों ने इस क्रान्ति को स्वतन्त्रता – संग्राम की ही संज्ञा दी है। आरआर. के अनुसार यह स्वतन्त्रता का एक महान संघर्ष
था।

अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की पराज्य और उपनिवेशों की विजय के कारण–

अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों की पराज्य और उपनिवेशों की विजय के कारण निम्नलिखित थे–

1. इंग्लैण्ड का गलत अनुमान – इंग्लैण्ड की पराज्य का एक कारण यह था कि वहाँ की सरकार उपनिवेशों की शक्ति का सही अनुमान न लगा सकी तथा उसे अपनी शक्ति पर अत्यधिक भरोसा था। अंग्रेज समझते थे कि वे बिना किसी विशेष प्रयत्न के उपनिवेशों के विद्रोह को सरलता से दबा देंगे। उनके एक सेनानायक ने तो यहाँ तक कहा था कि उपनिवेशों पर विजय प्राप्त करने के लिए केवल चार रेजिमेंट पर्याप्त है। इन बातों के परिणामस्वरूप ठीक प्रकार से तैयारियाँ नहीं की गईं और वह युद्ध में परास्त हो गया ।

2. अंग्रेज सेनानायकों की गलतियाँ– इस युद्ध में अंग्रेज सेनानायकों ने अनेक मूर्खतापर्ण गलतिया कीं । युद्ध में उन्होंने अनुचित तरीकों, व्यर्थ की चालों तथा सम्भव उद्देश्यों को पाने के लिए गलत मार्ग अपनाया। उदाहरणार्थ, जनरल होव ने प्रोकलिन नामक स्थान पर विजय प्राप्त कर ली, परन्तु इस विजय से अंग्रेजों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि वह अपनी सेना को लेकर जनरल

बरगोइन की सेना के साथ न मिल सका और अंग्रेज सेना सैराटोगा नामक स्थान पर पराजित हो गई । हर्ट के अनुसार इस युद्ध को पूरी तरह निभा न सकने की पूरी जिम्मेदारी जनरल होव पर आती है।

3. जार्ज तृतीय का अनावश्यक हस्तक्षेप– युद्ध के दौरान इंग्लैण्ड के राजा जार्ज तृतीय और उसके युद्ध मंत्री लार्ड जरमेन से युद्ध रचना में आवश्यकता से अधि ाक हस्तक्षेप किया। होना तो यह चाहिए था कि युद्ध–संचालन का पूर्ण दायित्व सेनानायकों को सौंप दिया जाता, क्योंकि वे ही परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार सही निर्णय ले सकते थे, न कि हजारों मील दूर बैठे राजा और उसके मन्त्री द्य

पश्चिमी विश्व

छव्जै

स्व–प्रगति की जाँच करें

3. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में बोस्टन की टी पार्टी घटना स्पष्ट करें।

4. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम

के परिणाम स्वरूप एक नवीन राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रादूर्भाव कैसे हुआ?

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

117

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

118

4. युद्ध–स्थल की कठिनाइयाँ – युद्ध केन्द्र दूर–दूर तक फैले हुए थे। समस्त युद्ध–स्थल लगभग एक हजार मील के घेरे में था और सभी ओर घने जंगल थे। इन कारणों से अंग्रेज सेना को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन दिनों यातायात के साधन अविकसित थे। युद्ध में लड़ते अंग्रेज सेना जंगलों में भटक जाती थी और उसे बहुत हानि उठानी पड़ती थी। दूसरी ओर, उपनिवेशियों को प्रत्येक स्थान का ज्ञान था और वे युद्ध की सही व्यूह रचना करते थे ।

5

अमेरिकनों का स्वातन्त्र्यप्रेम– अंग्रेजों की असफलता का एक बड़ा कारण यह था कि वे ऐसे लोगों से लड़ रहे थे, जो अपनी दासता से मुक्त होने के लिए अपना सब कुछ बलिदान करने के लिए तत्पर थे। यह सत्य है कि उपनिवेशों की सेना को अंग्रेजी सेना ने अनेक स्थानों पर परास्त किया, किन्तु अंग्रेजी सेना के हटते ही वहाँ पुनः विद्रोह हो गया था और पीछे छोड़ी गई अंग्रेजी सैनिक टुकड़ियों को आत्म–समर्पण करना पड़ता था ।

6. इंग्लैण्ड की युद्ध–स्थल से दूरी – इंग्लैण्ड को अपने घर से लगभग तीन हजार मील की दूरी पर अमेरिका से लड़ना पड़ा। इतनी दूर से इंग्लैण्ड के लिए

युद्ध का संचालन करना बहुत कठिन था । इंग्लैण्ड के यूरोपीय शत्रुओं के उत्तरी अमेरिकनों के साथ मिल जाने और इंग्लैण्ड की नाविक शक्ति पर कुछ समय के लिए रोक लग जाने के कारण अंग्रेजों की कठिनाइयाँ बहुत अधिक बढ़ गई थीं। युद्ध के विभिन्न केन्द्रों पर लड़ने वाली अंग्रेजी सेनाओं को एक–दूसरे के समाचारों के न मिलने के कारण अंग्रेजों की पराज्य होती गई ।

7. इंग्लैण्ड के अयोग्य राजनीतिज्ञ – जार्ज तृतीय और उसके मन्त्रियों द्वारा युद्ध में अत्यधिक हस्तक्षेप
किया गया,
जिससे युद्ध – स्थल पर विद्यमान सेनानायक विद्रोहियों के विरुद्ध प्रभावी कदम उठाने में असमर्थ रहे। इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों में ईर्ष्या–द्वेष व्याप्त था, जिसके कारण युद्ध – संचालन योग्य व्यक्तियों के हाथों में नहीं सौंपा जा सका। बुल्फ के योग्य सहायक क्लेरटाउन को राजनीतिक कारणों से पदच्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर अयोग्य जनरल बरगायन को नियुक्त किया गया। वास्तविकता तो यह है कि युद्ध के दौरान ही राजा का कृपापात्र बनने तथा सत्ता के लिए इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों में प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी । इसलिए विलियम्स ने ठीक ही कहा है, 'इंग्लैण्ड की पराज्य का कारण राजा के शत्रु नहीं, बल्कि उसके मित्र थे । '

8. जार्ज तृतीय का हठ– जार्ज तृतीय एक अदूरदर्शी व्यक्ति था । वह हठी स्वभाव का था और वास्तविक सता अपने हाथों में केन्द्रित करना चाहता था। इस युद्ध में सफलता प्राप्त कर वह अपने व्यक्तिगत शासन को दृढ़ करने के लिए व्यग्र था। बड़ा पिट इस युद्ध का संचालन ठीक प्रकार कर सकता था, किन्तु वह राजा के व्यक्तिगत शासन का विरोधी था, अतः जार्ज तृतीय ने उसे अपना प्रध ाानमंत्री नहीं बनाया । वह उपनिवेशों की उचित माँगों को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। उसी हठ के कारण उपनिवेशों पर लगा हुआ चाय कर नहीं हटाया गया। युद्ध के दौरान भी वह अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप करता रहा, जो इंग्लैण्ड के लिए घातक सिद्ध हुआ ।

9. उपनिवेशवासियों का साहस एवं उत्साह – उपनिवेशों के लोग एक उच्च भावना को लेकर अपनी राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे थे। यह युद्ध उनके आत्म–सम्मान और जीवन–मरण का प्रश्न था । उन्हें पता था कि न्याय व नैतिकता उनके साथ है। अतः उन्होंने बड़ी वीरता, साहस और उत्साह से यह युद्ध लड़ा और अपने से कहीं अधिक शक्तिशाली शत्रु पर विजय प्राप्त की। इसके विपरीत, अंग्रेजी सेना में बहुत से सैनिक भाड़े के टट्टू थे, जो ध ान के लालच में पड़कर लड़ रहे थे और उन्हें अपने पक्ष की विजय–पराज्य में विशेष रुचि नहीं थी ।

10. वाशिंगटन का कुशल नेतृत्व– उपनिवेशों की सेना का सेनापति जार्ज वाशिंगटन था, जो एक उच्च
चरित्र का नेता था। उसने सेना का कुशलतापूर्वक संचालन करने के साथ–साथ अपने सैनिकों आत्म–विश्वास और उत्साह का संचार किया। कई बार पराजित

हो जाने पर भी उसने धैर्य और साहस न छोड़ा। उसके कुशल नेतृत्व के कारण उपनिवेश के लोग आठ वर्ष तक अपने से बहुत अधिक शक्तिशाली व साध ान–सम्पन्न अंग्रेजों का सामना करने में समर्थ हुए। इतिहासकार रेम्जे म्यूर का कहना है, जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व ने उपनिवेशवासियों के मन में विश्वास तथा साहस को उत्पन्न कर दिया था, जिसके कारण उन्हें इस महान तथा दुष्कर संघर्ष में अन्तिम विजय प्राप्त हुई । 11. उपनिवेशों को विदेशी सहायता – इंग्लैण्ड के शत्रुओं – फ्रांस, स्पेन आदि ने उपनिवेशवासियों को काफी सहायता दी। जिन वस्तुओं की उपनिवेशों के लोगों को कमी थीं, वे उन्हें विदेशों से प्रापत हो गई। फ्रांस ने उन्हें सैनिक, आर्थिक और खाद्य पदार्थों की सहायता दी, जिसके कारण वाशिंगटन की सेनायें युद्ध जारी रखने के योग्य हो गयीं। इस सहायता के अतिरिक्त, फ्रांस ने उपनिवेशों को नाविक बेड़ा भी दिया, जो उपनिवेशों के इस युद्ध में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ । इसी फ्रांसीसी बेड़े ने यार्कटाउन के स्थान पर अंग्रेज सेनापति कार्नवालिस को आत्म समर्पण करने के लिए विवश किया था।

12. इंग्लैण्डवासियों में आपसी मतभेद– इंग्लैंड के लोगों में अमेरिकन नीति के प्रति आपस में मतभेद

थे। इंग्लैण्ड के बिग लोग अमेरिका के साथ युद्ध के विरोध में थे। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों में भी अमेरिकन नीति के सम्बन्ध में मतभेद थे। एक ओर जार्ज तृतीय तथा ग्रेनविल उपनिवेशों पर ब्रिटेन के द्वारा टैक्स लगाये जाने के अधिकार को उचित और वैध समझते थे वहीं दूसरी ओर पिट के मतानुसार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को उपनिवेशों पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं था और उसने अमेरिकनों को इसका विरोध करने के लिए उत्साहित किया। प्रसिद्ध विचारक एडमण्ड बक्र भी उपनिवेशों के साथ समझौता करने के पक्ष में था । कामन्स सभा में उसने कहा था कि अमेरिका के विरोध से मैं खुश है। अन्याय तथा अत्याचार के कारण अमेरिकन पागल हो गये हैं। क्या आप लोग इस पागलपन के लिए उन्हें सजा देंगे। जिसका बीजारोपण आप ही ने किया है। इस प्रकार अधिकतर देशवासी भी इस युद्ध को अनुचित तथा अन्यायपूर्ण मानते थे ।

13. ब्रिटिश शक्ति का विभाजन– एक तरफ तो उस समय ब्रिटेन की आन्तरिक कठिनाइयाँ थीं, वहीं भारत में मराठे, हैदर अली तथा फ्रांसीसी अंग्रेजों की शक्ति को नष्ट करने की सम्मिलित चेष्टा कर रहे थे। आयरलैण्डवासी भी अंग्रेजों को अपने देश से भगाने की फिराक में थे। फ्रांस तथा स्पेन के सम्मिलित आक्रमण का भी इंग्लैण्ड को भय लगा रहता था। अतः वह अपनी सीमाओं की रक्षा करने के लिए भी चिन्तित था । यूरोप के दूसरे राज्यों की सहानुभूति भी उसे प्राप्त न थी । इन सब कठिनाइयों के कारण टेन अमेरिका के विरुद्ध अपना सम्पर्ण ध्यान तथा साधन नहीं लगा सका ।

14. सजातीय बन्धु– अमेरिका के 90 प्रतिशत निवासी इंग्लैण्ड से गये हुए अंग्रेजों की ही सन्तानें थीं। इसलिए इंग्लैण्ड के सैनिक अमेरिका के अपने

सजातीय बन्धुओं से नहीं लड़ना चाहते थे। अतः बाध्य होकर जार्ज तृतीय को जर्मन सैनिकों का उपयोग करना पड़ा। इन जर्मन सैनिकों में युद्ध के लिए कोई उत्साह नहीं था। जर्मन सैनिकों के कारण अमेरिकन लोग और भी क्रुद्ध हुए और पूरे उत्साह के साथ शत्रु सेनाओं से युद्ध करने लगे और विजयश्री प्राप्त की।

15. अमेरिकी उपनिवेशियों द्वारा छापामार युद्ध पद्धति का सहारा लेना– अमेरिकी उपनिवेशियों ने छापामार युद्ध–पद्धति का सहारा लिया ओर अंग्रेज सैनिकों को भारी हानि पहुँचाई । दूसरी और ब्रिटिश सेना छापामार युद्ध से निपटने में सक्षम नहीं थी । अतः इस कारण भी अंग्रेजों को पराज्य का मुँह देखना पड़ा।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों के रहते अमेरिकन स्वतन्त्रता संग्राम में इंग्लैण्ड की पराज्य हुई तथा उपनिवेशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

सारांश

अमरीकी क्रान्ति का स्वरूप मुख्यतया मध्यमवर्गीय था। इस संघर्ष में मध यमवर्गीय लोगों ने बढ़चढ़ कर भाग लिया। मध्यम वर्ग के लोग सुशिक्षित एवं धन–सम्पन्न थे। वे लेखकों एवं दार्शनिकों के विचारों से सर्वाधिक प्रभावित थे। वे किसी भी प्रकार के शोषण एवं भेदभाव के विरुद्ध थे। अतः मध्यम वर्ग के

ैमसस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

119

पश्चिमी विश्व

छव्जै

लोगों ने इस क्रान्ति में प्रमुख भाग लिया । स्वतन्त्रता की घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाले लोगों में अधिकांश मध्यम वर्ग के लोग ही थे । परन्तु इसे मध्यम वर्ग की क्रान्ति कहना तर्क–संगत नहीं है क्योंकि इस क्रान्ति में जनसाधारण ने बढ़–चढ़कर भाग लिया था ।

कुछ विद्वानों के अनुसार अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजों के विरुद्ध एक संघर्ष मात्र था। संघर्ष का मलू कारण उपनिवेशियों के माने हुए अधिकारों पर अंकुश लगाना था । किन्तु अधिकांश विद्वानों ने इस क्रान्ति को स्वतन्त्रता संग्राम की ही संज्ञा दी है। आरआर के अनुसार यह स्वतन्त्रता का एक महान संघर्ष था ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

,

1. उपनिवेशवासियों में स्वतन्त्रता की भावना – अमेरिकन उपनिवेशों के निवासी इंग्लैण्ड के लोगों से अधिक उत्साही व स्वतन्त्रता प्रेमी थे। इन उपनिवेशों के 90 प्रतिशत निवासी अंग्रेज थे, जो इंग्लैण्ड के निवासियों की अपेक्षा जनतन्त्र शासन प्रणाली के कट्टर समर्थक थे। इनमें जनतन्त्र शासन प्रणाली और स्वतन्त्रता की भावना का इंग्लैण्ड से भी अधिक प्रचार था । उपनिवेशों के अधिकांश निवासी

व्यापारी, किसान और शिल्पी थे, जिनमें स्वभावतः स्वतन्त्रता की भावना कूट–कूटकर भरी हुई थी।

2. लेखकों का योगदान– उपनिवेशवासियों में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न करने में तत्कालीन लेखकों और दार्शनिकों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन लेखकों में टॉमस पेन, सेम्युअल एडम्स, जेम्स, पेट्रिक हेनरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। टामस पेन की पुस्तक सामान्य ज्ञान (ब्वउउवद ैमदेम) ने उपनिवेशवासियों को अत्यधिक प्रभावित किया। इसमें स्वतन्त्रता की प्रशंसा और राजा के दैवी अधिकारों की आलोचना की गयी थी । इस प्रकार लेखकों और दार्शनिकों ने इंग्लैण्ड की सरकार की दूषित शासन व्यवस्था अवं स्वार्थपूर्ण आर्थिक नीति का पर्दाफाश किया और उपनिवेशवासियों को अपने राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु उत्तेजित किया।

3. बोस्टन की टी पार्टी – लार्ड नार्थ ने प्रधानमन्त्री बनने के बाद उपनिवेशों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने चाय के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं पर कर हटा दिये। उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी भारत से सीधा अमेरिका को चाय भेजने का अधिकार दे दिया और उस पर नाममात्र का कर लगाया गया। यद्यपि अब उपनिवेशों के लोगों को बहुत सस्ते मूल्य पर चाय मिलने लगी, किन्तु वे प्रसन्न होने के बजाय इस आधार पर भड़क उठे कि अंग्रेजी सरकार को उन पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है।

4.

अब उपनिवेशों में अव्यवस्था फैलने लगी। जब इंग्लैण्ड की सरकार ने विद्रोहियों को दबाने का प्रयत्न किया तो स्थिति और बिगड़ गई। 26 दिसम्बर 1773 को राम को 50–60 व्यक्तियों ने आदिवासियों का भेष धारण कर, बोस्टन बन्दरगाह पर भारत से चाय लेकर आये जहाज पर धावा बोल दिया और चाय की 340 पेटियों को समुद्र में फेंक दिया। यह घटना इतिहास में बोस्टन टी पार्टी के नाम से विख्यात है। इस घटना से उपनिवेशवासियों तथा इंग्लैण्ड की सरकार के बीच कटता और बढ़ गई।

स्वतन्त्र राष्ट्र का प्रादुर्भाव – अमेरिकी स्वातन्त्र्य युद्ध के परिणामस्वरूप अमेरिका के 13 उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये और एक नये स्वतन्त्र राष्ट्र का प्रादुर्भाव हुआ । इतिहासकार स्वेन के कथनानुसार '' इस युद्ध का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि अमेरिका एक स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाने लगा । '' उपनिवेशों की पुरानी व्यवस्था समाप्त हो गयी और विश्व के इतिहास में एक नवीन राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका (न्दपजमक ैजंजमे वि ।उमतपबं) का प्रादुर्भाव हुआ ।

अभ्यास–प्रश्न

1. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारणों का वर्णन करें।

2. अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के परिणाम एवं महत्व पर प्रकाश डालें।

ैमसर–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

3.

120

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में इंग्लैंड की पराज्य एवं उपनिवेशों की विजय के क्या कारण थे? समीक्षा करें।

अध्याय – 7
फ्रांस की की राज्य क्रान्ति
(थ्त्म्छब्भ्
त्म्टव्स्न्ज्प्व्छ)
इस अध्याय के अन्तर्गत :
फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण, प्रभाव एवं परिणाम
फ्रांस की क्रान्ति का महत्व, स्वरूप और इसके लिए दार्शनिकों के योगदान
इतिहास कार हेज का विचार
राष्ट्रीय सभा के कार्य का मूल्यांकन
मनुष्य के आधारभूत सिद्धान्तों की घोषणा तथा संविधान
☐ नेपोलियन बोनापार्ट
☐ ट्रेफाल्गर का युद्ध
☐ महाद्वीपीय व्यवस्था
☐ राष्ट्रों का युद्ध
वाटरलू का युद्ध
वियना कांग्रेस
मैटरनिख युग, मैटरनिख और जर्मनी एवं मैटरनिख और इटली
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :
फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण, प्रभाव एवं परिणाम की समीक्षा कर सकेंगे
फ्रांस की क्रान्ति का महत्व, स्वरूप और इसके लिए दार्शनिकों के योगदान समझ सकेंगे
इतिहास कार हेज का विचारों की व्याख्या कर सकेंगे
☐ राष्ट्रीय सभा के कार्य का मूल्यांकन तथा मनुष्य के आधारभूत सिद्धान्तों की घोषणा तथा संविधान समझ सकेंगे
नेपोलियन बोनापार्ट, ट्रेफाल्गर का युद्ध, महाद्वीपीय व्यवस्था, राष्ट्रों का युद्ध, वाटरलू का युद्ध विस्तृत रूप से जान सकेंगे
आप वियना कांग्रेस की समीक्षा कर सकेंगे
☐ मैटरनिख युग के अन्तर्गत मैटरनिख और जर्मनी तथा मैटरनिख और इटली की
समीक्षा कर सकेंगे
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
121

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
122
परिचय
विश्व इतिहास में फ्रांस की राज्य क्रान्ति का एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक ऐसी क्रान्ति थी, जिसने विश्व को सोते से जगाया था। इस तरह से इस क्रान्ति के श्रीगणेश के साथ ही साथ यूरोप का इतिहास एक, राष्ट्र एक घटना और एक पुरुष के इतिहास में मिलकर एक हो जाता है, वह राष्ट्र है फ्रांस । वह घटना है फ्रांस की राज्य क्रान्ति और वह व्यक्ति है नेपोलियन बोनापार्ट इतना ही नहीं, इस क्रान्ति ने एक युग का अंत और दूसरे युग के आगमन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। यह क्रान्ति ने विश्व के कोने–कोने में शासन के नवीन सिद्धान्तों, सामाजिक व्यवस्था के नवीन विचारों और मानव अधिकार के सिद्धान्तों को समुचित ढंग से फैलाया । इस तरह से इस क्रान्ति ने यूरोप की पुरानी प्रथाओं परम्पराओं और रीति रिवाजों तथा संस्थाओं को चुनौती दी। इस तरह से इस क्रान्ति का महत्व अत्यधिक प्रमुख है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के कारण :

वस्तुतः क्रान्ति एकाएक नहीं होती है। इसके लिए बहुत पहले से ही पृष्ठभमि तैयार की जाती है। अतः फ्रांस की राज्य क्रान्ति एकाएक न होकर उसका बीज बहुत पहले ही रोपा जा चुका था जो समय और परिस्थितियों को पाकर पनप गया। इस तरह से फ्रांस की राज्य क्रान्ति के निम्नलिखित कारण प्रमुख हैं–

1. सामाजिक कारण– फ्रांस का समाज सड़ – गल गया था। समाज विषमताओं और असमानताओं पर
आधारित था। फ्रांस का समाज तीन भागों में बाँटा हुआ था, जो निम्नलिखित थे–

(प) पादरी वर्ग – फ्रांस में कैथोलिक धर्म का बोलबाला था, जिससे वहा पादरियों और चर्चा का प्रभुत्व था। सर्वत्र उनका लोहा माना जाता था वहाँ पादरियों का भी दो वर्ग था– एसक बड़ा पादरी और दसरा छोटा पादरी ।

बड़ा पादरी : फ्रांस में बड़े पादरियों की संख्या बहुत ही कम थी परन्तु उनके पास अगाध धन था । वे लोग विशाल भवनों में रहते थे। सोना–चाँदी, हीरा – जवाहरात उनके पास थे। फ्रांस की समस्त भूमि का पांचवाँ हिस्सा उनके पास था। इस तरह से उनको किसी चीज की कमी नहीं थी। उनका रहन–सहन ठाठ–बाट और खान–पान भी उच्चकोटि का था। राजकोष में वे कुछ कर देकर करों से मुक्त थे। अतः उनका जीवन बहुत ही सुखमय था । दशांश (टाइथ) । से भी उनको काफी आमदनी होती थी । अतः वे धन से अंधा हो गये। आध्यात्मिक से उनको कोई जरूरत नहीं थी। वे लोग सुरा, सुन्दरी सोना और

रंगरेलियों में मस्त रहते थे, जिसकी वजह से चर्च में अनेक बुराइयाँ प्रवेश कर गई थीं। फिर, पादरी वर्ग अपने विशेषाधिकारों का भी दुरुपयोग कर रहे थे। शासन में चर्च को स्वतंत्रता प्राप्त थी लेकिन इस वर्ग से आज जनता बहुत ही असंतुष्ट थी। चर्च पर से लोगों की श्रद्धा उठती जा रही थी क्योंकि लोग चर्च को ही सब तरह की बुराइयों की जड़ समझते थे। इस संबंध में बाल्टेयर का कथन था कि "ब्तनेी जीम पदंिवने बैनतबी" अर्थात् भ्रष्ट चर्च को नष्ट करो। इस तरह से बड़े पादरियों के काले कारनामों ने क्रान्ति को उभाड़ा द्य

छोटे पादरी : छोटे पादरियों के पास धन का पूर्ण अभाव था । इस तरह फ्रांस के पादरी अत्यंत गरीब थे। उनकी दशा शोचनीय थी। वे शहरों और अधिकतर देहात में रहते थे। गरीबी से वे परेशान थे। कहीं उनकी इज्जत प्रतिष्ठा नहीं थी और न समाज में ही कोई आदर था। इसलिए ये छोटे पादरी लोग बड़े पादरियों से जलते और उनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। फलतः दोनों वर्गों के पादरियों में विद्रोह हो गया। इस आपसी संघर्ष के कारण चर्च की बदनामी बहुत बढ़ गयी थी। चर्च ही शिक्षा का भी प्रबंध करता था । परंतु चर्च स्वतंत्र विचारों का विरोधी था और निरंकुशतावाद का कट्टर समर्थक था । इस तरह पादरियों के आपसी विरोध से भी क्रान्ति आगे बढ़ी।

(पप) सामन्त वर्ग – फ्रांस के समाज में पादरियों के बाद कुलीनों का स्थान था। इनके पास भी अपार सम्पत्ति थी । लक्ष्मी के बरद पुत्र ये ही लोग थे। इनके पास भी किसी चीज की कमी नहीं
थी। वे लोग राज्य के बड़े–बड़े पदाधिकारी थे। स्थल तथा जल सेना के सेनापति इसी वर्ग के लोग होते थे। जिससे समाज में इनका बहुत आदर था। लोग इनको डल स्वतक या ल्वनत ळतंबम कहा करते थे। फिर इनकों किसी तरह का कर नहीं देना पड़ता था । उनके पास फ्रांस की भमि का पाँचवाँ भाग भी था। इसके बाद भी उनको सम्राट की ओर से पेंशन, पुरस्कार और एकाधि ाकार तथा विशेषाधिकार दिये गये थे। जबकि प्रत्यक्ष नहीं, अप्रत्यक्ष रूप से उनको बहुत तरह के करों को चुकाना पड़ता था । परंतु इन करों से वचने के लिए वे कई तरह के उपाय किया करते थे। सरकारी पद उनके लिए सुरक्षित रखा जाता था। इतना ही नहीं, उनके पास बड़ी–बड़ी जागीरें भी थीं। ये लोग ठाठ–बाट से जीवन–यापन कर बुलंद महलों में रहकर और भोग–विलास में लिप्त रहकर आम जनता का शोषण कर रहे थे। अतः जनता उनके कार्यों से ऊब गई थी और क्रान्ति के द्वारा उनसे छुटकारा पाना चाहती थी ।

(पपप) साधारण वर्ग – इस वर्ग से दो तरह के लोग थे– एक में देहांत में रहने वाले किसान और दूसरों में शहरों में रहने वाले मध्यम वर्ग के लोग, देश के अधि ाकतर लोग इसी वर्ग में थे । इस वर्ग को निम्न वर्ग (जीपतक म्जंजम) या विशेषाधिकारों से वंचित वर्ग भी कहा जाता था । यह वर्ग राज्य का स्तंभ था परंतु सबसे अधिक शोषित, दलित और उपेक्षित था। इसलिए इस वर्ग के सभी लोगों के हृदय में विद्रोह की अग्नि दहक रही थी। किसानों में आधा से भी अधि ाक अर्द्धदास के समान थे। कुछ किसान अवश्य ही स्वतंत्र थे परंतु दासता की

बेड़ी में जकड़े हुए थे क्योंकि उनको भी सरकारी कर नजराने और चर्च को दशांश देना पड़ता था । उनको अपने मालिक के यहाँ सप्ताह में 3 दिन बेगारी करनी ही पड़ती थी । अन्न बेचने में पुल पार करते समय चुंगी देनी ही पड़ती थी । उनको अधिक पैसा देकर अपने मालिकों के मिल में आटा पिसाना ही पड़ता था । सामन्त, मालिक, चर्च और राजा को टैक्स देने के बाद उनके पास कुछ नहीं बच पाता था । यहाँ तक कि वे अपने बाल–बच्चों का भी निर्वाह नहीं कर सकते थे। समाज में मध्यम वर्ग का महत्व बढ़ रहा था क्योंकि इन लोगों में बुद्धि, ज्ञान और चेतना की भरमार थी परंतु यह वर्ग विशेषाधिकारों से रहित था। ट्रेड गिल्ड्स के नियमों से कारीगरी का हाथ–पैर कट गया। मजदूर वर्ग की हालत तो और पतली थी इसलिए ये लोग कुलीनों से बेहद नाखुश थे। इस संबंध में नेपोलियन का कथन था कि क्रान्ति का वास्तविक कारण मध्यम वर्ग के लोगों का अभिमान था । स्वाधीनता तो महज एक बहाना था । अतः मध्यम वर्ग के लोग सामाजिक समानता चाहते थे।

2. राजनीतिक कारण– फ्रांस में केन्द्रित शासन था । इसलिए वहाँ शासन की बागडोर राजा के हाथों में थी। राजा स्वेच्छाचारी और दैवी अधिकार के सिद्धान्त में विश्वास करता था । इसलिए सजा जो बोलता था वही कानून था । उसकी बातों का खंडन करना पाप समझा जाता था। इसलिए सर्वत्र राजा की ही चलती थी। राजा के संबन्धियों उनके कृपापात्रो और उस पर आश्रितों की भी खूब चलती बनती थी। उनका जीवन आनदमय था। भोग–विलास ही उनके जीवन की विशेषता थी । जनता द्वारा दिये गये धन का खर्च भोग–विलास पर ही होता था । उनकी अदालत भी अलग–अलग थी। कर में एकरूपता भी नहीं थी । एक स्थान में नमक पर 10 प्रतिशत कर लगता था तो दूसरे स्थान पर 30 प्रतिशत कर लिया जाता था और तीसरे स्थान में 50 प्रतिशत नमक पर कर लगता था । इसकी वजह से सरकारी कर्मचारी जनता को खघ्ूब परेशान करते थे और उनके धन से अपनी जेब भरते थे। इस संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार हेर्जन महोदय की यह उक्ति ठीक है कि ”जीम वसक तमहपउम पद म्नतवचमे कमचसवलमक जव जीम टमतल चतपदबपचसमे पद ीपबी पेज तमेजमक“ अतः फ्रांस के हर एक क्षेत्र में अलग–अलग नियम बने थे जिसके फलस्वरूप हर एक भाग एक दूसरे से कटा हुआ था । फलतः शासन में अनेक कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ रहा था। मापने तौलने के यंत्र भी

□ अलग–अलग थे। फिर व्यापार पर अधिक चुंगी थी। इन सबकी वजह से उद्योग–धंधा ठप्प पड़ गया था। इतना ही नहीं फ्रांस के व्यापारियों को एक ही काम के लिए अनेक जगह कर देने पड़ते थे। न्याय के लगभग 100 नियम थे जिनके पालन करने में प्रान्तों और जिलों के कर्मचारी लोग मनमानी करते थे। जिससे सर्वत्र उलझन पैदा हो गई थी। ऐसी परिस्थिति में क्रान्ति का होना कोई विचित्र

पश्चिमी विश्वः

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतप
पश्चिमी विश्व
छव्ज्मै
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
124

Notes

बात नहीं थी।

3. आर्थिक कारण– 18वीं सदी में आर्थिक दशा भी दयनीय थी। यह क्रान्ति का एक बहुत बड़ा
कारण था। अगर फ्रांस की आर्थिक दशा नहीं बिगड़ती तो फ्रांस में इतनी जल्दी क्रान्ति नहीं होती । फ्रांस की आर्थिक दश इतनी बिगड़ गई थी कि वहाँ राष्ट्रीय आय और व्यक्तिगत आय में कोई अंतर नहीं था। राजकीय आय का उपयोग राजा और उसके मंत्रिगण अपने कार्य में करते थे । वार्षिक बजट के अभाव में वहाँ आमद – खर्च का कोई लेखा–जोखा भी नहीं होता था। राजकीय कोष में प्रत्यक्ष और परोक्ष कर से आमदनी आती थी । परोक्ष कर नमक पर बहुत अधि ाक कर था । कर बड़े–बड़े अमीर लोग वसूलते थे। वे लोग निश्चित रकम लेकर यह काम ठेकेदारों को दे दिया करते थे । ठेकेदारों लोग कर वसूलने में मनमानी करते थे।

प्रत्यक्ष कर भूमि और अन्य प्रकार की संपत्ति पर लगाया जाता था, लेकिन आध ी से भी अधिक भूमि के मालिक कुलीन और पादरी वर्ग के लोग थे जो करों के बोझ से मुक्त थे। किसानों पर कर का सबसे अधिक बोझ था, जिसको वे लोग वहन नहीं कर पा रहे थे। इस तरह की आर्थिक गड़बड़ी से भी फ्रांस में क्रान्ति हुई ।

4. दार्शनिक कारण : तत्कालीन फ्रांस दार्शनिकों का गढ़ था । इन्हीं दार्शनिक ने आम जनता के मूक असंतोष को मुखरित कर दिया था। जिससे प्राचीन अंध ाविश्वास, रूढ़ि परंपरा और प्रथाओं की दीवारें ढह गईं। तत्कालीन प्रमुख विचारकों में रूसी, बाल्टेयर, मौनटेस्क्यू और दिरों आदि थे। इन सब विचारकों ने पुरानी व्यवस्था में सुधार लाने का संदेश लोगों को दिया। इन विचारकों ने अपने विचारों के फैलाव के लिए बहुत–सी पुस्तकों, पत्रिकाओं और पत्रों को छपवाया, जिनको जनता बड़े चाव से पढ़ने लगी। रचनाओं और भाषणों में उनका संदेश अत्यंत ही व्यावहारिक और लाभप्रद था। रूसो का सामाजिक समझौता को सिद्धान्त ैवबपंस ब्वदजतंबज जीमवतल) बहुत ही प्रसिद्ध है। इसमें सरकारी सत्ता का मुख्य आधार शासितों की इच्छा को माना गया है जिसको रूसी सामान्य इच्छा (ळमतदमतंस पसस) कहा करता था। इस तरह से रूसो सार्वभौम सत्ता को जनता के हाथों में सौंपना
चाहता था।

वाल्टेयर चर्चा में प्रचलित धार्मिक पक्षपात और निराधार विश्वास को दर करना चाहता था। चर्च की आलोचना करने और उसकी बुराइयों को परखने में वह माहिर था । वह तीखे व्यंग्य और कटाक्ष के लिए बहुत प्रसिद्ध था। वह एक

साथ इतिहासकार, साहित्यकार, विचारक और प्रसिद्ध दार्शनिक था । उपन्यास लिखने में भी बेजोड़ था। इस संबंध में स्वयं वाल्टेयर का यह कथन था कि ”प्ज पे इमजजमत जव इम हवअमतदमक इल वदम सपवद तंजीमत जींद जव ं ीनदकममक सपवदमे वत तंजे” इस तरह वाल्टेयर के प्रभाव से चर्च की रही–सही शक्ति समाप्त हो गई।

मौनटेस्क्यु 'शक्ति विभाजन' के सिद्धान्त (च्तपदबपचसम व िमचंतंजपवद व िचवमत) का प्रतिपादक था। वह कार्यपालिका (म्गमबनजपअम) व्यवस्थापिका (स्महपेसंजपअम) और न्यायपालिका (श्रनकपबसंतल) के अधिकारों को पृथक–पृथक चाहता था ।

दिरों और वाल्टेयर विश्व कोष की रचना कर चुके थे। इस विश्वकोष ने सम्पूर्ण फ्रांस में तहलका मचा दिया। अतः यह भी क्रान्ति का एक बहुत बड़ा कारण था। इनके अतिरिक्त क्वेसेने और एबीसिस भी बहुत बड़े विचारक थे।

इन दार्शनिकों की शिक्षा का प्रभाव सबसे अधिक मध्यम वर्ग के लोगों पर था जो कुलीनों और पादरियों को देखना नहीं चाहते थे। किसानों और मजदूरों पर भी उनके उपदेशों का गहरा असर था । इस तरह से दार्शनिकों ने फ्रांस में क्रान्तिकारी वातावरण तैयार कर दिया। अतः एक विद्वान का कथन सत्य ही है कि आर्थिक कारण ने फ्रांस की क्रान्ति रूपी रेल के डिब्बों को तैयार कर दिया और दार्शनिक कारण इंजन बनाकर फ्रांस की क्रान्तिरूपी रेल को लेकर दौड़ गया ।

5. अवैध गिरफ्तारियाँ और प्रतिबंध – फ्रांस की शासन व्यवस्था में अवैध ढंग से गिरफ्तारियाँ होती

थीं और लोगों पर अनेक तरह के प्रतिबंध भी थे। कुलीनों तथा राजा के कृपापात्रों को अप्रसन्न कर देने पर लोगों को सरकारी वारंट या स्मजजमत कमंबीमबज के द्वारा इनको बंदी बनाकर जेल में बंद कर दिया जाता था। ऐसे अभियुक्तों को अपने जीवन का शेष समय जेल में ही बिताना पड़ता था । इसके द्वारा बड़े–बड़े व्यक्तिगत दुश्मनों का बदला लोगों से लेते रहते थे। नये विचारक और दार्शनिक इसके शिकार होते थे। एक बार वाल्टेयर और प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मिराबों को भी इसका शिकार बनना पड़ा था। इससे मध्यम वर्ग के लोग अधिक परेशान थे। फलतः सर्वत्र अशांति थी । इसलिए इस तरह के प्रतिबंध और परेशानी से लोग मुक्त होना चाहते थे अतएव लोग क्रान्ति के पक्ष में होकर क्रान्ति कर बैठे।

6. सैनिकों में असंतोष की भावना – फ्रांस की शासन व्यवस्था से सैनिक लोग भी पूर्णरूपेण असंतुष्ट थे। नवीन विचार तथा नतन भावना का अभाव सैनिकों पर गहरे रूप में पड़ा था। सैनिकों को वेतन भी बहुत कम तथा समय पर नहीं मिलता था । उनको खाना भी समुचित नहीं मिलता था। सैनिक व्यवस्था भी संतोषजनक नहीं थी। सैनिकों की वीरता से काम करने पर भी पदोन्नति नहीं होती थी। बड़े–बड़े पदों पर बाहर के ही सैनिकों को रखा जाता था। सैनिक कार्य छोड़कर विलासिता में मस्त रहा करते थे। फलतः साधारण सिपाही उनके

प्रति आदर के भाव नहीं रखते थे। फिर सैनिकों में पदों का वितरण योग्यता और कुशलता के आधार पर न होकर कुलीनता के आधार पर होता था। इससे भी सैनिकों के ह्रदय में असमानता तथा असंतोष की भावना भर गई थी । इस तरह वहाँ के सैनिक वहाँ अधिकारियों के नियंत्रण से बाहर चले गये थे। फिर वहाँ के अधिकारियों की क्षमता भी नहीं थी। यही कारण है कि फ्रांस के सैनिकों ने क्रान्तिकारियों का ही साथ दे दिया जिससे क्रान्तिकारियों को सफलता मिली।

7. अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम— अमेरिका के स्वाधीनता संग्राम ने भी इन क्रान्तिकारियों को आगे बढ़ाने में सहायता पहुँचाई । इसने क्रान्ति की सोई हुई भावनाओं को खूब उभाड़ा। बात यह थी कि स्वाधीनता संग्राम में फ्रांस से बहुत से नवयुवक स्वयंसेवक अमेरिका को मदद पहुँचाने गये थे। फलतः वे अमेरिका के स्वाधीनता संग्राम में लड़े और उसे बहुत निकट से देखा भी था। वहाँ पर उन लोगों ने यह अनुभव किया कि फ्रांस में भी क्रान्ति के द्वारा राजा के चुंगुल से बचा जा सकता है । वहाँ से लौटकर आने के बाद फ्रांस में नवयुग के निर्माण के लिए तत्पर हो गये। इससे भी क्रान्ति को अत्यधिक बल मिला।

8.

—

शासक की अयोग्यता क्रान्ति के समय फ्रांस का शासक 16वाँ लुई था । वह अयोग्य था और अपनी पत्नी रानी मेरी आंतोआंत के हाथ खिलौना था । वह सुरा और सुंदरी में व्यस्त रहता था । उसका शेष समय खराब तालों की मरम्मत करने और तास खेलने में व्यतीत होता था। शासन—कार्य करने का उसके पास समय नहीं था। शासन तो उसकी रानी करती थी। वह भी अपने प्रेमियों के इच्छानुसार ही । राजा बर्साइल के राजमहल में पड़ा रहता था। अतः देश की बिगड़ती हुई हालत में सुधार नहीं ला सका। वह साहसी भी नहीं था। तत्कालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए राजा को बहुत अधिक साहसी होने की जरूरत थी । लेकिन यह गुण राजा में नहीं था जिसका फल बहुत बुरा निकला। वह सरदारों और उच्चधिकारियों की इच्छा रोकने में सफल नहीं हो सका। उसने नैकर और तुरगेव जैसे योग्य अर्थशास्त्रियों के सुझावों को न मानकर उनको शीघ्र हटा दिया। अगर राजा उनके सुझावों को मान लेता तो निश्चय ही फ्रांस की आर्थिक दशा में सुधार आ जाता और क्रान्ति कुछ समय के लिए टल जाती । परंतु अपनी अयोग्यता के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। राजा की अयोग्यता ने क्रान्ति की आग में घी का काम किया।

9. शासन का दिवालियापन— फ्रांस के राजा और रानी बहुत अधिक खर्च करते थे। शासन—कार्य को छोड़कर राजा और रानी का व्यक्तिगत खर्च कई करोड़ सालाना था। राजा तथा रानी के सेवक और सेविकाओं की संख्या भी बहुत अध्िाक थी । फिर, रानी अपने नैहर से आये प्रेमियों पर भी

बहुत अधिक खर्च करती थी और यह भी कहा जाता है कि फ्रांस का बहुत ध्ान रानी अपने नैहर भी

छव्ज्ै
ैमस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
125
पश्चिमी विश्व
छव्ज्ै
ैमस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
126

भेजा करती थी । इस तरह से फ्रांस का शाही खजाना एकदम खाली हो गया था। ठीक उसी समय फ्रांस ने अमेरिका के स्वातंर्त्य संग्राम में धन से अमेरिका को मदद पहुँचाई जिससे फ्रांस का दिवाला निकल गया। इस तरह से इस संग्राम में फ्रांस ने अमेरिका का साथ देकर अपने प्रबल शत्रु इंग्लैण्ड को पछाड़ा। परंतु इससे फ्रांस की आर्थिक दशा एकदम खराब हो गई जिसमें सुधार लाने की योजना बनाई परंतु कुछ कारणों से इनको अमल में नहीं लाया गया। फलतः योजना कारगर न हो सकी। शाही खजाना खाली का खाली ही रह गया और क्रान्ति और जोर पकड़ती चली गई। इस तरह से फ्रांस में क्रान्ति हो गई।

10. प्राकृतिक कारण– फ्रांस में उपरोक्त कारणों से परिस्थिति एकदम भयंकर हो गई थी। सर्वत्र वातावरण विषाक्त था। राजा की अयोग्यता, रानी का अधिक खर्च, आर्थिक असमानता, सामाजिक विषमता, खजाने का खाली होना इत्यादि बातों से फ्रांस में क्रान्ति होने को थी कि प्राकृतिक प्रकोप ने क्रान्ति को और भी उभाड़ दिया। सन् 1769 ई० से ही फ्रांस में लगातार बाढ़, अतिवृष्टि और कहीं–कहीं अनावृष्टि तथा ओले के प्रकोप से फ्रांस तबाह होता जा रहा था। फसल की बर्बादी से लोगों को रोटी मिलना कठिन था। फलतः रोजी–रोटी के लिए स्थान–स्थान पर बगावतें हो रही थीं । सन् 1788 ई० में औद्योगिक क्रान्ति ने तो परिस्थिति को और भी विषम बना दिया, क्योंकि इससे व्यावसायिक वर्ग संकट के प्रभाव से बहुत दबने लगा। सभी एकजुट होकर शासन के विरुद्ध हो गये । शासन की निंदा होने लगी । अत्याचार के प्रतिकार के लिए लोग तैयार हो गये । फलतः आर्थिक संकट को दर करने के लिए ‟जंजमे ळमदमतंस ‘‘ की बैठक बुलायी गयी। दूसरी बैठक ने क्रान्ति को निमंत्रण दे दिया। जिसके फलस्वरूप सन् 1789 ई० में क्रान्ति हो गई। जिससे संपूर्ण फ्रांस क्रान्ति की आग में धू–धू कर जलने लगा ।

क्रान्ति के प्रभाव तथा परिणाम – फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव बहुत ही गहरा पड़ा। इस क्रान्ति की गतिविधि हिंसात्मक थी। इसमें दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं की भरमार थी । रक्त की नदिया इसी में बही थीं। इसी में मानवता से खिलवाड़ किया गया था । इसी में सड़कें रक्त रंजित हुई थीं। अतः यह क्रान्ति विश्व इतिहास की एक युगान्तकारी घटना थी । इसका श्रीगणेश उपेक्षित साधारण जनता के विस्फोट के रूप में हुआ। यह अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध हुई थी। फलतः इस क्रान्ति ने राजनीतिक निरंकुशता, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का अंत कर एक नयी सृष्टि की रचना की। इस क्रान्ति का

प्रभाव व्यापक था। इस क्रान्ति के निम्नलिखित परिणाम प्रमुख थे–

1. सामंतवाद का अंत– इस क्रान्ति का पहला परिणाम यह निकला कि इसकी भयंकर चपेट में सर्वप्रथम सामन्ती प्रथा आयी जिससे फ्रांस में सामन्तवाद के अवशेषों का अंत हो गया और कुलीनों के विशेषाधिकारों को भी समाप्त कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप किसान लोग अधिक लाभान्वित हुए, क्योंकि उनको अब दशांश ओर सामन्ती करों से मुक्ति मिल गयी। अतः कृषकों के घरों में अब घी के दिये जलने जगे ।

2. मध्यम वर्ग का सम्मान बढ़ा– इस क्रान्ति के प्रभावस्वरूप मध्यम वर्ग जो पहले बहुत ही उपेक्षित था अब उसका समाज में सम्मान तथा इज्जत – प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा गयी। इससे अब मध्यम वर्ग ही समाज का मुखिया बन गया। समाज में प्रगति आयी। समाज उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। समाज के प्रत्येक लोग सुखी – सम्पन्न हुए। प्रत्येक देश में प्रगति होने लगी। शासन व्यवसाय और व्यापार पर इस वर्ग का अधिकार हो गया, जिससे सर्वत्र शांति फैल गयी ।

3. वाणिज्य – व्यापार में उन्नति – सामन्तवाद की समाप्ति से सभी लोग नियंत्रण से मुक्त हो गये। व्यापार और व्यवसायियों पर से सभी तरह के प्रतिबंध ा समाप्त हो गये। कुलीनों की मनमानी से लोग बच गये। विशेषाधिकारों से उत्पन्न कठिनाइयों से त्राण मिला। फलतः व्यापार और वाणिज्य चमक उठा। व्यापारियों का भाग्य चमका। लोग खुशहाल हुए। इस तरह से 19वीं सदी में फ्रांस व्यापारिक क्षेत्र में इतना आगे बढ़ गया कि इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड के बाद फ्रांस की गिनती होने लगी ।

।.

आम जनता में राजनीतिक चेतना का विकास– सच पूछा जाय तो यह क्रान्ति मध्यम वर्ग की क्रान्ति थी जिसका प्रभाव सर्वत्र व्यापक रूप से पड़ा। लेकिन इस क्रान्ति से सर्वसाधारण को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। फिर भी इतिहास में यह प्रथम घटना थी जिसके परिणामस्वरूप आम जनता का हदय राजनीतक चेतना से भर गया था। क्रान्ति के नेताओं ने आम जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनको जाग्रत किया और अपने विचारों को उनमें फैलाया जिससे लोगों में राजनीति चेतना का विकास हुआ। इस क्रान्ति के पहले किसी भी देश की राजनीति में जनता का इतना बड़ा हाथ नहीं था लेकिन इस क्रान्ति ने जनता को बहुत आगे बढ़ा दिया। शासन में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी। फलतः इस क्रान्ति ने फ्रांस के राजनीतिक स्वरूप को ही बदल दिया ।

5. प्रजातंत्र का उदय – इस क्रान्ति ने राजतंत्र के सिद्धान्तों के चकनाचूर कर दिया। अब यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया कि शक्ति और सत्ता का मुख्य स्रोत सर्वसाधारण वर्ग के लोग हैं और उन्हीं के सहयोग से शासन का सुदृढ़ महल बनाया जा सकता है। इस तरह से फ्रांस में शासन की विषमता का अंत हुआ और वहाँ एकरूपता की स्थापना हुई। राष्ट्रीय भावना बलबती हुई जिससे राजतंत्र का जनाजा निकल गया। अब राजा को पृथ्वी पर ईश्वर के द्वारा भेजा गया प्रतिनिध नहीं समझा जाने लगा । वैधानिक शासन व्यवस्था की स्थापना

की गयी। इस तरह से फ्रांस में जनतंत्र का श्रीगणेश हुआ । नेपोलियन बोनापार्ट ने अन्य देशों पर विजय प्राप्त कर, उन सभी जगहों में प्रजातंत्र के सिद्धान्त को पहुँचाया जिसका प्रभाव यूरोप के अन्य देशों पर भी पड़ा । फलतः बाद में चलकर विश्व से राजा के दैवी अधिकार और निरंकुश शासन का अंत हो गया ।

6. सामाजिक और आर्थिक प्रभाव – इस क्रान्ति के फलस्वरूप फ्रांस के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आया। इस क्रान्ति ने सामन्तवाद को समाप्त कर गुलामी की बेड़ी को तड़तड़ाकर तोड़ दिया जिससे सामन्ती करों और दशांश से सभी को मुक्ति मिली। स्वतंत्र कृषि को बहुत प्रोत्साहन मिला। सभी तरह के विशेषाधिकारों का अंत हो गया और सर्वत्र समानता का सिद्धान्त लागू हो गया जिससे कानून की निगाहों में सब एक समान हो गये। जन्म और कुलीनता के आधार पर अब नियुक्ति नहीं होती थी। किसान और मजदूर लोग खुशहाल हो गये। सभी प्राचीन परम्पराओं और संस्थाओं का अंत कर दिया गया। सभी के लिए एक तरह की संस्था स्थापित की गयी। इस तरह से अथर्थक तथा सामाजिक दृष्टि से फ्रांस के सब लोग एक हो गये ।

7. नागरिक स्वतंत्रता की स्थापना– इस क्रान्ति ने संपूर्ण फ्रांस में नागरिक स्वतंत्रता को स्थापित कर दिया। अब फ्रांस में न कोई शासक वर्ग था और न कोई शासित वर्ग ही। सभी वर्ग एक तरह के हो गये और उन्नति का आधार योग्यता, प्रतिभा तथा कुशलता को ही रखा गया। करों की वसली में अब कोई धाँधली नहीं होती थी । कानून का संकलन भी सुन्दर ढंग से होने लगा, जैसे नेपोलियन का कोड जो आज भी विश्व में विख्यात है।

8. शिक्षा का सरकारीकरण– क्रान्ति में पहले शिक्षा की व्यवस्था चर्च के हाथ में थी जिससे शिक्षा में प्रगति नहीं होती थी । इससे भी सामन्तों और चर्चों का बोलवाला था, जिससे शिक्षा जगत में भी बहुत–सी बुराइयाँ घर कर गई थीं। लेकिन क्रान्ति के बाद शिक्षा में महान परिवर्तन आया। अब शिक्षा का प्रबंध सरकार स्वयं करने लगी। शिक्षा में भी स्वतंत्र विचार का विकास होने लगा। फलतः शिक्षा का प्रसार तथा प्रचार सरकार का पुनीत कर्तव्य हो गया । सर्वत्र सार्वजनिक शिक्षा का महत्व बढ़ गया। पहले से अधिक लोग पढ़ने–लिखने लगे। इस ओर अब सरकार की दिलचस्पी भी बहुत बढ़ गयी। नई–नई शिक्षण संस्थाए खोली गयीं। इसी काल में पेरिस यूनिवर्सिटी का पुनः संगठन किया गया। फलतः शिक्षा के हर एक स्तर में सुधार लाया गया । यहाँ तक कि कई शोध संस्थान भी खोले गये जिससे शिक्षा में बहुत अधिक प्रगति आ गयी।

9. धार्मिक स्वतंत्रता – इस क्रान्ति का प्रभाव धर्म पर भी स्पष्ट रूप से पड़ा। फ्रांस की जनता को धार्मिक स्वतंत्रता की प्राप्ति हो गई। धार्मिक जगत में भी बुद्धिवाद का उदय हुआ, जिससे सभी जगह सहिष्णुता का प्रयोग होने लगा । धर्म पर से राजा की पाबंदी समाप्त हो गई। अब लोग किसी भी सिद्धान्त में विश्ववास और धर्म की आलोचना कर सकते थे।

10. राष्ट्रीयता की भावना – इस क्रान्ति ने लोगों की राष्ट्रीय भावना को भी खब झकझोरा । फलतः लोगों में राष्ट्रीय भावना खूब सबल हो गई। सभी विषमताओं और विभिन्नताओं के नष्ट हो जाने से फ्रांस में एक नई एकता कार्यम हुई, जिससे एक नये युग का श्रीगणेश हुआ। अतः लोगों में देशभक्ति की भावना जगी और राष्ट्रीयता पनपी । इस क्रान्ति के फलस्वरूप समाजवादी भावना का भी बीजारोपण हुआ। तत्कालीन जैकोबिन विचारधारा को समाजवादी विचाराध ाारा ही कहा जा सकता है। अतः इस क्षेत्र में भी इस क्रान्ति का व्यापक प्रभाव पड़ा।

11. व्यक्ति का महत्व बढ़ा – क्रान्ति से पहले फ्रांस में व्यक्ति का कुछ भी महत्व नहीं था । यहाँ तक
कि उसके जीवन का कोई मल्य नहीं था। लेकिन इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति का महत्व बढ़ गया। अब आम जनता भी समाज में सिर उठाकर चल सकती थी । ऊँच–नीच की भावना की समाप्ति से भी व्यक्ति का मूल्य बढ़ गया। अब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के अकारण जेल में नहीं बंद कर सकता था, क्योंकि सरकारी वारंट को अब समाप्त कर दिया गया था । अतः इस क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बहुत अधिक बढ़ा दिया था।

12. लोकप्रिय सम्प्रभुता का उदय– इस क्रान्ति ने फ्रांस के राजनीति जगत में भी क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को लागू किया गया। अब सम्प्रभुता केवल राजा के हाथों में न रहकर सर्व साधारण के हाथों में आ गई। इस तरह से लोकप्रिय सम्प्रभुता की स्थापना इस क्रान्ति की एक बड़ी देन है।

13. फ्रांस की क्रान्ति के फलस्वरूप सर्वसाधारण के सौभाग्य का सूर्य उदय हुआ । अतः इसका प्रभाव केवल फ्रांस तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि यूरोप तथा विश्व के सभी महत्वपूर्ण देशों पर इसका प्रभाव पड़ा। इसी क्रांति के फलस्वरूप संसद में सुधार लाने का आंदोलन शुरू हुआ और अंत में सन् 1832 ई० में पार्लियामेंट (च्तजपंउमदज) ने पहला अधिनियम पास किया ।

वैधानिक शासन : वैधानिक शासन की स्थापना इस क्रान्ति का सबसे महत्वपूर्ण अंश था। इसी क्रान्ति के फलस्वरूप लोकतंत्र का विकास यूरोप के सभी देशों में होने लगा । नेपोलियन द्वारा विजित जर्मनी, इटली, स्पेन आदि सभी देशों में सामन्त प्रथा और निरंकुश शासन का कसकर विरोध होने लगा, जिसके

फलस्वरूप नया रूस, नयी जर्मनी, नयी इटली आदि का निर्माण हुआ। सन् 1895 ई० में में विजयी राष्ट्रों की ओर से क्रान्ति के सिद्धान्त को दबाने की चेष्टा की गई, लेकिन उनको सफलतता नहीं मिली । अतः सन् 1875 ई० का इतिहास राष्ट्रीय क्रान्ति के सिद्धान्तों की पूर्ण स्थापना इतिहास है।

इस क्रान्ति का प्रभाव इंग्लैंड पर खूब पड़ा। उसे क्रान्ति को दबाने के फलस्वरूप लंका मौरिशस, केप कोलनी और मोल्टा आदि उपनिवेश हाथ लगे परंतु क्रान्ति के फलस्वरूप संसद में सुधार लाने का आंदोलन शुरू हुआ और अंत में सन् 1832 ई० में संसद ने प्रथम अधिनियम पास किया। इस तरह से इस क्रान्ति ने स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसने जनतंत्र तथा राष्ट्रीयता की भावना को जगाया जो आज भी मानव समाज की मूल्यवान निधियाँ हैं, जिन्हें अपनाकर आज भी मानव समुदाय कल्याण के पथ पर अग्रसर है, जिनसे पीड़ित तथा त्रस्त और दलित व्यक्तियों को प्रेरणा मिल रही है। इतना ही नहीं इस क्रांति ने मानव के मौलिक अधिकारों की घोषणा कर मानव की महत्ता स्थापित की है।

क्रांति का स्वरूप : फ्रांस की क्रांति का स्वरूप आंकते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि फ्रांस के मध्यम वर्ग के लोग फ्रांस की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था से संतुष्ट थे। इस वर्ग में डाक्टर वकील, इंजीनियर, शिक्षक, व्यवसायी, व्यापारी आदि थे। ये सभी लोग प्राचीन व्यवस्था का अंत कर सरकार पर अधिकार करना चाहते थे । इनके पास धन था । इसलिए ये लोग सरकार को कर्ज भी देते थे, परंतु सरकार का दिवाला निकलता जा रहा था । लेखक, विचारक और दार्शनिक आदि भी मध्यम वर्ग के लोग ही थे । इन लोगों ने जो सिद्धान्त बनाए उससे मध्यम वर्ग को ही लाभ था। फिर क्रांति के अधिकतर नेता भी मध्यम वर्ग के ही थे। अतः इन्होंने क्रांति का नेतृत्व कर क्रान्ति को आगे बढ़ाया। यह ठीक है कि आम जनता के सहयोग से ही क्रांति सफल हुई परंतु राज्यसत्ता साधारण जनता के हाथ में नहीं आयी । सन् 1789

से 1815 तक तो शासन में मध्यम वर्ग के लोगों का ही हाथ रहा केवल अन्वेषण के समय जैकोबिन दल के लोगों के हाथों में दिया, जिससे कुछ गरीबों का भलाई हुई।

अन्ततोगत्वा इस क्रांति से मध्यम वर्ग को ही लाभ हुआ। यहाँ तक कि साधारण जनता को मताधिकार भी नहीं मिला। संविधान सभा ने एक कानून बनाकर मिलों में काम करने वाले मजदूरों के संगठन पर प्रतिबंध लगा दिया । नेपोलियन कोड से सर्वसाधारण जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। क्रांति का नारा था– स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व परंतु इस नारे का प्रयोग पादरियों तथा सामन्तों के विशेषाधिकारों का अन्त करने, गरीबों को भुलावा देने तथा मध्यम वर्ग के लोगों के लिए विशेष सुविधा देने के लिए किया गया था। तत्कालीन अमीरों और गरीबों के बीच मान्यता स्थापित करने और उन्हें समान अधिकार प्राप्त करने की कोशिश की गई थी इस तरह से सन् 1989 ई० की क्रांति मध्यम वर्ग की क्रांति थी ।

Notes

यूरोपीय इतिहास के अध्ययनोपरांत यह भली–भाँति स्पष्ट हो जाता है कि यूरोपीय देशों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन में वे सारे अवगुण मौजूद थे, जिसके चलते फ्रांस में क्रांति हुई। स्वच्छंद निरंकुश राजतंत्र, भ्रष्ट चर्च, असंतुष्ट मध्यम वर्ग कर्तव्यहीन एवं अत्याचारी कुलीन वर्ग, पीड़ित कृषक एवं मजदूर वर्ग यूरोप के अन्य देशों में मौजूद थे। यूरोप के कुछ देशों में साधारण वर्ग की हालत और भी खराब थी। आस्ट्रिया, पॉलैंड, प्रशा, रूस जैसे देशों में किसानों, मजदूरों, दस्तकारों तथा दासों पर भी अत्याचार हो रहे थे, उनसे फ्रांस अब भी बहुत अंश में काफी अच्छा था। केवल आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की बुराइयों के कारण ही क्रांति नहीं होती है । इसके लिए कुछ विशेष कारणों का होना आवश्यक होता है। वास्तविकता तो यह है कि क्रांति के लिए जिन भौतिक परिस्थितियों और मानसिक जागरूकता की आवश्यकता होती है वे सभी फ्रांस में एक साथ ही मौजद थीं।

फ्रांस की शासन व्यवस्था अत्यंत ही विषम थी । वहाँ सत्ता का घोर केन्द्रीकरण हो चुका था। शासन पद्धति में तड़क–भड़क अवश्य थी परन्तु उसमें अव्यवस्था और गड़बड़ी के सारे लक्षण मौजूद थे। प्रसिद्ध इतिहासकार केटलबी के मतानुसार फ्रांस शिकायत और स्वतंत्रता, अनुदारता और उदारता, रोष और उत्प्रेरणा का वह समन्वय उपस्थित करता था जो क्रांति हेतु सर्वश्रेष्ठ सामग्री प्रदान करता है। क्रांति के पूर्व फ्रांस में परंपरागत राज्यादेश, काननी विशेषाधि ाकार, प्रांतीय, स्वतंत्रता, सामन्ती विशेषाधिकार और राजकीय शक्ति की जो मिली–जुली आवश्यकता थी, उसे हम अतिव्ययी अराजकता और शक्तियों की श्रृंखला की संज्ञा दे सकते हैं। यूरोप के अन्य देशों के शासकों ने बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार सुधार कर लिया था परंतु फ्रांसीसी शासक अब भी दिवास्वप्न देख रहे थे। जिस अपराध के लिए कुलीन वर्ग को माफ कर दिया जाता था उसी अपराध हेतु जनसाधारण को फाँसी की सजा दी जाती थी। राजा अपने को राज्य मानता था और उसके शब्द ही कानन थे। प्रांतों की शासन व्यवस्था अत्यंत गड़बड़ तथा दोषपूर्ण थी। न्याय व्यवस्था भी बहुत दोषपूर्ण थी। फलतः लोगों के हदय में शासन के प्रति संदेह, अविश्वास और घृणा पैदा हो गये और क्रांति का विस्फोट सर्वप्रथम फ्रांस में ही हुआ।कानून की विविधता शासन का प्रधान दोष था। देश में लगभग 400 प्रकार केकानून प्रचलित थे । एक ही तरह के अपराध हेतु भिन्न–भिन्न जगहों में भिन्न–भिन्न प्रकार के दंड दिए जाते थे। साथ ही इस समय फ्रांस में गैर–कानूनी गिरफ्तारी प्रचलित थी। समाचार पत्र स्वतंत्र नहीं थे। सरकार की आलोचना करने वालों को कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी।

इकाई 9
अमरीकी क्रांति

इधर किसान कुलीनों की क्रूरता के जबरदस्त शिकार हुए। अन्य देशों के कृषकों की तुलना में उनकी दशा अच्छी नहीं थी । किसान और सामन्तों के बीच संघर्ष अनिवार्य प्रतीत हो रहा था। फ्रांस के किसान कुलीनों के अत्याचार को ईश्वर की देन समझकर स्वीकार करने हेतु तैयार नहीं थे। इंग्लैंड के बाद फ्रांस यूरोप का सबसे बड़ा व्यापारी देश था । परंतु व्यापार पर कई तरह के प्रतिबंध लगे हुए थे, जिससे व्यापार की यथोचित प्रगति नहीं हो रही थी । व्यापारी वर्ग को सुशिक्षित एवं साधन संपन्न मध्यम वर्ग का नेतृत्व प्राप्त हुआ और वे क्रांति करने हेतु तैयार हो गए। अन्य किसी देश में जनमत इतना जाग्रत और आलोचनात्मक नहीं था जितना फ्रांस में।

सेना और चर्च में भी असंतोष फैला हुआ था । यदि प्रशासन को सेना का सहयोग प्राप्त होता तो संभव था कि क्रांति को कुचल दिया जाता लेकिन सेना अपनी व्यवस्था से असंतुष्ट थी। साथ ही सेना के सभी श्रेणियों से लोकतंत्रात्मक विचारों का प्रचार–प्रसार हो रहा था। सेना भी क्रांति का समर्थन कर रही थी और जब क्रांति का विस्फोट हुआ तो सैनिकों ने क्रांतिकारियों का साथ दिया। फ्रांस का चर्च भी स्वेच्छाचारी था। सांसारिकता और भ्रष्टाचार ने उसे महत्वहीन बना दिया था। धन, विशेषाधिकार और एकाधिकार ने उसकी जड़ उखाड़ दी थी। संदेह और नास्तिकता ने उसे खोखला कर दिया था।

फ्रांस का आर्थिक संगठन भी असमानता और पक्षपात के सिद्धान्त पर आधारित था । राजमहल के अपव्यय के कारण खजाना खाली पड़ा हुआ था, दूसरी ओर कर का सारा बोझ निम्न वर्ग के लोगों को ढोना पड़ रहा था । उच्चवर्गीय लोग कर से मुक्त थे। राज्य के आम व्यय का लेखा–जोखा नहीं होता था। एक ओर गरीब लोग भूख से तड़प रहे थे तो दूसरी ओर वर्साय के महल में रंगरेलियाँ हो रही थीं। राज्य के कर्मचारी और ठेकेदारों के अत्याचार से जनता कराह रही थी। उद्धार का मार्ग सिर्फ़ क्रांति ही हो सकती थी ।

जनाक्रोश को रूसी बाल्तेयर जैसे विचारकों ने अपनी लेखनी द्वारा और भी

प्रज्ज्वलित कर दिया। उन विचारकों के अत्याचारी, सामन्तशाही, दुर्बल शासन–व्यवस्था, सामाजिक तथा चर्च की बुराइयों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। इसके साथ ही अमरीकी स्वातंर्त्य संग्राम का गहरा प्रभाव फ्रांसीसीयों पर पड़ा। फलतः फ्रांसीसीयों में गणतंत्र की स्थापना हेतु उत्साह जगा और वे राजतंत्र को नष्ट कर जनतंत्र की स्थापना के लिए क्रांति करने हेतु तैयार हो गए।

स्वनपे •अप की अदूरदर्शिता ने क्रांति को अवश्य अभावी बना दिया। अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के राजाओं ने अपने देश में सुधार किये थे, परन्तु लुई उस व्यवस्था को बदलने में असमर्थ था। उसे वह पसंद नहीं करता था । कुलीनों के विरोध के चलते वह शासन व्यवस्था के दुर्गुणों को दूर करने में असमर्थ रहा। वह न तो सेना का नेतृत्व कर सकता था और न राष्ट्र का पथ प्रदर्शन ही । नागरिकों और सैनिकों का कोई ऐसा समूह नहीं था जो उसके विश्वास का पात्र बनता। कोई दूरदर्शी राजा ही राजमुकुट की रक्षा कर सकता था। फ्रांस का यह दुर्भाग्य था कि उसे कोई योग्य राजा नहीं मिला और फ्रांस में ही क्रांति हो गई ।

क्रान्ति की अनिवार्यता पर इतिहासकारों में गहरा मतभेद है। फ्रांस में क्रांति का होना इस बात का प्रबल एवं स्पष्ट प्रमाण है कि वहा क्रांति के लिए उपयुक्त समय और आवश्यक सामग्री मौजूद थी। कुछ इतिहासकारों का मत है कि फ्रांस की राज्य– क्रांति कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि सदियों से पीड़ित एवं व्यथित फ्रांस के लोगों के हुंकार का परिणाम था। सामाजिक रूढ़ियवादिता, समाज का विभिन्न वर्गों में विभाजित होना तथा असमानता इस समय का सबसे बड़ा दोष था। समाज का सुधार केवल क्रांति द्वारा ही संभव था। द्वितीयतः राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से फ्रांस इतना गिर चुका था कि उसके उद्धार हेतु क्रांति अनिवार्य थी । तृतीयतः निम्न वर्ग को आर्थिक दशा को क्रान्ति द्वारा ही सुधारा जा सकता था। कुलीन वर्ग के अत्याचारों को समाप्त करने हेतु भी क्रांति आवश्यक थी। जनसाधारण राज्य की निरंकुशता, सामन्तों के दुर्व्यवहार और चर्च के अत्याचार से क्रांति द्वारा ही रोका ही अपने को
मुक्त कर सकते थे। धन के अपव्यय तथा करों के बोझ को भी क्रांति द्वारा ही रोका जा सकता था। फ्रांसीसी विचारकों द्वारा प्रशासनिक एवं सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किए जाने के फलस्वरूप फ्रांस में क्रांति की जो लहर फैली थी उसे रोका नहीं जा सकता था इसलिए क्रांति अनिवार्य थी। उस युग में अमरीकी उपनिवेशों ने इंग्लैंड के विरुद्ध क्रांति कर स्वतंत्रता प्राप्त की थी। इससे भी प्रभावित होकर फ्रांसीसियों
ने अपने अधिकार और स्वतंत्रता की रक्षा हेतु क्रांति का मार्ग अपनाया । संक्षेप में इन सभी कारणों से फ्रांस में क्रांति अनिवार्य थी।

इसके विपरीत, कुछ ऐसे इतिहासकार हैं जो क्रांति को अनिवार्य नहीं मानते। उनके अनुसार फ्रांस में क्रांति के लिए कोई निश्चित योजना नहीं थी, यह उन घटनाओं का परिणाम थी जिसे एक योग्य शासक रोक सकता था । यदि फ्रांस

Notes

विश्व का इतिहास

का तात्कालिनक शासन स्वनपे •अप सुधार योजनाओं को सख्ती से लागू कर अव्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास करता और अपने मंत्रियों का साथ देता तो स्थिति सुधर सकती थी और फ्रांस में क्रांति का विस्फोट नहीं होता। रानी के हस्तक्षेप के चलते राजा किसी कार्य को सफलतापूर्वक करने में असमर्थ था। रानी पर कुलीनों का प्रभाव था जो किसी भी परिवर्तन के विरोधी थे। राजा यदि रानी पर नियंत्रण रखता तो क्रांति टल सकती थी। परंतु, यह संभव नहीं था क्योंकि स्वनपे •अप एक अयोग्य और विलासी शासक था। उसने अपने लम्बे शासनकाल में देश की दशा को सुधारने के बदले और भी अव्यवस्थित कर दिया था। इसलिए फ्रांस में क्रांति होना अनिवार्य था।

फ्रांसीसी क्रांति के लिए दार्शनिकों के योगदान–

तत्कालीन फ्रांस का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक, अस्तव्यस्तता की स्थिति से दार्शनिकों तथा लेखकों ने जनता को प्रेरणा दी और अन्ततः जनता क्रांति की ओर उत्सुक हुई । कैटलवी के अनुसार ''फ्रांस की राज्य क्रांति को सभी तरह के लेखकों ने तैयार किया था । '' इन लेखकों में मान्टेस्क्यू, बाल्तेयर और रूसी विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों के विचारों का क्रांति में जो महत्वपूर्ण देन थी, वह इस प्रकार है–

–

–

1. मान्टेस्क्य – (डवदजमेुनपमन) (1685–1755) मान्टेस्क्यू फ्रांस का महान् विचारक और प्रसिद्ध दार्शनिक था। इसने अपने राजनीतिक सिद्धांत को अपनी पुस्तक जीम ेचपतपज व िजीम ंूे में प्रतिपादित किया। यह राजतंत्र का विरोधी तथा जनतंत्र का समर्थक था। उसने चर्च और एकतंत्र की निरंकुशता की तीखी आलोचना की । दैवी अधिकार सिद्धान्त को वह मानसिक कल्पना मानता था। उसने लोगों की प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर जाँचने को कहा । उसके अनुसार, इंग्लैंड का शासन संसार में सबसे अच्छा था। क्योंकि शक्ति वहाँ किसी एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित नहीं थी, बल्कि सरकार के विभिन्न अंगों का संचालन अलग–अलग होता था और वे एक–दूसरे से स्वतंत्र थे। उसका महत्वपूर्ण स्थान शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त था, जिसके अनुसार कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका अपने अधिकारों को स्वतंत्र रूप में कार्यान्वित करते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति की स्वतंत्रता तभी अक्षुण्ण रह सकती है जब शक्ति का केन्द्रीकरण किसी एक व्यक्ति के हाथ में न हो। इस प्रकार मान्टेस्क्यू ने फ्रांस में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रगतिशील विचारकों को जन्म दिया। उसके विचारों से वहाँ के लोग बहुत अधि
ाक प्रभावित थे।

2. वाल्तेयर (टवसजंपतम) (1694 – 1778) वाल्तेयर इस युग में दूसरा प्रसिद्ध दार्शनिक हुआ जो चर्च की रूढ़िवादिता और शोषण की नीति का कट्टर विरोध
ी था । अपने लेखों द्वारा उसने चर्च और राज्य की बुराइयों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। फलतः लोगों में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का विकास हुआ

और वे एक आदर्श शासन की कल्पना करने लगे । बाल्तेयर का कहना था कि चर्च के प्रभाव के अंत से ही न्याय का शासन स्थापित किया जा सकता है। वह ऐसे शासन का समर्थक था जिसका उद्देश्य जनता का कल्याण हो और शक्ति जनता के हाथों में हो। इस प्रकार वाल्तेयर अपने लेखों द्वारा जनता में जागृति लाया। जिसके परिणामस्वरूप फ्रांस की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्था के दोषों को जानकर जनता कुशासन और कुव्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार हुई और फ्रांस में क्रांति का बीजारोपण हुआ ।

3.

रूसो (त्वनेमंन) (1712 – 1778) रूसो फ्रांस में सबसे बड़ा क्रांतिकारी विचारक हुआ। वह निरंकुश सत्ता का कट्टर विरोधी था । शक्ति का स्रोत वह जनता को मानता था। उसने प्रसिद्ध पुस्तक ळमदमतंसूपसस तथा ैवबपंस ब्वदजतंबज में अपने विचारों का संकलन किया। उसका कहना था कि

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा्प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

131

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा्प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

132

डमद ंतम इवतद तिमम इनज मअमतलूीमतम जीमल ंतम पद बींपदे रूसो का कहना था कि राजा ईश्वर का प्रतिनिध नहीं है, बल्कि जनता ने अपने सम्पत्ति और जानमाल की रक्षा हेतु राजा को कुछ विशेष अधिकार दिए हैं। राजा प्रजा का सेवक है, न कि स्वामी । यदि राजा समझौता का उल्लंघन कर स्वेच्छाचारी बन जाता है तो जनता को अधिकार है कि वह राजा को हटा दे। इस प्रकार, रूसी ने जनता की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया और राज्य राजा एवं शासन के ऊपर जन–शक्ति को महान बतलाया। उसे राजनीतिक स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया। यही कारण है कि रूसों को क्रांति का अग्रदत माना जाता है । नेपोलियन का कहना था कि यदि रूसों न होता तो फ्रांस में क्रांति नहीं होती । रूसो ने लोगों को समानता, स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया। रूसो के अनुयायियों ने एकतंत्र की निरंकुशता, कुलीनों और पादरियों के विशेषधिकार को समाप्त करके फ्रांस में लोकतंत्र की स्थापना का प्रयत्न किया।

4. दिद्दरो (क्पकमतवज) इन दार्शनिकों के अलावा फ्रांस के समकालीन लेखकों में जिनकी रचनाओं का अत्यधिक प्रभाव लोगों पर पड़ा, उनमें द्दिरो का विश्वकोष विशेष–रूपेण उल्लेखनीय है। विरो ने विश्वकोष के माध्यम से एकतंत्र शासन, सामन्तवाद कर व्यवस्था, शोषण, अंधविश्वास, न्याय व्यवस्था के खोखलेपन तथा दास प्रथा के दोष से लोगों को अवगत कराया विश्वकोष ने लोगों का

ज्ञानवर्द्धन कर क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया।

5. क्येस्ने – वह एक महान् अर्थशास्त्री था। उसने आर्थिक क्षेत्र में सर्वथा एक नई नीति का प्रतिपादन किया जो समकालीन अर्थनीति से बिल्कुल भिन्न थी । क्वेस्ने निर्मुक्त व्यापार का पोषक था। उसके अनुसार व्यापार और उद्योग–धंधों को राज्य के नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए। वह भूमि कर का समर्थन करता था। इस प्रकार क्वेस्ने ने आर्थिक बंधनों का विरोध किया और स्वतंत्र व्यापार का समर्थन किया।

इन लेखकों का क्रांतिकारी प्रभाव तो फ्रांस के लोगों पर पड़ा ही, साथ ही कुछ ऐसे लोग भी उस समय थे जो छोटी–छोटी पुस्तक और पत्रिकाओं में समसामयिक समस्याओं पर अपना मत प्रकट कर रहे थे। इससे सर्वसाधारण का ध्यान राजनीतिक और सामाजिक दोषों की ओर आकर्षित हुआ। सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्थाओं की कटु आलोचना ने लोगों में क्रांतिकारी भावना को प्रज्ज्वलित किया और वे सुधार हेतु कटिबद्ध हो गए। इस प्रकार, तत्कालीन व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हेतु मनोवैज्ञानिक आधार लेखकों ने तैयार कर दिया।

केटेलवी का मत है कि फ्रांस की राज्य क्रांति को सभी तरह के लेखकों ने तैयार किया था। एक समकालीन आलोचक का मत है कि फ्रांस ने निरंकुश सत्ता को नष्ट करने में बौद्धिक क्रांति ने बारूद का काम किया। केटेलवी से मिलते–जुलते विचार र्थ्यीमत ने व्यक्त किए हैं। उसी के शब्दों में, सभी प्रकार के लेखकों ने क्रांति हेतु पृष्ठभमि तैयार की। दार्शनिकों के प्रभाव की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार हेज ने अपना मत यों व्यक्त किया है–

फ्रांस के दार्शनिक राज्यक्रांति हेतु देवतुल्य थे और अपने ज्ञान से उन्होंने क्रांतिकारी घटनाओं को अत्यधिक प्रभावित किया। इसके विपरीत कुछ ऐसे लेखक हैं जो लेखकों तथा विचारकों को क्रांति हेतु पूर्णतः उत्तरदायी नहीं मानते हैं। उनके अनुसार ‘‘ फ्रांस की क्रांति के पूर्व को सामाजिक और आर्थिक दशा को देखते हुए भलीभाँति कहा जा सकता है कि क्रांति अवश्यम्भावी थी और परिवर्तन अनिवार्य । इस प्रकार फ्रांस में क्रांति के लिए पहले से ही बारूद तैयार था सिफ्र एक चिनगारी की जरूरत थी । दार्शनिकों की लेखनी ने इसी चिनगारी का काम किया द्य क्पतमक जीवउेवद के शब्दों में ” दर्शनिकों ने एक ऐसी अग्नि प्रज्जवलित की जो कभी शांत नहीं हो सकती थी। अपनी रचनाओं में फ्रांस में उन्होंने ऐसी शक्ति का संचार किया कि वह मृत्युजाल को तोड़कर उठ बैठा, जो धीरे–धीरे उसे जकड़ रहा था। किसी भी हालत में उस जाल की टूटना था पर दार्शनिकों ने इसे सुगम बना दिया।

विशेषाधिकार फ्रांसीसी समाज की सबसे बड़ी समस्या थी । क्रांतिकारियों का मुख्य उद्देश्य था – विशेषाधिकारयुक्त वर्ग को समाप्त कर समाज में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार दिलाना और स्वतंत्रता

तथा समानता कायम करना । फ्रांस में राजा निरंकुश था और उसे कई प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त थे । फ्रांस में एक कहावत प्रचलित थी कि कुलीन लड़ते

हैं। पादरी प्रार्थना करते हैं और जनता पैसा देती यानी फ्रांस के सामाजिक – वित्तीय आधार, आर्थिक संगठन, सामन्तवाद के विरुद्ध एक जेहाद थी। प्रशासनिक पदों पर राज परिवार के सदस्य ही नियुक्त होते थे। राजकर्मचारियों को भी विशेषाधिकार प्राप्त था। राजा कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायापालिका का एक तरह से प्रधान बन गया था। राष्ट्रीय कानून का स्थान राजा के आदेशों ने ले लिया। न्याय की शक्ति राजा की अदालत उसकी कौंसिल और राजकीय संसदों में थी ।

यद्यपि राजा को असीम अधिकार प्राप्त थे फिर भी जनता को राजतंत्र से कोई शिकायत नहीं थी । यदि राजा प्रजा की भलाई का थोड़ा भी ध्यान रखता तो प्रजा कभी विरोध नहीं करती। प्रतिनिधियों ने शिकायत पत्र में सुधार प्राप्त की तथा अधिकारों की माँग की थी, सामाजिक असमता को दूर करने का अनुरोध किया गया था तथा कुलीनों के विशेषाधिकार को समाप्त करने की प्रार्थना की गयी थी । यदि फ्रांस का राजा लुई सोलहवाँ बुद्धि से काम करता तो लोगों को समस्यायें सुलझ करती थीं। लेकिन उसकी दुर्बलता ने क्रांति को आवश्यकता बना दिया ।

परम्परा के आधार पर सामन्ती और पादरियों को तरह–तरह के विशेषाधिकार प्राप्त थे। चर्च की सम्पत्ति ईश्वर की सम्पत्ति थी । संरक्षक और उद्धारक के रूप में चर्च का महत्व काफी बढ़ गया था। चर्च की सम्पत्ति तो कर मुक्त थी ही, पादरी भी कर – मुक्त थे। दूसरे वे धर्म के नाम पर जनता से कर वसूलते थे। इस प्रकार धनी पादरी वर्ग ही कर वसूली करता था लेकिन स्वयं नहीं देता था ।

इसके विपरीत चर्च के अंदर ही एक निम्न स्तरीय पादरी वर्ग था। जो धार्मिक होते हुए भी सभी प्रकार की सुविधाओं से वंचित था । अतः निम्न स्तरीय पादरी वर्ग बड़े पादरियों के विशेषाधिकार और बिलासितापूर्ण जीवन के कट्टर विरोधी थे। चर्च के पतन में उनका सबसे अधिक प्रयोग था ।

मध्ययुगीन सामन्त काफी शक्तिशाली थे। वे राजा की सहायता युद्ध के समय सम्पत्ति से भी करते थे। इसके बदले राजा की ओर से उन्हें विशेषाधिकार प्राप्त था। वे सामान्य लोगों से ऊपर थे तथा कर मुक्त भी । परंतु अपनी रियासत में उन्हें कर लगाने का अधिकार था। किसान अपनी उपज का एक हिस्सा सामन्तों को कर के रूप में देते थे। किसानों को जमींदार की चक्की में गेहूँ पीसना पड़ता था। उसके तम्बू में अपनी रोटी सेकनी पड़ती थी । एतदर्थ किसानों को पूरी कीमत का 20ः जमींदार को देना पड़ता था । शिकार करने का भी विशेषाधिकार जमींदार को प्राप्त था। इसके लिए पशु भी पाले जाते थे।

जानवरों द्वारा फसल नष्ट करने पर भी किसान कुछ नहीं बोल सकते थे। राज्य के प्रतिष्ठित पदों पर सामन्तों की ही नियुक्ति होती थी । सामन्त राजा से पदवी भी खरीद कर प्रतिष्ठित बन सकते थे। इस नये सामन्त वर्ग को भी विशेषाधिकार प्राप्त था । मध्यम वर्ग जो सामन्तों से अनेक दृष्टिकोण से आगे थे, उनके विशेषाधिकार से ईर्ष्या करते थे।

फ्रांस का मध्यम वर्ग प्रगतिशील वर्ग था, जिसके पास धन और ज्ञान भी । राजा इसी वर्ग से ऋण लेता. था। यह वर्ग भी पुरातन व्यवस्था का शिकार हुआ । आर्थिक दृष्टि से और बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी इस वर्ग को कुलीनों के समान न तो राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे और न सामाजिक प्रतिष्ठा ही । अतः मध्यम वर्ग के दार्शनिकों ने लोगों का ध्यान सामाजिक बुराइयों की ओर आकृष्ट किया और उन्हें परतंत्रता की बेड़ी की तोड़ने हेतु प्रोत्साहित किया। फलतः वे कुलीनों के विशेषाधिकारों के विरुद्ध आवाज उठाने लगे। क्रान्ति का प्रमुख नारा स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व था । मध्यम वर्ग स्वतंत्रता पर उतना जोर नहीं देता था जितना कि सामन्तों पर । वे पुरातन व्यवस्था का अन्त चाहते थे। क्रान्ति का नेतृत्व मध्यम वर्ग के लोगों ने किया और क्रांति के प्रारम्भिक दिनों में संचालन भी उन्हीं के हाथों में था ।

निम्नलिखित व्यक्तियों ने फ्रांस की राज्यक्रांति में योगदान दिया

(प) मिराबो (

डपतंइमंद) : 1788—89 ई में तृतीय सदन के निर्वाचन में मिराबो भी निर्वाचित हुआ । बचपन में वह इतना अनियंत्रित था कि स्वयं उसके पिता ने ही सम्राट के हस्ताक्षर युक्त

पश्चिमी विश्व

छव्जै

स्व—प्रगति की जाँच करें : 1. मॉन्टेस्क्यू का शक्ति विभाजन का सिद्धान्त किस तरह फ्रांस की गौरवपूर्ण राज्य क्रान्ति का कारण बना?

2. फ्रांस में अवैध गिरफ्तारियों और प्रतिबन्धों ने फ्रांसीसी क्रान्ति को कैसे प्रेरित किया?

ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

133

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

134

अधिकार—पत्र के आधार पर जेल में बंद करवा दिया। जेल से मुक्त पर वह और भी नवीन शरारतें आरंभ करने लगा। 5 मई 1789 ई० के स्टेट्स जनरल के अधिवेशन में तीनों सदनों के सदस्यों के प्रमाण पत्र के प्रश्न पर संघर्ष हो रहा था कि तीनों सदन सम्मिलित रूप से विचार करेंगे अथवा पृथक—पृथक रूप से। इसी बीच सम्राट ने अधिवेशन भंग होने की घोषणा कर दी।

कुलीन वर्ग तथा सामन्त वर्ग के सदस्य प्रसन्न होकर उसकी आज्ञा पालन करते हुए वहाँ से चल दिये परंतु तृतीय सदन के सदस्य समझ नहीं पाये कि वे क्या करे और वहीं पर बैठे रहे। इस पर राज्य कर्मचारी ने आकर राजा की आज्ञा दोहराई तथा भवन छोड़ने को कहा। तभी मिराबो ने गरज के साथ कहा कि तृतीय सदन के सदस्य वहाँ पर जनता की इच्छा से आये हैं। अतः वे लोग वहाँ

से तभी जायेंगे जब उन्हें बंदूक की नोक पर हटाया जायगा । वह एक अत्यंत कठिन समस्या थी और अब राजा की बारी थी। मिराबो के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति में इस प्रकार कहने का साहस नहीं था।

पुनः मिराबो ने टैनिस कोर्ट में घोषणा की कि जब तक वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो जाते, वे अपने–अपने गृहों को न जाकर वहीं रहेंगे। नवीन संविधान के निर्माण में भी उसने योग दिया परंतु 2 अप्रैल 1791 को उसकी मृत्यु हो गई ।

(पप) दाँते (क्ंदजवद 1759–1794) : दाँते जैकोबिन दल का एक महान नेता था परंतु वह क्रान्तिकारी

की अपेक्षा राजनीतिज्ञ अधिक था, कुछ लोगों ने उसे मध्यवर्गीय मिराबो कहकर भी पुकारा

है। वह एक किसान का पुत्र था। पढ़ाई में अच्छा होने के नाते उसने वकालत पढ़ी और अवसर पाकर पैसे के बल पर एक प्रान्त का बैरिस्टर बना। क्रांति आरंभ होने के पूर्व वह एक नौजवान, सफल वकील, उदार विचारवाला, पुस्तक प्रेमी तथा सफल गृहस्थ जीवन बिताने वाले के रूप में प्रसिद्ध हो

था।

,

चुका

क्रांति के समय दांते पेरिस चला गया। 10 अगस्त 1792 ई० के विद्रोह में दांते के भाग्य का सितारा चमका। उसने इस विद्रोह में सक्रिय भाग लिया, जिसके परिणामस्वरूप उसको नगर सभा का नेता नियुक्त किया गया। दांते में एक प्रभावशाली नेता के गुण विद्यमान थे। वह अपने वक्तव्य से पेरिस की जनता पर जाद करता था। अपने उत्साहपूर्ण व्याख्यानों द्वारा दाँते ने फ्रांस में राष्ट्रीयता की भावना को जन्म दिया था।

दांते फ्रांस की विदेशी आक्रमणों से रक्षा करना चाहता था। वह क्रांति को रक्तपात का रूप धारण करने का पक्षपाती था । जिस समय प्रशा की सेना ने ड्यूक आफ ब्रून्सविक (क्नाम वि ठितनदेपबा) की अध्यक्षता में फ्रांस पर आक्रमण कर दिया था। उस समय दाँते ने अपने उत्साहपूर्ण व्याख्यानों द्वारा फ्रांस में राष्ट्र रक्षा का संगठन किया था। दांते शांति नीति का समर्थक अवश्य था परंतु साथ ही सितम्बर हत्याकांड ̈मचजमउइमत उेंबतम) की दुर्घटना में भी उसका प्रमुख हाथ था। उसने देश के विद्रोहियों के दमन कार्य करने तथा विदेशों से देश की रक्षा करने हेतु एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना की थी और अपराधियों को दण्ड देने के उद्देश्य से गुलेटिन नामक उपकरण का खुलकर प्रयोग किया था।

दांते देश का यूरोप का शत्रु नहीं बनाना चाहता था। यूरोपीय देशों को क्रांति समर्थक बनाने का इच्छुक था । जिरोदिस्ट दल के नेता संपूर्ण यूरोप के शासकों के विरुद्ध धर्म युद्ध की घोषणा करना चाहते थे किन्तु दांते ने उनके विचार का इसी दृष्टि से विरोध किया था कि वह यूरोप को फ्रांस का शत्रु नहीं बनाना चाहता था।

दाँते का अंत करुणाजनक था । उसका सिद्धान्त था कि बाह्य आक्रमण देश की रक्षा करने के लिए आवश्यक है कि देश के आंतरिक शत्रुओं को कठोर दण्ड दिया जाय जिससे क्रांति के विरोधियों में आतंक छा जाय और वे विदेशी शासकों के साथ सहयोग छोड़ दें। अपनी इस नीति के कारण दाँते ने फ्रांस में आतंक के राज्य की स्थापना की थी ।

सितम्बर के हत्याकांड में अनेक नेताओं एवं कुलीनों के सिरों को गुलेटिन की भेंट चढ़ा दिया गया। था। इन अत्याचारों के कारण दांते का विरोध प्रारम्भ हो गया। यद्यपि आतंक का कार्य समाप्त होते ही दांते की नीति में उदारता आ गई थी कि फिर भी दांते को अपने क्रूरता का दण्ड भोगना था । जिस गुलेटिन पर उसने निरपराध व्यक्तियों को भेंट कर दिया था वही गुलेटिन अब उसके रक्त की प्यासी थी। दांते के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठी और उसे द्वितीय सुरक्षा समिति से बहिष्कृत कर दिया गया। 1794 में क्रांति के अंत में महान नेता रोब्सपीयर ने उसका वध कर दिया। हेज मतानुसार उसने अन्तिम समय में कहा था– '' मैं प्रत्येक वस्तु को भयावह की स्थिति में छोड़े जा रहा है। इनमें कोई भी सरकार के संबंध में कुछ भी नहीं समझता । रोब्सपीयर की भी वही गति होनी चाहिए जो मेरी हुई है । मैं रोब्सपीयर को घसीटकर नीचे गिरा रहा हूँ। मनुष्य पर शासन करने के झंझट में पड़ने से तो एक गरीब मछुआ ही अच्छा है। ''

के

कुछ भी होते दाँते फ्रांस का एक देशभक्त नेता था । उसका उद्देश्य था फ्रांस में जनता का राज्य स्थापित करना।

(पपप) मारात (डंतंज 1742 – 1793) : यदि मारात की राजनीति में रुचि न होती तो इतिहास में वह एक विद्वान तथा वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध होता। वह एक चिकित्सक था तथा अपने कार्य में इतना निपुण था कि स्काटलैंड के सेन्ट ऐन्ड्रयूज ैंज. ।दकतमे) विश्वविद्यालय ने उसे एक सम्मान की डिग्री प्रदान की थी। कुछ समय तक वह काउन्ट आफ आरयोज (ब्वनदज व{ितवीवे) की सेवा में भी रहा।

सन् 1781 में राज्य परिषद् का अधिवेशन बुलाये जाने पर उसका ध्यान राजनीति की ओर आकृष्ट हुआ। फ्रांस में यह भावना चल रही थी कि फ्रांसवासियों को ब्रिटिश संविधान का अंधानुकरण करना चाहिए। किन्तु मारात ने इसका विरोध किया क्योंकि बिटिश व्यवस्था संबधी उसके ज्ञान ने उसे विश्वास दिला दिया था कि ग्रेट ब्रिटेन पर शासन जनता नहीं बल्कि एक कुलीन वर्ग करता है। उसने स्वयं वास्तविक सुधार का समर्थन किया।

1789 से 1792 तक उसने एक समाचार पत्र का संपादन भी किया। उस समाचार – पत्र में उसने दरबार की आलोचना की तथा पादरियों, कुलीन सामन्तों व नेशनल अटम्बली तक पर आघात किया । उस पर किसी पार्टी ने आघात नहीं किया और अपने लक्ष्य के लिए उसने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया।

उसके सम्बन्ध में लिखा है– ” निर्धनता, दुख तथा सजा कोई भी उसे चुप न करा सकी। कभी–कभी उसे बाध्य होकर छोटी–छोटी कोठरियों में तथा दीवारों में भी छिपना पड़ा जिससे उसे भयंकर चर्म रोग भी हो गया। उसने सदैव पेरिसवासियों से अपील की कि वे लोग अपने मामले को अपने हाथों में लें। 1792 तक वह एक ऐसा व्यक्ति बन गया था जिससे अधिकारी वर्ग डरते तथा घृणा करते थे, परंतु राजधानी की जनता प्यार करती थी ।

मारात लोगों से प्यार करता था और लोग उससे प्रेम करते थे। लोगों के कार्य के हेतु वह प्रत्येक बलिदान को तैयार रहता था। वह रक्त–पात के लिए भी तैयार रहता था जिससे जनता के ध्येय को लाभ पहुँचे। 31 मई 1793 ई० के विद्रोह, असेम्बली में जिरोदिस्ट सदस्यों के बहिष्कार तथा अन्त में उसकी हत्या का उसी पर उत्तरदायित्व था। जुलाई 1793 में एक युवती कोर्डे (ब्वतकंल) ने उसका वध कर दिया, जो चतुरता के साथ जिरोदिस्ट ग्रुप से संबंधित थी ।

(पअ) रोब्सपीयर (त्वइमेचमपतम 1758–94) : रोब्सपीयर का जन्म एक मध् यमवर्गीय परिवार में हुआ था। वह पेरिस विश्वविद्यालय में कानून का डिसमीविन्स का सहपाठी था। अपने जन्म–स्थान अरास में उसने काफी अच्छी वकालत स्थापित कर ली थी। उसे फौजदारी न्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किया गया परन्तु वह एक प्रसिद्ध वक्ता तथा लेखक के रूप में विख्यात हो गया। साध् ाारण वक्ताओं की भाँति वह अनर्गल बोलने वाला नहीं था। रूसो का कट्टर समर्थक होने के नाते वह उसकी दार्शनिकता को वास्तविकता का रूप प्रदान करना चाहता था । इस प्रकार के कार्य में उसे जनता की पीड़ा तथा कष्ट की चिन्ता नहीं थी। इसमें संदेह नहीं कि उसने सर्वहारा वर्ग के लिए कार्य

पश्चिमी विश्व
छव्ज्ै
ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

किया परन्तु साथ ही वह इनके स्वभाव को नहीं अपना सका । लेखकों का विचार है कि वह अपने अंतिम दिन तक घुटने तक की बर्जिस तथा मौजे पहनता रहा और गालों को पाउडर से सुसज्जित
करता रहा।

1789 ई० के निर्वाचन में वह संसद के तीसरे सदन के लिए निर्वाचित किया गया । उसको अत्यंत उग्र विचारों वाले सदस्यों के मध्य स्थान मिला। इन सदस्यों को मिराबो व्यंग्य से तीस आवाजें (जीपतजल अवपबमे) कहा करता था क्योंकि सभा में उसके समर्थकों की संख्या कम थी और मिराबो का प्रभुत्व था ।

रोब्सपीयर राष्ट्रीय सभा में अधिक सफल नहीं हो सकता और उसने पेरिसवासियों की सहायता प्राप्त करने का निर्णय किया। वह जैकबिन क्लब का सदस्य तो था ही और उदार नेताओं के इस क्लब से पृथक हो जाने के पश्चात् वह इस क्लब का नेता बन बैठा। इसके उपरांत वह जैकोबिल क्लब को समाजवाद के प्रसार का साधन बनाकर स्वयं उसका मुख्य प्रतिपादक बन बैठा।

आतंक – राज्य के काल में उसने डैंटन के साथ सहयोग किया और डेंटन की शक्ति का पतन होने पर तो वह इसका सर्वेसर्वा बन बैठा। वह जैकोबिन का नेता था, इस कारण राष्ट्रीय सम्मेलन, पेरिस कम्पयून तथा सुरक्षा समिती पर उसका अत्यधिक प्रभाव था । उसने तर्क की उपासना बन्द कराकर सर्वशक्तिमान की उपासना प्रचलित की तथा स्वयं उसका गुरु बन गया। इस नये मत के उद्घाटन के लिए एक विशेष उत्सव का आयोजन किया गया। रोब्सपीयर के नेतृत्व में राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों का एक जुलूस निकाला गया और ट्यूलरीज के बाग में अनेक मर्तियों को जलाया गया। अंत में अनेक भाषणों के उपरांत समारोह का समापन हुआ। दुर्भाग्य से यह नया मत फ्रांस की जनता के अनुकूल नहीं था, जिसके फलस्वरूप वह रोब्सपीयर की मृत्यु के बाद ही समाप्त हो गया ।

10 जून 1794 ई० को कानून पारित करके क्रांतिकारी न्यायालयों की कार्यप्रणाली में परिवर्तन किया और इनका कार्य शीघ्रता से चलने लगा। फ्रांस की जनता को विद्रोहियों पर अभियोग लगाने के लिए कहा गया और राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्य भी किसी प्रकार नहीं बच सकते थे। क्रांतिकारी न्यायालय किसी भी नियम का दृढ़ता से पालन नहीं करता था। परिणामतः 10 जून से 27 जुलाई की अवधि में केवल पेरिस में ही 1376 व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार रोब्सपीयर ने अपने विरोधियों को सीधे चुनौती दी। वह स्वयं फ्रांस का तानाशाह बनने का निश्चय कर चुका था । सेन्ट जस्ट (ैपदज श्रनेज) इस काम में उसका सहायक था।

27 जुलाई 1794 को राष्ट्रीय सम्मेलन में रोब्सपीयर ने एक भाषण दिया । इस भाषण में अनेक कार्यों का समर्थन करने के अतिरिक्त उसने अपने विरोधियों के रुख की निन्दा की । इस भाषण में उसने विरोधियों का नाम नहीं लिया। परंतु संकेत अवश्य दे दिया था। यदि रोब्सपीयर ने उस दिन राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रमुख अपने विरोधियों की सूची बन्दी बनने के उद्देश्य से प्रस्तुत कर की होती तो राष्ट्रीय सभा ने उसकी माँग अवश्य स्वीकार कर ली होती । अनेक आक्रमणों की अस्पष्टता के कारण वह बाजी खो बैठा। इस प्रकार सांकेतिक आक्रमण करने के कारण राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों में शंका उत्पन्न हो गई और प्रत्येक को अपने जीवन का भय होने लगा।

इस प्रकार के वातावरण में राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्यों ने साहस करके रोब्सपीयर के भाषण को अस्वीकार कर दिया। इस दिशा में फाउस से जो परोक्ष रूप में अपना कार्य कर रहा था, वह इतना अपमान अनुभव करता था कि वह जैकोबिन क्लब गया और उसने भाषण को पुनः वोट करने का निर्णय किया।

27 जुलाई 1794 को वह राष्ट्रीय सम्मेलन में गया और सदस्यों को संबोधित करके भाषण देने लगा परंतु उसके विरोधियों ने इतना शोर मचाया कि वह भाषण नहीं दे सका। सभा भवन में बड़ी अव्यवस्था, क्रोध और हिंसा भड़की। अंत में यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि रोब्सपीयर सेंट जस्ट तथा उनके निकट समर्थकों को बन्दी कर लिया जाये बाद में रोब्सपीयर तथा उसके साथी छोड़ दिये गये और उन्हें नगर – भवन में ले जाया गया । जब राष्ट्रीय सम्मेलन को पता लगा कि शत्रु
छूट गया तो उसने विज्ञप्ति प्रसारित की जिसमें रोब्सपीयर को अपराधी घोषित किया गया। अंत में 28 जुलाई 1794 को उसे गुलेटिन के सुपुर्द कर समाप्त कर दिया गया।

(अ) लफायत (संलिंजजम 1757– 1834) : लफायत का जन्म सन् 1757 ई० में एक उच्च प्राचीन परिवार में हुआ था। वह स्वाधीनता का सच्चा प्रेमी था। उसने अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में ब्रिटेन के विरुद्ध लोहा लेकर सफलता प्राप्त की थी। जार्ज वाशिंगटन तक ने उसकी वीरता की भूरि–भूरि प्रशंसा की । गलस्टर, वेरन हिल, मानमाथ, न्यपार्ट आदि के युद्ध में उसने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया था। युद्ध के पश्चात् वह दो बार अमेरिका भी गया। उसने यूरोप का भ्रमण किया था ।
की
1789 ई० के निर्वाचन में उसने कुलीन वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया । उदार विचारों का होते
हुए भी उसने कोई महत्वपूर्ण कार्य इस समय तक नहीं किया था । वैस्तील विजय के बाद पेरिस सुरक्षा के लिए बनी नेशनल गार्ड का उसे मान्डर नियुक्त किया गया तथा 1791 ई० तक वह इस पद पर कार्य करता रहा। पेरिस का म्यून पर भी उसका पूर्ण प्रभाव था । सम्राट तथा रानी एल्टीनोइट के बंदी बनाये जाने पर भी वही संरक्षक बनाया गया । लुई 16वें के भागने में भी उसका हाथ समझा जाने लगा। 1761 के पेरिस के विशाल मैदान में सर्वसाधारण के आंदोलन को उसने कठोरता से दबाया।
तत्पश्चात् वह देहात चला गया। 1762 में बेल्जियम की सेनाओं के विरुद्ध उसने फ्रांस की सेनाओं का नेतृत्व किया किन्तु पराजित हुआ और उसकी प्रतिष्ठा पर आघात लगा । प्रशा तथा आस्ट्रिया के शासकों ने उसे बन्दी बना लिया। 1799 में वह फ्रांस दुबारा आया किन्तु उसने नेपोलियन की सहायता करना अस्वीकार कर दिया। 1824 में वह अमरीका गया तथा 1830 में जुलाई क्रांति का नेतृत्व किया तथा लुई फिलीप को सिंहासनासीन कराया। मई 1834 में पेरिस में उसकी मृत्यु हो गई। वह फ्रांस में भी अमेरिका की भाँति शासन स्थापित कराना चाहता था । अध्यक्ष के स्थान पर वह सम्राट रखने का इच्छुक था।

(अप) एबीसियेस (।इइमेपमलमे 1748–1830) : फ्रांस की राज्य क्रांति में एबीसियेस का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका जन्म मध्यम श्रेणी के एक परिवार में 1748 में हुआ

था । इसके माता–पिता ने इसको पादरी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप उसके चरित्र में ईमानदारी और न्यायप्रियता आ गई। उसकी राजनीति में भी रुचि थी। किसी भी समस्या पर एकाएक निर्णय देने के पूर्व वह उस पर भली–भाँति विचार करता था। पादरी होते हुए भी वह राष्ट्र – हित को सर्वोपरि मानता था । फ्रांस के 1791 के संविधान निर्माण में इसका महत्वपूर्ण स्थान था। उसने 10 वर्ष तक पादरी का जीवन बिताया। पादरी होने के कारण सम्पूर्ण भ्रष्टचार और दोषों का उसे ज्ञान था। वह संभवतः फ्रांस की दयनीय दशा को देखकर तथा विचारों के फलीभूत न होने की आशा के कारण अमेरिका जाने का विचार कर रहा था कि अचानक ही फ्रांस में भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ ।

नैकर के स्टेट्स जनरल के अधिवेशन के आमन्त्रित करने के समय इसने एक पत्रिका निकाली तथा उसमें थर्ड एस्टेट (तृतीय सदन) की स्थिति पर प्रकाश डाला। इससे इसकी ख्याति में वृद्धि हुई । राष्ट्रीय सभा में उसका विशेष स्थान रहा होगा। जून 1791 में वह राष्ट्रीय महासभा का सभापति बना। वह राजतंत्र का पक्षपाती था परतु साथ ही जनता के घोषणा का विरोधी था । मिरावो की मृत्यु के उपरांत उसके जीवन में उदासीनता तथा नीरसता आ गई। वह सदैव ही राजा को सही मार्ग पर लाने का प्रयास करता रहा। जुलाई 1791 से 1794 तक एवीसियेस राजनीति से पूर्णतया उदासीन रहा और स्वयं को सुरक्षित रखा । रोब्सपीयर के पतन के बाद 1794 में उसे भी संतोष प्राप्त हुआ और उसका भय समाप्त हो गया।

मार्च 1794 में वह जन रक्षा समिति का सदस्य बना तथा उसी के प्रभाव से कन्वेशन में जिरोदित दल के नेताओं को बैठने की पुनः आज्ञा मिल गई । 1795 में उसने पेरिस के अशान्तवादियों से कन्वेशन की रक्षा की।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

137

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

डायरेक्टरों तथा कौंसिलों के काल में भी पूर्ण लाभ के साथ सेवा की परंतु नैपोलियन के शासक बनने पर उसने पुनः राजनीति से उदासीनता ग्रहण कर ली। 1815 की संधि के उपरांत बर्बोन वंश की स्थापना से वह फ्रांस छोड़कर चला गया और 1830 में पुनः फ्रांस आया और थोड़े समय पश्चात् मर गया। वही राष्ट्रीय सभा का निर्माणकर्त्ता था । उसी ने 1799 के संविधान का निर्माण किया था और पादरियों की भाँति देश को राज्य क्रांति की दीक्षा दी थी।

फ्रांस के तत्कालीन सम्राट लुई 16वीं ने 5 मई 1789 को राज्य परिषद् के अधि वेशन का प्रारंभ किया । राज्य परिषद् के तीन सदन होते थे। कुलीन वर्ग के

सदस्य प्रथम सदन में, उच्च पादरी वर्ग द्वितीय सदन में तथा जन–साधारण के सदस्य तीसरे सदन में हुआ करते थे । अर्थमंत्री नैकर इस अधिवेशन को आमंत्रित करने से पूर्व इस बात का निर्णय नहीं कर सकता था कि किस सदन में कितने सदस्य होंगे। तीसरे सदन के सदस्यों की संख्या अन्य दो सदनों के सदस्यों की संख्या के बराबर हो अथवा नहीं सत्य तो यह है कि जन–साधारण के प्रतिनिधि अर्थात् तृतीय सदन के सदस्य ही कुल जनसंख्या का 90 प्रतिशत प्रतिनिधित्व करते थे। इस प्रकार उसके सदस्यों की संख्या अधिक–से–अधिक होनी स्वाभाविक ही थी । अंत में जब नैकर स्वयं कोई निर्णय नहीं कर सका तो उसने उन सभी व्यक्तियों को जिनकी आयु 25 वर्ष से अधिक थी और जो कैवीटेशन टैक्स देते थे, मताधिकार प्रदान करके अपने–अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने की आज्ञा दे दी। इन प्रतिनिधियों ने जिन्हें मतदाता कहते थे। अपने–अपने क्षेत्रों से डिपुटीज (क्मचनजपमे) को निर्वाचित किया।

,

इन निर्वाचित डिपुटीज को यह आदेश दिया गया कि वे अपनी समस्त शिकायतों को एक साथ लिखें और साथ ही उन सुधारों का उल्लेख करें जिन्हें वे चाहते थे। इसी को स्मृति – पत्र की संज्ञा दी गई। इस प्रकार के स्मृति – पत्रों की संख्या लगभग 50 से 60 हजार हो गई, जो आज भी सुरक्षित अवस्था में रखे हुए हैं। प्रतिनिधियों तथा जनता को दृढ़ विश्वास था कि शासन संबंधी समस्त बुराइयों का उत्तरदायित्व राजा के निरंकुश, स्वेच्छाचारी तथा अनियंत्रित शासन पर है। अतः सभी की यह इच्छा थी कि एक इस प्रकार के संविधान का निर्माण किया जाए जिसके द्वारा राजा के अधिकारों को सीमित करने के साथ–साथ जनता को भाषण देने, विचार प्रकट करने, लिखने आदि की पूर्ण स्वतंत्रता हो । साथ ही यह माँग भी की गई कि विशेषाधिकार युक्त वर्ग के सदस्यों को किसी भी व्यक्ति को बन्दी बनाने के लिए जो अधिकार–पत्र दिया जाता था उसे भी समाप्त कर दिया जाए। समाचार–पत्रों पर लगे प्रतिबंधों को हटाकर समाचार पत्रों को स्वतंत्रता प्रदान की जाए। इसके अतिरिक्त कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग साधारण वर्ग के प्रस्तावों से थोड़ा–थोड़ा सहमत होने लगे और कुलीन वर्ग तथा सामन्त इस माँग से सहमत हो गये कि उन पर भी टैक्स लगाया जाय। जन–साधारण वर्ग के प्रतिनिधि भी इस बात से सहमत हो एक कि अन्य दोनों वर्गों के सदस्य अपने अधिकारों का उपयोग पहले की भाँति करते रहे, परंतु जन–साधारण पर लगने वलो सामन्ती कर को समाप्त कर दिया जाय। इन स्मृति – पत्रों से यथार्थ में किसी प्रकार के विद्रोह की भावना का आभास नहीं मिलता था और सभी सदस्य राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयास कर रहे

थे।

–

इतिहासकार हेज का मत कुछ अन्य ही था। उसके अनुसार

यह स्पष्ट था कि यदि तृतीय सदन के निर्वाचित प्रतिनिधि अपने–अपने क्षेत्रों से

मिले निर्देशें का पालन करेंगे तो नवीन टैक्सों के लगाने की अनुमति उस समय तक नहीं दी जा सकेगी। जब तक कि जांच करके कुछ शिकायतों को दूर न कर दिया जाय। ''

परिस्थितियों से आभास होता था कि प्रतिनिधि स्मृति – पत्रों को अवश्य स्वीकार करेंगे। इन निर्वाचित सदस्यों में से अधिकांश शिक्षित, वकील, न्यायाध ीश तथा विद्वान थे। इन सदस्यों के विचार में इंग्लैंड की सरकार अच्छी थी और देश में आशा की जाने लगी कि देश में शीघ्र के सुधार संभव हो सकेगा। परंतु दुर्भाग्य से लुई 16वाँ तथा अर्थमंत्री नैकर के उद्घाटन भाषणों से इस प्रकार का कोई आभास नहीं मिला था।

138

जब यह बात निश्चित नहीं हो पा रही थी तभी कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग के सदस्यों ने अपने को पृथक–पृथक सदन स्वीकार करके जाँच का कार्य प्रारंभ कर दिया। अब केवल जन–साधारण का तीसरा सदन शेष रह गया और इसके सदस्यों ने अन्य दोनों वर्गों के सदस्यों को आमंत्रित करते

हुए घोषणा की कि यह सदन 9 जून को जाँच का कार्य प्रारंभ करेगा। कुलीन वर्ग तथा पादरी वर्ग के सदनों ने जन– साधारण के सदन के इस आमंत्रण को ठुकरा दिया और इसमें सम्मिलित नहीं हुए। धीरे–धीरे पादरी वर्ग के वे छोटे पादरी जिन्हें कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे और जो उच्च पादरी वर्ग से क्रुद्ध थे, एक–एक करके तीसरे सदन के सदस्यों से मिलते गये। जून, 1789 को तीसरे सदन ने अपने–आपको राष्ट्रीय सभा (छंजपवदंस ।मउइसल) घोषित कर दिया जो कि एक अत्यंत महत्वपूर्ण कदम था। यह सब नैकर की इच्छा के विरुद्ध था तथा उसने सम्राट को तीनों सदनों का अधिवेशन बुलाकर भाषण देने तथा यह बताने का कि सभी विषयों पर तीनों सदन पृथक–पृथक विचार करेंगे, का परामर्श दिया। तीसरे दिन सदन के सदस्य जब सभा भवन में अधिवेशन करने पहुँचे तो उन्हें सूचित किया गया कि सम्राट के भाषण के लिए आवश्यक तैयारी की जा रही है, इसीलिए सभा भवन बन्द है । यह सम्राट की चाल थी। इससे तीसरे सदन के सदस्य भड़क उठे। कुछ देर तो वे यह न समझ सके कि क्या करें, परंतु शीघ्र ही निकट के भवन में चले गये और वहाँ पर बैली (ठंपससल) की अध्यक्षता में सभा की तथा हैज के अनुसार उन्होंने माउनियर (डवनदपमत) के प्रस्ताव पर एक शपथ लो जो टैनिस कोर्ट की शपथ के नाम से प्रसिद्ध है। यह शपथ सभी सदस्यों ने ली और वह इस प्रकार थी– '' उन्होंनं प्रसिद्ध टैनिस कोर्ट की शपथ ली। जब तक देश में आवश्यक संविधान स्थापित नहीं हो जाता तब तक हम कभी एक – दसरे से

पृथक नहीं होंगे और जब कभी तथा जहाँ कहीं भी आवश्यकता होगी, एकत्रित होंगे। ''

23 जून का राजकीय अधिवेशन : 23 जून को बड़े वैभव के साथ लुई 16वाँ ने सदन में प्रवेश करते ही तृतीय सदन द्वारा की गई घोषणा को समाप्त कर दिया तथा आज्ञा दी कि तीनों सदन उपस्थित हों। सम्राट ने अन्त में अपने भाषण में

कहा–

” मैं सत्य कहता हूँ कि किसी भी शासक ने किसी राष्ट्र के लिए इतना नहीं किया। इस उदारतापूर्ण कार्य में मेरी सहायता कीजिये अन्यथा मैं अकेला ही अपनी प्रजा की भलाई को देखूँगा और समझँगा कि मैं उनका एकमात्र प्रतिनिधि ा हूँ। ‘‘

वास्तव में यह सम्राट की भयंकर भूल थी और वह परिस्थिति को समझ नहीं पा रहा था। प्रथम वर्ग के सदस्य द्वितीय वर्ग के सदस्य प्रसन्नतापूर्वक सदन से चले गये। तृतीय वर्ग के सदस्य वैसे ही शान्त बैठे रहे । अन्त में अधिवेशन अधिकारी ने आकर इनसे सभा भवन से चले जाने का निवेदन किया । वह एक अत्यंत कठिन समय था और तृतीय सदन के सदस्यों के लिए यह एक जीवन–मरण का प्रश्न बन गया था । उन सिद्धान्तों की समाप्ति जिनकी लिए वे अभी तक संघर्ष कर रहे थे और वहाँ बैठे रहने का अर्थ था– राजा के कोप का भाजन बनना । सौभाग्य से उनकी मिराबो (डपतंइमंन) नामक एक निडर नेता मिल गया और उसने अधिवेशन अधिकारी से गरजते हुए कहा–

‘‘ जाओ और जाकर अपने स्वामी से कहीं कि हम सब यहाँ पर जनता की इच्छा से आये हैं। अतः हम उस समय तक यहाँ से नहीं जायेंगे जब तक कि हमें बन्दूकों की नोक से न हटाया जाय। ‘‘

सम्राट के लिए यह कठिन समय था । कि कर्तव्यविम वह कुछ सोच नहीं सका। क्रांति का शंखनाद हो चुका था। एक हारे हुए जुआरी की भाँति सम्राट ने आज्ञा दी– ‘‘ अच्छा तो वे लोग वास्तव में यहाँ रहना चाहते हैं तो उन्हें रहने दो‘‘ । इस प्रकार जो बात मिठास से सुलझ सकती थी, कटुता से सुलझाई गई। यहीं से क्रांति का आरंभ होता है।

1. सामाजिक समानता की स्थापना – 4 अगस्त, 1789 के इस संघर्ष में विजय प्राप्त करने के उपरांत, राष्ट्रीय सभा ने अपना कार्य प्रारंभ किया। उसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य सामन्तशाही, मुजारेदारी तथा विशेषाधिकारी को समाप्त करना था। 4 अगस्त को क्रांतिकारी नेता लफायत से

‘‘

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

139

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

140

2.

संबंधित एक जागीरदार ने सभा में कहा कि कृषकों द्वारा जागीरदारी और उनकी संपत्ति पर आक्रमण करने का एक कारण अन्याय पर आधारित असमानता

था । उसने कहा कि इसका निराकरण किसानों का दमन करने से नहीं अर्थात् असमानताओं को जो इसकी जड़ में है दूर करने से होगा । जनता को पूरा–पूरा विश्वास था कि राष्ट्र तभी पनप सकता है। जबकि समाज में सभी बराबर हों और वहाँ किसी का कोई वर्ग न हो। सभी लोगों ने इसे स्वीकार किया। एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसके अनुसार सब पर एक जैसा कर लगाया जाना था। जमींदारों और जगीरदाराओं में तथा धर्माचार्यों में अपने–अपने विशेषाधिकार और सुविधायें त्यागने के लिए होड़ लग गई। इस प्रकार 4 अगस्त को फ्रांस में प्राचीन राज्य के अस्तित्व को नष्ट करते हुए घोषणा की कि सभी फ्रांसीसी एक–दूसरे के बराबर है। अब से बिना किसी भेदभाव के सब पर समान रूप से टैक्स लगाया जायेगा।

संक्षेप में, राष्ट्रीय सभा के निर्णय इस प्रकार

अब से दास प्रथा, बेगार लेना, सामन्तों द्वारा अपने खेतों पर, शराब की भट्टियों पर सड़क बनवाने के लिए बिना पैसा दिये काम कराने से मना कर दिया गया। सामन्तों का शिकार का विशेषाधिकार तथा मुर्गी आदि चुराने पर जो अमानुषिक दण्ड दिया जाता था वह भी समाप्त कर दिया गया। नगर गिल्दस (ळनपसके) तथा इस प्रकार की अन्य संस्थाओं को समाप्त कर दिया गया । उच्च पदों का क्रय–विक्रय समाप्त कर दिया गया तथा सबसे लिए न्याय सुलभ कर दिया गया। इस प्रकार सामन्तों को उनके सभी अधिकारों से वंचित कर दिया गया। पेरिस के महा धर्माचार्य (।तबी–इपेीवच व चिंतपे) के सुझाव पर राष्ट्रीय सभा ने लूई 16 वा को फ्रांस की स्वतंत्रता का पुनः संस्थापक (त्मेजवतमत व जिीम तिमदबी स्पइमतजल) की उपाधि से विभूषित किया।

मानव अधिकारों की घोषण करना– राष्ट्रीय सभा ने कालान्तर में संविधान निर्माण करने का कार्य भी आरंभ कर दिया और इसी कारण उसे राष्ट्रीय संविधान सभा (छंजपवदंस ब्वदेपजनमदज ेमउइसल) के नाम से भी पुकारा जाता है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक रूसो की पुस्तक सोशल कान्ट्रेक्ट (ैवबपंस ब्वदजतंबज) तथा अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरित होकर इस सभा ने मनुष्य के मूल अधिकारों की घोषणा भी करनी चाही । घोषणा के पूर्व खूब वाद–विवाद हुआ और लम्बे वाद–विवाद के उपरान्त अगस्त 1789 में महत्वपूर्ण घोषण की गयी । यथार्थ में फ्रांस में यह घोषणा लोकतंत्रीय तथा गणतत्रीय विचारों के विकास के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपर्ण घटना है। सभी को इसके द्वारा समान समझा गया। सभी को लिखने–पढ़ने भाषण देने तथा विचारने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गई। हेंजन के अनुसार, इस घोषणा में कहा गया था – मनुष्य स्वतंत्र और समान है, जनता ही प्रभु है, कानून जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति हैं और उसके निर्माण में जनता की प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों द्वारा भाग लेने का अधिकार हैं और अधिकारीगण उसी सत्ता का उपयोग कर सकते हैं जो कानन द्वारा उन्हें निश्चित रूप से दे दी जाती है।

सभी यूरोपीय देश इस घोषणा से प्रभावित हुए तथा सभी देशों में इसका सक्ष्मता आलोचनात्मक अध्ययन किया गया। जब कभी और जहा भी स्वतंत्रता – प्रेमियों

ने किसी आन्दोलन को चलाया तो उन्होंने सर्वप्रथम इस घोषणा का सक्ष्म रूप से अध्ययन किया ।

इतिहासकार हेंजन ने इस घोषणा की तुलना अमरीका के संविधान से करते हुए लिखा है– '' मानव अधिकारों की घोषाणा के शक्तिशाली तथा अतिवादी सिद्धांतों को छोड़कर जो कि प्रसतावन के रूप में इससे जोड़ दिये गये है, अन्य सभी दृष्टि से यह प्रपत्र अत्यधिक मर्यादित था। उसकी यह विशेषता व्यापक परिवर्तनां के अनुरूप थी कि जिसें बहुसंख्यक जनता ने चुनाव के समय स्मृति–पत्रों
रूप में दी थी । ''

3. राज के अधिकारों को सीमित करना – दुर्भाग्य से संविधान सभा के सदस्य अनुभवहीन थे । जनता
की इच्छा तथा अनुमति के द्वारा ही सरकार के तीनों अंगों कार्यकारिणी, न्यायपालिका तथा व्यवस्थापिका को एक–दूसरे से पृथक कर दिया जाय। इस प्रकार इस सभा, ने देश के लिए एक नवीन संविधान तैयार किया जो 1781 ई में तैयार हुआ और सम्राट की स्वीकृति के पश्चात् देश में लागू हुआ। यह देश का प्रथम लिखित संविधान था जो मान्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित अधिकारों की पृथकता ‘ैमचमतंजपवद व च्वूमत) के सिद्धान्त पर आधारित था जिसे 1789 के अमरीका के संविधान में निहित किया गया था। न्यायमण्डल तथा विधानमंडल एक–दूसरे से पृथक कर दिये और प्रत्येक के लिए पृथक विभाग स्थापित किये। वैधानिक सत्ता एक भवनवाली विधान सभा में निहित की गई तथा इसके 475 सदस्यों को परोक्ष प्रणाली (प्दकपतमबज) से दो वर्ष के लिए निर्वाचित किया जाता था। मतदान का अधिकार उन नागरिकों को दिया गया जो कर देते थे। केवल उन्हीं सदस्यों को चुना जा सकता था जिनके कुछ सम्पत्ति थी । समपति अनुबंध इस बात का द्योतक है कि राष्ट्रीय सभा में बुर्जुआ अर्थात् मध्यवर्ग का आधिपत्य था ।

साधारणतः राज्य के प्रशासन की सत्ता सम्राट में ही निहित की गई। उसका पद वंशानुगत था । सम्राट को विलम्ब निषेधाधिकार (ैनेचमदेपअम अमजव) भी प्राप्त था। इसके अनुसार यह विधान सभा द्वारा पारित कानून
को लागू होना स्थगित कर सकता था। पर सम्राट को स्थानीय प्रशासन, चर्च जल सेना व स्थल सेना के अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। उसके मंत्री का भी विधान सभा में कोई स्थान नहीं था ।

न्याय प्रणाली को भी पूर्णतः बदल दिया गया। इसके पूर्व न्यायाधीश अपने पदों का क्रय–विक्रय किया करते थे तथा उन्हें कुछ सुविधायें तथा उपाधियाँ भी प्राप्त थीं। उन्हें अपने पुत्रों को अपने पद हस्तांतरित करने का भी अधिकार था । किन्तु अब यह सब समाप्त कर दिया गया। कालान्तर में न्यायाधीशों का निर्वाचन होने लगा और उनके पद की अवधि दो वर्ष से चार वर्ष तक निश्चित कर दी गयी । फौजदारी मुकदमों के लिए जूरी प्रणाली प्रचलित की गई।

4. आन्तरिक व्यवस्था को ठीक करना– सन् 1789 के नवीन संविधान के अनुसार फ्रांस को 83 खण्डों में विभक्त कर दिया गया। क्षेत्रफल तथा जनसंख्या की दृ ष्टि से खण्ड बराबर थे। इन विभागों को एरोन्डाइजमेनट (।ततवदकपेमउमदज) कहते थे तथा शासन की सुविधा के लिए इनकों कैन्टनों (ंबदजवदे) तथा कैन्टनों को कम्यूनों (ब्वउउनदमे) में विभक्त किया गया। अब शासन का भी विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। प्रान्तीय अधिकारियों को उस प्रान्त के निवासी निर्वाचित करते थे जिनका केन्द्र से संबंध नहीं था। इस परिस्थिति में केन्द्र के सम्मुख एक गंभीर प्रश्न उत्पन्न हुआ कि यदि कोई प्रान्तीय अधिकारी केन्द्रीय आज्ञा का उल्लंघन करता है तो केन्द्र किस प्रकार उस पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है। इस प्रकार की संविधान में कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। 5. चर्च के अधिकारों की सीमित करके धार्मिक समानता की स्थापना – चर्च (धर्म) का क्रांति के पूर्व तक फ्रांस के इतिहास में बड़ा महत्व था । राष्ट्रीय सभा ने उसके अधिकारों को सीमित करके धार्मिक समानता स्थापित करने का निश्चय किया और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सबसे पहले उसकी सम्पत्ति जब्त की गई। अपने इस कार्य को उचित ठहराने के लिए वे लोग कहते थे कि चर्च सम्पत्ति का अधिकारी नहीं वरन् सार्वजनिक हितों के लिए ही है। अतः अब ये चर्च की सारी सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति समझी जायेगी । इसी सम्पत्ति को जमानत मानकर अब कागज के नोटों का प्रचलन किया गया। इन नोटों को ईसाई नेट (।पहदंज) कहते थे। इससे फ्रांस की आर्थिक दशा कुछ समय के लिए सँभल गई परंतु यह प्रभाव अस्थायी रहा । चर्च के समस्त पदाधिकारी अब अवैतनिक हो गए और अब वे राजकीय कर्मचारी समझे जाने लगे। प्रान्तों के मठों की संख्या में कमी कर दी गई। मठ का प्रमुख अधिकारी बनने के पूर्व मठाधीश को धर्माचार्यों के विधान (ब्पअपस ब्वदेजपजनजपवद व ि्बसमतहपमे) के अनुसार शपथ लेनी पड़ती थी । इनका निर्वाचन भी जनता करती थी और पोप के साथ इनका संबंध केवल नाममात्र का था । जैसी कि आशंका थी जनता करती थी पोप ने संविधान की निन्दा की और फ्रांस के धर्माचार्यों को आदेश दिया कि वे संविधान के

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्े

ैमस–िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

141

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्े

ैमस–िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

142

प्रति भक्ति की शपथ न ले। इन सुधारों को कुछ पादरियों ने अपमाजनक माना और अपने पद से त्याग देकर देश से बाहर चले गए, जहाँ उन्होंने फ्रांस के विरुद्ध प्रचार करने का कार्य आरंभ किया। इसके परिणामस्वरूप अनेक प्रांतों के कैथोलिक ने विद्रोह कर दिया।

राष्ट्रीय सभा के कार्य का मूल्यांकन– राष्ट्रीय सभा के कार्य के पर्यवेक्षण से पता लगता है कि इसने पुराने शासन के आधार को नष्ट कर दिया तथा इसने प्रशासन के प्राचीन ढंग की शासन–प्रणाली को समाप्त कर दिया। इसने पुरानी आर्थिक प्रणाली को भी नष्ट कर दिया। इसने देश के चर्च में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इन सब विध्वंसकारी कार्यों के साथ–साथ यह प्रयत्न भी किया गया कि एक सरल शासन–प्रणाली प्रचलित की जाय जिसके चलाने में जनता का योगदान हो। यह सब केवल राष्ट्रीय सभा के प्रयत्नों में ही नहीं हुआ, अपितु उन सब किसानों के द्वारा भी हुआ जिन्होंने गाँवों में विद्रोह करके जागीरदारों के महलों, उपाधिपत्रों को नष्ट कर दिया, जागीरदारों तथा धर्माचार्यों की हत्या करके विशेषाधिकार संपन्न वर्गों के हृदय में भय संचारित करके उनका पूर्ण नैतिक पतन कर दिया।

आलोचकों का मत है कि राष्ट्रीय सभा ने मावन के शासन (डवइ–तनसम) के द्वारा खोल दिए। इसने भयंकर सिद्धान्तों का पोषण किया। इसने धर्म के प्रश्न पर देश में फूट उत्पन्न कर दी। इसने विधानमंडल को कार्यमण्डल से पृथक करके भूल की। इसने मूर्खता से एक कानून लागू किया जिसके अनुसार राष्ट्रीय सभा के सदस्यों को नए संविधान के द्वारा चुने गए विधानमंडल को सदस्यता से वंचित कर दिया । इतिहासकार हेज के शब्दों में,

‘‘ संविधान सभा ने सुधार का जो कार्य किया वह एक विशाल पैमाने पर था। यह अपने ढंग का अनोखा था। उसका ध्वंसात्मक कार्य टिकाऊ और महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, किन्तु उसका रचनात्मक कार्य अत्यंत कमजोर निकला । ‘‘

मिराबो ने इस संबंध में अपना मत इन शब्दों में व्यक्त किया कि ‘‘ राज्य के विघटन का कार्य इससे अच्छा नहीं हो सकता था । ‘

‘‘1

इस संविधान को स्थायी रूप देने के विचार से ही उसके सदस्यों ने घोषणा की कि ‘‘राष्ट्र को अधिकार है कि जब चाहे इस संविधान में संशोधन कर सकती है । ‘

‘‘

क्रोपोटकिन ने अपनी पुस्तक ‘दी ग्रेट फ्रेंच रिवौल्यूशन‘ में कहां है कि संविधान सभा द्वारा सम्पन्न कार्य वस्तुतः मध्यवर्गीय क्रिया थी, किन्तु एक राष्ट्र की परम्परा में समानता का सिद्धान्त लागू करना, एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के ऊपर अधिकारों की अवशेष प्रगति का उन्मूलन करना, समानता की भावना जाग्रत करना तथा असमानताओं के विरुद्ध विद्रोह की भावना जगाना, फिर भी एक महान् कार्य था । केवल इतना याद रखना चाहिए जैसा लुई ब्लैक ने कहा कि असेम्बली में वही अग्नियुक्त भावना बनाए रखना और चमकाना, वह वायु जो सड़क से चल रही थी । आवश्यक थी। वह कहता है कि इन अद्वितीय दिनों में इस गड़बड़ से उत्पन्न दंगेबाजी ने भी अनेक विद्वत्तापूर्ण प्रेरणायें उत्पन्न की। प्रत्येक विद्रोह अनेक विचारों से भरपूर था। दूसरे शब्दों में, केवल जनसाधारण ने असेम्बली को हर बार पुनर्निर्माण का कार्य करने को बाध्य रखा। इस

क्रांतिकारी असेम्बली ने भी या कोई वह जिसने अपने को राजतंत्र के ऊपर क्रांतिकारी रीति से थोपा, जैसा कि संविधान सभा ने किया वह भी कुछ नहीं कर पाती। यदि जनसाधारण उसे आगे बढ़ने पर बाध्य न करते और यदि उन्होंने अपनी हिंसात्मक क्रांतियों से क्रांति के विरुद्ध विरोध को कुचल न डाला होता ।

1791 ई० में फ्रांस में देश के लिए जिस संविधान की रचना की गई उसे दीर्घकाल के विचार–विमर्श तथा प्रत्येक दृष्टिकोण से सोच–विचार कर ही पास किया गया था। इतना होने पर भी इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह संविधान अत्यंत अल्पकालीन रहा और 1792 ई० के अंत होने के पूर्व ही संविधान का भी अंत हो गया। इस संविधान के अल्पकालीन सिद्ध होने के निम्न कारण थे–

1. अनुभवहीन सदस्यों द्वारा निर्मित संविधान– यद्यपि राष्ट्रीय सभा के सदस्य देश–भक्त, बुद्धिमान तथा कर्त्तव्यपरायण होने के साथ ईमानदार भी थे, परंतु उनमें अनुभव का अभाव था। उन्हें शासन
का व्यवहारिक ज्ञान नहीं था। अतः उन्होंने उनेक ऐसी त्रुटियाँ कर डालीं जिनके द्वारा उनका बनाया हुआ संविधान असफल एवं अल्पकालीन सिद्ध हुआ । अन्होंने कार्यपालिका को निर्बल बनाकर भयंकर भूल की। यद्यपि सम्राट कार्यपालिका का अध्यक्ष एवं स्थल तथा जल सेनाओं का प्रधान था परंतु वह बिना व्यवस्थापिका सभा स्वीकृति के अन्य राष्ट्रों के साथ युद्ध अथवा संधि नहीं कर सकता था। वह किसी भी प्रस्ताव को कानून बनने से नहीं रोक सकता था। फलस्वरूप उसमें राजकार्य करने की निपुणता कम हो गयी ।

2. प्रतिनिषेधात्मक प्रस्ताव– राष्ट्रीय सभा ने अपना कार्य समाप्त करने के उपरान्त 20 सितंबर 1791 को एक प्रस्ताव पारित किया, जिसको प्रतिनिषेधात्मक प्रस्ताव कहा जाता है। इस प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रीय सभा ने अपने सदस्य के व्यवस्थापिका के सभा के निर्वाचन में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रकार ये लोग सदस्य अथवा पदाधिकारी के रूप में निर्वाचित ही नहीं हो सकते थे। फलस्वरूप सब नवनिर्वाचित सदस्य अथवा अनुभवहीन थे। साथ ही संविधान में उल्लेखित धाराओं के अनुसार जब ऐसे लोगों के कंधों पर काम करने का बोझ आ पड़ा, जिन्होंने उससे निर्माण में कभी कोई भाग नहीं लिया था। फलस्वरूप वे संविधान को भली–भाँति नहीं समझ पाये और न ही उस पर भली–भाँति कार्य कर सके। राष्ट्रीय सभा के सदस्यों के रूप में अनेक व्यक्तियों को दो वर्ष का जो अनुभव प्राप्त हुआ था वह व्यर्थ ही रहा क्योंकि वे लोग चुने ही नहीं जा कसते थे। इसके अतिरिक्त व्यवस्थापिका सभा के नव–निर्वाचित सदस्यों में दलबंदी अपनी चरम सीमा पर थी। प्रत्येक सदस्य इसी प्रयत्न में था कि वह अपने दल की शक्ति में वृद्धि कर और इस प्रकार उनको राष्ट्र के हित एवं प्रतिष्ठा की अपेक्षा अपने दल की प्रतिष्ठा तथा हित की चिंता थी । यही कारण है कि संविधान अल्पकालीन सिद्ध हुआ ।

3.
पादरियों का सिविल संविधान– इस संविधान के अल्पकालीन होने का एक

प्रमुख कारण पादरियों का सिविल संविधान भी था। अधिक फ्रांसीसी जनसंख्या रोमन कैथोलिक धर्म की अनुयायी थी । अतः जब पादरियों के जनसंख्या संविध ाान का निर्माण किया गया तो फ्रांस की जनता विरोधी बन गयी। क्योंकि वे लोग किसी भी प्रकार का धार्मिक प्रतिबंध मानने को तैयार नहीं थे। इस संविध ाान में घोषित किया गया कि धार्मिक संगठन के नागरिकों को संविधान के प्रति सभी धर्मावलंबियों को भक्ति की शपथ लेनी होगी अन्यथा उन्हें उनके पदों से पदच्युत कर दिया जाएगा।

संविधान की घोषणा का अनेक पादरियों ने घोर विरोध किया। निम्न वर्ग के पादरी जो अभी तक क्रांति के पक्ष में थे अब इस संविधान के कारण उसके विरोध ाी हो गये। अनेक पादरियों ने क्रोध में आकर अपने–अपने पदों से त्याग पत्र दे दिया, देश छोड़कर दूसरे देश में चले गये । इसका प्रभाव देश की अखण्डता तथा एकता पर पड़ा। अब इन लोगों ने विदेशों में जाकर उन तत्वों तथा संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित कर लिया जो क्रांति के विरोधी थे।

इन पादरियों ने भी विदेशी शासकों को भी फ्रांस की क्रान्ति के विरुद्ध बहुत अध िाक भड़काया। देश में भी इन पादरियों ने उग्र स्वभाव वाले वर्ग के साथ सम्पर्क किया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि फ्रांस का संविधान पूर्णतया असफल रहा। पादरियों के सिविल संविधान के विषय में एक लेखक ने कहा भी है। ‘‘ संविधान सभा की किसी भी त्रुटि का इतना भयंकर परिणाम नहीं हुआ जितना कि इन मनुष्यों की धार्मिक भावना पर अपमानपूर्ण आघात का हुआ। ’’

संविधान की त्रुटियाँ संविधान निर्माताओं का यह प्रथम प्रयास था और इन लोगों को किसी प्रकार का कानन बनाने का अनुभव नहीं था और इस प्रकार संविधान निर्माताओं के क्षेत्र में इन सदस्यों का प्रथम राजनीतिक प्रयोग था । इस परिस्थिति में संविधान निर्माण में उनसे गलती हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। उनकी मुख्य त्रुटियाँ इस प्रकार थीं–

1.

इस संविधान के अनुसार कार्यकारिणी की शक्ति अत्यंत कम हो गयी और सम्राट को सीमित अधिकार ही दिया गया। इस प्रकार राजा के अधिकार नाममात्र के ही थे। बाह्य रूप से लुई 16वाँ ही जल तथा थल सेना का अध्यक्ष था, विदेशी राज्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़ना, युद्ध बंद कर ने की

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

143

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

144

2.

घोषणा करना, अन्य देशों के साथ संधि करना आदि सब विषयों पर राजा का ही अधिकार था, परंतु यह सब दिखवा मात्र था, क्योंकि यथार्थ में वह इन समस्त अधिकारों का प्रयोग व्यवस्थापिका सभा की अनुमति से ही कर सकता था।

इस प्रकार राजा अपने प्रत्येक कार्य के लिए व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी था और उसकी स्वीकृति के अभाव में कोई कार्य नहीं कर सकता था। कोई बिल राजा के हस्ताक्षर होने के उपरांत ही कानून बन सकता था। इस विषय में उसे प्रतिनिषेधात्मक अधिकार भी प्राप्त था, परन्तु यह अधिकार भी केवल दिखावा मात्र ही था, क्योंकि इसके द्वारा यह किसी कानून के पास होने में देरी कर सकता था, परंतु उसे कानन में सदैव के लिए रोक नहीं सकता था यदि वह हस्ताक्षर करना स्वीकार कर देता, तो उसे व्यवस्थापिका को लौटा देता था । वहाँ से वह दुबारा पास कर दिया जाता और यदि वह दोबारा हस्ताक्षर नहीं करता तो व्यवस्थापिका सभा उसे तीसरी बार पास कर देती, तो राजा को उस पर हस्ताक्षर करने ही होते थे और इस प्रकार यह अधिकार भी केवल दिखावा मात्र ही था।

3. संविधान सभा के सदस्यों ने एक अन्य मूल शक्ति के विभाजन एवं पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया था और यह सिद्धान्त भी ठीक सिद्ध नहीं हुआ। इन सदस्यों ने इंग्लैण्ड के संविधान से प्रेरणा पाकर ही ऐसा किया था, परंतु इंग्लैंड में संसद तथा कैबिनेट में पूर्ण सम्पर्क तथा सहयोग रहता था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक माण्टेस्क्यू ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, परंतु क्रांतिकारी नेता मिरावो ने इसका विरोध किया था और वास्तव में उसका विरोध ठीक था, क्योंकि शक्ति का पृथक्कीकरण एक भारी भूल थी।

5.

राजा की अदूरदर्शिता – लुई 16वाँ एक अयोग्य शासक था। उसे समय की कोई चिंता नहीं थी । अतः वह स्वयं भी राष्ट्रीय एसेम्बली के अनुरूप नहीं बना सका। पेरिस में रहकर वह माब के प्रभाव में आ गया। लुई 16वें की सबसे बड़ी अयोग्यता यह थी कि वह न तो परिस्थितियों को भली प्रकार समझ पाता था और न ही समय के अनुसार निर्णय कर पाता था। उसके इस स्वभाव के कारण ही संविधान स्थाई न रह सका । परन्तु अपने दरबारी तथा स्वार्थी मनुष्यों के चक्कर में आकर उसने कुछ ऐसे कार्य किये जो उसके पतन के कारण बने। वह सदैव ही विदेशियों की सहायता प्राप्त करने का प्रयास करता रहा और उन्हें फ्रांस पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित करता रहा । राष्ट्रीय सभा द्वारा पास किये गये अनेक कानूनों पर हस्ताक्षर करके उसने अपने प्रति लोगों को सशंकित कर दिया। उसके उन कार्यों ने उग्रवादी सदस्यों को राजतंत्र के विरुद्ध प्रचार करने का अवसर दिया । मिरावो ने उसे माब (डव्झ) के प्रभाव से मुक्त होने का परामर्श दिया। परन्तु दुर्भाग्य से उसने ऐसा नहीं किया और जून के महीने में फ्रांस छोड़कर भाग जाने का प्रयास किया। वह अपने इस कार्य में असफल रहा

और उसे पकड़ कर पेरिस ले आया गया। 21 जून 1772 को उसे अपने पद पर कार्य करने से रोक दिया गया। इस प्रकार कार्यपालिका का अंत हो गया, जो संविधान की असफलताओं का स्पष्ट लक्षण था।

6. फ्रांसीसी सेना की पराज्य – लियोपोल्ड द्वितीय इस समय आस्ट्रिया का सम्राट था, यह महारानी एल्टोनियेट का भाई था । उसने जब राजा, रानी तथा राजकुमार के बंदी बनाये जाने का समाचार सुना तो प्रजा के शासक फ्रेडरिक विलियम्स द्वितीय के सहयोग से फ्रांस के ऊपर आक्रमण करके क्रांति को उसके शैशव काल में ही नष्ट करने और फ्रांस में पुनः लुई 16वें की राजसत्ता स्थापित करने का निश्चय किया। स्वयं लुई भी राजतंत्र की स्थापना करने का इच्छुक था और वह गुप्त रूप से इनसे सम्पर्क स्थापित किये हुए था। फ्रांस की सेना अनियंत्रित भीड़ के समान थी । स्थान–स्थान पर फ्रांसीसियों की पराज्य हुई। उनकी गुप्त से गुप्त बातों को भी राजा और उसके समर्थक आक्रमणकारियों तक पहुँचा दिया करते थे । उग्रवादियों ने इस सम्पूर्ण पराज्य का उत्तरदायित्व राज्य पर ही डाल दिया। 20 जून को एक भीड़ ने एकत्रित होकर नारे लगाये और राज प्रासाद पर ईंटों की वर्षा की तो राजा ने क्रांति के चिन्ह लाल टोपी तथा तिरंगा झंडा धारण करके महल की खिड़की से दर्शन दिये और भीड़ शांत हो गयी। इस आक्रमण की सूचना पाकर आस्ट्रिया तथा फ्रांस
की सेनाएँ राजपरिवार की सहायतार्थ ड्यूक ब्रूजबिक की अध्यक्षता में फ्रांस की ओर प्रस्थान कर गयी। फ्रांस के निकट पहुँचकर ड्यूक ने घोषणा की कि यदि सम्राट और राज परिवार के लोगों को कुछ भी क्षति पहुँचायी गयी, तो पेरिस को भस्म कर दिया जाएगा। इस घोषणा से क्रोधित होकर पेरिसवासियों ने राजभवन पर आक्रमण कर दिया और लुई 16वें ने अपनी जीवन–रक्षा के लिए व्यवस्थापिका सभा भवन की शरण ली। राजा को उसके पथ से हटा दिया गया तथा नवीन संविधान निर्माण का कार्य आरंभ हुआ और 21 सितम्बर 1792 को इस संविधान का अंत हो गया ।

मनुष्य के आधारभूत सिद्धान्तों की घोषणा तथा संविधान

फ्रांस की संविधान सभा ने इस घोषणा के अनुसार सभी मनुष्यों को समान घोषित कर दिया, परंतु इसको व्यावहारिक रूप नहीं प्रदान किया गया । मतदाताओं की सूची बनाते समय निश्चित किया गया कि मतदाता का अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाय, जो एक निश्चित धनराशि टैक्स के रूप में देते हों। इस प्रकार गरीब जनता को मतदान के अधिकार से वंचित कर दिया और मनुष्यों का समान अधिकार देने वाला सिद्धांत क्रियात्मक न हो सका। इस प्रकार के कार्य से निम्न वर्ग के प्रति अविश्वास की भावना का प्रदर्शन होता था। इसके अतिरिक्त एक बात यह थी कि अब तक सत्ता उच्चवर्गीय कुलीनों तथा पादरियों के हाथों में केन्द्रित थी, जो अब मध्यवर्गीय लोगों के हाथों में आ गयी। इससे निम्न वर्ग के लोगों को कोई लाभ नहीं हुआ और निम्न वर्ग बराबर विद्रोही बना रहा। यही कारण है कि इतिहासकारों ने इसे मध्यवर्गीय सरकार कहकर पुकारा है और इस प्रकार घोषणा का पालन नहीं हुआ। तीसरी बात यह है कि

चर्च की सारी संपत्ति छीन ली गयी तथा उसे समस्त अधिकारों से वंचित करके राज्य के अधीन कर दिया गया। साथ ही पादरियों के सिविल संविधान के अनुसार उन्हें संविधान के प्रति वफादर बनने के लिए बाध्य किया गया। वह सम्पूर्ण कार्य घोषणा पत्र के विरुद्ध थे।

निष्कर्ष – उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मनुष्यों की आधारभूत घोषणा इस संविधान की

मुख्य विशेषता थी, परंतु फिर भी अपनी उक्त कमियों के कारण वह संविधान मनुष्य के अधिकारों का प्रतिपादन नहीं

कर पाया।

प्रसिद्ध इतिहासकार हेजन के अनुसार– '' सन् 1791 ई० का संविधान फ्रांस की शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार था । परंतु इसका ठीक प्रकार पालन नहीं हुआ और अस्थायी रहा । ''

इस अपने

शून्य निर्माताओं के कारण फ्रांस में ऐसी क्रांति को जन्म दिया, जो फ्रांस के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण यूरोप के लिए समस्या बन गयी। एक इतिहासकार ने कहा है–

44

'महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय सभा जो कि स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के सिद्धांतों में विश्वास करती थी, जिसने प्रजातंत्रिक राज्य के लिए कार्य किया और इसकी रक्षा के लिए विश्व व्यापी तथा प्रजातांत्रिक उपाय किये, ने ही सैनिक अत्याचारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया तथा युद्ध के बीज बोये । ''

संविधान परिषद के विघटन के बाद 1791 ई० में व्यवसथापिका सभा का अधि विशन शुरू हुआ। इसके सदस्यों की संख्या 745 थी । व्यवस्थापिका सभा के सदस्य मुख्यतः दो दलों में विभक्त थे इनमें से एक दल राजतंत्र को कायम रखने के पक्ष में था। इसके अनुसार क्रांति का काम अब पूरा हो गया था, इसलिए फ्रांस का भला इसी में था कि वह नए संविधान को अपनाकर नए सुख का अनुभव प्राप्त करे । गणतंत्रवादी भी दो दलों में विभाजित थे, जिरोदिस्त और जैकोबिन दल । जैकोबि दल वालों की संख्या प्रारंभ में कम थी लेकिन बाद में इनकी संख्या बढ़ती गयी। इस दल का नेतृत्व राप्सपीयर कर रहा था । दाँते और मिरावो भी इस दल के प्रमुख नेता थे। यह दल बाद में चलकर इतना शक्तिशाली हो गया कि व्यवस्थापिका सभा में इसकी सदस्य संख्या बढ़कर एक सो चालीस तक पहुँच गयी। हालांकि शासन चालने के लिए यह संख्या पर्याप्त नहीं थी, फिर भी दल का प्रभाव काफी था ।

'

दूसरा दल जिरोदिस्त कहलाता था । ये लोग फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना चाहते थे। वे लोग भी परिवर्तन चाहते थे लेकिन परिवर्तन संवैधानिक तरीकों से लाना चाहते थे ।

पश्चिमी विश्व

व्यवस्थापिका सभा के दल में क्रान्ति का नेतृत्व जिरोदिस्त लोग ही कर रहे थे। साथ ही इस दल वाले युद्ध के कट्टर समर्थक भी थे। चूँकि उन्हें यह विश्वास था कि युद्ध की स्थिति में फ्रांस की रक्षा के लिए सारे देश उनके प्रति प्रबल देश–भक्ति की भावना जाग्रत होगी। इस स्थिति में जिरोदिस्तों को राष्ट्र का नेतृत्व करने का मौका मिलेगा, फिर राजसत्ता पर उनका आधिपत्य कायम होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि विदेशी युद्ध का प्रारंभ फ्रांस की आंतरिक राजनीति का एक परिणाम था। युद्ध पक्ष में होने का दूसरा दृष्टिकोण यह भी था, ये दल वाले विचार से उग्रवादी थे इसलिए पुरातन व्यवस्था का अंत चाहते थे। इस व्यवस्था के अंत के लिए युद्ध अत्यावश्यक था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन लोगों ने अपनी नीति कुशलता का परिचय दिया। अतएव व्यवस्थापिका सभा में दो प्रस्ताव रखे गये ।

1. देश से भागे हुए कुलीन एवं सामंत 1772 तक फ्रांस लौट आए अन्यथा उनकी संपत्ति जब्त
कर ली जायेगी।

2. पादरियों को यह भी निर्देश दिया गया कि एक सप्ताह के अंदर लौकिक विध
ाान के अनुसार
शपथ ग्रहण नहीं कर लेते तो उनकी जीविका तथा पेशन जब्त कर ली जायेगी।

उपरोक्त दोनों प्रस्ताव राजा के समक्ष हस्ताक्षर के लिए रखे गये, लेकिन राजा ने प्रस्तावों पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। इस तरह जिरोदिस्त ने राजतंत्र का अंत और गणतंत्र की स्थापना के लिए मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार कर लिया। लेकिन मात्र इतने से ये लोग संतुष्ट रहने वाले व्यक्ति नहीं थे अतएव राजा को स्पष्टतया विद्रोही प्रमाणित करने के लिए जिरोदिस्त दल वाले फ्रांस को दूसरे के साथ युद्ध में उलझा देना चाहते थे। इस विचारधारा का समर्थन फ्रांस के अन्य राजनीतिक दल भी करने लगे।

इस बीच फ्रांस में एक ऐसी घटना घटी जिसने फ्रांस के क्रांतिकारियों की और अधिक उग्र बना दिया। वह घटना राजा द्वारा फ्रांस से भागने का असफल प्रयास था। राजा और रानी क्रांतिकारियों द्वारा पकड़ लिए गये तथा जेल में बंद कर दिए गये। लोग उसको क्रांति का शत्रु समझने लगे। साथ ही लोगों को यह विश्वास हो गया कि फ्रांस का कल्याण राजतंत्र से संभव नहीं है।

झ

आस्ट्रिया के सम्राट लियोबोल्ड द्वितीय मेरी अन्तोनेता का भाई था । इसलिए मेरी अपनी भाई से बार–बार सहायता की माँग कर रही थी। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया इसलिए भी फ्रांसीसी क्रांति के विरुद्ध था, क्योंकि आस्ट्रिया बहुत सारी जातियों को मिलाकर एक विशाल साम्राज्य था । अतएव, आस्ट्रिया को इस बात का भय था कि यदि क्रांति की लहर उसके साम्राज्य में फैलेगी, तो उसका साम्राज्य समाप्त हो जायेगा। इन्हीं सब कारणों से आस्ट्रिया फ्रांस की क्रान्ति का दमन चाहता था। संयोग से उस समय प्रशा का राजा फ्रेडरिक विलियम मिल गया। दोनों ने मिलकर 1791 में विलनिट्ज की घोषणा की। इस घोषणा के अनुसार फ्रांस की सुव्यवसथा और राजा को सुरक्षा के लिए वे दोनों देश हरसंभव उपाय करेंगे। अब फ्रांस के क्रांतिकारियों का रुख, राजा के प्रति हिंसात्मक बन गया। इसी बीच विदेशों में भी कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिससे राजतंत्र का भविष्य खतरे में पड़ गया।

ब्रन्सविक की घोषणा ने राजा के भाग्य का फैसला ही कर दिया। पेरिस की जनता यह समझने लगी कि फ्रांस की रक्षा के लिए राजा को गद्दी से हटा देना परम आवश्यक है । अतः क्रांतिकारियों ने 10 अगस्त 1792 में राज्यप्रसाद पर आक्रमण कर दिया। राजा और रानी किसी तरह जान बचाकर भाग निकले और व्यवस्थापिका सभा में जाकर शरण ली। इस तरह फ्रांस के पुराने राजतंत्र का अंत हुआ।

दूसरे दिन व्यवस्थापिका सभा में राजा और राजतंत्र के विषय पर बहस होने लगी। एक प्रस्ताव यह रखा गया कि राजा को पदच्युत करके फ्रांस में गणतंत्र की स्थापना की जाय। लेकिन गणतंत्र की स्थापना से 1791 के संविधान का उल्लंघन हो गया था। इसलिए व्यवस्थापिका सभा ने इस जिम्मेदारी को दूसरे के कंधे पर डाल दिया। यह तय हुआ कि व्यवस्थापिका सभा का सृजन हो और यह राजतंत्र के भविष्य पर विचार करे।

नेपालियन बोनापार्ट

नेपोलियन की प्रारम्भ से ही सैनिक जीवन में रुचि थी। वह कोर्सिका के स्वतंत्रता आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुआ । नेपोलियन गणित, इतिहास तथा भूगोल में रुचि लेता था। वह 16 वर्ष की अवस्था में फ्रांसीसी सेना में द्वितीय श्रेणी का लेफ्टीनेण्ट बन गया। उसने उन विचारकों का बड़ी रुचि से अध्ययन किया था। जिन्होंने फ्रांस की पुरातन व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा प्रदान की थी । नेपालियन ने मान्टेस्क्यू, प्लेटो, प्लूटाक्र के अतिरिक्त जलियस सीजर और अपने माता–पिता से भी प्रेरणा प्रापत की थी। लेकिन सबसे अधिक वह रूसो के सामाजिक संविदा ̐(वबपंस ब्वदजतंबज) से प्रभावित हुआ था।

नेपोलियन के उदय की परिस्थितियाँ : नेपोलियन कोर्सिका की स्वतंत्रता के विषय में सोचता और लिखता था। साथ ही काफी समय कोर्सिका में ही व्यतीत करता था। उसका परिणाम यह निकला कि छूट्टियों में उसे लेफ्टीनेण्ट पद से इस्तीफा देना पड़ा। 1792 ई० में क्रांतिकाल में सैनिक प्रतिभा दिखलाने के कारण उसे पुनः यह पद मिल गया । 1795 ई० में वेण्डेमेयर के विद्रोह में

कन्वेंशन की रक्षा करके वह नित्य नई सफलताओं की ओर ग्रसर होने लगा । नेपोलियन अपने को क्रांति का पुत्र ेँवद व ि्जीम त्मअवसनजपवद) कहता था। फ्रांस में व्याप्त अराजकता और अशान्ति ने उसके उत्थान के लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं।

यूरोपीय संघों के युद्ध में उसने अदभुत सफलता और ख्याति प्राप्त की। इस काल में अर्जित सैनिक ख्याति के कारण ही क्रांति काल की अन्तिम सरकार को 1799 ई० उखाड़ फेंकने में सफल हो सका। डी. तोकेबिले ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा, यद्यपि सारे कार्य की योजना एवं उसका क्रियात्मक रूप भद्दा था, तथापि उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक बूँद भी रक्त नहीं बहाया गया । नेपालियन के उदय में निम्नलिखित परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा–

1. क्रांतिकाल में फ्रांस में उत्पन्न अव्यवस्थ, अराजकता व बेराजगारी ।
2. क्रांतिकालीन सरकार (संचालक पंचायत) का अयोग्य व अक्षम होना, संचालकों के कार्यक्रम का किसी भी प्रकार जनता को आकर्षित न कर पाना तथा नेपोलियन का पतनोन्मुख स्थिति का
लाभ उठाना।
4. नेपोलियन दृढ़ इच्छाशक्ति का स्वामी था। उसने साधारण सैनिक के रूप में कार्य करना आरम्भ
किया और प्रबल इच्छा शक्ति के कारण ही सम्राट के पद तक पहुँच गया।
5. फ्रांसीसी जनता के अन्तःकरण को समझना । वह भली–भाँति जानता था कि फ्रांस की जनता व्यवस्था और समानता की इच्छुक है, स्वतंत्रता की नही । क्रांतिकालीन सरकार व्यवस्था की समानता प्रदान करने में असमर्थ रही थी।
6. नेपोलियन की कार्यक्षमता अद्वितीय थी। वह दिन में चौदह घण्टे काम करता था, किन्तु तनिक
भी नहीं थकता था।

नेपोलियन कॉन्सल के रूप में (छंचवसमवद ॅ बवदेनस) 1799–1804

प्रथम कॉन्सल के रूप में नेपोलियन के कार्य

प्रथम कॉन्सल के रूप में नेपोलियन के सामने तीन मुख्य समस्याएँ आईं– प्रथम देश के लिये नवीन संविधान का निर्माण द्वितीय यूरोपीय राज्यों से युद्ध करना जो उसकी सफलता की कुंजी थी और तृतीय, विभिन्न सुधारों द्वारा फ्रांस को क्रांतिकारी अराजकता से छुटकारा दिलाना तथा उसे पुनर्निर्माण के पथ पर अग्रसर करना ।

संविधान का निर्माण– नवीन संविधान दिसम्बर 1799 ई० में तैयार हो गया। जनता ने उसे फरवरी 1800 ई० में स्वीकार किया। यह संविधान क्रांति का चौथा संविधान था । इससे पूर्ण 1792, 93 और 95 में संविधान बन चुके थे। नया संविध ाान एबेसिये के मुख्य सिद्धान्त शक्ति और शासन सत्ता ऊपर से आने

147
पश्चिमी विश्व
छव्जै
ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
148
चाहिये और विश्वास नीचे से पर आधारित था । संविधान में मुख्य योगदान सिये का था । इसमें नेपोलियन की इच्छाओं को पूरा किया गया।

कार्यपालिका – 1799 ई० के संविधान के अनुसार कार्यपालिका की शक्ति तीन व्यक्तियों की परिषद् को दी गयी। इन व्यक्तियों को कान्सल (ब्वदेनस) कहा गया। इनमें सभी महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्रथम कान्सल के हाथों में रही जो नेपेलियान बोनापार्ट स्वयं बना । संवैधानिक दृष्टि से कान्सल सीनेट द्वारा 10 वर्ष के लिए निर्मित की गयी । यहीं से नेपोलियन की निरंकुश सत्ता स्थापित होने लगी। अपने को शक्तिशाली बनाने की दृष्टि से प्रथम कान्सल बनते ही उसने सिये तथा ड्यको को द्वितीय और तृतीय कान्सल पर से हटा दिया। दो ऐसे व्यक्ति (केम्बसिरेस और लेवरून) कान्सल नियुक्त किये जो उसका परी तरह समर्थन करते थे।

विधायिका शक्ति– विधायिका शक्ति चार संस्थाओं– काउन्सल आफ स्टेट ट्रिब्युनेट, लेजिस्लेटिव बाडी और सीनेट को सौंपी गयी । काउन्सल ऑफ स्टेट के 30 सदस्य प्रथम कान्सल द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इस सदन का कार्य विधेयकों का प्रारूप तैयार करना था । ट्रिव्यॅनेट के 100 सदस्य काउन्सल ऑफ स्टेट द्वारा निर्मित विधेयक पर बाद–विवाद करते थे। लेजिस्लेटिव बाडी के 300 सदस्य ट्रिब्यूनेट में वाद–विवाद पर हुये विधेयक पर अपना मत देते थे। सीनेट चारों संस्थाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। उसे संविधान की रक्षा का कार्य सौंपा गया था। इसके 60 सदस्यों को, जिनकी आयु 40 वर्ष हो चुकी हो, प्रथम कान्सल आजीवन काल के लिए चुनता था। इस प्रकार संविधान में माण्टेस्क्यू के पृथक्करण का सिद्धान्त केवल प्रदर्शन था। इस संविधान में मान्तेस्क्यू के पृथक्करण का सिद्धान्त केवल प्रदर्शन था। केटेलबी ने इस सम्बन्ध में उचित ही लिखा है वास्तव में कान्सल शासन गत राजवंश की निरंकुशता की पुनर्प्रतिष्ठा थी लेकिन इसमें थोड़ा अन्तर था । यह निरंकुशता, दक्षता और जन समर्थन पर आधारित थी और इसका जन्मगत विशेषाधिकारों से सम्बन्ध नहीं था ।

विदेश नीति (द्वितीय गुट के विरुद्ध युद्ध) – संविधान निर्माण और आन्तरिक क्षेत्र के विद्रोह के दमन के तुरंत बाद नेपोलियन ने फ्रांस के शत्रु देशों के विरुद्ध अभियान जारी रखने की योजना बनायी। फ्रांसीसी क्रांति के विरोधी देशों ने एक गुट का निर्माण किया था जिसे यूरोपीय देशों का द्वितीय गुट कहा जाता था और जिसमें इंग्लैण्ड और रूप जैसे शक्तिशाली देश सम्मिलित थे।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध और लुनेविल की सन्धि – नेपोलियन का द्वितीय गुट के निर्माता आस्ट्रिया से 14 जून 1800 ई० में मेरेगो नामक स्थान पर भयानक युद्ध

हुआ । इसमें प्रारम्भ में नेपोलियन को असफलता मिली, लेकिन अन्त में वह आस्ट्रिया को पराजित करने में सफल हो गया। इस युद्ध में यद्यपि उसने भारी भूल की थी, उसने अपनी सेना को कई भागों में बाँट दिया था, लेकिन देखे के नेतृत्व में पीछे से आ रहे 6 हजार सैनिकों ने युद्ध को नेपोलियन के पक्ष में बदलने का प्रयत्न किया। इसके 6 माह पश्चात् अर्थात् 3 दिसम्बर 1800 ई० को सेनानायक मोरो ने आस्ट्रिया को होहेनालिण्डन के युद्ध में पराजित करके 9 फरवरी 1801 ई० के लुनेविल की संधि (ज्तमंजल व स्निदमअपससम) के लिये बाध्य किया। यह संधि एक प्रकार से केम्पोफोर्मिया की संधि की पुनरावृत्ति थी । लुनेविल संधि के अनुसार फ्रांस की पूर्वी सीमा राइन नदी मान ली गयी। फ्रांस के सिसलपसादन, बटेवियन, लिंगूरियन और हेल्वेटिक गणराज्यों को आस्ट्रिया ने मान्यता दे दी। बेल्जियम पर फ्रांसीसी अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

नेपल्ज और स्पेन के साथ समझौता – लुनेविल की संधि के पश्चात् नेपल्ज तथा सिसली के शासकों ने आश्वासन दिया कि वे अंग्रेजी माल से भरे जहाजों को बन्दरगाहों में नहीं आने देंगे। स्पेन ने फ्रांस को लुइसियाना को प्रदेश दे दिया ।

इंग्लैण्ड के साथ एमियाँ की संधि – नेपालियन के सामने, यूरोपीय गुट में शत्रु के रूप में, इंग्लैंड ही शेष रह गया था। नेपोलियन नील के युद्ध में इंग्लैण्ड की नाविक शक्ति का अनुभव कर चुका था। उधर इंग्लैंड नेपालियन को पराजित करने में सफल तो हो गया, लेकिन उसका राष्ट्रीय ऋण बढ़ गया। दोनों देश शान्ति चाहने लगे । नेपोलियन ने इंग्लैंड के विरुद्ध गुट बनाने की कोशिश तो की किन्तु सफल नहीं हो पाया। उसने रूप, प्रशा, स्वीडन तथा डेनमार्क को इंग्लैड के विरुद्ध गुट के रूप में संगठित करने का प्रयास किया। यदि नेपोलियन इस गुट को बनाने में सफल हो जाता तो वह इंग्लैंड के लिये खतरनाक हो सकता था। उधर, इंग्लैंड के प्रधानमंत्री पिट ने त्याग पत्र दे दिया था। नया प्रधानमंत्री एडिंगटन समझौते का इच्छुक था।

दोनों देशों में 27 मार्च 1802 ई० को एमिया की संधि (ज्तमंजल व ।उपमदे) हो गई। उस संधि के मुख्य बिन्दु थे– फ्रांस का पोप तथा नेपल्ज की रियासतों से अपनी सेनाएँ हटा लेना, फ्रांस का आयोनियन द्वीपों की स्वतंत्रता और पुर्तगाल की अखण्डता को मान लेना और फ्रांस का मिश्र को तुर्की सौंपने की बात स्वीकार लेना । इंग्लैंड ने भी फ्रेंच गणतंत्र को मान्यता दी तथा उसके जीते हुए सभी उपनिवेश (केवल लंका और ट्रिनीनाद को छोड़कर) लौटा देना स्वीकार कर लिया। इंग्लैण्ड ने सेंट जान के नाइट को माल्टा देना मान लिया । एल्बा द्वीप भी खाली रखने को राजी हो गया। इंग्लैण्ड ने स्पेन को मिनोरका का द्वीप भी खाली दिया। यह संधि एक प्रकार से दोनों देशों के युद्धों के बीच विराम – काल के रूप में प्रसिद्ध हुई। किन्तु दोनों देशों की समस्याओं का कोई स्थाई समाधान नहीं निकल पाया।

प्रथम कान्सल के रूप में आन्तरिक सुधार– क्रांतिकाल के 10 वर्षों में फ्रांस

निरन्तर युद्धों में उलझा रहा। उसके कारण चारों और अव्यवस्था, अशान्ति और अराजकता फैल गई। ऐसी स्थिति में देश का पुनर्गठन आवश्यक था । नेपालियन ने सामाजिक कल्याणकारी अनेक योजनाओं को क्रांतिकालीन सरकारों से सीखा। साथ ही इन योजनाओं ने उसकी इच्छा अर्थात् फ्रांस का सम्राट पद प्राप्त करने में पूरी–पूरी सहायता दी। आन्तरिक क्षेत्र में नेपोलियन ने अनेक उल्लेखनीय सुधार किये। एफ. मरखान ने कहा है कि 'सामाजिक और प्रशासनिक उपलब्धियों को स्थाई बनाये रखने के लिये फ्रांस की जनता 1800 ई० में राजनीतिक क्रांति तक को भूलने के लिये तैयार थी ।'

शासन व्यवस्था में परिवर्तन– नेपोलियन बोनापार्ट ने रूसों के मल्यावान सिद्धान्तों समानता और स्वतंत्रता, जो क्रांति की आधारशिला थे, में से एक को स्वीकार किया वह था समानता । किन्तु नेपोलियन किसी भी कीमत पर स्वतंत्रता की बात सोचने व मानने के लिये तैयार नहीं था। उसका कहना था, फ्रांस के लोग स्वतंत्रता के नहीं बल्कि समानता के इच्छुक हैं। उसने बूर्बोकालीन सामाजिक वर्गों को नहीं पनपने दिया । उससे बर्बोकाल की निरंकुशता का आवश्यकता से अधिक अनुसरण किया। केन्द्रीकरण के लिये 1800 ई० में एक कानून द्वारा प्रत्येक विभाग में प्रीफेक्ट, जिले में उप– प्रीफेक्ट और कम्यून में मेयर की नियुक्ति स्वयं प्रथम कान्सल करने लगा। इन अधिकारियों की नियुक्ति का मापदण्ड उनकी वफादारी और योग्यता थे। स्थानीय प्रशासन की यह योजना अनेक प्रकार से लाभदायक सिद्ध हुई । यह उल्लेखनीय है कि स्थानीय प्रशासन की यह व्यवस्था आज भी, मूल रूप में, फ्रांस में प्रचलित है।

आर्थिक नीति– बर्बी के समय में ही फ्रांस वित्तीय दृष्टि से कमजोर हो गया था । क्रान्तिकालीन अस्थिरता व युद्धों ने अर्थव्यवस्था को और अधिक छिन्न–भिन्न कर दिया। यद्यपि क्रांति कालीन सरकारो ने नवीन आर्थिक योजनाओं के द्वारा राष्ट्र को ऋणग्रस्तता से उपर उठाने की कोशिश की, लेकिन क्रांति के हिंसात्मक रूप के कारण रचनात्मक कार्यों पर बल नहीं दिया जा सका । नेपोलियन ने आर्थिक संकट से निपटने के लिये अनेक उपाय किये। 1800 ई० में बैंक आफ फ्रांस (ठंदा वथ्फ्तंदबम) की स्थापना की। इससे देश की प्रतिष्ठा बढ़ी। इस बैंक को नोट छापने का अधिकार भी दिया गया। राजस्व और करों की उगाहीकेन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में कर दी। यह मूल योजना गोदें (ळंनकपंद) की थी । करों के केन्द्रीय नियंत्रण से भ्रष्टाचार को समाप्त कर दिया गया। करों को व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के आधार पर लगाया जाने लगा। किन्तु नेपोलियन ने एडम स्मिथ जैसे अर्थशास्त्रियों के मुक्त व्यापार के सिद्धान्त को नहीं अपनाया। वह राज्य के हस्तक्षेप की व्यवस्था का समर्थक बना रहा। फ्रांस के व्यापारियों को नेपालियन का हसतक्षेप अखरता था।

नेपोलियन ने एक निधि 'डोमन एक्स्ट्रा आर्डिनेयर' (क्वउंपदम म्•जतं व्तकपदंपतम) की स्थापना की, जिसमें धन विजित प्रदेशों से आता था । यह धन वह सेनापतियों पर, कुशलतापर्वक कार्य करने वालों पर तथा युद्धों पर खर्च करता था । नेपोलियन राष्ट्रीय ऋण के बढ़ाये जाने के पक्ष में नहीं था। उसने विदेशों

से कर्ज नहीं लिया। उससे फ्रांस का राष्ट्रीय ऋण काफी कम हो गया । नेपोलियन ने औद्योगिक विकास

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसा-प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

149

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसा-प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

150

के प्रयत्न किये लेकिन ऊनी और लोहा उद्योग को ही सफलता मिली। कुछ भी हो कान्सल के शासन में देश की अर्थव्यवस्था में स्थायित्व आया। लेकिन अन्तिम वर्षों में यह व्यवस्था डगमगा गई।

धार्मिक नीति– क्रांति से पूर्व शासन में चर्च का अत्यधिक हस्तक्षेप था। क्रांतिकालीन सरकारों ने चर्च की शक्ति काफी कम कर दी। राष्ट्रीय सभा द्वारा पारित लौकिक विधान की शपथ अनेक पादरियों ने लेने से इंकार कर दिया और इस प्रकार चर्च को नियंत्रित करने में संघर्ष की स्थिति पैदा हो गयी । नेपोलियन इस बात से सावधान था। एक बार उसने बोनी से, जो सीनेट का सदस् था, कहा– फ्रांस को एक धर्म की आकांक्षा है। लेकिन वह इस धर्म को राज्य के नियंत्रण में रखना चाहता था । नियंत्रण की महत्ता उसके इन शब्दों से प्रकट हो जाती है, बिना नियंत्रण शासन करना असम्भव है।

इस दृष्टिकोण को लेकर नेपोलियन ने 16 नवम्बर 1801 ई० को पोप पायस सातवें से समझौता कर लिया, जिसे कानकारडेड (ब्वदबवतकंज) कहा गया। इस समझौते के अनुसार–

1. कैथोलिक धर्म को फ्रांस की बहुसंख्यक जनता का धर्म स्वीकार किया गया।

2. पादरियों और बिशपों को सरकार की ओर से वेतन मिलने की बात रखी गई।

तं

3.

धार्मिक अधिकारियों ने भी राज्य के प्रति शपथ लेना स्वीकार कर लिया।

4. पोप ने यह भी स्वीकार किया, क्रांतिकाल में चर्च की जो सम्पत्ति जब्त की गई थी वह वापस

लेने की बात नहीं की जायेगी।

5. पोप ने नयी व्यवस्था के अनुसार विशपों की नियुक्ति प्रथम कान्सल द्वारा होना मान लिया।

फ्रांस के सभी मनुष्यों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी ।

6.

इस समझौते पर राज्य परिषद् ट्रिब्यूनेट व सेनापतियों ने आपत्ति की थी। यह ठीक है कि नेपोलियन कानकारडेट द्वारा धार्मिक झगड़ों की समाप्ति में काफी

सीमा तक सफल हो गया, लेकिन उन्हें पूरी तरह हल नहीं कर पाया। वास्तव में धर्म के प्रयोग वह अपने निरंकुश तंत्र के लिये करना चाहता था। एक बार उसने कहा था, लोग कहेंगे कि मैं पोपवादी हूँ। मैं भी तो मुसलमान था, मैं यहाँ जनता की भलाई के लिये कैथोलिक हो जाऊँगा । कैटलबी ने नेपोलियन के कानकोरडेट के विषय में ही कहा है आध्यात्मिक या दार्शनिक विचारों के क्षेत्र में नेपोलियन साधन, राष्ट्र की कल्पना को अनाकृष्ट करने वाला केन्द्र सामाजिक सीमेंट और मात्र अभयदान था ।

कानूनी सुधार या नेपोलियन का विधि–विधान – फ्रांस में क्रांति से पर्व कानूनी क्षेत्र में कोई व्यवस्था नहीं थी । कानूनी समानता की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । क्रांतिकाली में कानूनी व्यवस्था को सुसंगठित करने का प्रयत्न किया गया। लेकिन वह पूरा नहीं हो सका । नेपोलियन ने एक ओर तो समानता के महत्व को समझते हुए और दूसरी ओर क्रांतिकालीन कानूनी संहिताओं के अध ययन के पश्चात् देश के लिये अधिक उपयोगी संहिता तैयार करने का कार्य चार विशेषज्ञों को सौंपा। यह कमीशन 1800 ई० नियुक्त किया गया। कमीशन द्वारा तैयार किये गये, सिविल कोड के प्रारूप को नेपोलियन ने काउन्सल आफ स्टेट को चर्चा और संशोधन की दृष्टि से सौंपा। इस संस्था ने अनेक बैठकों के पश्चात् जिनमें से कुछ में नेपालियन ने भी भाग लिया था। 1804 ई० में विधि संहिता तैयार की। यह संहिता कोड नेपालियन (ब्पअपस ब्वकम व ि ब्वकम छमचवसमवद) के नाम से प्रसिद्ध हुई । नेपालियन की विधि संहिता पर रोमन कानूनों का प्रभाव अधिक था।

यद्यपि इस संहिता में राष्ट्रीय सभा द्वारा पारित मानवाधिकारों को मान्यता दी गई लेकिन 1793 ई० के प्रजातंत्रीय सिद्धान्त को नहीं माना गया । सम्पत्ति का पुत्रों में बराबर बँटवारा। व्यावसायिक व धार्मिक स्वतंत्रता की व्यवस्था की गयी । सामन्तों के विशेषाधिकारों का अन्त किया गया । सामन्त प्रथा पर भी अंकुश लगाया गया। विवाह व तलाक सम्बन्धी नियम सुगम बनाये गये ।

यह विधि – संहिता व्यावहारिक अनुभव पर आधारित थी। इसमें जहाँ समानता पर अधिक बल दिया गया, वहाँ स्वतंत्रता को नियन्त्रित भी किया गया। कुछ भी हो नेपोलियन की यह महान उपलब्धि थी द्य फिशर

ने नेपोलियन की संहिता का मूल्यांकन संतुलित शब्दों में करते हुए कहा – विधि ा संहिता चाहे कितनी भी अपूर्ण मानी जाये लेकिन न होने से तो अच्छी है और यदि उस कार्य को तब परा न किया जाता तो आज का फ्रांस बिना संहिता के रह जाता । नेपोलियन का स्वयं का कथन देखिये, मेरा वास्तविक गौरव मेरी 40 युद्धों की विजयों में नहीं है, मेरी विधि – संहिता ही ऐसी है जो कभी नहीं मिट सकेगी और जो चिरस्थायी सिद्ध होगी। विधि संहिता फ्रांस के आधुनिक कानूनों का स्रोत है ही, साथ ही दुनिया के दूसरे देशों बेल्जियम, हालैंड, स्विटजरलैंड, इटली, और जर्मनी के कानूनों के निर्माण में भी इससे मार्ग–दर्शन प्राप्त हुआ है । जापान, मिश्र, रूमानिया तथा केनेडा के संविधान भी नेपोलियन की विधि ा–व्यवस्था से प्रभावित हुए। इस प्रकार से वह दुनिया की महत्वपर्ण कानूनी

संहिता मानी जा सकती है। यह भी मानना पड़ेगा कि इस विधि संहिता में न तो स्त्री – स्वतंत्रता की और न ही औपनिवेशिक दासों की स्वतंत्रता को महत्व दिया गया।

शिक्षा नीति – नेपालियन शिक्षा के महत्व को भली–भाँति जानता था । उसने राष्ट्रीय नीति तैयार की जिसका उद्देश्य वफादार नागरिकों का निर्माण था। थामसन ने नेपोलियन के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है वह शिक्षा को शिक्षा के लिये नहीं, बल्कि राष्ट्र के लिये काम में लाना चाहता था द्य सुव्यवस्थित शिक्षा के लिए अनेक संस्थान खोले गये। प्रारम्भिक शिक्षा चर्च को सौंप दी गई। माध्यमिक स्कूलों में विज्ञान और गणित पर बल दिया गया। इसके लिये मुख्य नगरों में लीसे महाविद्यालय खोले गये। ये स्कूल सैनिक ढंग से अर्थात् सुनिश्चित सिद्धान्तों पर चलाये जाते थे। 1808 ई० में इम्पीरियल विश्वविद्यालय (प्उचमतपंस न्दपअमतेपजल) की स्थापना की गई। इस विश्वविद्यालय के स्नातकों को ही शिक्षा प्रदान करने का अधिकार दिया गया। स्कल भी विश्वविद्यालय की अनुमति से ही खुल सकते थे। नेपोलियन ने इंजीनियरों के लिये एकोल पालीटेक्निक तथा पैदल सेना के लिये सेंटसीर आफिसर्स स्कूल खोले । छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने की व्यवस्था दी गई।

लेकिन नेपोलियन तर्कशक्ति के उत्पन्न किये जाने के पक्ष में नहीं था। उसने स्त्री–शिक्षा की व्यवस्था नहीं की। जो व्यवस्था की भी तो वह धार्मिक संस्थाओं के अधिकार में छोड़ दी गई । नेपोलियन ने स्त्री–शिक्षा के प्रसंग में कहा था, हम शिक्षा इस उद्देश्य से नहीं दे रहे कि कन्याएँ सोच सकें, बल्कि इस उद्देश्य से कि वे राज्य द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों में विश्वास व आस्था प्रकट करें। नेपोलियन ने पुस्तकों व समाचार–पत्रों के प्रकाशन पर भी नियंत्रण लगा दिया। इस प्रकार नेपोलियन की शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य अपने आदेशों को पूरा करना और लोगों में नैतिकता उत्पन्न करना मात्र था ।

लीजियन आफ आनर की स्थापना– जनसाधारण व राष्ट्र के विभिन्न पदाधिकारियों में राष्ट्र के प्रति सेवा–भाव को जागृत करने के लिये लीजियन आफ आनर (स्महपवद वभ्विदवत) नामक संस्था स्थापित की गई। सैनिक व असैनिक क्षेत्र में विशिष्ट कार्य करने वाले व्यक्तियों को इस संस्था का सदस्य बनाया जाता था। नेपोलियन की व्यवस्था उसके समानता के सिद्धान्त के विरुद्ध थी। किंतु संस्था जीवित रही । नेपालियन ने फ्रांस के नागरिकों को विशिष्ट उपाधियाँ प्रदान करने के विषय में कहा था, फ्रांसीसी केवल एक ही भावना (सम्मान या प्रेम) से बहुत ज्यादा प्रभावित होते है । यह नये प्रकार का धन है जिसका मूल्य चालू मुद्रा से भिन्न है। अक्षत भी है।

सार्वजनिक निर्माण कार्य एवं कला–प्रेम– नेपोलियन ने लगभग 229 लम्बी चौड़ाई सड़कों का निर्माण किया। इनमें से 30 महत्वपूर्ण सड़कें पेरिस को फ्रांस के दूरस्थ भागों से जोड़ती थीं। अनेक उपयोगी पुलों का निर्माण भी सम्राट ने किया। राजकीय भवनों को सँवारा गया। नये महलों का निर्माण भी सम्राट ने कराया। उसने अपनी पत्नी जोसेफिन के लिये मालमेजो नामक छोटा सा सुन्दर

महल बनवाया। यह महल पेरिस से कुछ ही दूर स्थित था। चेरबर्ग और टूलों के बन्दरगाहों को सुदृढ़ किया गया। अनेक स्मारक व भवन बनाये गये । यातायात के साधनों का विकास किया गया । अनाथ लोगों के लिये आवास की व्यवस्था की गयी । नेपोलियन को कला से प्रेम था। उसने अनेक निर्माण कार्य हाथ में लिये। उसका कहना था हमारी इच्छा है कि पेरिस संसार की सबसे मनोरम और सुन्दर राजधानी बन जाये । वह इटली से
बहुत सी कलाकृतियाँ पेरिस सजाने के लिए लाया । उसके काल में पेरिस की जनसंख्या दोगुनी हो गयी और वह यूरोप की सुन्दर नगरी के रूप में उभरने लगा। उसने अनेक थिएटर, म्यूजिम आदि का

–

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

151

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

152

निर्माण भी किया। ये थिएटर और संग्रहालय वास्तव में संस्कृति को सुरक्षित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए । उसके काल में जनता – पुस्कालय भी खोले गये । उसने साहित्य को भी विकसित करने का प्रयत्न किया। फ्रांस में इस समय शतोब्रिश और मेटेम डी स्टेल नामक साहित्यकार हुये लेकिन ये दोनों नेपोलियन के विरुद्ध थे। किन्तु फ्रांस में साहित्य का अधिक विकास इसलिए नहीं हुआ क्योंकि नेपोलियन ने इसे नियंत्रित रखा।

नेपोलियन का सम्राट बनना – (छंचवसमवद े म्उचमतवत) नेपोलियन के कार्यों का जादू फैलने लगा। उसका लाभ उठाते हुये उसने 10 मई 1802 ई० को काउन्सल आफ स्टेट द्वारा अपने को आजीवन काल के लिए प्रथम कान्सल घोषित करवा दिया। लेकिन इससे भी उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। 1804 ई० में राजतंत्रवादियों ने उसके विरुद्ध हत्या का षडयन्त्र रचा, किन्तु वह विफल हो गया। 8 मई 1804 ई को सीनेट द्वारा नेपोलियन फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया गया। इस निर्णय को जनमत का समर्थन भी प्राप्त हो गया। 2 सितम्बर 1804 ई० को पेरिस में नात्रेडोम के गिरजाघर में बड़ी धूमधाम से नेपालियन का राज्याभिषेक हुआ। नेपोलियन ने स्वयं ही मुकुट पहन लिया। (जबकि रोम का पोप इस परम्परा को पूरा करने के लिये बैठा हुआ था ।) नेपोलियन ने राजशक्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में ठीक ही कहा था– ''मुझे फ्रांस का राजमुकुट धरती पर पड़ा मिला और तलवार की नोक से मैंने उसे उठा लिया । ''

नेपोलियन के साम्राज्य – विस्तार और यूरोपीय प्रभुता के लिए प्रयत्न– नेपालियन फ्रांस का सम्राट बनकर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, वह समस्त विश्व को

जीतने की योजना बनाने लगा । फलस्वरूप उसका शासन–काल 1804 से 1814 ई० का समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ । नेपोलियन की विश्व – विजय की योजना में बाधा उत्पन्न करने वाला मुख्य देश इंग्लैंड था । इग्लैंड की सामुद्रिक शक्ति का लोहा सभी मानते थे । यद्यपि इंग्लैंड और फ्रांस के बीच एमियाँ की संधि (मार्च 1802) द्वारा शान्ति स्थापित हो चुकी थी, लेकिन यह संधि खोखली सिद्ध हुई। यह मात्र अल्पकालीन विराम सिद्ध हुई। दोनों ही देश ने इस संधि का पालन नहीं किया । नेपालियन ने पीडमान्ट पार्मा और एल्बा को अपने नियंत्रण में कर लिया। इंग्लैण्ड ने भी माल्टा वापस नहीं किया। दोनों में मई 1803 ई० में फिर से युद्ध आरम्भ हो गया । नेपोलियन का कहना था, यदि हम छः घण्टों के लिए इंग्लिश चौनल पर अधिकार कर लें तो इंग्लैंड का नामो–निशान मिट जायेगा। किन्तु नेपालियन का यह विचार व्यर्थ था । उसने विस्तृत सैनिक तैयारी तो की, लेकिन उसकी सामुद्रिक शक्ति इंग्लैंड की तुलना में कम थी।

फ्रांस के विरुद्ध तीसरे गुट का निर्माण– इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री पिट 1805 ई० फ्रांस के विरुद्ध यूरोपीय देशों के तृतीय गुट के निर्माण में सफल हो गया । इस गुट में इंग्लैंड के साथ आस्ट्रिया और रूस सम्मिलित हुये। प्रशा ने तटस्थ रहने का निर्णय किया। स्वीडन और नेपल्स आदि भी इस गुट में सम्मिलित हुये । नेपालियन ने इन देशों में व्याप्त पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष का पूरा–पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। वह इनमें फुट पैदा करना चाहता था ।

ट्रेफाल्गार का युद्ध (ठंजजसज व्ीित्तंसिहंत) वेस्टइण्डीज के टापुओं पर आक्रमण करके, नेपोलियन, इंग्लैंड को धोखे में रखते हुये, लंदन पर आक्रमण करना चाहता था। लेकिन प्रसिद्ध अंग्रेज जलसेना – नायक नेलसन ने 21 अक्टूबर 1805 को ट्रेफाल्गार के युद्ध में फ्रैंच और स्पेनिश सेना को पराजित कर दिया। युद्ध में नेलसन का नाम बदलकर ग्रेण्ड आर्मी (ळतंदक ।तउल) रखा । उसकी सेना में पोल, जर्मन तथा इटालियन अर्थात् विजित देशों के सैनिक थे।

44

आस्ट्रिया पर आक्रमण – (आस्टरलिट्स का युद्ध) – नेपोलियन ने तीसरी बार आस्ट्रिया पर आक्रमण किया। उसने 20 अक्टूबर 1805 ई० को उल्म के युद्ध में आस्ट्रिया को बुरी तरह पराजित किया। इस आधार पर नेपोलियन ने अपनी पत्नी जोजेफाइन को लिखा– " जिस काम को मैंने आरम्भ किया था वह पूरा हो गया । आस्ट्रिया की सेना को मैंने चलते–चलते नष्ट कर दिया है। '' केवल आस्ट्रियन सेना को नहीं बल्कि 2 दिसम्बर 1805 ई० को नेपोलियन ने आस्ट्रिया और रूस की सेनाओं के आसटरलिट्स में पराजित किया । नेपोलियन ने अपने सैनिकों को उत्साहित करते हुए कहा, योद्धाओं मैं तुमसे संतुष्ट हैं। आस्टरलिट्स के युद्ध में मैंने तुमसे जो आशाए लगाई थी वे तुमने पूरी कर दी है। अपने ध्वज को तुमने अमर विजय से विभूषित किया है।

आस्ट्रिया ने फ्रांस के साथ 26 दिसम्बर 1805 ई० को प्रेसवर्ग की संधि (ज्तमंज व्ीित्तमेइनतह) कर ली और वह तीसरे गुट से निकल आया । इस संधि के

अनुसार आस्ट्रिया कमजोर हो गया। वेनेशिया और डाल्मेशिया इटली को मिल गये। टाइरोल और सवीबिया का कुछ भाग बवेरिया और डाल्मेशिया इटली को मिल गये । बवेरिया और बटैम्बर्ग को स्वतंत्र राज्यों का दर्जा दिया गया। बेडन को ग्रेनन्ड डची बनाया गया। नेपोलियन ने 12 जुलाई 1806 ई० को जर्मनी के सोलह राज्यों का एक संघ बना दिया जिसका नाम राइन राज्य संघ रखा गया। पवित्र रोमन साम्राज्य को समाप्त कर दिया गया। प्रेसबर्ग सन्धि नेपालियन की महान विजय थी। आस्टरलिट्स के बाद पिट ने कहा था, यूरोप के मानचित्र को बन्द कर दो। इसकी दस वर्ष तक आवश्यकता नहीं होगी।

प्रशा के साथ युद्ध – प्रशा का सम्राट फ्रेडरिक विलियम तृतीय गुट में सम्मिलित नहीं हुआ। जब नेपोलियन ने उससे हेनोवर देने और उत्तरी जर्मनी का सम्राट बना देने की बात की तो वह उसका प्रलोभन में आ गया और नेपोलियन से संधि ा कर ली। लेकिन जब नेपोलियन ने अपने वचन को पूरा नहीं किया तो प्रशा ने सेनापति ड्यूक आफ ब्रुन्सविक के नेतृत्व में नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 14 अक्टबर 1806 ई० के इस युद्ध में प्रशा पराजित हुआ। ब्रुन्सविक की मृत्यु हो गई। 25 अक्टूबर 1806 ई० को नेपोलियन ने प्रशा की राजधानी बर्लिन में प्रवेश किया। वहाँ 21 नवम्बर 1806 को बर्लिन आदेश जारी किया गया जिसका उद्देश्य इंग्लैण्ड के आयातित माल पर प्रतिबंध लगाना था ।

रूस के साथ युद्ध – नेपोलियन रूस को भी पराजित करने के लिये बढ़ा। 8 फरवरी 1807 ई० को आईला (म्लसंन) की लड़ाई में फ्रांस और रूसी सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ । किन्तु रूसी सेनापति बेनिंगसेन को नेपोलियन नहीं पकड़ पाया। नेपालियन के काफी सैनिक युद्ध में मारे गये। नेपोलियन बहुत चिंतित हुआ। लेकिन 14 जून 1807 ई० वह फ्रीडलैंड के यु. में रूस को पराजित करने में सफल हो गया। रूस के जार एलेक्जेन्डर को नेपोलियन ने संधि के लिए राजी कर लिया। दोनों में 8 जुलाई, 1807 ई० को टिलसिट की संधि हुई ।

टलसिट की संधि (ज्तमंजल व ज्पसेपज) – संधि की धाराओं को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग में वे व्यवस्थाएँ रखी गयीं, जो भावी पश्चिमी तथा मध्य यूरोप से सम्बन्धित थीं । ये व्यवस्थाएँ । गुप्त रखी गईं।

1.

2

3.

4.

रूस ने नेपोलियन को यह आश्वासन दिया कि वह इंग्लैण्ड और फ्रांस के बीच समझौते का प्रयत्न करेगा और यदि इंग्लैड नहीं मानेगा तो रूस, इंग्लैंड के विरुद्ध नेपोलियन द्वारा चलाये गये व्यापारिक युद्ध में सहयोग देगा ।

अपने स्वार्थ की दृष्टि से यूरोप दो भागों में बांट लिया गया, अर्थात नेपोलियन

के प्रभाव वाला पश्चिली व मध्य यूरोप और रूसी प्रभाव वाला टर्की तथा स्वीडन का पूर्वी यूरोप ।

लेकिन फ्रांसीसी सम्राट ने पूर्वी यूरोप पर अधिकार नहीं छोड़ा। उसने कहा मैं उस समय तक अधिपति नहीं हो सकता जब तक कुस्तुन्तुनिया की संधि पर हस्ताक्षर नहीं कर लेता और

रूप ने आयोनियन द्वीपों पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया और नेपोलियन ने रूस को बदले में प्रशियन पोलैण्ड पर अधिकार कर लेने की अनुमति दे दी।

सन्धि के दूसरे भाग में प्रशा से संबंधित शर्तें लीं। प्रशा को अनेक भागों से वंचित करके दण्डित किया गया। प्रशा के पश्चिमी प्रान्तों का वेस्टफेलिया नामक राज्य बनाया गया । यह उसने अपने छोटे भाई जेरोम बोनापार्ट की अधीनता में कर दिया । पूर्वी प्रान्तों के अधिकतर भाग डची आफ वारसा नामक राज्य को दे दिये गये और यह राज्य सैक्सोनी के राजा को मिला। प्रशा को बहुत धनराशि क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी।

टिलसिट की संधि के समय नेपोलियन उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर था । इंग्लैण्ड को छोड़कर सभी देश नेपोलियन के प्रभाव में आ गये थे। ग्राण्ट और टैम्परले ने ठीक ही कहा है यदि उसकी उसी वर्ष मृत्यु हो जाती तो उसके जीवन की सफलताएँ यूरोप के और सम्भवतः संसार के सैनिक इतिहास में

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ञै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

153

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ञै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

154

अद्वितीय होतीं । हेजन ने भी संधि को नेपोलियन की महान उपलब्धि बतलाते हुये कहा है– '' नेपोलियन की यह महान राजनीतिक विजय थी। इससे यूरोप की पहले से चली आ रही राजनीतिक व्यवस्था में आमल – चल परिवर्तन हो गया । ''

वास्तव में टिलसिट की संधि के समय नेपोलियन का साम्राज्य विस्तृत ही नहीं बल्कि गौरवपूर्ण भी था । उसने 1787 ई० में संचालक पंचायत के समय में इटली के विभिन्न राज्यों को पराजित करके सिसलपाइन गणतंत्र की स्थापना की थी। इस प्रकार जर्मनी के विभिन्न राज्यों को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया था। (जर्मनी में केवल उसने प्रशा का स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखा था।) यह ठीक है कि इटली में नेपोलियन ने 1805 ई० में अपने सौतेले पुत्र को शासक घोषित किया, जिससे इटालवी लोगों को अत्यधिक अप्रसन्नता हुई, लेकिन नेपोलियन के अभियान से इटली को लाभ भी हुआ। उसने इटली से आस्ट्रिया

की सत्ता को और चर्च के राज्यों की स्वतंत्रता को एक साथ समाप्त कर दिया । नेपोलियन द्वारा स्थापित एकता से इटली के एकीकरण में महत्वपूर्ण सहयोग मिला। वहाँ राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। यद्यपि नेपोलियन का उद्देश्य इटली में राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करना नहीं था, लेकिन जब उसने वहाँ की प्राचीन परम्पराओं पर प्रहार किया और साथ ही सम्पूर्ण प्रदेश में व्याप्त विभिन्नता समाप्त की तो राष्ट्रीय भावनाओं का तेजी से बढ़ना और फैलना स्वाभाविक था । उसका श्रेय अप्रत्यक्ष रूप से नेपोलियन को ही मिला।
महाद्वीपीय व्यवस्था (ब्वदजपदमदजंस ैलेजमउ)
यहाँ पर एक मौलिक प्रश्न बार–बार उभरकर आता है। वह यह है कि नेपोलियन ने टिलसिट संधि के पश्चात्
सैनिक अभियानों को क्यों नहीं छोड़ा ? इसका उत्तर स्पष्ट है। एक तो नेपोलियन का अस्तित्व सैनिक विजयों पर आधारित था (यदि वह शान्ति की नीति का अनुसरण करता तो महत्वहीन सिद्ध हो सकता था) दूसरे, यूरोपीय राष्ट्रों के मन में अभी भी नेपोलियन के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना विद्यमान थी। टिलसिट की संधि के पश्चात् नेपोलियन के सामने एक शत्रु शेष था। वह था इंग्लैंड । नेपोलियन ने 1805 ई० के ट्रेफालगर के युद्ध में अनुभव कर लिया था कि इंग्लैण्ड को समुद्र पर पराजित करना टेढ़ी खीर है। अतः जार्ज रूडे के अनुसार नेपोलियन ने कहा मैं स्थल शक्ति द्वारा समुद्र पर विजय प्राप्त करूँगा इसके लिए नेपोलियन ने महाद्वीपीय व्यवस्था को लागू किया। इस व्यवस्था का उद्देश्य दूसरे देशों से व्यापारिक सम्बन्धों को समाप्त करके इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था को छिन्न–भिन्न कराना था । नेपोलियन ने ठीक ही सोचा था कि इंग्लैण्ड की शक्ति का मूलाधार उसकी व्यापारिक अर्थव्यवस्था है। यदि उद्योगों में बने माल का निर्यात न करने दिया जाय तो इंग्लैंड में उद्योग–धंधे चौपट हो जायेंगे और उसके व्यापार का गला घुट जायेगा। इंग्लैण्ड में अव्यवस्था व अराजकता फैल जायेगी । इंग्लैंड विवश होकर फ्रांस के पैरों में गिर जायेगा । माण्ट गेलार्ड ने ठीक ही कहा था, इंग्लैंड पर व्यापार के माध्यम से आक्रमण करना चाहिये । उसे एशिया अमेरिका और यूरोप में धन अर्जित करने के लिये स्वतंत्र छोड़ने का अर्थ है– संघर्षों तथा युद्धों को अनन्त काल तक चलाये रखना। ब्रिटेन के व्यापार को नष्ट करना उसके हृदय पर चोट करना है। हेज ने महाद्वीपीय व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए कहा है, महाद्वीपीय व्यवस्था का अभिप्राय सामान्यतया उस विशिष्ट और विचित्र योजना से है जिसके कारण इंग्लैंड और नेपोलियन युद्धरत हो गये। यह नेपोलियन का इंग्लैंड के विरुद्ध आर्थिक युद्ध (म्बवदवउपब ूंतिम) कहा जा सकता है। नेपोलियन का इंग्लैंड से यह व्यापारिक युद्ध निम्न दृष्टि का फल था–

1.

2.

नेपोलियन का यह दृढ़ विश्वास था कि इंग्लैंड की समृद्धि उसके व्यापार पर टिकी हुई है ओर महाद्वीपीय राज्यों में उसके माल को न पहुँचने देने का अर्थ

होगा, इंग्लैंड को गरीब बनाकर जीर्ण–शीर्ण कर देना।
नेपोलियन महाद्वीपीय राज्यों को व्यापारिक शोषण से छुटकारा दिलाकर स्वयं उनकी प्रशंसा का पात्र बनना चाहता था। उनका नेतृत्व करने का इच्छुक था। सीने ने भी इस विचार की पुष्टि की है।
3. नेपोलियन का विचार था कि इंग्लैण्ड व्यापारिक देश है । (छंजपवद वि ीवचाममचमते) । ब्रिटिश
व्यापार के बहिष्कार के कारण वहाँ पर भुखमरी फैल जायेगी। लेकिन नेपोलियन बात को पूरी तरह नहीं समझ सका । जब फसल के खराब करने पर इंग्लैंड में क्रांति की स्थिति पैदा होने लगी तो नेपोलियन ने (1810 ई० में) गेंहूँ भेजने की अनुमति दे दी। यह निःसंदेह उसके लिए घातक सिद्ध हुआ ।
योजना का आरम्भ – नेपोलियन ने नाकेबन्दी 21 नवम्बर 1806 ई० के बर्लिन आदेश (ठमतसपद क्मबतमम) से आरम्भ की । इसके द्वारा ब्रिटिश द्वीपसमह से फ्रांस ने अपने और अपने प्रभाव के देशों के साथ व्यापारिक सम्बंधों को समाप्त करने की घोषणा की। इंग्लैंड ने बर्लिन आदेश का जवाब 7 फरवरी 1807 के आर्डर्स इन काउन्सिल (व्तकमते–पद ब्वनदबपस) के द्वारा दिया। इस घोषणा के द्वारा इंग्लैण्ड ने फ्रांस एवं उसके उपनिवेशों से व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त कर दिये । तटस्थ देशों के साथ सख्ती की गई। उनके जहाजों को ब्रिटिश बन्दरगाहों से व्यापारिक लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया।
नेपोलियन ने इंग्लैण्ड के आर्डर्स इन काउन्सिल का प्रत्युत्तर जनवरी 1807 के वार्सा आदेश ॅंतें क्मबतमम) दिसम्बर 1807 के मिलान आदेश (डपसंद क्मबतमम) और अक्टूबर 1810 ई० के फोंटेनब्लों आदेश (थ्वदजपंपदमइसमंन क्मबतमम) द्वारा दिया । इन सब आदेशों द्वारा अंग्रेजी माल का बहिष्कार किया गया । तटस्थ देशों को चेतावनी दी गई कि यदि उनके जहाज ब्रिटिश माल लायेंगे तो उन्हें जब्त कर लिया जायेगा।
महाद्वीपीय व्यवस्था को सफल बनाने के प्रयत्न – नेपोलियन ने इंग्लैंड की स्वर्ण निधि को अर्थात् उसके व्यापार को समाप्त करने के लिए 1806 ई० से लेकर 1814 तक लगातार संघर्ष किया। रूस 1807 ई० को टिलसिट संधि के अनुसार नेपोलियन के साथ खड़ा रहा, लेकिन 1812 ई० में रूस के सम्राट ने महाद्वीपीय व्यवस्था में सहयोग देने से इनकार कर दिया। आस्ट्रेलिया को नेपोलियन कई बार पराजित कर चुका था, प्रशा को भी उसने हटाया था। अतः इन दोनों देशों ने आर्थिक युद्ध की नीति को मान लिया नेपोलियन के विस्तृत साम्राज्य अर्थात् फ्रांस और उसके अधीनस्थ साम्राज्य जैसे राइन संघ, वार्सा की डची और वेस्टफेलिया में इंग्लैंड से व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ने के आदेश तुरन्त लागू कर दिये गये । पोप ने इस व्यवस्था में भाग लेने से मना कर दिया। लेकिन नेपोलियन ने 1810 ई० में पोप को बन्दी बना लिया। रोम में भी आर्थिक युद्ध की नीति लागू कर दी गई। पुर्तगाल के इंग्लैण्ड से अच्छे सम्बन्ध थे। अतः प्रिंस जान ने नेपोलियन की व्यवस्था को नहीं माना, लेकिन दिसम्बर 1807 ई० में नेपोलियन ने पुर्तगाल पर अधिकार करके वहाँ भी महाद्वीपीय व्यवस्था को लागू कर दिया।

बनाकर आर्थिक नाकेबन्दी चतुर्दिक लागू कर दी ।

महाद्वीपीय व्यवस्था के प्रभाव : इंग्लैण्ड पर प्रभाव – महाद्वीपीय व्यवस्था का इंग्लैण्ड पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा। माल के अत्यधिक उत्पादन के कारण व्यापारी व उद्योगपति घबरा गये । इंग्लैण्ड में बेरोजगारी बढ़ गयी। फसल बुरी होने के कारण दूसरे देशों से माल न पहुँचने के कारण इंग्लैण्ड में भुखमरी की स्थिति पैदा हो गयी किंतु ऐसे समय में नेपोलियन इंग्लैण्ड को गेहूँ की सप्लाई रोक देता तो शायद वह इंग्लैण्ड को झुकाने में सफल हो जाता।

फ्रांस पर आर्थिक प्रभाव – फ्रांस पर भी महाद्वीपीय व्यवस्था का बुरा प्रभाव पड़ा। वहाँ पर चाय, काफी, तम्बाकू चीनी व कपड़े की कमी हो गई। वे चोरी से आने लगीं । भ्रष्टाचार फैलने लगा। स्वयं नेपोलियन को सेना के लिये 50,000 ओवर कोट इंग्लैण्ड से खरीदने पड़े।

नेपोलियन के युद्धों के दुष्परिणाम – महाद्वीपीय व्यवस्था सफल बनाने के लिए नेपोलियन को अनेक देशों से युद्ध करना पड़ा। उसने स्पेन को मात्र इसी उद्देश्य से पराजित किया। लेकिन स्पेन की पराज्य नेपालियन को महँगी पड़ी। स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो चुकी थी । उसके सामने नेपोलियन की शक्ति हल्की सिद्ध हुई।

नेपोलियन की लोकप्रियता में कमी– महाद्वीपीय योजना से नेपोलियन की लोकप्रियता फ्रांस और उसके अधीन साम्राज्य में कम हो गयी । केटलबी ने इस सम्बन्ध में कहा है, नेपालियन के प्रजाजनों को उसके

पश्चिमी विश्वं.

छव्जै

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंप

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

150

सामाजिक विधान से जो कुछ भौतिक लाभ हुआ, उसका अधिकांश नेपोलियन की उस आर्थिक नीति के कारण निष्फल हो गया जिससे उसने इंग्लैण्ड के विरुद्ध लागू करना चाहा । इस नीति का नेपोलियन के साम्राज्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

महाद्वीपीय व्यवस्था की असफलता के कारण– नेपोलियन की नीति के भयंकर परिणाम निकले। वह अपनी योजना में सफल नहीं हो सका । नेपोलियन इस आर्थिक महायुद्ध में अनेक परिस्थितियों के कारण

असफल रहा।

शक्तिशाली ब्रिटिश नौसेना– प्रथम नेपोलियन के पास इतना शक्तिशाली समुद्री बेड़ा नहीं था, जो लम्बे–चौड़े समुद्री मार्ग की निगरानी कर सकता, मजबूत ब्रिटिश नाविक सेना का मुकाबला कर सकता । अव्यावहारिक योजना– दूसरे यह योजना अव्यावहारिक थी। अनेक आवश्यक वस्तुओं की कमी पड़ जाने के

कारण फ्रांस में भी नेपोलियन की आलोचना होने लगी। चोरी–छिपे कपड़ा जूते चाय तथा काफी इंग्लैण्ड से आने लगे। इससे फ्रांस में भ्रष्टाचार व महगाई बढ़े। निर्यातित माल पर सीमित प्रतिबन्ध– तीसरे, नेपोलियन ने इंग्लैण्ड को जाने वाली खाद्य सामग्री पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया। यदि वह ऐसा कर देता तो इंग्लैण्ड को अपार कष्ट होता और इसका परिणाम उसके हित में होता ।

पोप से अनबन – चौथे, इस योजना के कारण नेपोलियन को पोप से लड़ाई मोल लेनी पड़ी। इससे कैथोलिक जनता की सहानुभूति नेपोलियन के प्रति कम हो गई।

सैनिक व आर्थिक स्थिति पर प्रभाव – पांचवें इस योजना को लागू करने के लिये नेपालियन को अनेक देशों से युद्ध लड़ने पड़े, जिससे उसकी सैनिक और आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई। उसकी योजना असफल हो गई।

प्रायद्वीपीय युद्ध (च्मदपदेनसंत ंत) – महाद्वीपीय व्यवस्था को सफल बनाने के लिये नेपोलियन को 1808 से 1814 ई० तक अनेक युद्ध लड़ने पड़े। इन युद्धों में प्रायद्वीपीय युद्ध का विशेष स्थान है। प्रायद्वीपीय युद्ध नामकरण के पीछे घटना यह थी कि नेपोलियन आइबेरियन प्रायद्वीपीय में इंग्लैण्ड के माल का बहिष्कार चाहता था। प्रारम्भ में यूनानियों ने आइबेरस नदी के समीपवर्ती क्षेत्र को आइबेरियन प्रायद्वीप कहा, लेकिन बाद में सम्पर्ण स्पेनिश क्षेत्र को ही इसमें सम्मिलित कर लिया गया ।

नेपालियन का पुर्तगाल से युद्ध – प्रायद्वीपीय युद्धों में पुर्तगाल और स्पेन के साथ नेपोलियन का संघर्ष उल्लेखनीय है । नेपोलियन ने 1807 ई० में पुर्तगाल पर ब्रिटिश माल का बहिष्कार के लिये दबाव डाला और जब पुर्तगाल ने नेपोलियन की योजना में सम्मिलित होने से मना किया तो नेपोलियन ने 1807 ई० में पुर्तगाल पर आक्रमण कर दिया। उस फ्रांस का अधिकार हो गया ।

स्पेन से युद्ध – नेपोलियन ने स्पेन की आन्तरिक अस्थिरता का लाभ उठाते हुए 1808 ई० में स्पेन में अपने भाई जोसेफ बोनापार्ट को राजा बना दिया। स्पेन के राकुमार फर्डीनेण्ड ने गोदोय के प्रभाव की समाप्ति के लिये नेपोलियन से सहायता माँगी। इस स्थिति का नेपोलियन ने पूरा लाभ उठाया । नेपोलियन ने चार्ल्स चतुर्थ जो स्पेन को शासक था और राजकुमार फर्डीनेण्ड दोनों से त्यागपत्र ले लिये।

किंतु स्पेनवासियों को नेपोलियन का व्यवहार अच्छा नहीं लगा । स्पेनी जनता में नेपोलियन के विरुद्ध घृणा जोर पकड़ने लगी द्य मई, 1808 में समस्त स्पेन में इतनी उत्तेजना फैली कि बिना किसी तैयारी के फ्रांस के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया गया। इसे ही प्रायद्वीप का युद्ध कहा गया। जुलाई, 1808 ई के सिन्ट्रा के समझौते के अनुसार फ्रांस को पुर्तगाल से सेना हटाने के लिए राजी होना पड़ा।

लेकिन नेपोलियन को स्पेन व पुर्तगाल में मिली पराज्य अपमानजनक लगी। वह दो लाख सैनिकों की सेना लेकर पुनः स्पेन पर चढ़ आया । 15 फरवरी 1809 ई० में नेपोलियन के सेनापति मार्शल सौल्ते ने अंग्रेज सेनापति जान मर को कौरुन्ना के युद्ध में भी हराया, लेकिन इंग्लैण्ड इसके बाद भी पुर्तगाल को सैनिक सहायता

देता रहा। अन्त में 1811 ई० में पुर्तगाल से फ्रांसीसियों का स्थायी रूप से बिस्तर – बोरिया
बाँधना पड़ा। 1811 ई० में सालामाका युद्ध (ठंससजसम व िसंउंदबं) में फ्रांसीसी सेना को पराजित कर दिया। अन्त में मई 1813 में बिट्टोरिया में पराजित होकर फ्रांस को स्पेन छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा।
प्रायद्वीपीय युद्ध
में असफलता के कारण– नेपोलियन की प्रायद्वीपीय युद्ध में असफलता के मुख्य कारण स्पेन की भौगोलिक स्थिति थी । नेपोलियन ने स्पेन की शक्ति को कम आँका। वह यूरोपीय अन्य देशों के साथ भी उलझा रहा । नेपोलियन का मजबूत अंग्रेज सेना का सामना करना पड़ा साथ ही, नेपोलियन की हार का दूसरा मुख्य कारण था। स्पेन में राष्ट्रीयता की भावना का उदय । वह राष्ट्रीयता धीरे–धीरे सम्पूर्ण राज्य में फैल गई और उसके कारण नेपोलियन के साम्राज्य में दरार पड़ गई । नेपालियन ने सेण्ट हेलीना में यह स्वीकार भी किया, स्पेन के घाव ने मुझे मार डाला। उसने यह भी माना स्पेन पर आक्रमण अनैतिक व अन्यायपूर्ण था ।
आस्ट्रिया से युद्ध – नेपोलियन को प्रायद्वीपीय युद्ध में फँसा देखकर आस्ट्रिया ने अपनी पराज्य का कलंक मिटाने के लिये अप्रैल 1809 ई० में फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया । आस्ट्रिया में राष्ट्रीय पुनर्जागरण आरम्भ हो चुका था। लेकिन वेग्राम के युद्ध में आस्ट्रिया पराजित हुआ ओर 10 अक्टबर 1809 ई० को शानबर्न या वियना की संधि (ज्तमंजल व िबीवदइतनद ्द व ि।पमददं) करनी पड़ी। उसके अनुसार आस्ट्रिया ने इलीरिया का प्रान्त फ्रांस को, पश्चिमी गेलेशिया वारसा को और पर्वी गेलेशिया रूस को देने स्वीकार किये। आस्ट्रिया के सम्राट ने अपनी पुत्री मेरी लुईसा का विवाह नेपोलियन के साथ कर दिया। आस्ट्रिया ने फ्रांस को क्षतिपूर्ति भी देना स्वीकार कर लिया और महाद्वीपीय व्यवस्था में सम्मिलित होने का वचन भी दिया। साथ ही बवेरिया को सोल्सबर्ग देना पड़ा।
नेपोलियन और रूस (मास्को अभियान) – रूस के जार से 1807 ई० की टिलसिट की संधि के कारण जो सम्बन्ध बने थे, वे धीरे–धीरे बिगड़ने लगे। इसका मुख्य कारण था नेपोलियन का आस्ट्रिया सम्राट की पुत्री से विवाह करना । जार अपनी बहन का विवाह उससे करना चाहता था। दूसरे नेपालियन ने कुस्तुन्तुनिया और पोलैण्ड में भी रूस की इच्छाओं को पूरा नहीं होने दिया । जार ने 1810 ई में नेपालियन के व्यापार – विरोधी नियम को मानने से इन्कार कर दिया । नेपोलियन प्रशा आस्ट्रिया और पोलो को अपनी सेना में सम्मिलित करके जिस विशाल सेना का निर्माण किया, उसने जून 1812 ई० में नीमन नदी को पार कर लिया। सितम्बर 1812 ई के बीरोडीनो के युद्ध (ठंजजसम व ठिवतवकपदव) में यद्यपि नेपोलियन ने रूस को पराजित कर दिया, लेकिन यह उसके लिये दुखदायी ही रहा। केटलबी ने ठीक ही कहा है मास्को पर आक्रमण नेपोलियन की ट्रेजेडी का सूत्रपात था। मास्को– अभियान की

सैनिक शक्ति को भारी क्षति पहुँची। साथ ही नेपोलियन की दुर्दशा को देखकर यूरोपीय देशों में चौथा गुट का निर्माण हो गया । राष्ट्रों का युद्ध या स्वतंत्रता की लड़ाई (ठंजजसम वि छंजपवदे) चौथे गुट का निर्माण– मास्को अभियान नेपोलियन के लिये निःसंदेह घातक सिद्ध हुआ। कई देश (रूस और प्रशा) यूरोप को नेपोलियन के जुये से मुक्ति दिलाने के लिए सक्रिय हो गये। यूरोपीय मुक्ति के महान कार्य रूस के सम्राट अलेक्जेंडर प्रथम ने प्रशा के सम्राट फ्रेडरिक विलियम तृतीय के सहयोग से उठाया। फरवरी 1813 में रूस और प्रशा में संधि ा हुई जिसका आशय था कि जब तक वे यूरोप को मुक्त नहीं करा लेते तब तक नेपोलियन से निरन्तर युद्ध करते रहेंगे। इसी कारण इसे राष्ट्रों का युद्ध या स्वतंत्रता की लड़ाई के नाम से पुकारा गया।

किन्तु नेपोलियन मास्को घटना से हतोत्साहित नहीं हुआ। वह निरन्तर सैन्य शक्ति का कारण रहा। आस्ट्रिया उपयुक्त अवसर देखकर युद्ध में उतरना चाहता था। अतः प्रारम्भ में वह चुप रहा । नेपोलियन ने मई, 1813 में लुटजन और बीट्जन के युद्धों में प्रशा और रूस को पराजित किया, किन्तु नेपोलियन को इन विजयों से कोई लाभ नहीं हुआ। अगस्त 1813 में आस्ट्रिया मित्र राष्ट्रों के साथ हो गया । नेपोलियन ने आस्ट्रिया की शांति स्थापित करने की शर्तों को ठुकरा दिया था । नेपोलियन अगस्त 1813 ई० में ड्रेस्डेन के युद्ध में आस्ट्रिया को पराजित करने में सफल रहा। यह एक प्रकार से उसके जीवन की अन्तिम विजय कही जा सकती है।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

157

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

ैमपा– प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

158

किन्तु एल्ब नदी के किनारे लीपजिंग (स्मपचप्रपदह) नगर में नेपोलियन मित्र राष्ट्रों की सेना से पराजित हो गया। यह युद्ध 16 से 19 अक्टबर, 1813 में हुआ । हेज ने राष्ट्रों के युद्ध के विषय में ठीक ही कहा है, मास्कों अभियान के एक वर्ष पश्चात् होने वाले राष्ट्रों के युद्ध के फ्रांस से बाहर नेपोलियन की शक्ति को छिन्न–भिन्न कर दिया । नेपोलियन का साम्राज्य बिखरने लगा । राइन संघ टूट गया । हालैंड स्वतंत्र हो गया। जेरोम बोनापार्ट भाग गया । आस्ट्रिया को टिरोल और इलीरिया का क्षेत्र मिल गया । किन्तु मित्र राष्ट्र अभी भी फ्रांस के साथ कठोर व्यावाहर नहीं करना चाहते थे। किन्तु उनकी शर्त थी कि नोपोलियन को फ्रांस की प्राकृतिक सीमायें स्वीकार करनी होंगी । नेपोलियन ने इसका जवाब नहीं दिया। अतः मित्र राष्ट्रों ने 1914 के प्रारंभ में फ्रांस के विरुद्ध आक्रमण घोषित कर दिया। मार्च, 1814 ई० ग्रेट ब्रिटेन, रूस, आस्ट्रिया और

प्रशा ने शोमेण्ट की संधि की। यह संधि 20 वर्षों के लिये की गई । उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि शांति की व्यवस्था सभी की सहमति से की जायेगी और युद्ध तब तक जारी रखा जायेगा जब तक शत्रु पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हो जाता।

,

मित्र सेनाओं ने 31 मार्च 1814, ई० को पेरिस में प्रवेश किया । अब नेपोलियन के सामने अप्रैल 1814 की फोण्टेनब्लो की संधि (ज्तमंजल व विदजंपदमइसमंन) के अतिरिक्त कोई कोई रास्ता शेष नहीं था । 11 अप्रैल 1814 को उसे फ्रांस के सम्राट के पद से त्याग–पत्र देना पड़ा, मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन को एल्बा द्वीप की सत्त और पेंशन देना स्वीकार कर लिया। साम्राज्ञी मेरी लुईसा को पार्मा की डची और नेपोलियन सम्बन्धि की पेशन भी स्वीकार की गई।

नेपोलियन के सौ दिन (भ्नदकतमक कंले व छिमचवसमवद) (20 मार्च 1815 – 22 जून, 1815) – नेपोलियन एल्बा में निरंतर योजना बना रहा था कि किसी प्रकार फ्रांस का सिंहासन पुनः प्राप्त किया जाये । इसके लिये उसे दो अनुकूल परिस्थितियों की जानकारी मिल रही थी। प्रथम उसे यह आभास था कि बूब शासन को फ्रांस की जनता ने अन्तःकरण से स्वीकार नहीं किया है, दूसरे यूरोपीय शक्तियों में बँटवारे को लेकर मतभेद था। नेपोलियन से प्राप्त लाभों का किस प्रकार विभाजन किया जाये, यूरोपीय राजनीति उसका कोई सर्वमान्य समाधान नहीं ढूंढ पा रहे थे।

नेपोलियन परिस्थितियों का लाभ उठाकर 26 फरवरी 1815 ई० को 700 आदमियों सहित एल्बा से चल दिया । 1 मार्च 1815 ई० को ब्रिटिश सेना से बचते हुई वह फ्रांस के उत्तरी भाग में (केनेज) जा पहुँचा । नेपोलियन को गिरफ्तार करने के लिये सेना भेजी गयी। किन्तु सेना बन्दी बनाने के स्थान पर उसकी समर्थक बन गयी । मार्शल ने के प्रयत्न भी व्यर्थ सिद्ध हुये, 20 मार्च 1815 ई० को नेपोलियन ने पेरिस में प्रवेश किया और पुनः फ्रांस का सम्राट बन गया । लुई अठारहवाँ गद्दी छोड़कर भाग गया।

नेपोलियन ने अपना कार्यक्रम घोषित करते हुये कहा, फ्रांस में वह जनता की कुलीनों से रक्षा,

रक्षा, किसानों की सम्पत्ति व भू– अधिकारों की रक्षा और उन समस्त उपलब्धि ायों की रक्षा के लिये आया है जो उसने 1789 ई मुट्ठीभर सामन्तों से प्राप्त की । नेपोलियन की घोषणा प्रभावशाली सिद्ध हुई । नेपोलियन ने यह भी कहा, वह युद्ध और विजय की अब कोई इच्छा नहीं रखता। साथ ही वह संवैधानिक प्रध ाान की भाँति ही शासन करेगा।

वियना में एकत्रित राजनीतिज्ञों को जैसे ही नेपालियन के पेरिस आगमन की सूचना मिली उन्होंने तुरन्त आपसी मतभेदों को भुला दिया। उन्होंने शोमेन्ट की संधि को दुहराया । नेपोलियन को सामान्य शत्रु और दुनिया की शांति भंग कहने वाला (। बवउउवद ंदमउल ंदक कपेजनतइमत व जीम चमंबम व जीम ूवतसक) घोषित किया। बेलिंटन और ब्लखर के नेतृत्व में विशाल सेना की व्यवस्था की गई। प्रत्येक मित्र राष्ट्र ने (रूस, इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया और प्रशा)

1,50,000 सैनिक युद्ध में भेजने का वचन दिया । नेपोलियन ने भी 1,18,000 सैनिकों की मजबूत सेना तैयार की। उसकी मूल योजना थी कि शत्रु देशों की शक्ति विभाजित रखी जाये। वह 12 जून 1815 ई० को पेरिस से बेल्जियम के लिये चल दिया।

वाटरलू का युद्ध (ठंजजसम व िंजमतसवव) – युद्ध में नेपालियन और उसके सैनिक वीरता से जा लड़े। निणार्यक लड़ाई रविवार 18 जून 1815 ई० को वाटरलू के दक्षिण में हुई । ब्लखर के समय से आने के कारण विजयश्री वेलिंगटन को मिली । नेपोलियन ने अभी भी हिम्मत नहीं छोड़ी। किन्तु 21 जन 1815

ई० को पेरिस लौटने पर उसने प्रशासनिक असमर्थता अनुभव की । विवश होकर नेपोलियन ने 22 जून 1815 ई० को अपने पुत्र के पक्ष में गद्दी छोड़ दी। 7 जुलाई 1815 ई० को मित्र राष्ट्रों ने फ्रांस में पुनः बर्बो वंश की स्थापना की । नेपोलियन की सौदिन की घटना से यूरोपीय राष्ट्रों का दृष्टिकोण को काफी सीमा तक उदार कर दिया। हेज ने वाटरलू में वेलिंगटन की जीत के सम्बन्ध में कहा है वाटरलू की लड़ाई से इंग्लैण्ड की नाविक प्रतिष्ठा बढ़ी और वेलिंग्टन को नेपोलियन का विजेता कहा गया।

नेपोलियन ने इस युद्ध के विषय में कहा था– वाटरलू के मैदान में मुझे मर जाना चाहिये था, परन्तु जब मनुष्य मृत्यु की सबसे अधिक कामना करता है तब वह उसे नहीं मिल पाती । मेरे आस–पास आगे पीछे और सर्वत्र सैनिक मर रहे थे, किन्तु गोली मुझे नहीं लग सकी। 22 जून 1815 ई० को नेपोलियन ने सदैव के लिये सिंहासन छोड़ दिया। उसे अंग्रेजों ने अन्ध महासागर के निर्जन टापू सेंट हेलेना भेज दिया वहाँ 5 मई 1821 ई० को कैंसर के रोग से नेपोलियन की मृत्यु हो गई । मित्र देशों ने 20 नवम्बर 1815 को पेरिस की संधि द्वारा फ्रांस में लुई 18वें को शासक बना दिया। फ्रांस की प्राकृतिक सीमायें तय की गईं। 1790 ई० की फ्रांस को भू–भागीय सीमाओं को स्वीकार किया गया। युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में फ्रांस को 70 करोड़ फ्रैंक की राशि देने के लिये कहा गया। फ्रांस की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के लिए वेलिंगटन के नेतृत्व में 1,10,000 लोगों की सेना 3 से 5 वर्षों के लिए फ्रांस में नियुक्त की गई।

नेपोलियन का पतन

फिशन ने नेपोलियन के पतन की घटनाओं का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया है, नेपोलियन का पतन तीन अंकों का दुखान्त नाटक है । मास्को, लिपजिंग तथा फोण्टेनब्लो इसके क्रमशः तीन भाग हैं तथा वाटरलू इसका उपसंहार । नेपोलियन के पतन के मुख्य कारण इस प्रकार है–

असीमित इच्छा – प्रथम, नेपोलियन की इच्छाओं की कोई सीमा नहीं थी । नेपोलियन को एक के बाद एक सफलता मिलती गई वह सैनिक से सम्राट बन गया और इंग्लैण्ड को पराज्य करने की जिद नहीं छोड़ी। इसका परिणाम ही नेपोलियन का पतन सिद्ध हुआ। वह हठी था। किसी भी कार्य को अम्भव नहीं मानता था । लिपिजिग युद्ध के बाद भी मित्र देशों से समझौता करने को तैयार

न होना, उसके हठीले स्वभाव का प्रमाण है।
अव्यावहारिक महाद्वीपीय व्यवस्था– दूसरे, महाद्वीप व्यवस्था के कारण नेपोलियन को अनेक युद्ध लड़ने पड़े। उनके कारण जन व धन की अपार हानि हुई। इससे उसकी शक्ति का ह्यास हुआ।
स्पेनी राष्ट्रीयता– तीसरे, स्पेन पर जिस ढंग से अधिकार करके अपने भाई जोजफ को वहाँ का शासक बनाया यह भी न केवल अनैतिक व अन्यायपूर्ण था बल्कि उसके विनाश का महत्वपूर्ण कारण बना। स्पेन में उसे अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । स्पेनी राष्ट्रीयता ने नेपोलियन के समूचे साम्राज्य को अस्त–व्यस्त कर दिया । नेपोलियन ने स्वयं स्वीकार किया, स्पेन के फोड़े ने मुझे नष्ट कर दिया है। ट्रेविलियन ने राष्ट्रीयता के प्रभाव को रेखांकित करते हुए कहा है– मित्र देशों को सफलता तब ही प्राप्त होनी शुरू हुयी जब फ्रांसीसी अत्याचारों के विरुद्ध रूस तथा जर्मनी में राष्ट्रीयता उभरी।
सैन्य शक्ति को आवश्यकता से अधिक महत्व – चौथे नेपोलियन की शक्ति का आधार उसका सैनिक बल था। उसका उसे अत्यधिक विश्वास था । वह कहता था, ईश्वर उसका साथ देता है जो विशाल सेनायें रखता है। यूरोपीय देशों ने अपनी सेनाओं का विकास कर लिया और संगठित होकर वे नेपोलियन से अधि ाक मजबूत हो गये । इसका परिणाम यह निकला कि सैनिक संतुलन मित्र देशों के पक्ष में हो गया । नेपोलियन को पराज्य का मुँह देखना पड़ा।
ब्रिटिश नौ– सेना – पाँचवें इंग्लैंड की मजबूत नौ– सेना नेपोलियन के पतन का विशिष्ट कारण बनी। सामुद्रिक युद्धों में नेपोलियन को न केवल अपमान सहना पड़ा, बल्कि महाद्वीपीय व्यवस्था की असफलता सिद्ध करने में इंग्लैण्ड की सामुद्रिक शक्ति ही प्रभावशील सिद्ध हुई ।

पश्चिमी विश्व
छव्ज्ै
ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
159

पश्चिमी विश्व
छव्ज्ै
ैमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
160

यूरोपीय राष्ट्रों में संगठन की भावना – छठे नेपालियन के युद्धों से दुखी होकर यूरोप के देशों ने अपने को संगठित किया। 1793 ई० में 1815 ई० तक उन्होंने चार गुट बनाये । नेपोलियन इनके पारस्परिक ईर्ष्या तथा द्वेष का लाभ उठाता रहता था। लेकिन अन्त में सामूहिक शक्ति का मुकाबला नहीं कर पाया।
सम्बन्धियों का विश्वासघात – सातवें, नेपोलियन को न केवल अपने सम्बन्धियों का सामना करना पड़ा बल्कि उसके अनेक बड़े अधिकारियों ने भी धोखा दिया। स्पेन में उसे जोसेफ की अयोग्यता के कारण अपमान सहना पड़ा। इटली में

कैरोलीन तथा जेरोन के कारण धक्का लगा। विदेश मंत्री तैलीरा भी 1807 ई० के पश्चात् उसका विरोधी हो गया। पुलिस अधिकारी फोशे ने उसे धोखा दिया। इस प्रकार उसके मित्रों और सम्बन्धियों ने उसकी प्रतिष्ठा को गिराया ।

–

।

नेपोलियन का मूल्यांकन नेपोलियन को विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण और अनूठा स्थान प्राप्त है। नेपोलियन ने फ्रांस की कानूनी, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था को नया मोड़ दिया। अठारहवीं शती के प्रवृद्ध शासकों में उसका नाम उच्च शिखर पर रखा जा सकता है। वह महान सेनापति, विजेता, प्रशासक, राजनीतिज्ञ और सुधारक था । तैलीय ने नेपालियन की प्रशंसा करते हुए लिखा है– उस जैसा व्यक्ति आज तक न कभी किसी ने देखा और न ही मेरे विचार में आने वाली कई शताब्दियों में उस जैसा असाधारण व्यक्ति जन्म ले सकेगा । नेपोलियन की लोकप्रियता का ज्ञान इस तथ्य से हो जाता है कि उसकी मृत्यु के लगभग 37 वर्ष पश्चात् अर्थात् 1848 ई० में पुनः उसका भतीजा फ्रांस के द्वितीय गणतंत्र का अध्यक्ष बन गया। इससे भी आगे, उसक भतीजे नेपोलियन तृतीय ने अपने चाचा के नाम का प्रचार करके 1852 ई० में फ्रांस का सम्राट पद प्राप्त कर लिया। मृत्यु के पश्चात् भी नेपोलियन फ्रांसीसी जनता के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहा।

राष्ट्रीयता का विकास – नेपोलियन के कार्यों से यूरोपीय राष्ट्रों में राष्ट्रीयता का प्रचार हुआ। नेपोलियन ने जैसे ही प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से जर्मनी के 350 राज्यों के स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त किया तो इसमें उनमें संगठन व एकता की भावना जागने लगी । वास्तव में नेपोलियन के कारण ही जर्मनी में एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ । इसी प्रकार इटली में भी राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। इटली के विभिन्न राज्यों को संगठित करके उनमें एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने की सम्भावना पैदा की।

धर्मनिरपेक्षता की भावना का संदेश – नेपोलियन ने फ्रांस के लिए ही नहीं बल्कि दुनिया के दूसरे देशों को भी धर्मनिरपेक्षता की प्रेरणा दी। यूरोप के समस्त देशों में किसी न किसी प्रकार से चर्च राज्य से जुड़ा हुआ था। चर्च प्रशासकीय कार्यों में हस्तक्षेप करता था । यद्यपि क्रांतिकालीन सरकारों ने चर्च के अधिकारों को समाप्त कर दिया था, किन्तु नेपोलियन ने इसके लिए स्थायी व दूरगामी मार्ग निकाला। उसने कानकोर्डेट के द्वारा एक ओर तो चर्च को राज्य के नियंत्रण में कर लिया और दूसरी ओर चर्च की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली। उसने यूरोप में धर्मनिरपेक्ष समाज की रचना में सहायता मिलीं।

वर्ग–भेद को समाप्त करना– नेपोलियन की महत्वपूर्ण देन यह भी है कि उसने क्रांति – पूर्व के वर्ग भेद (ब्सें ठंततपमत) को समाप्त कर दिया। उसने सांमतों के विशेषाधिकारों की परवाह नहीं की। दूसरे शब्दों में उसने फ्रांस में समानता स्थापित करने का प्रशंसनीय कार्य किया । नेपोलियन का विधि–विधान (कोड नेपोलियन) (छंचवसमवदपब ब्वकम) फ्रांस में समानता स्थापित करने की दिशा

में महत्वपूर्ण कदम था। इस दृष्टि से यदि यह कहा जाये कि नेपोलियन ने अप्रत्यक्ष रूप से समाजवादी भावना को प्रोत्साहित किया, तो अन्यायोचित नहीं होगा।

यह ठीक है कि नेपोलियन आवश्यकता से अधिक महत्वाकांक्षी था और अत्यधि ाक घमण्डी तथा जिद्दी भी था,

उसने क्रांति से स्वतंत्रता जैसे पवित्र सिद्धान्तों को कुचला, स्त्रियों को वह पुरूषों के समान स्थान नहीं देता था, उसका विस्तृत साम्राज्य उसकी मृत्यु के साथ से ढह गया और विभिन्न युद्धों में जन–धन की अपार क्षति हुई, लेकिन कुछ भी हो, नेपोलियन की गणना आधुनिक युग के महान शासकों में की जाती है। उसकी उपलब्धियों और नीतियों को उसकी दो पंक्तियों से समझा जा सकता है। उसने कहा

मैं विश्वास करता हूँ कि मैं संसार का परिवर्तन करने के लिए पैदा हुआ हूँ। यदि मैं सफल होता तो मैं इतिहास का सबसे महान व्यक्ति होता । लार्ड रोजबरी ने नेपोलियन की प्रशासकीय विशिष्टताओं को

था,

रेखांकित करते हुये कहा है, वह अपने विस्तृत साम्राज्य की प्रशासकीय संस्थाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखता था। ये उसके लिये मात्र खिलौना थीं। देश के युद्ध मंत्रालय एवम् अन्य विभाग उसी में स्थित थे । उसके साम्राज्य की वित्तीय व्यवस्था भी गौरवशाली थी। वह राज्य के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में सब कुछ जानता था। साथ ही, प्रत्येक विभाग को दिशा और प्रेरणा भी देता था ।

वियना क्रांगेस

नेपोलियन बोनापार्ट की पराज्य के पश्चात् यूरोप की भावी राजनीतिक व्यवस्था को सुनिश्चित करने के लिये यूरोप के अनेक देश आस्ट्रिया की राजधानी वियना में एकत्रित हुये । वास्तव में देखा जाये तो वियना कांग्रेस को प्रोत्साहन उन संगठनों व समझौते से मिला जो यूरोपीय राज्यों ने नेपोलियन के भय के कारण किये थे। इन समझौतों में शोमेन्ट (बिंनउवदज) की संधि का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। 30 मई 1814 को नेपोलियन को एल्बा भेजने के उपरान्त भू–भागीय लाभों के बँटवारे तथा यूरोप में शांति स्थापित करने के लिये अनेक शासनाध्यक्ष, राजनीतिज्ञ एवं अधिकारी वियना में एकत्रित होने लगे । केवल तुर्की को छोड़कर सभी देशों के प्रतिनिधि सम्मेलन में आये। 9 जून 1815 ई० को अर्थात् वाटरलू के युद्ध से पूर्व ही एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर किये गये जिसे वियना समझौता का नाम दिया गया। वियना कांग्रेस के उद्देश्य व सिद्धान्त

वियना कांग्रेस की कार्य–प्रणाली की कुछ निश्चित विशेषताएँ थीं। उन्हीं के आध ाार पर राजनीतिज्ञों ने भावी यूरोप में पुनर्व्यवस्था व शांति स्थापित करने के प्रयत्न किये। उन प्रयत्नों में से प्रमुख थे–

पुरस्कार व दण्ड का सिद्धान्त – पहला उद्देश्य था जिन राष्ट्रों ने नेपोलियन को पराजित करने में सहयोग दिया, उन्हें पुरस्कृत किया जाये और जिन्होंने

नेपोलियन का समर्थन किया, उन्हें दण्डित किया जाये ।
क्रांतिकारी सिद्धान्तों से यूरोप की रक्षा– दूसरा उद्देश्य था क्रांति से पूर्व की स्थिति यूरोप में स्थापित की जाये। जार एलेक्जेण्डर को छोड़कर यूरोप के अन्य सभी राष्ट्र क्रांति के सिद्धान्तों से चिढ़ते थे। पुरातन व्यवस्था की स्थापना के लिये तेलेरा ने वैध अधिकार का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। मैटरनिक ने क्रांतिकारी व प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों का चुनाव कर लिया था। वह पक्का प्रतिक्रियावादी था ।
फ्रांसीसी सैनिकवाद से भावी यूरोप की रक्षा– ये लोग ऐसी व्यवस्था चाहते थे कि भविष्य में फ्रांस किसी यूरोपीय देश पर आक्रमण न कर सके। फ्रांसीसी सीमाओं पर इस प्रकार की प्रादेशिक व्यवस्था चाहते थे कि फ्रांस शक्ति संतुलन भंग न कर सके।
–
वैध अधिकार का सिद्धान्त– इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रतिनिधि तेलेरां ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार यूरोप में पुराने राजवंशों की स्थापित करना था । वियना के राजनीतिज्ञ ने इस सुझाव का समर्थन किया था।
यूरोपीय शांति के लिए शक्ति संतुलन स्थापित करना – लम्बे अर्से से चले आ रहे युद्धों से यूरोपीय देश उकता गये थे। वे क्रांति स्थापना के लिए उत्सुक थे। शक्ति संतुलन बनाये रखना चाहते थे।
जेण्टज के, जो इस सम्मेलन के सचिव थे, आलोचनात्मक शब्द वियना कांग्रेस के उद्देश्यों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उन्होंने कहा था, सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण और यूरोप की राजनीतिक शासन–प्रणालियों का पुनर्जन्म अथवा यूरोप में उचित शक्ति संतुलन के आधार पर शांति स्थापना ये उद्देश्य पवित्र आवश्य थे किंतु उनकी दिखावटी शब्दावली का उद्देश्य यही था कि सर्वसाध ाारण की उत्तेजनाओं को शान्त किया जाये और कुछ प्रदेशों के कुछ राज्यों में पुनः सम्मिलित किये जाने को बढ़ा–चढ़ा कर दिखाया जाये, वियना की सभा का वास्तविक उद्देश्य यही था कि विजित देशों को आपस में बाँट लिया जाये।
सम्मेलन के मुख्य प्रतिनिधि
वियना सम्मेलन को पुराने समय का सबसे बड़ा सम्मेलन माना जा सकता है। एक प्रतिनिधि ने कहा था– इस समय वियना के नगर का दृश्य आकर्षक और प्रभावकारी है, यूरोप के सभी विशिष्ट पुरुषों का शानदार
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
161
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
162

ढंग से प्रतिनिधित्व हो रहा है। सम्मेलन के अनेक प्रतिनिधियों पर लगभग 25 हजार डालर प्रतिदिन खर्च किये गये। सम्मेलन के निर्णयों को आस्ट्रिया, इंग्लैण्ड, रूस व प्रशा के प्रतिनिधियों ने मुख्य रूप से प्रभावित किया । इन्हें सम्मेलन की चार मुख्य (ठपह थ्वनत) शक्तियाँ कहा गया। फ्रांस के प्रतिनिधि तेलेरां ने इन शक्तियों के मतभेदों का लाभ उठाया और सम्मेलन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार फ्रांस को मिलाकर अब सम्मेलन में बड़ी शक्तियाँ पाँच (ठपह थ्पअम) हो गयी ।

मेटरनिख – आस्ट्रिया का चांसलर मेटरनिख वियना सम्मेलन का अध्यक्ष था। उसने अपने विचारों से सम्मेलन के निर्णयों को काफी प्रभावित किया। उसे सम्मेलन का नैतिक तानाशाह और भँवरों से भरे हुये तालाब में मछली के समान सफल तैराक कहा गया। वह सम्मेलन की गतिविधियों पर छाया रहा। ऐलिशन फिलिप्स ने मेटरनिख द्वारा नेपोलियन को पराजित करने के योगदान का विवरण इन शब्दों में प्रस्तुत किया है जिस समय आस्ट्रिया की नोका मँझधार में थी और जब आस्ट्रिया साम्राज्यवादी फ्रांस के विरुद्ध जीवन–मरण के युद्ध में फँसा हुआ था और जिस समय प्रत्येक व्यक्ति निराश होकर पीछे हटने का प्रयत्न कर रहा था, उस समय मेटरनिख ने आस्ट्रिया की नीति को इस ढंग से संचालित किया कि उसके आधार पर वह नेपालियन को सफलतापूर्वक पराजित कर सका । नेपोलियन का विजेता होने का मेटरनिख को गर्व था ।

किन्तु मेटरनिख प्रतिक्रियावादी था और स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र को बहुत बड़ा दुर्गुण व बीमारी मानता था। वह यूरोप में यथास्थिति बनाये रखने का पक्षपाती था। साथ ही ऐसा संगठन भी स्थापित करना चाहता था जिसमें समान विचारध ारा के सदस्य हों।

जार एलेक्जेण्डर प्रथम– रूस ने नेपोलियन को पराजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका के कारण वियना सम्मेलन में प्रभावशाली स्थान प्राप्त किया। किंतु आस्ट्रिया और इंग्लैण्ड रूस की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा और प्रभाव को अच्छी निगाह से नहीं देखते थे। जार एलेक्जेन्डर में कुटनीतिज्ञ के गुण विद्यमान नहीं थे। केटेलबी ने एलेक्जेंडर के विषय में उस समय के राजनेताओं के विचारों को, इस प्रकार प्रकट किया है, नेपोलियन समझता था कि एलेक्जेंडर कपटी तुर्क या उत्तर कपटी नाटककार है। मेटनरिख का विचार था कि वह पागल–सा व्यक्ति है जिसे किसी भी प्रकार प्रसन्न रखना आवश्यक है। जार एलेक्जेंडर ने यद्यपि स्विस अध्यापक लाहायें व रूसी की शिक्षाओं को रुचि से पढ़ा, किंतु फिर भी वह अस्थिर और दुर्बल चित्र का बना रहा । पिता की मृत्यु के षडयंत्र ने उसके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला था। वह धर्म व मूढ़ विश्वासों से परिचालित होने लगा था।

तेलेरां– सम्मेलन में फ्रांस का प्रतिनिधित्व तेलेरां कर रहा था । यद्यपि वह पराजित देश का प्रतिनिधि था, लेकिन कूटनीतिज्ञता के कारण वह फ्रांस के अधि ाक से अधिक मात्रा में हितों को सुरक्षित करने में सफल रहा। तेलेरां प्रारम्भ में नेपोलियन के साथ रहा, लेकिन स्पेन और पुर्तगाल पर आक्रमण को लेकर दोनों

में मतभेद हो गया । तेलेरां बूब का समर्थक बन गया। वह बूब वंश के पुनरुत्थान में भी सफल रहा।

केसल–रे– इंग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व महान राजनीतिज्ञ व वहाँ के विदेश सचिव केसल – रे ने किया । केसल–रे उदार दृष्टिकोण का व्यक्ति था । उसने अपनी कूटनीतिक दक्षता का परिचय उन अनेक अवसरों पर दिया जब विजेता राष्ट्रों के बीच बँटवारे को लेकर मनमुटाव पैदा हुआ। इंग्लैण्ड की ओर से ड्यूक आफ वेलिंग्टन ने भी सम्मेलन में भाग लिया।

आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीसी प्रथम ने भी, जो संकुचित, हठी और पुरातनपंथी था, सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लिया। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने भी, जो कमजोर और परम्परावादी था, सम्मेलन को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। वह रूस के जार से प्रभावित था।

सम्मेलन के विवादग्रस्त विषय

–

फ्रांस के विषय में – सम्मेलन की बड़ी शक्तियों ने छोटे राष्ट्रों का भाग्य निर्णय स्वयं ही कर दिया । इन राष्ट्रों ने अर्थात् स्पेन, पुर्तगाल और स्वीडन ने यूरोप की पुनर्व्यवस्था के लिए पेरिस की संधि के आधार
पर समानाधिकार की माँग की । तैलेरां ने इस विवाद का लाभ उठाया और फ्रांस की प्रतिष्ठा व लाभों की काफी रक्षा की।

नेपोलियन द्वारा विजित साम्राज्य के बँटवारे को लेकर मनमुटाव – चार बड़ी शक्तियों में टकराव का मूल कारण नेपोलियन के विस्तृत साम्राज्य का बँटवारा भी बना। पोलैण्ड, जर्मनी, इटली, सैक्सनी और डेनमार्क के राज्य ऐसे थे जिनका बँटवारा कठिन समस्या थी। यही आपसी मनमुटाव का मुख्य कारण
बना।

सम्मेलन के मुख्य निर्णय

फ्रांस– फ्रांस के भू–भाग को कम करते हुए उसकी प्रादेशिक सीमाएँ वहीं निश्चित हो गयीं जो 1790 ई० में थी । बूब वंश की स्थापना की गयी । लुई अठारहवें को शासक बनाया गया। फ्रांस से 70 करोड़ फ्रेंक युद्ध की क्षतिपर्ति के रूप में लेने की माँग की गयी। यह भी व्यवस्था की गई कि जब तक फ्रांस इस राशि का भुगतान न कर दे तब तक मित्र राष्ट्रों के 1,50,000 सैनिक फ्रांस के खर्चे पर फ्रांस की भूमि पर रहेंगे ।

रूस – रूस को पोलैण्ड प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त फिननलैण्ड भी रूस के अधिकार में आ गया। तुर्की साम्राज्य के कुछ प्रदेशों पर भी उसका प्रभाव स्वीकार कर लिया गया।

प्रशा– प्रशा का क्षेत्रफल अनेक लाभों के परिणामस्वरूप दुगना हो गया । उसे पोलैण्ड के पोसेन, थार्न और डेंजिंग का क्षेत्र मिला। उसे स्वीडिश पोमेरेनिया, राइन क्षेत्र में वेस्टफेलिया, क्लीवज और बर्ग के प्रदेश प्राप्त हुए। प्रशा को सेक्सनी का कुछ भू–भाग अर्थात लगभग दो–बटा – तीन भाग भी प्राप्त हुआ।

आस्ट्रिया – आस्ट्रिया को अधिकांश वे प्रदेश प्राप्त हुए जो पराज्य के परिणामस्वरूप

नेपोलियन के अधिकार में चले गये थे। आस्ट्रिया को बेल्जियम (आस्ट्रियन नीदरलैण्ड के बदले लोम्बार्डी और वेनेशिया मिला। पोलैंड के दक्षिणी गेलीशिया और बवेरिया के टिरोल के प्रदेश भी आस्ट्रिया को मिले। एस्ट्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर स्थित इलीरियन क्षेत्र भी आस्ट्रिया के प्रभाव में आ गया।

ग्रेट ब्रिटेन – ब्रिटेन ने नेपोलियन को पराजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। फलस्वरूप उसे भी अनेक औपनिवेशिक लाभ प्राप्त हुए। उसे फ्रांस से सेन्ट–लसिया, मोरीशस, टोबगी और हांडुरस के द्वीप, हालेंड से सीलोन, केप कालोनी और गायना के प्रदेश मिले। उसे माल्टा, हैलिगोलैंड और आयोनियन द्वीप भी प्राप्त हुए।

जर्मनी – जर्मनी के पुनर्गठन को लेकर सदस्यों में समतान्तर था, अतः 38 राज्यों का ढीला–ढाला संघ (ळमतउंन ब्वदमिकमतंपवद) स्थापित किया गया। इस संघ की व्यवस्था के लिए केन्द्रीय सभा (थ्मकमतंस क्पमज) की स्थापना की गयी। इस सभा में विभिन्न शासकों का प्रतिनिधित्व था। इस संघ का प्रधान आस्ट्रिया बनाया गया। इस प्रकार मेटरनिख के आग्रह के कारण जर्मनी में एकता स्थापित नहीं हो पाई । क्रांति के पूर्व भी जर्मनी में विचित्र स्थिति थी। उस समय उसमें 300 से अधिक रियासतें थीं।

इटली – जर्मनी की भाँति इटली में भी प्रादेशिक भिन्नता बनी रही । नेपोलियन ने प्रशासनिक सुविधा के लिए जिस एकता की स्थापना की थी, वह समाप्त कर दी गई । नेपल्स तथा सिसली में बूब वंश प्रतिष्ठित किया गया। पोप को उसका राज्य रोम दे दिया गया। टसकनी माडेना और पारमा में भी पुराने राजवंश स्थापित किये गये। पीडमांट का राज्य सार्डीनिया में मिला दिया गया और उसे सेवाय, नीस और जेनोआ के प्रदेश भी दिये गये । लोम्बार्डी तथा बेनेशिया के प्रदेश आस्ट्रिया की अधीनता में कर दिये गये ।

हालेंड – यहाँ पर आरेन्ज वंश की पुनः स्थापना की गई। बेल्जियम को हालैण्ड में मिला दिया गया। उसका उद्देश्य फ्रांस की उत्तरी सीमा पर सुदृढ़ राज्य स्थापित करना था। उसे नीदरलैण्ड के नाम से पुकारा
जाने
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
लगा।
ʿमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
163
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ʿमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
164

स्वीटजरलैंड – तीन नये कैण्टन (ब्ंदजवदे) मिलाकर स्विटजरलैंड की सीमा व शक्ति का विस्तार किया गया। उसका भी उद्देश्य फ्रांस की सीमा पर सुदृढ़ राज्य

की स्थापना की। साथ ही स्विटजरलैंड की स्वतंत्रता व तटस्थता स्वीकार की गई।

स्पेन और पुर्तगाल – स्पेन व पुर्तगाल में प्राचीन राजवंशों की स्थापना की गई। स्पेन का ट्रिनिडाड इंग्लैंड को मिला द्य पुर्तगाल को कुछ नहीं प्राप्त हुआ, यद्यपि उसने इंग्लैण्ड को समर्थन व सहयोग दिया था।

डेनमार्क – नेपोलियन का साथ देने के कारण नावें डेनमार्क के अधिकार से ले लिया गया । नावें का प्रदेश स्वीडन को दे दिया गया।

–

पोलैंड – सम्मेलन में पोलैंड का विभाजन करके तीन राष्ट्रों रूस, आस्ट्रिया व प्रशा में बाँट दिया गया। इसका मुख्य भाग रूस को प्राप्त हुआ।

सम्मेलन के अन्य निर्णय

प्रथम केसलरे के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप दास प्रथा को घृणितर अमानवीय बतलाकर उसकी समाप्ति का प्रस्ताव पास किया गया।

द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की उन्नति व विकास के लिए बड़ी नदियों जैसे राइन, एल्ब और नीमन आदि में सभी देशों को, बिना किसी रोक–टोक के व्यापार के अधिकार देने की व्यवस्था की गयी ।

तीसरे, भविष्य में यूरोप में शांति बनी रहने के लिए एक संस्था की स्थापना की बात रखी गई जिसे यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के नाम से पुकारा गया। इस संस्था का उद्देश्य सम्मेलन द्वारा राष्ट्रों के आपसी विवादों को सुलझाना था।

वियना संधि की आलोचना

वियना संधि का विश्लेषण करते हुए अनेक इतिहासकारों ने उसकी त्रुटियों की ओर संकेत किया है। केटलबी ने इस सम्बन्ध में कहा है, उन्होंने यह प्रयत्न कभी नहीं किया कि राज्यों को न्यायिक राष्ट्रीयता के आधार पर उनके अपने प्रदेश मिल जाएँ। परम्परागत कटनीति पुराने राजवंश और पुराने राज्यों का पूर्ववत् बनाये रखना ही उन्हें युक्तिसंगत लगा। राज्यों के पुनर्गठन में उन्होंने जन–सामान्य की इच्छाओं अथवा राष्ट्रीयता को महत्व नहीं दिया। उन्होंने युग के विरुद्ध कार्य किया । इसीलिए एक शताब्दी के पश्चात् वियना में एकत्रित होने वाले महामहिम नरेशों की भर्त्सना की गई। सत्य यह है कि एक शताब्दी की इस अवधि ने उन सभी निर्णयों को समाप्त प्राय कर दिया जो वियना में लिए गये थे।

राष्ट्रवाद, उदारवाद और स्वतंत्रता के सिद्धान्त का उल्लंघन सम्मेलन में प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थन किया गया, जबकि अनेक देशों में फ्रांसीसी क्रांति के मूल सिद्धान्तों, राष्ट्रीयता, उदारवाद व स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए निरन्तर आन्दोलन चल रहे थे। आस्ट्रिया का चांसलर मेटरनिख और वियना के मुख्य राजनीतिज्ञ फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धान्तों को भयंकर रोग मानते थे । वे इन सिद्धांतों से आस्ट्रिया की ही नहीं बल्कि समस्त यूरोप की रक्षा करना चाहते थे। राष्ट्रों के विषय में जनता की इच्छा का ध्यान नहीं रखा गया। बेल्जियम को हालैंड के साथ मिलाना, राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की हत्या थी । इसी प्रकार एक

ओर तो जर्मनी के प्रदेशों और दूसरी ओर इटली के लोम्बार्डी व वेनेशिया पर आस्ट्रिया का आधिपत्य स्वीकार करना, वियना के राजनीतिज्ञों की भूल थी। इतना ही नहीं, उन्होंने पोलैंड को तीन टुकड़ों में बाँट कर स्वतंत्र पोलैंड का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया। इसी प्रकार नार्वे स्वीडन को दे दिया । वियना के राजनीतिज्ञों के निर्णय केवल कुछ राष्ट्रों की स्वार्थ सिद्धि के लिए किये गये थे। उनसे यूरोपीय समस्या का स्थायी हल नहीं निकल पाया। हेजन ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा, वियना सम्मेलन कुलीनों का था जिन्हें फ्रांसीसी क्रांति के राष्ट्रीयता एवं प्रजातंत्र के सिद्धान्त समझ नहीं आए। वस्तुतः सम्मेलन प्रतिक्रियावादी (त्मंबजपवदंतल) तत्वों की विजय थी जबकि यूरोप में उदारवादी व क्रांतिकारी (त्मअवसनजपवदंतल) तत्व तेजी से उभर रहे थे।

निर्णयों का स्थायी सिद्ध न होना– कांग्रेस के निर्णय न्यायोचित नहीं थे । इसीलिए उनमें स्थायित्व नहीं आ सका। हेज ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा है। इन समस्त प्रदेशों की पुनर्व्यवस्था में स्थायी बातें कम और अस्थायी अधिक थीं। सम्मेलन के निर्णयों की कमजोरी इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है, कि बेल्जियम 1830 ई० में अर्थात् 15 वर्ष पश्चात् ही हालैंड में स्वतंत्र हो गया । इटली व जर्मनी में एकीकरण में आंदोलन आरम्भ हो गये । उन्हें 1870 में सफलता प्राप्त हुई । हालैंड को यद्यपि देरी से उसके आधार प्राप्त हुए, लेकिन लगभग एक शताब्दी पश्चात् वह भी वियना के निर्णयों को उलटने में सफल हो गया। इसी प्रकार नार्वे का (स्वीडन में) विलय स्थाई नहीं रहा ।

वैधता के सिद्धान्त (च्तपदबपचसम व िस्महपजपउंबी) की अवहेलना – वियना कांग्रेस में फ्रांस के प्रतिनिध तेलेरां के सुझाव के परिणामस्वरूप वैधता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। जिसके अनुसार यूरोप में वही स्थिति कायम करनी थी जो 1789 से पर्व थी अर्थात वही प्रादेशिक सीमाएँ व राजवंश कायम करने थे जो क्रांति से पूर्ण यूरोप में थे और जो नेपोलियन के युद्धों के कारण छिन्न–भिन्न हो गये थे। इस सिद्धान्त का प्रयोग वियना के राजनीतिज्ञों ने अपने हितों के अनुसार किया, न कि समान ढंग से । हेज ने इस बात का समर्थन करते हुए लिखा है। विजयी राष्ट्रों को मनोवांछित इनाम देने के लिए वैधता के सिद्धान्त का प्रायः परित्याग किया गया । उदाहरणार्थ, जर्मनी के अनेक राज्यों के शासकों को पुनः उनके राज्य नहीं दिये गये। इसी प्रकार इटली के गणराज्यों को पुनः स्थापित नहीं किया गया। पवित्र रोमन साम्राज्य की स्थापना भी सही ढंग से नहीं की गयी।

राज्यों के पुनर्गठन में केवल बड़े राष्ट्रों के हितों का ध्यान– यद्यपि कांग्रेस के निर्णयों से पूर्व अनेक नैतिक आदर्शों और सिद्धांतों की घोषणा की गई थी, लेकिन यह सब दिखाने के लिए था। वास्तव में बड़े–बड़े राष्ट्रों के स्वार्थ और लालच ही निर्णयों पर छाये रहे। उदाहरण के लिये रूस की स्वार्थ सिद्धि के लिये पोलैंड के साथ अन्याय किया गया। इसी प्रकार आस्ट्रिया की साम्राज्यवादी इच्छा के कारण जर्मनी व इटली के राज्यों पर पुनः उसका प्रभाव स्थापित किया गया । हेजन ने ठीक ही कहा है वहाँ उच्चादर्श का अभाव और स्वार्थों का

बोलबाला था। सम्मेलन के सेक्रेटरी जेन्ट्स ने कहा था— कांग्रेस का वास्तविक उद्देश्य पराजित प्रदेशों की लूट का विजेताओं में बँटवारा करना था ।

संधि का औचित्य

यूरोप में शांति स्थापना — किन्तु अनेक कमियों के रहते हुए भी संधि में कुछ गुण भी विद्यमान थे । शान्ति समझौते के मूल्यांकन के लिये उस समय की परिस्थितियों का अवलोकन अत्यंत आवश्यक है । उस समय यूरोपीय राजनीतिज्ञों के लिये राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र के सिद्धान्तों को कार्यरूप में लाना कठिन था। यूरोपीय कूटनीतिज्ञों के समक्ष मुख्य समस्या शांति की थी । श्रोडर ने इस सम्बन्ध में कहा है — 1815 ई० में यूरोप के लोग संवैधानिक एवं उच्चाशयी सुध ाारों की अपेक्षा शांति की स्थापना के अधिक इच्छुक थे। इसका कारण स्पष्ट था। वियना राजनीतिज्ञ क्रांति के उदात्त सिद्धान्तों को खतरनाक मानते थे। उन्होंने क्रांति के मानवतावादी सिद्धान्तों को अनेक यूरोपीय राष्ट्रों की उथल—पुथल का कारण माना।

अनेक राज्यों को पुरस्कृत करने के सम्बन्ध में तर्क— जहाँ तक वियना के राजनीतिज्ञों पर निर्णयों में स्वार्थपरता व व्यक्तिगत लाभ की प्राथमिकता देने का आरोप है, इसके लिये यह नहीं भूलना चाहिये कि जिस समय नेपालियन को पराजित किया गया उस समय अनेक राज्यों से सहायता ली गयी थी और उन्हें इब इनाम देना आवश्यक था । यदि ऐसा न किया जाता तो पुनः संघर्ष पैदा हो सकता था ।

काफी सीमा तक निर्णयों में स्थायित्व — प्रायः यह कहा जाता है कि संधि स्थायी नहीं सिद्ध हुई । लेकिन यहाँ पर यह नहीं भूलना चाहिये कि मानव—जीवन में परिवर्तन आता रहता है और इसीलिये किसी ऐसी शांति—संधि की आशा करना जो सदैव चाहती रहे असम्भव रहे, असम्भव है। दिन में स्वप्न देखना है। फिर भी संधि के बहुत से निर्णय लगभग एक शताब्दी तक चलते रहे ।

झ

वैध राजसत्ता के सिद्धान्त का प्रयोग— वैध राजसत्ता के सिद्धान्त को यदि सभी जगह लागू किया जाता तो 1789 ई० से पूर्व की व्यवस्था कायम हो जाती जो अनेक देशों को अस्वीकार्य होती ।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

165

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

166

अन्य अनेक महत्वपूर्ण निर्णय— कुछ भी हो, संधि ने यूरोप की एक लम्बे समय तक अर्थात् 40 वर्षों तक शांति व्यवस्था प्रदान की। प्रशा की बढ़ती हुई शक्ति

के कारण जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ । इसी प्रकार सार्डीनिया की शक्ति ने इटली के एकीकरण को बल प्रदान किया। कांग्रेस ने दास – प्रथा जैसे अमानवीय व्यवस्था की भर्त्सना की। यूरोपीय राज्यों में अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास के लिये कंसर्ट आफ यूरोप की स्थापना की गयी । आधुनिक य.एन.ओ. की इसी कंसर्ट का विकसित रूप माना जा सकता है। वियना की व्यवस्था का मल्यांकन करते हुए कटलबी ने कहा है वियना सभा ने लाभार्जन और स्वरक्षा के साथ ही कुछ निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार भी कार्य किया था। उसने कुछ परिवर्तनों के साथ जहाँ भी पुरानी व्यवस्था कायम हो सकती थी, वहाँ उसे कायम किया। उसने इस बात की कोशिश की कि फ्रांस में सैनिक शक्ति का पुनः उत्थान न हो। उसने इस बात की गारण्टी देने की कोशिश की कि जो व्यवस्था कायम कर दी गई है, उसमें किसी प्रकार का उलट–फेर न हो। उसने एक ऐसी नीति भी शुरू की जिसके अनुसार भावी विवादों को तय किया जा सके। उसने मेटरनिख के सिद्धान्त के अनुसार पाँच बड़ी शक्तियों के यूरोपीय समाज की स्थापना की। इस कांग्रेस की व्यवस्था कुछ ऐसी रहे कि यूरोप में आगे के चालीस सालों तक कोई बड़ी लड़ाई लड़ी गई। हेज ने संधि के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है– वियना के नेता आश्चर्यजनक रूप से अत्यन्त कम समय में ही, विरोधी हितों के होते हुए भी ऐसा समझौते पर पहुँच गये जो अपने से पूर्व और बाद में समझौते से काफी स्थायित्व लिये हुए था ।

मेटरनिख युग

फ्रांस के सम्राट नेपोलियन महान के पतन के उपरान्त सन् 1848 ई० की क्रांति के समय तक मेटरनिख ही यूरोप का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था । इसी कारण से 1815 ई० से 1848 तक काल प्रायः मेटरनिख युग (जीम म्तं व डिमजजमतदपबी) कहलाता है। इस काल में मेटरनिख की नीति से लगभग सभी यूरोपीय देश प्रभावित थे और उसकी धाक समस्त यूरोप में पूर्णतया व्याप्त थी, यद्यपि पश्चिमी यूरोप के पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस और बेल्जियम नामक देशों में संवैधानिक शासन की स्थापना से सन् 1830 ई० की क्रांति के उपरान्त उसका प्रभाव कम पड़ गया था । परंतु मध्य यूरोप के इटली, जर्मनी और आस्ट्रिया, हंगरी आदि देशों में मेटरनिख का आतंक सन् 1848 ई० तक छाया हुआ था । मध्य यूरोप में आस्ट्रिया का सबसे अधिक महत्व था । वहाँ का सम्राट जर्मनी की रियासतों के संघ का प्रधान और उत्तरी इटली का स्वामी था। मध्य यूरोप में उसे विशाल साम्राज्य का प्रसार था। उस विस्तृत साम्राज्य के प्रधानमंत्री पद पर मेटरनिख की नियुक्ति सन् 1809 ई० में की गयी थी। उसी समय से अपनी राजनीतिक सूझ–बूझ और कुशलता द्वारा मेटरनिख को अपने प्रभाव और शक्ति में वृद्धि करने के अवसर प्राप्त होते रहे और कुछ ही समय बाद उसकी गणना यूरोप के प्रमुख व्यक्तियों में की जाने लगी ।

मेटरनिख (डमजजमतदपबी) 1. मेटरनिख का जन्म राइन नदी के तट पर बने काब्लेन (ब्वइसमत) नामक नगर के एक प्रसिद्ध जागीरदार के यहाँ 15 मई सन 1773 ई० को हुआ । उसका पिता पवित्र रोमन सम्राट के यहाँ एक उच्च पद पर

नियुक्त था। फ्रांसीसी राज्यक्रांति के समय वह स्ट्रासवर्ग के विश्व – विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। फ्रांस में क्रांति के दौर में प्राण के मोह से देश छोड़कर भागे कुलीनों और उच्च पादरियों की करुण गाथाओं का उसके युवा हृदय पर बहुत गहरा दुष्प्रभाव पड़ा । था । इसक उपरान्त फ्रांस में आतंक के राज्य की स्थापना किये जाने तथा उसमें कुलीनों, राजतन्त्रवादियों, उच्च पादरियों, साधारण जनता और क्रान्ति के समर्थक विरोधी दलों के सदस्य समान रूप से शक्तिशाली जैकोबिन नेताओं द्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचारों की हदय – विदारक घटनाओं के समाचारों को सुन–सुनकर उसका मन क्रांति और क्रांतिकारी नेताओं के प्रति घृणा से उद्वेलित होने लगा । नेपोलियन ने जर्मनी में राइन राज्य संघ का निर्माण करते समय मेटरनिख की जागीर जब्त कर ली थी। उसी समय उसने निर्णय कर लिया था कि यदि ईश्वर ने उसे सामर्थ्य और प्रशासनिक अधिकारों की प्राप्ति करवाई तो वह अपने प्रभाव – क्षेत्र के अन्तर्गत, क्रान्तिकारी विचारों और राष्ट्रीय भावनाओं का विकास नहीं होने देगा। शक्ति और प्रभाव की प्राप्ति के उपरान्त आस्ट्रिया के विशाल साम्राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त होकर वह प्रायः अपने हार्दिक उद्‌गारों का प्रदर्शन निम्न प्रकार से किया करता था – '' यूरोपीय समाज की सुन्दर इमारत को क्रांतिकारियों ने अपने घृणित कार्यों से ध्वस्त और धराशायी कर दिया है। भगवान ने मुझे
इसीलिए इस संसार में उत्पन्न किया और शक्ति प्रदान की है कि यूरोपीय समाज की क्रांति द्वारा विकृत बनायी गई आकृति को फिर से आकर्षक और सुन्दर बनाकर उसकी रक्षा कर सकूँ। ''

आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री राजकुमार कॉनिज (च्तपदबम झंनदपज्र) ने मेटरनिख को सुयोग्य युवक समझकर सन् 1795 ई० में अपनी पोती का विवाह उसके साथ कर दिया। इस विवाह से उसके आदर, मान और प्रतिष्ठा में आशातीत वृद्धि हुई। उसकी नियुक्ति राजदूत के प्रतिष्ठित पद पर फ्रांस, रूस और प्रशा जैसे शक्तिशाली यूरोपीय देशों में की जाने लगी । सम्राट नेपोलियन के दरबार में भी वह कुछ समय तक आस्ट्रिया के राजदूत के रूप में रहा था। सन् 1809 ई० में ही वयोवृद्ध प्रिंस कॉ निज का स्वर्गवास होने पर मेटरनिख को केवल 36 वर्ष की आयु में ही आस्ट्रिया के साम्राज्य के प्रधानमंत्री के गौरवशाली पद की प्राप्ति हुई। उसने इस पद पर रहते हुये 39 वर्ष तक आस्ट्रिया के सम्राट का निरंकुश शासन स्थिर रखा। सन् 1848 ई० के मार्च मास में राष्ट्रवादियो उदारवारियाँ और समाजवादियों के वियना में क्रांति करके मेटरनिख के महल को चारों ओर से घेर लिया। उस भीषण स्थिति में मेटरनिख के हाथ–पाँव फूल उठे । आस्ट्रिया के सम्राट की ओर से उसे सहयोग के सम्बन्ध में पहले ही नकारात्मक उत्तर मिल चुका था। इंग्लैंड में ही उसने अपने जीवन का शेष समय अपने परम मित्र बैंलिगटन के ड्यूक के साथ व्यतीत किया। 86 वर्ष की लम्बी आयु भोग कर सन् 1859 ई० में वह संसार से चल बसा।

सर्वाधिक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ (डवेज थ्ंउवनेै जंजमेउंद) – मेटरनिख सन् 1815

ई० से 1848 ई० तक यूरोप का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ रहा। उस काल में उसके समान प्रभावशाली व्यक्ति सम्पूर्ण यूरोपीय महाद्वीप पर अन्य कोई नहीं था। यूरोपीय कूटनीति का वही प्रधान संचालक माना जाता था, प्रति– क्रियावादी भावनाओं का वह साक्षात अवतार था । आचार–विचार ओर वेश–भूषा से वह प्राचीनता का पुजारी और नीति में पूर्णरूप में प्रतिक्रियावादी था। उसने यूरोप में फिर से क्रांति के पूर्व की स्थिति की स्थापना के लिए भारी प्रयत्न किये थे तथा कुछ समय के लिये उसे अपने प्रयासों में अद्भुत सफलता की उपलब्धि भी हुई थी। वह क्रांति को एक भयंकर संक्रामक रोग के समान अनिष्टकारी समझता था । वह प्रायः कहा करता था कि क्रांतिरूपी भीषण बीमारी की तुरन्त ही रोकथाम करके उसे नियन्त्रित कर लेना उचित है, नहीं तो वह द्रुतगामी से अपना प्रसार करके भीषण रूप धारण कर लेगी। वह क्रांति को एक ऐसा महा–कार्य एवं शक्तिशाली दानव मानता था जिसमें सम्पूर्ण यूरोप की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को गिराने की सामर्थ्य थी। वह क्रांति की उपमा ऐसे सड़े और दुर्गन्ध ा युक्त माँस के लोथड़े से किया करता था, जिसे तुरन्त ही भस्म करने की आवश्यकता थी ।

निरंकुशता का समर्थक (क्ममिदकमत वि ।इेवसनजपवद) – वह निरंकुशता का पूर्णरूप से समर्थक नहीं संरक्षक भी था। उसकी राजा की निरंकुशता और दैवीय अधिकारों में पूर्ण आस्था थी। वह शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि और केवल उसी के सम्मुख उत्तरदायी मानता था। उसने अपनी नीति का आधार स्थिति को यथापूर्व स्थिर रखने का बना रखा था। इसी कारण से वह क्रांति आरम्भ होने से पूर्व की यूरोप की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की फिर से स्थापना करना चाहता था । इसीलिए उसने नेपालियन के पतन के उपरान्त यूरोप में एक ओर से दूसरी ओर तक क्रांतिकारी विचारों और राष्ट्रीयता की प्रवृत्तियों को नष्ट कर क्रांति पूर्व की व्यवस्था की स्थापना की थी। इस व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने के उद्देश्य से उसने इंग्लैण्ड, प्रशा और रूस के सहयोग से एक संघात्मक व्यवस्था की स्थापना की जो यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था (ब्वदबमतज वि्म्तिवचम) के नाम से प्रख्यात हुई। इसके द्वारा उसने यूरोप के छोटे–छोटे राज्यों पर नियन्त्रण रखने की स्थापना की। यूरोपीय राजनीति पर उसका प्रभाव सन् 1848 तक पूर्णरूप से छाया रहा। उसने पुर्तगाल, स्पेन, पीडमाण्ट और जर्मनी की उदार प्रवृत्तियों और राष्ट्रीय आन्दोलनों का पूर्णरूप से दमन किया। सन् 1819 ई० में उसी ने कार्ल्सवाद अधिनियमों (ब्ंतसेइंक क्मबतमें) की घोषणा करके जर्मनी में उदारवादी आन्दोलनों का कठोरता के साथ दमन किया था । उसका विचार था कि गणतन्त्रात्मक प्रवृत्तियाँ दिन को रात्रि के गहन अन्धकार में परिवर्तित करने की क्षमता से परिपूर्ण है। अतः उसका दमन करना वह अपना प्रमुख कर्तव्य मानता था। सन् 1848 ई० में अपने पतन होने तक वह इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ का दमन सफलता के साथ करता रहा था ।

पश्चिमी विश्व

छव्जे

माड्यूल 4
इकाई 10
फ्रांस राज्य की क्रांति

स्वयं को सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति समझना (ज्व जीपदा ीपउेमसि जीम उवेज पउचवतजंदज चमतेवद) – उसमें गर्व की मात्रा बहुत अधिक थी। वह स्वयं को बहुत महत्वशाली व्यक्ति मानता था और यही अनुभव करता था कि सम्पर्ण विश्व का भार अकेले उसी के कन्धों पर रखा हुआ है। वह निम्न शब्दों में अपनी महत्ता का प्रदर्शन करता था । मेरी स्थिति ऐसी अद्भुत है कि जिस स्थान पर मैं रहता हँ वहीं सभी के दृष्टि पहुँचती है और सभी प्रकार की आशाओं का मैं केन्द्र–बिन्दु बना रहता हूँ, जबकि दूसरे कुछ विचार नहीं करते, क्यों करता हूँ जबकि दूसरे नहीं करते और क्यों लिखता हैं जबकि अन्य व्यक्ति नहीं लिखते हैं?

आस्ट्रियन साम्राज्य की रूपरेखा (ल्जसपदम व ि।नेजतपंद म्उचपतम) – आस्ट्रियन साम्राज्य यूरोप महाद्वीप का एक बहुत ही विशाल एवं विस्तृत साम्राज्य था । नेपोलियन के पतन के उपरान्त वियना की कांग्रेस के निर्णयों से आस्ट्रिया का साम्राज्य यूरोप का सबसे अधिक विस्तृत साम्राज्य बन गया था। मेटरनिख को इस प्रकार की स्थिति मेटरनिख की कार्यपटुता और उच्च कोटि की राजनीतिज्ञ के कारण ही उपलब्ध हो सकी थी। उस काल में आस्ट्रिया, हंगरी, बोहमिया जिसे आधुनिक काल में चेकोस्लोवाकिया कहा जाता है, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड का पश्चिम भाग और उत्तरी तथा मध्य इटली के अनेक प्रान्त सम्मिलित थे। साम्राज्य के उपरोक्त विभिन्न प्रान्तों एवं भागों में अनेक जातियों के लोग बसे हुये थे। उनकी भाषा, बोलचाल, वेशभूषा, रहन–सहन, ध ार्म, आचार–विचार, रीति–रिवाज, सभ्यता और संस्कृति एक–दूसरे से भिन्न थी । इस प्रकार उस काल का आस्ट्रियन साम्राज्य भिन्न–भिन्न प्रकार की भाषाओं, धर्मों, संसकृतियों, सभ्यताओं आदि का अजायबघर बना हुआ था । उसकी राजध ाानी वियना थी । वियना और उसके आस–पास के क्षेत्रों में जर्मन जाति की बहुलता होने के कारण जर्मन भाषा ही साम्राट की राजभाषा मानी जाती थी। राजकीय विभागों में जर्मन भाषा में ही कार्य किया जाता था । इसलिए साम्राज्य

के सभी प्रान्तों में जर्मन भाषा का अध्ययन किया जाना अनिवार्य था और सभी को उसका ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था।

आस्ट्रिया की दशा (ब्वदकपजपवद व ि।नेजतपं) – आस्ट्रिया के साम्राज्य में लगभग 2 करोड़ 30 लाख चौक, मगयार, स्लाव, क्रीट, स्लोवन और सर्व आदि विभिन्न जातियों के व्यक्ति बसे थे, इन पर शासन करना कोई सरल कार्य नहीं कहा जा सकता । आस्ट्रिया के साम्राज्य को उस समय मध्यकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक आदि संस्थाओं का केन्द्र माना जाता था। सव्रत्र कुलीनों, सामन्तों और उच्च पादरियों को सन् 1789 ई० की राज्यक्रांति से पूर्व के फ्रांसीसी समाज की भाँति विशेषाधिकार प्राप्त थे। राज्य के सभी भागों में उच्च पदों पर इन्हीं का अधिकार था। वे साधारण वर्ग के श्रमिकों कृषकों एवं अन्य व्यक्तियों का विविध प्रकार से शोषण करते रहते थे। चर्च के अधिकार भी बहुत अधिक थे। उनकी अपनी अदालतें (प्दुनपेपजपवद ब्वनतजे) साम्राज्य के प्रमुख नगरों में थीं, जिनके द्वारा धर्म विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जाता था। देश की समस्त भूमि पर कुलीनों और सामन्तों का अधिकार था। उन्हें राज्य को किसी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था । वे तरह–तरह के नजराने भेंट आदि लेकर निर्धन कृषकों अर्द्ध–दासों एवं श्रमिकों से बेगार में अपने सभी कार्य कराते रहते थे। इस प्रकार कुलीना, सामन्तों और उच्च पादरियों आदि विशेषधिकार से सम्पन्न व्यक्तियों के पास अपार धन था । इसके विपरीत शिल्पकारों, कृषको और श्रमिकों की दशा बड़ी दयनीय थीं

शासन प्रणाली (।कउपदपेजतंजपअम ैलेजमउ) – आस्ट्रिया का सम्राट निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक था। समस्त शासन तन्त्र उसने अपने हाथ में ले रखे थे। मेटरनिख साम्राज्य के प्रधानमंत्री पर नियुक्त था । सम्पूर्ण साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभक्त किया गया था । प्रान्त का प्रान्तपति कुलीन वर्ग का सामन्ता होता था। शासन गुप्तचर विभाग, सेना और पुलिस पर आधारित था। मेटरनिख की शासन प्रणाली जो मूलरूप से आधुनिक भावनाओं और उदार विचारधाराओं के विरुद्ध थी, विस्तृत रूप से संगठित गुप्तचर व्यवस्था, सभी महत्वपूर्ण मामलों में हस्तक्षेप करने वाली पुलिस, उदार प्रवृत्तियों का दमन और जनता पर कठोर नियन्त्रण पर टिकी हुई थी । प्रेस, शिक्षा और नाट्यशालाओं आदि पर पुलिस की सदैव कठोर दृष्टि पड़ती रहती थी । साम्राज्य की सीमाओं पर बनी चौकियों के अधिकारी साम्राज्य में प्रवेश पाने के लिये आये हुए माल, व्यापारियों और यात्रियों की जाँच–पड़ताल बड़ी कठोरता के साथ करते थे। उदार

विचार–धाराओं के प्रचार और समर्थन करने वाली पुस्तकों एवं समाचार–पत्रों आदि को साम्राज्य की सीमा में नहीं लाया जा सकता था । सम्राट की निरंकुशता असीमित थी । उसकी इच्छा ही कानून बनी हुई थी। मन्त्री, न्यायाध ाीश, सेनापति, राजदूत आदि समस्त उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति वह स्वयं ही करता था तथा इच्छा होने पर उन्हें पृथक करके नवीन नियुक्तियाँ भी करता रहता था। उसकी राजा के दैवीय अधिकारों में पूर्ण आस्था थी । अतः वह अपने

Notes

किये हुए समस्त अच्छे–बुरे कार्यों के लिये स्वयं को ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य के सम्मुख उत्तरदायी नहीं मानता था। शासन का केन्द्रीयकरण नहीं किया गया था। इतिहासकार हेज (भ्लमे) ने मेटरनिख की शासन प्रणाली की समीक्षा निम्न प्रकार से की है– बाहर देशों से क्रान्तिकारी विचारधाराओं के प्रवाह को साम्राज्य की सीमाओं में प्रवाहित होने से रोकने के लिए उसने हेम्सबर्ग वंश की भूमि के चारो ओर चुगी चौकियों तथा सेंसर दीवार खड़ी कर दी थीं।

देश के भीतर उदार भावनाओं के विकास को रोकने के अभिप्राय से उसने कठोरता के साथ प्रेस पर नियन्त्रण रखा, पुलिस की शक्ति में वृद्धि की और स्कूलों में रूढ़िवादी पादरियों की नियुक्ति को स्थायी बनाया। यहाँ तक कि राजकीय निरीक्षकों द्वारा ग्रिलपार्जर के नाटकों में उदारवाद की सामान्य – सी झलक देख ली गयी जिससे आस्ट्रिया के उस सर्वाधिक ख्याति प्राप्त नाटककार को लिखना ही बन्द कर देना पड़ा। केवल संगीत ही एक ऐसा विषय था जो मेटरनिख के हस्तक्षेप की परिधि से बाहर रहा ।

मेटरनिख की नीति के दुष्प्रभाव (म्अपस मििबजे व िडमजजमतदपबीˈ चवसपबल) – मेटरनिख उदार विचारों, क्रांति के सिद्धान्तों और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का केवल घोर विरोधी ही नहीं वरन् शत्रु भी था। इसी कारण से उसने इस प्रकार के विचारों एवं प्रवृत्तियों का बड़ी क्रूरता के साथ दमन किया। जिन व्यक्तियों ने आस्ट्रियन साम्राज्य की सीमाओं के भीतर समानता, स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की स्थापना के लिये प्रयास किये थे। वे उसके दमनचक्र से अपनी रक्षा नहीं कर सके। साम्राज्य के भीतर न तो व्यक्ति राष्ट्रीय भावनाओं का प्रदर्शन ही कर सकता था और न प्रेस द्वारा उनका प्रचार ही कर सकता था । राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के समर्थक विदेशी व्यक्तियों का साम्राज्य की सीमाओं के भीतर प्रवेश कठोरता के साथ प्रतिबन्धित था। वे स्वयं अथवा उनकी रचनायें साम्राज्य की सीमा के भीतर किसी भाँति भी प्रवेश नहीं पा सकती थी । इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि यूरोप के बुद्धिजीवी वर्ग से आस्ट्रिया का सम्पर्क विच्छेद हो गया। अतः आरिस्ट्रया की बौद्धिक उन्नति अवरुद्ध हो गयी तथा यूरोप में आस्ट्रिया पिछड़ा देश माना जाने लगा। इसी के कारण आस्ट्रिया का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार का विकास रुक गया। इस प्रकार विकास की गति अवरुद्ध हो जाने का आस्ट्रिया के कला–कौशल, उद्योग–धन्धों और व्यापार पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और उनकी उन्नति भी रुक गई।

मेटरनिख और जर्मनी (डमजजमतदपबी ंदक ळमतउंदल)

रूस

मेटरनिख और जर्मनी (डमजजमतदपबी ंदक ळमतउंदल) – नेपोलियन ने जर्मनी में स्थापित प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया था कि मेटरनिख चाह कर भी उनकी पुनस्थापना पूर्णरूप से नहीं कर सका था । उसने अपने प्रभाव को काम में लाते हुए वियना की कांग्रेस में इंग्लैंड, और प्रशा के प्रतिनिधियों का सहयोग प्राप्त करके जर्मनी का 39 राज्यों का एक संघ

निर्मित किया । आस्ट्रिया के सम्राट को इस संघ का अध्यक्ष पद प्रदान किया गया। संघ के लिये एक संसद (थ्मकमतंस क्पमज) की भी व्यवस्था की गई। उस संसद के सदस्यों की नियुक्ति संघ में सम्मिलित विभिन्न राज्यों के शासकों द्वारा मनोनीत करके की जाती थी। अतः संसद के सदस्य किसी भी निर्णय के लिये स्वतन्त्र नहीं थे। उन्हें अपने शासकों की इच्छानुसार ही प्रस्तावों पर मतदान करना पड़ता था। इस प्रकार संसद की कार्यवाही और कार्यप्रणाली अस्पष्ट और चक्रव्यह के समान उलझी हुई रहती थी। इसके अतिरिक्त उनके निर्णय भी अति मन्दगति से इतनी देर में किये जाते थे कि उन निर्णयों का महत्व ही जाता रहता था। संघ के पास अपने एवं कोष की भी कोई व्यवस्था नहीं की गई थी, परन्तु सीमित अधिकारों वाले एक न्यायालय की अवश्य स्थापना की गई थी। सभी राज्य अपने आन्तरिक शासन में स्वतन्त्र थे,
परन्तु वे आपस में एक–दूसरे से युक्त नहीं कर सकते थे तथा जर्मनी की रक्षा के लिये सम्मिलित रूप से उत्तरदायी थे । इस प्रकार मेटरनिख द्वारा की गई जर्मनी की पुनर्व्यवस्था वहाँ के उत्तरदायी राष्ट्रीय नेताओं

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमस–िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

को भुलावे में डालने के लिये एक धोखे की ट्टी ही थी और 39 राज्यों को लेकर बनाया गया संघ वास्तविक रूप में एक बड़ा ही ढीला संघ था।

वैध शासन की स्थापना के प्रयास (र्मवितजे वित बवदेजपजनजपवदे उवदंतबील)
मेटनरिख और उसके सहयोगियों द्वारा की गई इस प्रकार की जर्मनी की पुनर्व्यवस्था से यहाँ के उदारवादियों और राष्ट्रवादियों एवं प्रगतिशील व्यक्तियों को भारी निराशा हुई। प्रशा द्वारा नेपोलियन के विरुद्ध छेड़े गये मुक्ति के युद्ध के कारण उनके हदय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट अभिलाषा से भर उठे । अतः वे वैध शासन की स्थापना के लिये प्रयत्नशील हो उठे। यद्यपि प्रशा और संघ में सम्मिलित अन्य अनेक राज्य अपने यहाँ वैध राजसत्ता की स्थापना एवं जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संविधान के निर्माण कराने के लिये सहमत थे, परंतु मेटरनिख के हस्तक्षेप करने के कारण वे इन कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सके । देश – भक्तों ने प्रशा के राजा को स्मरण कराया कि नेपालियन के विरुद्ध जनता की सहायता प्राप्त करते समय उसने आश्वासन प्रदान किया था कि वह युद्ध समाप्ति के उपरान्त एक वर्ष की अवधि में ही देश को जन–प्रतिनिधियों पर आधारित वैधानिक शासन की उपलब्धि करा देगा। परंतु मेटरनिख विरोध के कारण वह ऐसा करने में असमर्थ रहा। मेटरनिख का कथन

था कि लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियों एवं वैधानिक शासन को प्रोत्साहन देना अराजकता को निमन्त्रित करना है तथा इस प्रकार के प्रयासों को कठोरता के साथ दमन करना प्रत्येक शासन का प्रमुख कर्तव्य है।

गुप्त समितियों की स्थापना (थ्वतउंजपवद वि िमबतमज ेवबपमजपमे) – जर्मनी ने वैधानिक शासन की स्थापना न होते देख वहाँ के उदारवादी देशभक्तों अध्यापक विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों एवं छात्रों ने देश भर में गुप्त समितियों का जाल – सा बिछा दिया । इस प्रकार की गुप्त समितियों में ब्रूबो शेष शैफ्ट नाम की समिति की शाखायें सम्पूर्ण देश में फैली हुई थीं। समिति और उसकी शाखायें राष्ट्रीयता, क्रांतिकारी विचारों और लोकतन्त्र के सिद्धान्तों का जर्मनी में पूरी तरह प्रचार करने लगीं । कालिज और विश्वविद्यालयों के छात्रों ने इस प्रकार के प्रचार में अद्‌भुत उत्साह का परिचय दिया। देश के विभिन्न विश्व – विद्यालयों के छात्र संघ ने वार्ट वर्ग नामक स्थान पर मार्टिन लथर के धर्म–सुध ाार एवं लीपजिंग युद्ध की पावन स्मृति मनाने के लिए भारी उत्सव में जर्मनी के कोने–कोने से लाखों व्यक्तियों ने भाग लिया। छात्रों एवं देशभक्त प्रचारक ने राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र के सिद्धान्तों का खुलकर प्रचार किया । फलतः शीघ्र ही जर्मनी में राष्ट्रीय जागरण की लहर अपना प्रभाव प्रकट करने लगी। मेटरनिख जो उस समय तक के क्रियाकलापों से पुरातनवादियों का उच्च पुरोहित एवं अधिकारपूर्ण प्रवृत्तियों का परम भक्त सिद्ध हो चुका था, इस प्रकार के राष्ट्रीय जागरण को कदापि सहन नहीं कर सकता था। अतः उसने जर्मनी में अपना कठोर दमन चक्र चलाने के लिये एक्स– ला– शापेल (।प• – सं – बेंचमससम) में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में स्वीकृति प्राप्त कर ली ।

के

मेटरनिख की दमनकारी नीति (डंजजमतदपबीष्े त्मचतमेपअम चवसपबल) उस समय राष्ट्रवादियों ने कोत्सेब्सु (ज्ञवजेमइने) नाम एक पत्रकार की, जिसे रूस के लिये जासूसी करने का सन्देह था, हत्या कर दी। इससे मेटरनिख को राष्ट्रवादियों का दमन करने का अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया। उसने कार्ल्सवाद (ब्ंतसइंक) नामक स्थान में संसद (थ्मकमतंस क्पमज) का अधिवेशन सन् 1819 ई० में बुलाया और उसमें जर्मनी के राष्ट्रवादी आन्दोलनों का कठोरता के साथ दमन करने के उद्देश्य से कई कठोर कानून पास कराये। यही कानून इतिहास में कार्ल्सवाद डिकरियों (क्मबतमे वि ब्ंतसेइंक) के नाम से प्रसिद्ध है । इसके अनुसार कालेजों और विश्वविद्यालयों में छात्रों एवं अध्यापकों पर कड़ा नियन्त्रण रखने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गई। वहाँ के पाठ्यक्रम से राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन प्रदान करने वाले विषयों एवं पुस्तकों को हटा दिया गया और छात्रों के लिये राजनीतिक कार्यों में भाग लेना नियम विरुद्ध घोषित कर दिया। प्रेस की स्वतन्त्रता का हरण करके उस पर कठोर नियन्त्रण रख दिया। देश–भक्तों, राष्ट्रवादियों और उदारवादियों को बन्दी बनाकर कैदखानों में डाला जाने लगा । सैनिक शक्ति का प्रयोग करके हनोवर सेक्सनी ब्राज्विक तथा जर्मनी के दक्षिणी राज्यों में जहाँ–जहाँ देशभक्तों ने वैधानिक शासन की

स्थापना की थी, वही फिर से पुराने निरंकुश शासन की स्थापना कर दी गई। इस प्रकार मेटरनिख के प्रयत्नों से जर्मनी में राष्ट्रीय आन्दोलन दब गये।

घातक परिणाम (थ्जंस त्मेनसजे) मेटरनिख की दमनकारी नीति के परिणाम आस्ट्रिया के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध हुए । आस्ट्रिया की सभी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक और सांस्कृतिक उन्नति रुक गई। अतः आस्ट्रिया प्रगति की दौड़ में प्रशा से पिछड़ गया और जर्मनी में उसका प्रभाव क्षीण पड़ने लगा। इसके विपरीत प्रशा के प्रभाव का जर्मनी के छोटे–बड़े राज्यों में द्रुतगति से प्रसार होने लगा । प्रशा का पुनरुत्थान नेपालियन के पतन से पूर्व ही आरम्भ हो गया था। प्रशा के सुयोग्य मन्त्रियों और प्रभावशाली नेताओं ने विविध प्रकार के सुधार करके प्रशा की चहुँमुखी उन्नति की । प्रशा के राजा ने भी देश – भक्तों की माँगों को स्वीकार करते हुए अपने यहाँ उदार शासन की स्थापना कर दी । यद्यपि मेटरनिख ने अपने प्रभाव को काम में लाते हुए प्रशा के राजा जो देश–भक्तों का दमन करने, उदार शासन को स्थगित करने तथा जनता को दिये गये विविध प्रकार के अधिकारों को रद्द करने के लिये विवश कर दिया था । जिससे प्रशा की प्रगति भी अवरुद्ध होने लगी, परन्तु इतने पर भी प्रशा में आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक उन्नति यथापूर्ण अधिकाधिक होती रही । अतः जर्मनी और आस्ट्रिया की अपेक्षा प्रशा के प्रभाव का कहीं अधिक विस्तार होता गया । आस्ट्रिया को जर्मनी में प्रभावहीन बनाने में निम्नलिखित दो कारणों का प्रमुख हाथ रहा–

1. प्रशा की उदार नीति– प्रशा का राजा वैधानिक शासन की स्थापना तो नहीं कर सका, परंतु उसने मेटरनिख द्वारा जर्मनी में प्रचलित किये गये अनेक दमनकारी कानूनों को भी अपने यहाँ लागू नहीं किया। उसकी इस उदार नीति के कारण प्रशा में राष्ट्रीयता के समर्थक और उदारवादी व्यक्तियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। जनता के नेता उसे आदर की दृष्टि से देखने लगे। इसके विपरीत आस्ट्रिया अपनी दमनकारी नीति के कारण जनता का समर्थन प्राप्त करने से वंचित रहा और जर्मनी में उसका प्रभाव क्षीण पड़ने लगा ।

2. जालवेरीन की स्थापना – जर्मनी में प्रशा के प्रभाव वृद्धि का दूसरा प्रमुख कारण जालवेरीन की स्थापना का था। प्रशा के शासक ने सन् 1818 ई० में जर्मनी की विभिन्न छोटी–बड़ी रियासतों के आर्थिक विकास के उद्देश्य से एक चुंगी संघ की स्थापना की जो लावेरिन (ंवसससअमतपमद) के नाम से प्रख्यात है। इसकी स्थापना उन राज्यों में एकता और संगठन की भावना के प्रसार करने के लिये भी की गयी थी। आस्ट्रिया हनोवर तथा दक्षिणी जर्मनी की दो–चार रियासतों के अतिरिक्त शेष सभी जर्मनी राज्यों ने चुंगी संघ की सदस्यता ग्रहण की। संघ के सदस्य राज्य अपने राज्यों की सीमा में आने वाले प्रशा के व्यापारिक माल पर चुंगी वसूल नहीं करता था। इस संघ ने सदस्य राज्यों की सीमा पर विभिन्न महत्वपूर्ण माँगों पर अनेक चुंगी वसूल करते थे। इस प्रकार चुंगी (ब्नेजवउ कनजल) से होने वाली आय का प्रशा के शासक ने संघ के सदस्य राज्यों के यातायात के साधनों के सुधार में प्रयोग किया। इस कार्य के

कुछ ही वर्षों में उन राज्यों की आर्थिक उन्नति होने लगी और वे प्रशा को अपना शुभचिन्तक एवं नेता मानने लगे। इस प्रकार प्रशा के प्रभाव और शक्ति में क्रमशः वृद्धि होने लगी जिसके फलस्वरूप सन् 1866 ई० में सेडोवा के युद्ध (ठंजजसमव वि ैकवं) में प्रशा ने आस्ट्रिया को पराजित करके जर्मनी में उसके प्रभाव की समाप्ति कर दी।

मेटरनिख और इटली – (डंजजमतदपबी – प्जंसल) – यूरोप महाद्वीप के दक्षिणी भाग में इटली का प्रायद्वीप स्थित है। रोमन साम्राज्य के पतन के उपरान्त सम्पूर्ण इटली अनेक छोटे–बड़े राज्यों में विभक्त हो गया था। समय की गति के साथ उन राज्यों की प्रजा अपनी राष्ट्रीय एकता का विस्मरण कर स्वयं को इटली का निवासी न समझ उन्हीं राज्यों का निवासी मानने लगी जिनमें वह निवास करती थी। फ्रांस की राज्य क्रांति का इटली पर प्रभाव पड़ा । नेपोलियन ने उन छोटे–छोटे राज्यों में से अनेक को परस्पर मिलाकर उनके स्थान पर लोकतन्त्र राज्यों की स्थापना की जिससे उनमें पुनः राष्ट्रीयता का विकास होने लगा। इटली का बुद्धिजीवी वर्ग देश के एकीकरण के स्वप्न देखने लगा । नेपोलियन ने वहाँ अपने विधान को

लागू करके उच्च पादरी वर्ग और कुलीनों के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया और सभी को कानून की दृष्टि से समानता प्रदान की। उसके इस कार्य से इटालियन जनता में क्रांति के सिद्धान्तों एवं क्रांतिकारी विचारों का विकास होने लगा। इस प्रकार नेपोलियन के कार्यों के परिणाम स्वरूप इटली के निवासी एकता के सूत्र में बँधने लगे।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

171

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

172

मेटरनिख द्वारा इटली का दमन ैनचचतमेेपवद वि प्जंसल इल डमजजमतदपबी) – नेपोलियन के पतन के पश्चात् सन 1815 ई० में वियना की काँग्रेस के निर्णयों के अनुसार इटली के विभिन्न प्रदेश वहाँ के क्रान्ति पूर्व शासकों को फिर से दे दिये गये। उन शासकों ने अपने छोटे–छोटे राज्यों में अपने निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना की। इन सभी छोटे–छोटे राज्यों ने जिसमें टस्कनी, परमा, मोडेना, पोप का राज्य, नेपिल्स और पीडमाण्ट प्रमुख थे, आस्ट्रिया की अधीनता स्वीकृत की इसका प्रमुख कारण यही था कि उन्हें अपने पैतृक राज्यों को मेटरनिख की कृपा से ही पुनः प्राप्ति हो सकी थी। अब वे मेटरनिख की सहायता से ही अपने निरंकुश शासन को स्थिर रख सकते थे। परंतु इटली निवासी राष्ट्रीयता की उदार भावनाओं, क्रान्ति के पुनीत सिद्धान्तों

और लोकतन्त्र शासन प्रणाली के मीठे फल चख चुके थे। अतः उन्हें नष्ट किया जाते देख उन्होंने फिर से विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। सन् 1800 ई० में नेपिल्स के देशभक्तों ने यहाँ के निरंकुश शासकों को भगाकर देश में नवीन संविध् ाान की स्थापना की। वहाँ की क्रांति से प्रभावित पीडमाण्ट के देशभक्तों ने भी सन् 1819 ई० में अपने यहाँ क्रान्ति की ज्योति जगाकर अपने स्वेच्छाचारी शासक को देश से भगा दिया और नवीन संविधान तैयार करके उसके अनुसार शासन – व्यवस्था की स्थापना की। मेटरनिख ने लेबाख की कांग्रेस में इंग्लैंड का विरोध होते हुये भी इटली के विद्रोहों के दमन की स्वीकृति प्राप्त की । इसके उपरान्त उसने आस्ट्रिया की सेना भेजकर दोनों राज्यों में क्रांति का कठोरता के साथ दमन किया और नवीन संविधान स्थापित करके पुनः वहाँ के निरंकुश शासकों के स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना की। उसके कठोर दमन के परिणामस्वरूप दोनों राज्यों में सहस्त्रों देशभक्तों को मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा। सहस्रों को बन्दीधरों में कठोर यन्त्रणा सहन करनी पड़ी और सहस्रों को अपने प्राणों की रक्षार्थ विदेशों में शरण लेनी पड़ी। इसी प्रकार सन् 1830 ई० की फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव से जिस समय पीडमाण्ट पोर के राज्य और मोडेना में विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हुई तो मेटरनिख ने पुनः निरंकुश शासन की स्थापना की ।अतः देश में सर्वत्र राजनीतिक शिथिलता का प्रसार होने लगा। इटली को भी जर्मनी की भाँति हाथ–पैर बाँधे मेटरनिख के विजयोल्लास से पूर्ण प्रतिक्रियावादी रथ के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा।

इटली का शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उदय (त्पेम व िप्जंसल ` ˙ चवमतनिस दंजपवद)– इटली के देशभक्तों ने मेटरनिख के दमन चक्र का सामना करने में स्वयं को असमर्थ जानकर अपने आन्दोलनों का रूप बदल दिया। उन्होंने इटली को आस्ट्रिया की पराधीनता से मुक्ति दिलाने तथा इटली के विभिन्न राज्यों का केन्द्रीकरण करने के अभिप्राय से देशभर में गुप्त समितियों (ब्ंतइवदंजपमे) की भारी संख्या में स्थापना की। इन समितियों के सदस्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति लिये गुप्त रूप से कार्य करने लगे। सन् 1830 ई० की फ्रांस की द्वितीय क्रांति के प्रभाव से इटली में भी विद्रोहों की भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित होने लगी। मोडेना, अस्कनी पीडमाण्ट और बोलोन की महान नगरी क्रांति की लपटों में ध् ाू–धू करके जलने लगे । परन्तु मेटरनिख की शक्ति के सम्मुख अन्ततः उन्हें नतमस्तक होना पड़ा। मेटरनिख ने

क्रूरता के साथ क्रांतिकारियों पर पूरी तरह से सफलता प्राप्त की। फिर भी क्रांति की भावनायें राख में दबी चिंगारी के समान सन् 1848 ई० में सुलगती रही। उसी काल में इटली में मेजिनी, काबर और गेरीबाल्ड, जैसे नवरत्नों ने जन्म लेकर अदम्य उत्साह और कार्य कुशलता का परिचय देते हुए अपने देश की पराधीनता की बेड़ियाँ काटकर उनका एकीकरण करने में सफलता प्राप्त की। फलतः इटली का यूरोप में एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उदय हुआ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आस्ट्रियन साम्राज्य में सन् 1815 और सन् 1848 के मध्य राजनीतिक, जातीय तथा सामाजिक एकता का अभाव रहा तथा

मेटरनिख सन् 1848 ई० तक अपनी रूढ़िवादी नीति
का पालन करता रहा।

मेटरनिख का पतन (थ्ंसस व िडिंजजमतदपबी) – मेटरनिख की अग्र प्रतिक्रियात्मक नीति एवं सैनिक शक्ति का प्रयोग करके आन्दोलनों को दमन करने की कार्य–प्रणाली से असन्तुष्ट उदारवादियों, समाजवादियों आदि से संगठित होकर आस्ट्रियन साम्राज्य के क्रीट बोडमिया, हंगरी आदि प्रान्तों में वैधानिक शासन की स्थापना के लिये विद्रोह खड़े करने आरम्भ कर दिये। उसी समय फरवरी सन् 1848 ई० की राज्यक्रांति के समाचारों की उन्हें प्राप्ति हुई। इन समाचारों से प्रभावित जनमत आन्दोलनों के लिये
कमर कस कर उठ खड़ा हुआ। हंगरी में 3 मार्च सन् 1848 के दिन काश्सुथ (ज्ञवेनजी) ने वहाँ की राज्य परिषद के सम्मुख आस्ट्रियन सम्राट के निरंकुश शासन को समाप्त करके राष्ट्रीय सरकार का निर्माण करने के हेतु अपना ओजस्वी भाषण दिया, जिसका सारांश निम्न प्रकार है– एक भीषण आग की दम घोंटने वाली वायु हमारे ऊपर छाई हुई है। वियना की मंत्रि परिषद के चारनेल भवन से जो महामारी का प्रसार करने वाली वायु प्रभावित है, उसने हमारी इन्द्रियों को शिथिल कर दिया है तथा हमारी राष्ट्रीय भावनाओं पर घातक प्रभाव डाल रही है। हंगरी का भविष्य कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता, जबकि दूसरे प्रान्तों में विशेषकर वियना में एक इस प्रकार की शासन प्रणाली स्थिर है जो वैध राजसत्ता के सिद्धान्तों का खुलकर विरोध करती है। यह हमारा कर्तव्य है कि इस आस्ट्रिया की विभिन्न जातियों का भ्रातृत्व भावना के आधार पर सुखद भविष्य का निर्माण करें तथा बन्दूक की नोक पर लादे गये संघ के स्थान पर स्वतंत्र संविधान की स्थापना करें।

कास्सुथ (ज्ञनवेनजी) के भाषण का जर्मन भाषा में अनुवाद किया गया और उसकी लाखों प्रतियाँ प्रकाशित कर आस्ट्रियन साम्राज्य की राजधानी वियना में जनता के मध्य वितरीत कराई गईं। उन्हें पढ़कर जनता में उत्तेजना फैल गई । 13 मई सन् 1848 ई० के दिन श्रमिकों, शिल्पकारों, व्यवसाइयों, पत्रकारों, पत्रकारों, छात्रों, अध्यापकों आदि ने संगठित होकर एक विशाल जुलूस निकाला। उस जुलूस ने मेटरनिख के महल के सम्मुख प्रदर्शन किया और मेटरनिख का नाश हो (क्वद पजी डमजजमतदबपी) के नारों के आकाश गुंजा दिया द्य मेटरनिख ने आस्ट्रिया के सम्राट से सहयोग की प्रार्थना की न परन्तु सम्राट ने उसका साथ नहीं दिया। अतः उसे अपना पद त्याग कर गुप्त रूप से इंग्लैंड भाग जाना पड़ा। चांसलर मेटरनिख का पतन क्रांतिकारियों की सफलता का प्रथम पग माना जाता है। इसके उपरान्त द्रुतगति से क्रांतिकारियों का प्रभाव बढ़ने लगा।

मेटरनिख शासन प्रणाली की असफलता के कारण (ब्नेमे व जिीम पिसनमतम व िडंजजमतदपबी’ तमहपउम)– मेटरनिख ने सन् 1815 ई० से सन् 1840 ई० तक यूरोप में क्रांति के विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया का नेतृत्व करते हुये क्रांति के पर्व की विशेष संस्थाओं एवं स्वेच्छाचारी शासकों के निरंकुश शासन को स्थिर रखने

में सफलता प्राप्त की। परन्तु सन् 1848 ई० की क्रांति ने उसे एवं उसके प्रतिक्रियावादी शासन को आमूल रूप से उखाड़ फेंका और उसकी शासन–प्रणाली असफल सिद्ध हुई । मेटरनिख की शासन प्रणाली की असफलता के प्रधान कारण निम्न प्रकार हैं–

1. प्रतिक्रिया नीति (त्मंबजपवदंतल च्वसपबल) मेटरनिख की शासन प्रणाली की असफलता का कारण
उसकी प्रतिक्रियावादी नीति थी । सन् 1815 ई० से सन् 1848 ई० तक वही अपने युग का नेता रहा। उसकी नीति में प्रेस, वैधानिक शासन, भाषण की स्वतन्त्रता और क्रांतिकारी विचारधाराओं के राष्ट्रीयता के लिये कोई स्थान नहीं था। फ्रांस की राज्य क्रांति ने इस प्रकार के विचारों का प्रसार यूरोपीय महाद्वीप पर एक छोर से दूसरे छोर तक कर डाला था। अतः उसकी दमनकारी एवं प्रतिक्रियावादी नीति का प्रभाव थोड़े काल तक ही स्थिर रहा। उसके उपरान्त स्थान–स्थान पर उसकी नीति के विरुद्ध विद्रोह किये जाने लगे। उसके विरोधि ायों की संख्या द्रुतगति से बढ़ने लगी । अन्त में आन्दोलनों की उग्रता से घबराकर उसको सन् 1848 ई० में आस्ट्रिया से अपने प्राण बचाकर इंग्लैंड भाग जाना पड़ा और उसके अपना शेष जीवन वहीं व्यतीत किया।

2. राष्ट्रीयता का प्रसार (ळतवूजी व िछंजपवदंसपेउ) जनता में राष्ट्रीयता के विचारों का द्रुतगति से प्रसार हो रहा था। यह भावना उसके हृदय की गहराई में पहुँच चुकी थी जहाँ से उसे किसी भाँति भी निकाल बाहर करना एक प्रकार से असम्भव ही था। मेटरनिख ने जिस दमनकारी नीति और सैनिक बल के प्रयोग का अवलम्बन किया उसने उसे यूरोप के सभी देशों में अलोकप्रिय और घृणित बना दिया। ऐसी स्थिति में उसकी शासन प्रणाली स्थाई नहीं रह सकी और यह असफल सिद्ध होने लगी।

–

3. समाचार का प्रचार – (च्तवचंहंदकं व िवबपंसपेउ) वियना के श्रमिकों, शिल्पियों और निम्न वर्ग के मजदरों और समाजवाद का प्रचार बहुत अधिकता के साथ हुआ। उन्होंने अपने–अपने संघ बना

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस– प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

173

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

लिये तथा अधिक वेतन, विविध प्रकार की सुविधाओं एवं उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की माँग करने लगे जिससे उन्हें पूँजीपतियों के शोषण से छुटकारा मिल सके। उधर समाजवादियों ने जन–साधारण को भी शासक वर्ग से अपने अधिकारों की माग करने के लिये उत्साहित किया। उन्होंने जनता को सामन्तों, कुलीनों और विशेषाधिकारों प्राप्त व्यक्तियों के चंगुल से मुक्त होने के लिए तैयार किया।

सामंतवाद के इस प्रसार और प्रचार ने मेटरनिख की शासन प्रणाली का अन्त कर डाला।

4. सन् 1848 ई० की क्रांति (त्मअवसनजपवद व1848) फरवरी सन् 1848 ई० में फ्रांस में राज्य – क्रांति का पुनः विस्फोट हुआ। इस क्रांति का प्रभाव यूरोप के सभी देशों पर पड़ा । आस्ट्रिया

। की राजधानी वियना में 13 मार्च सन् 1848 ई० के दिन एक विशाल जुलूस मेटरनिख के विरोधियों द्वारा निकाला गया। जुलूस द्वारा मेटरनिख का महल घेर लिये जाने पर मेटरनिख के हाथ–पाँव फल गये । उसे गुप्त रूप से देश छोड़कर इंग्लैंड जाना पड़ा उसके भागते ही उसकी शासन–प्रणाली ध्वस्त हो गई।

ैमसस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

174

सारांश

फरवरी सन् 1848 ई० में फ्रांस में राज्य क्रांति का पुनः विस्फोट हुआ। इस क्रांति का प्रभाव यूरोप के सभी देशों पर पड़ा । आस्ट्रिया की राजधानी वियना में 13 मार्च सन् 1848 ई० के दिन एक विशाल जुलूस मेटरनिख के विरोधियों द्वारा निकाला गया। जुलूस द्वारा मेटरनिख का महल घेर लिये जाने पर मेटरनिख के हाथ–पाँव फल गये । उसे गुप्त रूप से देश छोड़कर इंग्लैंड जाना पड़ा उसके भागते ही उसकी शासन प्रणाली ध्वस्त हो गई।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. मौनटेस्क्यु 'शक्ति विभाजन' के सिद्धान्त (च्तपदबपचसम व मिचंतंजपवद व चवमत) का प्रतिपादक था । वह कार्यपालिका (म्गमबनजपअम) व्यवस्थापिका (स्महपेसंजपअम) और न्यायपालिका (श्रनकपबपंतल) के अधिकारों को पृथक–पृथक चाहता था ।

दिरों और वाल्टेयर विश्व कोष की रचना कर चुके थे। इस विश्वकोष ने सम्पूर्ण फ्रांस में तहलका मचा दिया। अतः यह भी क्रान्ति का एक बहुत बड़ा कारण था। इनके अतिरिक्त क्वेसेने और एबीसिस भी बहुत बड़े विचारक थे। इन दार्शनिकों की शिक्षा का प्रभाव सबसे अधिक मध्यम वर्ग के लोगों पर था जो कुलीनों और पादरियों को देखना नहीं चाहते थे। किसानों और मजदूरों पर भी उनके उपदेशों का गहरा असर था। इस तरह से दार्शनिकों ने फ्रांस में क्रान्तिकारी वातावरण तैयार कर दिया। अतः एक विद्वान का कथन सत्य ही है कि आर्थिक कारण ने फ्रांस की क्रान्ति रूपी रेल के डिब्बों को तैयार कर दिया और दार्शनिक कारण इंजन बनाकर फ्रांस की क्रान्तिरूपी रेल को लेकर दौड़

गया।

2. अवैध गिरफ्तारियाँ और प्रतिबंध – फ्रांस की शासन व्यवस्था में अवैध ढंग से गिरफ्तारियाँ होती थीं और लोगों पर अनेक तरह के प्रतिबंध भी थे। कुलीनों तथा राजा के कृपापात्रों को अप्रसन्न कर देने पर लोगों को सरकारी वारंट या स्मजजमत कमंबीमबज के द्वारा इनको बंदी बनाकर जेल में बंद कर दिया जाता

था। ऐसे अभियुक्तों को अपने जीवन का शेष समय जेल में ही बिताना पड़ता था । इसके द्वारा बड़े–बड़े व्यक्तिगत दुश्मनों का बदला लोगों से लेते रहते थे। नये विचारक और दार्शनिक इसके शिकार होते थे। एक बार वाल्टेयर और प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मिराबों को भी इसका शिकार बनना पड़ा था। इससे मध्यम वर्ग के लोग अधिक परेशान थे। फलतः सर्वत्र अशांति थी । इसलिए इस तरह के प्रतिबंध और परेशानी से लोग मुक्त होना चाहते थे अतएव लोग क्रान्ति के पक्ष में होकर क्रान्ति कर बैठे।

3. प्रजातंत्र का उदय – इस क्रान्ति ने राजतंत्र के सिद्धान्तों के चकनाचूर कर दिया। अब यह सिद्धान्त

सर्वमान्य हो गया कि शक्ति और सत्ता का मुख्य स्रोत सर्वसाधारण वर्ग के लोग हैं और उन्हीं के सहयोग से शासन का सुदृढ़ महल बनाया जा सकता है। इस तरह से फ्रांस में शासन की विषमता का अंत हुआ और वहाँ एकरूपता की स्थापना हुई। राष्ट्रीय भावना बलबती हुई जिससे राजतंत्र का जनाजा निकल गया। अब राजा को पृथ्वी पर ईश्वर के द्वारा भेजा गया प्रतिनिध नहीं समझा जाने लगा। वैधानिक शासन व्यवस्था की स्थापना की गयी। इस तरह से फ्रांस में जनतंत्र का श्रीगणेश हुआ । नेपोलियन बोनापार्ट ने अन्य देशों पर विजय प्राप्त कर, उन सभी जगहों में प्रजातंत्र के सिद्धान्त को पहुँचाया जिसका प्रभाव यूरोप के अन्य देशों पर भी पड़ा । फलतः बाद में चलकर विश्व से राजा के दैवी अधिकार और निरंकुश शासन का अंत हो गया।

4. रूसो (त्वनेमंन) (1712–1778) रूसो फ्रांस में सबसे बड़ा क्रांतिकारी विचारक हुआ। वह निरंकुश सत्ता का कट्टर विरोधी था । शक्ति का स्रोत वह जनता को मानता था। उसने प्रसिद्ध पुस्तक ळमदमतंसू पसस तथा ैवबपंस ब्वदजतंबज में अपने विचारों का संकलन किया। उसका कहना था कि डमद ंतम इवतद तिमम इनज मअमतलूीमतम जीमल ंतम पद बींपदे रूसो का कहना था कि राजा ईश्वर का प्रतिनिध नहीं है, बल्कि जनता ने अपने सम्पत्ति और जानमाल की रक्षा हेतु राजा को कुछ विशेष अधिकार दिए हैं। राजा प्रजा का सेवक है, न कि स्वामी । यदि राजा समझौता का उल्लंघन कर स्वेच्छाचारी बन जाता है तो जनता को अधिकार है कि वह राजा को हटा दे। इस प्रकार, रूसी ने जनता की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया और राज्य राजा एवं शासन के ऊपर जन–शक्ति को महान बतलाया। उसे राजनीतिक स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया। यही कारण है कि रूसों को क्रांति का अग्रदत माना जाता है । नेपोलियन का कहना था कि यदि रूसों न होता तो फ्रांस में क्रांति नहीं होती। रूसो ने लोगों को समानता, स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया। रूसो के अनुयायियों ने एकतंत्र की निरंकुशता, कुलीनों और पादरियों के विशेषधिकार को समाप्त करके फ्रांस में लोकतंत्र की स्थापना का प्रयत्न किया।

अभ्यास–प्रश्न

1.

2.

तल
फ्रांस की राज्य क्रांति के कारणो पर प्रकाश डाले ।
फ्रांस की क्रांति के प्रभावों की विवेचना करें।
फ्रांस की क्रांति के महत्व एवं स्वरूप पर टिप्पणी लिखें।
फ्रांस की क्रांति में दार्शनिकों के योगदान का वर्णन करें।
3.
4.
5.
फ्रांस की राष्ट्रीय सभा के उद्देश्यों की समीक्षा कीजिये ।
6.
संविधान परिषद् के कार्यों का विवरण दीजिये ।
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
7. नेपोलियन बोनापार्ट का सक्षिप्त जीवन–परिचय दें।
8.
9.
प्रथम कांसल के रूप में नेपालियन के कार्यों एवं सुधारों का वर्णन करें।
नेपोलियन के आक्रमणों एवं विजय अभियानों का एक लेखा–जोखा दें।
10. नेपोलियन के पतन के कारणों की समीक्षा करें।
11. वियना कांग्रेस की उपलब्धियों पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये।
12. मेटरनिख ने 1815 से 1848 तक यूरोप को किस प्रकार प्रभावित किया ?
13. 1815 के बाद यूरोप के इतिहास में मेटरनिख की भूमिका की व्याख्या कीजिये ।
14. मेटरनिख रूढ़िवाद का महान पुरोहित था । स्पष्ट कीजिए ।
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
175
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
176
अध्याय – 8
यूरोप की संयुक्त व्यवस्था
इस अध्याय के अन्तर्गत :
पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व
☐ इसकी आलोचना तथा पतन
☐ यूरोप की संयुक्त व्यवस्था एवं इसकी कार्य प्रणाली समय–समय पर इस संघ के हुए पाँच सम्मेलनों की कार्य प्रणाली
1830 की फ्रांसीसी क्रांति

□ पूर्वी समस्या
यूरोप का विस्तार
उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड
ब्रिटिश साम्राज्य
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :
पवित्र यूरोपीय संघ की स्थापना एवं इसका महत्व
इस पवित्र संघ की आलोचना तथा इसके पतन के कारण जान सकेंगे
□ यूरोप की संयुक्त व्यवस्था एवं इसकी कार्य प्रणाली समझ सकेंगे इस अवधि ा में हुए विभिन्न सम्मेलनों और उनसे उत्पन्न परिस्थितियों से अवग हो सकेंगे
□
1830 की फ्रांसीसी क्रांति को जान सकेंगे
□ पूर्वी समस्या को समझ सकेंगे
यूरोप का विस्तार जान सकेंगे
उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड समझ सकेंगे
ब्रिटिश साम्राज्य को जान सकेंगे
परिचय

20 नवम्बर सन् 1815 ई० को पेरिस की द्वितीय संधि द्वारा वियना कांग्रेस का कार्य सम्पन्न हो गया । तत्पश्चात् यूरोप में शांति स्थापित करने के उद्देश्य से पवित्र संघ (भ्वसल ंससपंदबम) तथा चतुर्मुखी मित्र मण्डल (फनकतनचसम ।सपंदबम) की स्थापना की गई। पवित्र संघ की योजना का जन्मदाता रूस का शासक जार अलेक्जेण्डर प्रथम था और उसी ने अपनी इस सुन्दर योजना को मित्र – मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत किया था । 26 सितम्बर 1815 को जार ने अपनी योजना को घोषित किया।

जार अलेक्जेन्डर प्रथम सदा ही नवीन योजनाओं का जन्मदाता रहता था, परन्तु जब उन योजनाओं को क्रियात्मक रूप प्रदान करने का अवसर आता तो वह असफल रह जाता। वह एक अत्यन्त रहस्यमय तथा भावुक व्यक्ति था । उसके गुरु – ला हार्पे (ंस – भ्तचम) ने उसे रूसो के सिद्धान्तों की शिक्षा दी और सेनापति सोल्टीकाफ (ैवसजपसवाि) ने उसे सैनिक शिक्षा प्रदान की थी। उसने अपनी उदारता का परिचय देते
हुए पोलैंड को भी एक संविधान प्रदान किया था और रूस के लिए भी उसके मस्तिष्क में अनेक योजनाएँ थीं। वास्तव में जार अलेक्जेण्डर प्रथम ने अपने पिता जार पाल को षड्यन्त्र रचवाकर हत्या करवा दी थी और उसी कारण उसके अन्तःकरण में सदैव अशांति रहती थी। फलस्वरूप वह ईसाई धर्म की धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में ही अपना समय व्यतीत करने लगा और इस प्रकार उसे शांति प्राप्त होने लगी।

वह यूरोप के लिए संघीय व्यवस्था को सबसे अधिक उपयुक्त समझता था। अतः

Notes

26 सितम्बर 1815 को उसी ने पेरिस के निकट पवित्र संघ का निर्माण किया। इस संघ में सर्वप्रथम रूस, प्रशा, आस्ट्रिया सम्मिलित हुए। इन देशों के शासकों ने घोषणा की –

अब से उनकी गृह तथा वैदेशिक नीति ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के अनुकूल होगी। वे लोग ईमानदारी से न्यायोचित ढंग से शासन व्यवस्था करेंगे। प्रजा अपने आप भरसक शांति बनाये रखने का प्रयत्न करेंगे।

पवित्र संघ

सभी शासक आपस में एक–दूसरे को भाई समझेंगे तथा एक की विपत्ति सबकी विपत्ति होगी। उनका कहना था कि विश्व के स्वामी ईश्वर ने विभिन्न प्रदेशों में शासन करने के लिए अलग–अलग शासकों की नियुक्ति की है। अतः ईश्वर द्वारा नियुक्त सभी शासकों का यह कर्त्तव्य हो जाता था कि वे स्वयं बाइविल के बताये गये नियमों के अनुसार आचरण करें तथा जनता को भविष्य में धर्म का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करें। इसको मानने तथा हस्ताक्षर करने के लिए सभी देशों को आमंत्रित किया गया था। धीरे–धीरे पोप तथा टर्की के सुल्तान जिनको आमंत्रित नहीं किया गया था तथा इंग्लैण्ड के अतिरिक्त सभी राज्यों ने इसे स्वीकार कर लिया।

फ्रांस के इतिहास में हेनरी चतुर्थ महान (ळतंदक क्मेपहद) में हमें पवित्र संघ का आभास मिलता है। अपनी इस योजना में हेनरी चतुर्थ ने 66 यूरोपीय देशों के प्रतिनिधियों के लिए एक सीनेट (ैमदंजम) की व्यवस्था प्रस्तावित की थी। इस सीनेट का उद्देश्य भी यूरोपीय समस्याओं का समाधान करने के अतिरिक्त महाद्वीप में शांति स्थापित करना भी था।

परंतु हेनरी चतुर्थ का देहान्त हो जाने से हेनरी चतुर्थ की योजनायें सफल न हो सकीं। एक स्थायी कांग्रेस स्थापित करने के उद्देश्य से फ्रांस के एक विद्वान एवे – डे– सेन्ट (।इम–कम–ैज – च्पमततम) ने एक संघ की स्थापना की और इस संघ में शासकों ने निर्णय किया था कि भविष्य में वे मित्रतापूर्ण व्यवहार करेंगे और युद्ध की भावनाओं को त्याग देंगे।

रूस के जार अलैक्जेन्डर ने 1814 ई० में एक संघ तथा एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का प्रस्ताव रखा । फ्रांस को लज्जित करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड ने इस योजना को स्वीकार कर लिया परन्तु जब उसे जार की योजना का पता लगा कि वह उसको अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर स्वीकार करना चाहता है तो वह इस योजना से पृथक हो गया। इंग्लैंड किसी भी प्रकार की ऐसी योजना में सम्मिलित नहीं होना चाहता

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

177

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमसा—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
178
था जिसके सदस्यों का उद्देश्य समस्त स्थानों पर एक—दूसरे की सहायता करना हो । 2 सितम्बर, 1815 ई० को पेरिस नगर के समीप मित्र संघ की स्थापना की घोषणा कर दी गई। जार अलैक्जेण्डर ने जिस प्रकार इसके उद्देश्यों को व्यक्त किया उससे संघ की महानता स्पष्ट हो जाती है, परन्तु अनेक कारणों से इन उद्देश्यों को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। कुछ राष्ट्रों को तो इसकी स्थापना पर पहले ही शंका थी। संघ का अन्त हो गया ।

पवित्र संघ का महत्व (प्उचवतजंदबम वभ्विससल ।ससपंदबम) — अनेक कारणों से पवित्र संघ की बड़ी—बड़ी आलोचना की गई है, परन्तु फिर भी इसका अपना महत्व है। उसने वर्षों के रक्तपात तथा छल—प्रपंच के उपरांत अहिंसा और बन्ध ुत्व की भावना की स्थापना करने महत्वपूर्ण कार्य किया । पवित्र संघ (भ्वससल ।ससपंदबम) में ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि प्रत्येक शासक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझे तथा जिस प्रकार एक पिता अपने परिवार पर शासन करता है उसी प्रकार शासक को भी अपनी प्रजा पर शासन करना चाहिए।

आलोचना तथा पतन (ब्तपजपबपेउ ंदक ंिसस)

रूस के शासक के अतिरिक्त अन्य किसी शासक ने इसमें सक्रिय भाग नहीं लिया और इसके सिद्धान्तों का भी पूर्णतया पालन नहीं किया । शीघ्र ही लोगों को विश्वास हो गया कि यह संघ जनता के अधिकारों तथा क्रांतिकारी विचारों को कुचलने के लिए बनाय गया है। कुछ विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने संघ की बड़ी उपेक्षा की है। इंग्लैंड प्रतिक्रियावादी होने के नाते इससे सहानुभूति रखता था, परन्तु इंग्लैंड के विदेश मंत्री कैसलरे (ब्ंजसम त्मही) ने इस पर टिप्पणी करते हुए व्यर्थ की बकवास कहा था। आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीसी प्रथम ने कहा कि यदि यह राजनीतिक प्रश्न है तो मैं इसे मंत्री के सामने रखूँ और यदि धार्मिक है तो पादरी के सामने । आस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख ने इसे आदर्शों वाली व्यर्थ वस्तु बताया । इस प्रकार जार की मृत्यु के साथ पवित्र मित्र मण्डल का भी अन्त हो गया।

डॉ. महाजन के अनुसार, ‘‘जार राजनीति को आध्यात्मिक रूप प्रदान करना चाहता था, वह पवित्र संघ की पारदर्शक पवित्र आत्मा को शरीर प्रदान नहीं कर सका और इस कारण पवित्र संघ की जन्म के साथ ही मृत्यु हो गई । ‘‘
।

इस प्रकार पवित्र संघ में सद्भावनाओं की कमी न थी । जार में पवित्र विचारों का अभाव न था किन्तु वह पवित्र संघ के उद्देश्यों को कार्य रूप प्रदान नहीं कर सका। यदि वह इनको कार्यान्वित करने में सफल हो गया होता तो संघ के महत्व में अवश्य वृद्धि हो गई होती। परंतु प्रारम्भ में ही इंग्लैंड जैसी महान शक्तियों ने इसकी हँसी उड़नी आरम्भ कर दी और इसे सफल नहीं होने दिया । फिर भी जार ने यूरोप के राष्ट्रों को सिखला दिया कि राजनीति की सफलता धर्म पर अवलम्बित है। धर्म की उपेक्षा कर राजनीति में सफलता प्राप्त नहीं की

जा सकती । पवित्र संघ की असफलता पर टिप्पणी करते हुए इतिहासकार हेज ने लिखा है–

"पवित्र मित्र संघ राजनैतिक एवं सामाजिक कष्टों का निवारण करने में इस कारण असफल नहीं रहा कि उसके समर्थकों में ईमानदारी की भावना का अभाव था, न ही उसके उद्देश्यों में किसी प्रकार का पाप छिपा था । वरन् इसलिए कि इसके नियम अस्पष्ट थे साथ ही इस पर हस्ताक्षर करने वाले शासकों का इसे सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं था । ''

जहाँ एक ओर लोगों की प्रतिक्रिया तथा भावनायें इसके विरुद्ध होती जा रही थी वही चतुर्मुख मित्रमण्डल (फनंकतनचसम ।ससपंदबम) की स्थापना ने इस लड़खड़ाते हुए पवित्र मित्र संघ को सदा–सदा के लिए समाप्त कर दिया।

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के चिन्ह यूरोप के राजनीतिज्ञों को पहले से ही दृ ष्टिगोचर होने लगे थे। 1791 ई० में आस्ट्रिया के चांसलर राजकुमार कानीज तो इसका आभास पहले ही दिया। शोभा की मुक्त संधि

से ही इसके बीज पनपने लगे थे। इन चार राष्ट्रों– इंग्लैंड, फ्रांस, प्रशा तथा आस्ट्रिया ने कई बार चतुर्मुखी मित्र मण्डल का सम्मेलन बुलाने का संकल्प किया।

इस प्रकार यूरोप में चतुर्मुखी मित्र – मण्डल की स्थापना हुई। यही यूरापे की संयुक्त व्यवस्था (बवदबमतज वि्मितवचम) की पृष्ठभूमि थी और आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मैटरनिख के नेतृत्व में चतुर्मुख मित्र – मण्डल (फनंकतनचसम ।ससपंबदम) ने समस्त यूरोप को प्रभावित किया।

1. यूरोप में शांति स्थापित करना ।
2. यूरोप महाद्वीय में राष्ट्रीयता तथा क्रांतिकारी भावनाओं को समूल नष्ट करना ।
3. नेपालियन अथवा उसे वंशजों में से किसी को भी देश का शासक न बनने देना ।
4. फ्रांस के साथ की गई पेरिस की दूसरी संधि को भी स्वीकार कर कार्यरूप में परिणत करना ।
5. वियना सम्मेलन में पारित किये गये निर्णयों का स्वयं पालन करना तथा दूसरों से करवाना तथा
शांतिपूर्ण उपायों द्वारा समस्याओं का समाधान करना ।
6. निरंकुश शासकों के अधिकारों की रक्षा करते हुए जनता में असंतोष तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं
को वृद्धि न होने देना ।

इतने उच्च उद्देश्य होने पर भी इंग्लैंड इनसे पूर्णतया संतुष्ट नहीं था ।

कार्य–प्रणाली (त्वबमकनतम)

Notes

विश्व का इतिहास

चतुर्मुखी मित्र – मण्डल के उद्देश्य निश्चित हो जाने पर आवश्यक था कि उसको कार्यरूप में परिणत किया जाय। अतः समय–समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया जाय और इन सम्मेलनों में चारों देशों के शासक अथवा उनके नियुक्त प्रतिनिधि सम्मिलित हो जाये और शांति स्थापित करने के उपायों पर विचार करे। वास्तव में ये एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के समान था, जहाँ शांति स्थापना के तथा अशांति तत्वों के नष्ट करने के उपायों का विचार करके किसी क्रियात्मक निश्चय पर पहुँच जाना था। इस प्रकार कुछ समय के लिए इन राष्ट्रों का यूरोप में पूर्ण प्रभुत्व था अर्थात् ये देश यूरोप के पूर्ण रूप से तानाशाह बन गये थे । समय–समय पर इस संघ के पाँच सम्मेलन हुये–
पश्चिमी विश्व
छव्जे

1.
एक्स– ला–शोपेल (।प•–सं–बैंचचमसस)
2. ट्रेपपों (ज्तवचचंन)
3.
लेवेख (स्पइंबा)
4.
वैरोना (टमतवद)
5. सैन्ट पीटर्स बर्ग (ैज – च्मजमतेइनतह)

अन्तिम सम्मेलन 1825 ई० में हुआ था उसके उपरान्त इंग्लैण्ड ने इसमें भाग लेना अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार संयुक्त व्यवस्था का अंत हो गया।

एक्स–ला–शोपेल का सम्मेलन

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत सम्मेलन 1818 ई० में एक्स–ला–शापेल नामक एक स्थान पर हुआ । इस सम्मेलन में दो बातों पर मुख्य रूप से विचार करना था। प्रथम बात यह थी कि लार्ड वेलेजली की अध्यक्षता में मित्र राष्ट्रों की सेना फ्रांस के व्यय पर फ्रांस में रहती थी । कमांडर लार्ड वेलेजली ने प्रस्ताव रखा कि फ्रांस अपना शेष ऋण हॉलैंड से लेकर दे दे और इस धन राशि के मिल जाने पर मित्र राष्ट्रों की सेना फ्रांस से हटा ली जाये। दूसरी बात यह थी कि फ्रांस में लुई अठारहवे का शासन ठीक–ठीक नहीं चल रहा था और उसने पेरिस की द्वितीय संधि के निर्णयों का पूर्णरूप से पालन नहीं किया था। मित्र राष्ट्रों की सेना तथा लुई 18वें ने फ्रांस में शांति रखने में पूर्णरूप से सहायता दी थी। अब फ्रांस में किसी प्रकार की क्रांति के लक्षण तथा चिन्ह दिखाई नहीं देते थे। अतः उसने सिफारिश की थी कि फ्रांस को चतुर्मुखी मित्र मण्डल का सदस्य बना लिया जाये।

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
179
पश्चिमी विश्व
छव्जे

यूरोपीय देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप

दर्शक रूप में अन्य देशों के प्रतिनिधि भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इनको किसी प्रकार का वेट आदि देने का अधिकार नहीं था। इस सम्मेलन में अन्य देशों की आर्थिक दशा को सुधारने का निश्चय किया गया और उनके सम्मुख न्याय को एक आदर्श के रूप में रखने का प्रस्ताव रखा। इन प्रसतावों को क्रियान्वित रूप प्रदान करने के लिए इन देशों के प्रतिनिधियों की एक परिषद् स्थापित कर दी गई। अब इन राष्ट्रों (इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस) ने अन्य राष्ट्रों के आंतरिक मालों में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

स्वीडन के शासक ने डेनमार्क तथा नार्वे के शासकों के साथ संधि की थी परंतु अब वह उस संधि की अवहेलना कर रहा था। फलस्वरूप इस सम्मेलन ने स्वीडन के शासक से स्पष्टीकरण माँगा । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों यह यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था तथा उच्चतर न्यायालय दोनों का ही कार्य कर रही थी।

ट्रोप्पो सम्मलेन

आस्ट्रिया के ट्रोप्पो नामक स्थान पर संयुक्त व्यवस्था के दूसरे सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह अधिवेशन दो कारणों से बुलाया गया था। इस समय स्पेन, पुर्तगाल, नेपिल्स तथा पीडमान्ट की जनता के हृदय में राष्ट्रीय भावनाएँ हिलोरें ले रही थीं और इन देशों के शासको के विरुद्ध जनता ने विद्रोह कर दिया । जनता के साथ सैनिकों ने भी विद्रोह करके विद्रोही जनता का प्रत्यक्ष रूप में समर्थन करना आरम्भ कर दिया। स्पेन के स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक के व्यवहार से तंग आकर वहाँ की सेना ने विद्रोह कर दिया। इस प्रकार सम्राट फडीनेन्ड को अपने प्राणों की चिन्ता उत्पन्न हो गई और उसने अपने देश में प्रजातन्त्रात्मक शासन विधान लागू करना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार नैपिल्स की जनता ने भी अपने निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और वहाँ के शासकों को विद्रोहियाँ द्वारा प्रस्तुत संविधान को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। नेपिल्स के विद्रोह का जिस समय क्रूरता के साथ दमन किया जा रहा था उसी समय प्रायद्वीप के दूसरे किनारे पर स्थित पीडमान्ट के राज्य में भी विद्रोही भावनाएँ प्रबल हो रही थी । यहाँ के विद्रोहियों ने अपने शासक विक्टर इमैन्युल से अपने यहाँ भी स्पेन के संविधान को लागू करने की माँग की और साथ ही आस्ट्रिया से भी युद्ध की घोषण करने की माँग की। सम्राट ने जनता की माँगों को अस्वीकार कर दिया और सिंहासन से त्यागपत्र दे दिया । उसका भाई चार्ल्स फैलिक्स (बिंतसमे थ्मसप्र) उसका उत्तराधिकारी बना। चार्ल्स ने क्रांति को कुचलकर निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना की। निःसंदेह विद्रोह कुचल दिया गया, परंतु इसने देश में एक ओर से दूसरी ओर तक राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार कर दिया। इन्हीं सब परिस्थितियों को ध्‍यान में रखकर सम्मेलन को बुलाया जाना आवश्यक प्रतीत होने लगा । यथार्थ

में सम्मेलन का उद्देश्य विद्रोहियों द्वारा लागू किए गए, संविधान को समाप्त करना तथा क्रांति को कुचलना था ।

सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि जहाँ कहीं भी क्रांति द्वारा वहाँ के शासक को हटा दिया गया हो वहाँ आस्ट्रिया, रूस तथा प्रशा अपनी सेनाएँ भेज सकते हैं और क्रांति का दमन करेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित किया गया कि जब तक उस देश में पूर्व स्थिति न हो जाये, अन्य राष्ट्र उस देश का सभी विषयों में बहिष्कार करेंगे। आस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस के शासकों ने यह घोषणा की थी और इतिहास में यह ट्रोप्पो की घोषणा (ज्तवचचवन चतवजव. बवस) के नाम से विख्यात है ।

लवेख लाइवेक, का सम्मेलन–

पंचमुखी मित्र – मण्डल की दलबन्दी अब बिल्कुल स्पष्ट हो गई थी, परन्तु ट्रोप्पों के सम्मेलन के कुछ समय उपरान्त ही तीसरा सम्मेलन बुलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतः आस्ट्रिया नगरी में स्थित लैबेख नामक स्थान पर तीसरा सम्मेलन बुलाया गया। नेपिल्स तथा पीडमान्ट में विद्रोह हो रहे थे। अतः रूस तथा प्रशा ने आस्ट्रिया ने अपनी सेनायें नेपिल्स में भेज दीं, जिन्होंने विद्रोहियों को बुरी तरह से दबा दिया और

पुनः वहाँ पर राजा फर्डीनेन्ड को राजसिंहासन पर स्थापित कर दिया। इस प्रकार नेपिल्स में पुनः

निरंकुश शासन की स्थापना हो गई। अब आस्ट्रिया ने दूसरी सेना पीडमान्ट में भेजी। इस सेना ने वहाँ पर विद्रोहियों द्वारा लागू किये गये संविधान को समाप्त करके निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना कर दी। ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्टोवर्ड (स्वतक ैजमूंतक) ने इसका विरोध किया जिससे पंचमुखी मित्र मण्डल का मतभेद स्पष्ट हो गया। परंतु इसी समय ग्रीकवासियों ने टर्की के शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। रूस इस बात का विरोधी था और मित्र मण्डल में पुनः समझौता हो गया। इंग्लैंड तथा आस्ट्रिया ने मित्रता कर ली, क्योंकि रूस का जार टर्की के विरुद्ध यूनानियों को सहायता दे रहा था । आस्ट्रिया तथा इंग्लैंड ने इसका विरोध किया और रूस को उन्हें सौंप देने को बाध्य किया ।

बेरोना का सम्मेलन

लैवेख सम्मेलन को समाप्त हुए अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि चौथे सम्मेलन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और पंचमुखी मित्र मण्डल का यह चतुर्थ अधिवेशन 1820 ई० में इटली के प्रसिद्ध नगर बेरौना में हुआ । फ्रांस की क्रांति ने अनेक देशों की जनता के हृदयों में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत किया था। यूनान की जनता भी इसी भावनों से प्रेरित हुई थी। टर्की का सुल्तान ही यूनान का शासक था परंतु यूनान की अधिकांश जनता ईसाई धर्म की अनुयायी थी जबकि टर्की के निवासी तुर्क जाति के थे । तुर्क सम्राट ने उनके धर्म पर आघात करने का प्रयास किया। एक समय था जबकि यूनान की सभ्यता तथा संस्कृति विश्व में सर्वोपरि समझी जाती थी, परन्तु टर्की के साम्राज्य की वहाँ पर

स्थापना हो जाने से उनकी प्राचीन संस्कृति तथा उनका गौरव धीरे – धीरे समाप्त हो गया। इससे यहाँ के निवासी भी प्रभावित हुए। अपने देश की दुर्दशा असहनीय हो रही थी और जनता के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना प्रबलता के साथ हिलोरे ले रही थी। फलस्वरूप यूनान की जनता ने टर्की के सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । रूस से इन अवसर का लाभ उठाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाही। कैस्पियन सागर तथा काले सागर में रूस के पास कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं था और वह इस क्षेत्र में उत्तम बन्दरगाह के लिए लालायित था। साथ ही रूस अपने साम्राज्य की सीमा भूमध्य सागर तक बढ़ाने का इच्छुक था, परंतु आस्ट्रिया तथा इंग्लैण्ड रूस के व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश के विरोधी थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूस ने टर्की में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया । चिंतित होकर आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मैटरनिख तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री कैशलरे ने हनोवर में एक–दूसरे से भेंट करने के उपरांत रूस को रोकने के उद्देश्य से एक सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। सौभाग्वश इसी समय अमेरिका स्थित स्पेन के उपनिवेशों में गम्भीर रूप से विद्रोह आरम्भ हो गया। रूस की इच्छा थी कि सम्मेलन में टर्की के सम्बन्ध में विचार किया जाये परंतु बड़ी चतुराई से आस्ट्रिया आदि देशों ने इस विषय पर सम्मेलन में विचार–विमर्श नहीं होने दिया। स्पेन के प्रश्न पर विचार–विमर्श करने के उपरांत इस संघर्ष को समाप्त करने का अधिकार फ्रांस को दिया गया। इंग्लैंड ने आस्ट्रिया ने फ्रांस को सैनिक बल के प्रयोग द्वारा निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना करने का अधिकार दे दिया। इस अवहेलना के कारण इंग्लैंड ने अपने को अपमानित समझा और घोषणा की कि यदि मित्र – मण्डल किसी भी देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करेगा तो इंग्लैंड अपने आपको मित्र मण्डल पृथक करने के लिए बाध्य अनुभव करेगा। फलस्वरूप सम्मेलन में सामूहिक हस्तक्षेप की नीति का परित्याग कर दिया और कुछ समय पश्चात् सम्मेलन समाप्त हो गया।
से

यूनान पर इंग्लैंड का प्रस्ताव

रूस को यूनानी विद्रोह को दबाने का अधिकार दिया गया परंतु इंग्लैण्ड को यह अमान्य था और उसने प्रस्ताव रखा कि सभा मित्र राष्ट्रों की सेना सहायता के लिये भेजी जाये। आस्ट्रिया इस प्रस्ताव का विरोधी था । आस्ट्रिया का विचार था कि जिस प्रकार आस्ट्रिया की नेपिल्स आदि राज्यों की समस्या का हल करने का अधिकार है, उसी प्रकार यूनान की समस्या को हल करने का अधिकार भी प्रदान किया जा सकता है। इंग्लैंड ने अब अनुभव किया कि उसकी बातों का चारों ओर से विरोध हो रहा है और उसने सम्मेलन में भाग लेने से मना कर दिया।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ैः

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

181

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
182

स्पेन में क्रांति तथा फ्रांस का दमन

स्पेन का स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासक फर्डिनेन्ड समस्त जनता पर मनमाने अत्याचार किया करता था । जनता ने उसके अत्याचारों से दुखी होकर विद्रोह कर दिया और सम्राट को विवश होकर प्रजातन्त्रात्मक संविधान स्वीकार करना पड़ा था। स्पेन के शासक फ्रांस के शासक लुई 18वें से सैन्य सहायता माँगी और उस फ्रांस की सेना जहाँ की जनता ने क्रांति द्वारा राजतन्त्रात्मक शासन का अन्त किया था। अब स्पेन में राजतन्त्र की पुनर्स्थापना के लिए आगे बढ़ी। फ्रांसीसी सैनिकों ने क्रूरतापूर्वक का दमन कर फर्डीनेन्ड सप्तम को पुनः सिंहासन पर आसीन कर दिया। फर्डीनेन्ड सप्तम ने जिस संविधान को भय के कारण स्वीकार किया था, समाप्त कर दिया। अब पुनः यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था की अंतरिक मामलों में हस्तक्षेप की नीति का विरोध किया, परंतु उसकी अवहेलना कर दी गई। इंग्लैंड को सबसे बड़ा भय था कहीं स्पेन अमरीकी उपनिवेशों में फ्रांस को व्यापारिक अधिकार प्रदान न कर दें, क्योंकि इस कार्य में इंग्लैंड के व्यापार को बड़ा आघात पहुँचता ।

सेंट पीटर्स सम्मेलन

अमरीकी उपनिवेशों की जनता निरन्तर विद्रोह कर रही थी । स्पेन ने 15वीं तथा 16वीं शताब्दी में एक विशाल उपनिवेश स्थापित कर लिया था और स्पेन स्वेच्छाचारिता तथा निरंकुशता के आधार पर आपना शासन स्थापित किए हुए था । यहाँ की जनता इस प्रकार के शासन की कट्टर विरोधी थी फलस्वरूप यहाँ नित्य प्रति नवीन विद्रोह उठते रहते थे।

विद्रोह नित्यप्रति सफलता प्राप्त कर रहे थे और चिली, पीरू, मैक्सिको आदि छोटे–छोटे देशों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी, क्योंकि उनको अमेरिका तथा इंग्लैंड से निरन्तर सहायता प्राप्त हो रही थी । इन राज्यों के निर्माण हो जाने पर इंग्लैंड तथा अमेरिका ने उनसे व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए थे। एक बार पुनः यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था का अधिवेशन आयोजित किया गया, परंतु इंग्लैंड के किसी भी प्रतिनिधि ने इसमें भाग नहीं लिया इसी बीच अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने दिसम्बर 1823 ई० में मुनरो सिद्धान्त (डनदतव क्वब. जतपदम) के नाम से निम्न घोषणा की–

अभी तक हमने यूरोपीय युद्धों में हस्तक्षेप नहीं किया और हमारी नीति भी हस्तक्षेप करने की नहीं है । परंतु जब हमारे अधिकारों पर आक्रमण होता है अथवा किसी प्रकार का भय होता है तो हम उसका सामना करते हैं तथा अपनी रक्षा की तैयारी भी करते है। इन शक्तियों के साथ हमारे जो सम्बन्ध है उनसे बँधे होने के कारण हम अनुभव करते हैं कि यूरोपीय देशों का यहाँ आकर

हस्तक्षेप करना हमारी सुरक्षा तथा शान्ति के लिए खतरा होगा। यूरोपीय देशों का जिन उपनिवेशों पर अधिकार है उनके सम्बन्ध में हस्तक्षेप न तो किया और न करेंगे, परंतु जहाँ के लोगों ने अपनी स्वतंत्र सरकार स्थापित कर ली है तथा न्याय के आधार पर जिन्हें हमने स्वीकार कर मान्यता दे दी है वहाँ उन पर किसी प्रकार का अत्याचार किया जाना अथवा यूरोप की किसी भी शक्ति के द्वारा उनके भाग्य का निर्णय किया जाना हमे असहय है और हम इससे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रति अमित्रता का व्यवहार समझेगा।

अमेरिका के राष्ट्रपति की इस घोषणा के परिणामस्वरूप यूरोपीय देश इच्छा होते हुए भी सैन्य सहायता नहीं भेज सके । अकेले स्पेन में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह विद्रोहियों का सामना कर सके। शीघ्र ही दस उपनिवेशों ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया ओर अमेरिका में स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य पूर्ण रूप से समाप्त हो गया ।

यूनान तथा टर्की की स्थिति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था। इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से जनवरी 1825 ई० सेंट पीटर्स वर्ग में रूस के शासक जार ने कन्सर्ट के सदस्य देशों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलन में भी इंग्लैंड ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा । आस्ट्रिया का प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित अवश्य था परंतु इस अधिवेशन में उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया और इस प्रकार इस सम्मेलन में काई विशेष निर्णय नहीं हो पाया। इस प्रकार के व्यवहार से रूस क्रुद्ध हो गया और उसने घोषणा कर दी कि भविष्य में यूनान तथा टर्की के विषय में वह मित्र राष्ट्रों से विचार–विमर्श किये बिना ही इच्छानुसार कार्य करेगा। इस प्रकार सेंट पीटर्सवर्ग का अधिवेशन समाप्त हो गया और इसके

साथ ही यूरोप की संयुक्त व्यवस्था समाप्त हो गई, क्योंकि भविष्य में इसका कोई अधिवेशन नहीं किया

गया।

संयुक्त व्यवस्था की असफलता के निम्नलिखित कारण प्रमुख थे–

यूरोपीय राज्यों ने 19वीं शताब्दी में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर विचार–विमर्श करने का विचार किया किन्तु इस विषय में अधिक सफलता न मिल सकी। इस असफलता के निम्न कारण थे–

1. दोषपूर्ण संगठन – आरम्भ से ही संयुक्त व्यवस्था का संगठन अत्यन्त दोषपूर्ण था। इनमें सम्मिलित सदस्य रूढ़िवादी, स्वार्थी, प्रतिक्रियावादी तथा ईर्ष्यालु थे। इनका एकत्रित होने का वास्तविक उद्देश्य समस्या का समाधान करना नहीं वरन् स्वार्थ सिद्ध करना था । फलस्वरूप सदस्य देश ही प्रत्यक्ष रूप से एक–दूसरे का विरोध करने लगे और भविष्य में यह सम्मेलन समाप्त हो गया ।

2. सदस्यों की हस्तक्षेप की नीति– संयुक्त व्यवस्था की स्थापना में यूरोप के चार बड़े राज्यों ने भाग लिया और वही इनके सदस्य बने । छोटे–छोटे राज्यों की अवहेलना कर दी गई और उनका इनमें कोई प्रतिनिधित्व नहीं था वे देश इसमें दर्शक के रूप में सम्मिलित हो सकते थे परंतु, वाद–विवाद अथवा मतदान आदि

में भाग नहीं ले सकते थे। साथ ही इंग्लैंड के अतिरिक्त तीन राष्ट्रों ने अपने–अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए छोटे–छोटे राज्यों के आन्तरिक विषय में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया और अपनी सैन्य शक्ति के आधार पर अपनी इच्छानुसार कार्य करवाते थे । निःसंदेह इस सैन्य बल के प्रदर्शन से उनका स्वार्थ अवश्य सिद्ध हो गया परन्तु इसका भयंकर परिणाम हुआ कि जिन देशों ने इस शक्ति का प्रयोग किया वहाँ की जनता इनकी विरोधी हो गई और उनकी यह नीति अप्रिय तथा कटु सिद्ध हुई ।

3. सदस्यों की प्रतिक्रियावादिता – यूरोप में शान्ति स्थापित करने तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए ही संयुक्त व्यवस्था की गई थी, परंतु जनता को शीघ्र ही यह आभास हो गया कि इसके सदस्य प्रतिक्रियावादी हैं। उनका उद्देश्य नवीन तथा क्रांतिकारी विचारों को कुचलकर निरंकुश व स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना करना था, परन्तु व्यवस्था का सदस्य इंग्लैण्ड इस नीति का कट्टर विरोध ी था । अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो की घोषणा भी इस नीति के विरोध में ही थी । अतः यह नीति भी उसके
पतन का कारण बना।

4. पारस्परिक ईर्ष्या – द्वेष– संयुक्त व्यवस्था के सदस्यों में कभी भी मतैक्य नहीं हो सका । निःसंदेह उन्होंने सम्मिलित रूप से इस व्यवस्था की स्थापना की थी । परन्तु सभी सदस्य एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते थे और किसी को किसी का विश्वास नहीं था । भूमध्य सागर में सक्रिय अफ्रीका के डाकुओं को इंग्लैंड के विरोध के कारण नष्ट नहीं किया जा सका। क्योंकि इससे इंग्लैंड के व्यापार को आघात पहुँचने का डर था । इंगलैंड को अन्य देशों के जहाजों की तलाशी लेकर यह देखने का अधिकार था कि कोई देश दास व्यापार आदि तो नहीं करता। इंग्लैंड का यह अधिकार अन्य राष्ट्रों की आँखों में खटकने लगा और उन्होंने इसे समाप्त कर दिया।

5. इसमें यूरोप के केवल बड़े–बड़े पाँच देश ही सम्मिलित हुए थे । अन्य छोटे–छोटे राज्यों की उपेक्षा
की गई थी।

6. रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के सैनिक हस्तक्षेप की नीति के कारण संयुक्त व्यवस्था महत्वहीन समझी
जाने लगी । अन्ततोगत्वा उसे समाप्त कर दिया गया।

7. संयुक्त व्यवस्था में शामिल देशों में एकता का अभाव था। इस मतभेद के कारण वे मिलकर कार्य
नहीं कर सके।

8. इस व्यवस्था ने कोई निश्चित आदेश नहीं रखे थे, न ही सदस्यों के लिए कोई निश्चित कार्यप्रणाली
पश्चिमी विश्व
छव्जै
स्व–प्रगति की जाँच करें : 1. यूरोपीय पवित्र संघ का

महत्व स्पष्ट करें।
2. यूरोपीय पवित्र संघ के पतन का कारण स्पष्ट करें।
3. बेराना का सम्मेलन कब
और कहाँ हुआ ?
4. संट पीटर्स सम्मेलन कब
और कहाँ हुआ ?
थी।
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
183
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्े
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
184
9.

सभी राष्ट्रों ने नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध अपने–अपने हितों के लिए एक अलग गुट तैयार किया । फलस्वरूप यह व्यवस्था समाप्त हो गई। फिर भी यूरोप की इस संयुक्त व्यवस्था से अनेक लाभ हुए। इस समय यूरोप के इतिहास में शान्ति रही । युद्ध, बेकारी, भुखमरी आदि को रोकने के लिए अनेक देशों की जनता ने प्रयास किए। परंतु यह केवल उन्हीं देशों तक सीमित रही। उन प्रयासों ने किसी प्रकार के युद्ध का रूप धारण नहीं किया । मित्र मण्डल को ही उसका सम्पूर्ण श्रेय प्राप्त है। वास्तव में मित्र मण्डल की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग पर एक महत्वपूर्ण प्रयास था तथा यूरोप में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने में उसने सराहनीय सफलता प्राप्त की थी। इस प्रकार यूरोपीय व्यवस्था को राष्ट्रसंघ तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ का अग्रगामी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

1830 की फ्रांसीसी क्रांति

क्रांति के कारण (ब्नेमे व जीम त्मअवसनजपवद व 1830) – फ्रांस की सन् 1830 ई० की जुलाई मास में घटित राज्यक्रांति के समीप लाने के लिए निम्नलिखित घटनाओं को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है–

1. उस काल के राजनीतिक दलों का संघर्ष – फ्रांस के शासक लुई 18वें के शासन काल में पाँच राजनैतिक दल मुख्य थे। अपने उद्देश्यों और नीति के आध ाार पर वे दल दो भागों में विभाजित थे। एक तरफ कट्टर राजसत्तावादी और उदार सत्तावादी दलों के सदस्य थे और दूसरी तरफ बोनापार्टिस्ट दल, रिपब्लिकन दल और उदारवादी दल के सदस्य थे। लुई 18वें के द्वारा संवैध ाानिक चार्टर की घोषणा किये जाने के उपरान्त राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन कराया गया। उस चुनाव में कट्टर राजसत्तावादी दल को अन्य दलों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई। इसका प्रमुख कारण संवैधानिक चार्टर की वह धारा थी जिसके अनुसार मतदान का अधिकारी केवल उन्हीं व्यक्तियों को

बनाया गया जो 3 हजार फ्रेंक वार्षिक कर राज्य को देते हों तथा उनकी आयु 30 वर्ष या उससे अधिक हो। इस नियम के आधार पर मतदाताओं की सूची में केवल मध्यम वर्ग के धनी व्यक्तियों के नाम सम्मिलित किये गये और साधारण वर्ग के अधिकांश व्यक्ति मतदान से वंचित रह गए। इस प्रकार के व्यक्तियों को क्रांति के दौर में भीषण आपदायें सहन करनी पड़ी थी । अतः उनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपना मत कट्टर राजसत्तावादियों को ही प्रदान करें, क्योंकि उनके विचार में उस दल के सदस्य ही क्रांति–पूर्व की स्थिति को लाने की क्षमता रखते थे।

कट्ट राजसत्तावादियों ने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में अपना स्पष्ट बहुमत बनाकर लुई 18वें पर सुधारों के स्थगन के लिए दबाव डालना आरम्भ कर दिया, परन्तु लुई 18वें ने उनके परामर्श के अनुसार कार्य नहीं किया। राजा की ओर से निराश होकर उन्होंने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में राजा द्वारा घोषित किये गए सुधारों को निष्फल बनाने के उद्देश्य से उन सुधारों के विरुद्ध कानून पास करने आरम्भ कर दिये। उन्होंने राष्ट्रीय तिरंगे ध्वज को राजकीय झण्डे के गौरवशाली स्थान से हटाकर बूब वंश के श्वेत झण्डे को राजकीय झण्डा स्वीकार किया। उन्होंने मार्शल आदि अनेक उच्च सैनिक पदाधिकारियों को, जिन्होंने नेपोलियन के शतदिवस अभियान में उसे अपना संयोग प्रदान किया, प्राण– दण्ड देने के लिए लुई 18वें को विवश किया। कट्टर राजसत्तावादियों के इस प्रकार के कार्यों से रुष्ट होकर फ्रांस के दक्षिणी प्रान्तों के निवासियों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया । कट्टर राजसत्तावादियों ने सैनिक शक्ति का प्रयोग करके उन विद्रोहों का दमन करने का प्रयास किया। लगभग छः माह तक दक्षिणी प्रान्तों में रक्तपात, लूटमार और विद्रोहों का भीषण क्रम चलता रहा । रिपब्लिकनों, बोनापार्टिस्टों और उदारवादियों ने जनता के सहयोग से सेना का वीरता के साथ सामना किया, परन्तु अन्त में सेना की विजय हुई। सहस्त्रों उदारवादियों, रिपब्लिकनों और बोनापार्टिस्ट दल के व्यक्तियों का निर्ममता से साथ वध कर दिया । कट्टर राजसत्तावादियों द्वारा किए गए भीषण अत्याचारों और रक्तपात को श्वेत आतक कहा जाता है। लुई 18वें को कट्टर राजसत्तावादियों के

इस प्रकार के कारनामों से फ्रांस में फिर से क्रांति का विस्फोट होने का संदेह उत्पन्न हो गया । अस्तु उसने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को भंग कर दिया और उसके फिर से निर्वाचित कराने की घोषणा की। चुनावों का परिणाम ज्ञात होने पर मालूम हुआ कि उदार – राजसत्तावादियों तथा उदारवादियों को सबसे अधि क मत प्राप्त हुए हैं। अतः नवीन राष्ट्र प्रतिनिधियों के हाथ में शासन – सत्ता आई ।

.

2. उदार राजसत्तावादियों के प्रयास राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में इस बार उदार राजसत्तावादियों को स्पष्ट बहुमत की प्राप्ति हुई। उन्होंने उदारवादियों को अपने साथ लेकर मंत्रिमण्डल का निर्माण किया। उदार राजसत्तावादियों के संयुक्त मंत्रि–मण्डल के कार्य–काल में देश की अधिक उन्नति हुई। उन्होंने कला–कौशल,

उद्योग–धनधों और व्यापार को राजकीय प्रोत्साहन प्रदान किया जिससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा। केवल तीन वर्ष की अवधि में ही राजकोश में असंख्य धन एकत्रित हो गया। उन्होंने युद्ध – पूर्ति के सात करोड़ फ्रेंकों को मित्र राष्ट्रों को भुगतान किया नाम से फ्रांस का शासक बना। उसके शासक पद प्राप्त करने से स्थिति और भी अधिक विकृत हो उठी।

3. चार्ल्स दशम का दमनकारी शासन (ँनचचतमेपअम तनस व िबिंतसमे ग)– चार्ल्स दशम

आर्तोआ का काउण्ट था। उसने फ्रांस की राज्यक्रांति के आरम्भिक दिनों में लुई सोलहवें की महारानी मेरी अनत्वायनेत के साथ मिलकर क्रांति के विरुद्ध षड्यंत्र रचा था। इसी ने क्रांति के दौर में फ्रांस से भागे हुए कुलीनों और उच्च पादरियों का नेतृत्व किया था। क्रांतिकारियों और नेपोलियन के विरुद्ध षड्यंत्र रचने के अभियोग में इसे कभी दण्डित नहीं किया गया था। इसी ने अपने वंश और कुलीनों के नेपोलियन के पतन के उपरांत फ्रांस में वापस आने पर कट्टर राजसत्तावादियों को अत्याचारों के लिए प्रतिक्रियावादिता की कोई सीमा नहीं थी। फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठते ही उसने उदारवादियों, गणतंत्र के समर्थकों, क्रांतिकारियों और राजसत्ता के विरोधियों का वध करना और उन्हें बन्दी बनाना आरम्भ कर दिया। उसने उच्च पदाधिकारियों, कुलीनों और सामन्तों को शासन में उच्च पद प्रदान किये। प्रेस, लेखक और भाषण पर कठोरता के साथ प्रतिबन्ध लगा दिये। इस प्रकार क्रांति के उन पुनीत सिद्धान्तों को, जिनकी स्थापना में लगभग आधा करोड़ फ्रांसीसियों ने अपने जीवन का बलिदान किया था, नष्ट करने में चार्ल्स दशम ने किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी। कुलीनों को हानि की पूर्ति के लिए उसने राजकोष से कई करोड़ फ्रांक प्रदान किये। उसने राष्ट्रीय ऋण पर जन–साधारण से लिए जाने वाले ब्याज की दर 5 प्रतिशत से घटाकर केवल 4 प्रतिशत रहने दी ।

उपरोक्त प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करके उसने प्रतिक्रियावादियों के उच्च–पुरोहित मेटरनिक को भी पीछे छोड़ दिया। इसी कारण वेलिंगटन के ड्यूक ने इस सम्बन्ध में व्यक्त किया था कि, चार्ल्स दशम एक ऐसी सरकार की स्थापना कर रहा है जो पादरियों द्वारा पादरियों से पादरियों के लाभार्थ संचालित की जा रही है । अस्तु, इस नीति का परिणाम यही हुआ जो ऐसे अवसर पर होना चाहिए । इतिहासकार ग्राण्ट और टेम्परले ने इस सम्बन्ध में अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है– सम्भावतया उसे भरोसा था कि उसकी सुदृढ़ विदेश नीति के कारण फ्रांस के निवासी अपनी स्वतंत्रता के अपहरण को विस्मरण कर संतुष्ट हो जाएंगे। उसने बेल्जियम पर आक्रमण की योजना तैयार की, उससे इंग्लैंड के साथ युद्ध अनिवार्य हो जाता तथा उसके साथ ही उसने संसद और संविधान को पलटने के लिए भी षड्यंत्र रचा। लोकमत पूरी तरह जागृत होकर शासन के विरुद्ध उठने लगा । अन्ततः उन षड्यंत्रकारियों ने राजा को संसद भंग करने एवं प्रेस का गला घोटने के लिये प्रेरित किया ।

इस प्रकार चार्ल्स दशम के शासन ने देश के भीतर सर्वत्र कोहराम मचा दिया

Notes

विश्व का इतिहास

द्य क्रांतिकारियों, लोकतंत्र के समर्थकों एवं उदारवादियों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होने लगी । सन् 1827 ई० राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के चुनाव सम्पन्न हुए । चार्ल्स दशम द्वारा मतदाताओं को हर प्रकार से प्रभावित किया गया कि वे कट्टर राजसत्तावादियों को ही अपना मत प्रदान करें, परन्तु चुनाव परिणामों ने चार्ल्स दशम की आशाओं पर तुषारापात कर दिया। कट्टर राजसत्तावादियों को राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के स्थानों में से केवल 105 स्थान ही प्राप्त हो सके । चार्ल्स दशम ने क्रोधावेश में आकर राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को भंग कर फिर से चुनाव कराये, परंतु परिणाम फिर भी पहले की भाँति रहा। तीसरी बार फिर उसने सभा भंग कर चुनाव कराये, किंतु कट्टर राजसत्तावादियों को राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में बहुमत की उपलब्धि नहीं हो सकी ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

185

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

अब चार्ल्स दशम ने प्रतिक्रियावादी राजकुमार पोलिगनेक की प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति की। उसने प्रधानमंत्री बनते ही समाज की पुनर्व्यवस्था करने की घोषणा करते हुए व्यक्त किया कि कुलीनों को फिर से विशेषाधिकार प्रदान किये जाएंगे तथा पादरियों को प्रशासनिक कार्यों में नियुक्त किया जाएगा। पोलिगनेक में दृढ़ निर्णय शक्ति का अभाव था । अतः वह अपनी घोषणा के अनुसार कार्य नहीं करा सका। उसने विदेश नीति को साम्राज्यवादी रूप देकर फ्रांस के गौरव में वृद्धि करने का प्रयास किया। उसने सेना भेजकर उत्तरी अफ्रीका के अलजीयर्स नामक प्रान्त में फ्रांसीसी राज्य की स्थापना की। पोलिगनेक के इस कार्य ने शासन को कुछ स्थिरता प्रदान की । परन्तु उसी समय चार्ल्स दशम ने 25 जुलाई सन् 1930 ई० दिन संवैधानिक आज्ञापत्र की एक धारा के अनुसार दमनकारी अध्यादेशों की घोषणा की। उसका यही कार्य सन् 1830 ई० की क्रांति का तत्कालीन कारण बन गया और 27 जुलाई को क्रांति का वह भीषण विस्फोट हुआ, जिसमें चार्ल्स दशम शासन तंत्र की धज्जियाँ उड़ गईं। चार्ल्स दशम के दमनकारी अध्यादेश निम्नलिखित प्रकार थे–

1. राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को भंग किया जाता है।
2. मतदाताओं की योग्यताओं की शर्तें पहले से ही अधिक कठोर की जाती हैं। इन शर्तों के कठोर बनाने से लगभग 75 प्रतिशत मतदाता मताधिकार से वंचित हो गए और मताधिकार केवल धनी–मानी कुलीनों और सामंतों तक ही सीमित रह गया ।

3.

सितम्बर सन् 1830 ई० में नवीन चुनावों को सम्पन्न कराया जाएगा।

4.

किसी भी सम्पादक को सरकार से सेंसर कराये बिना समाचार–पत्र प्रकाशित करने का अधिकार नहीं होगा।

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

186

जुलाई सन् 1830 ई० की क्रांति (त्मअवसनजपवद व1830) – चार्ल्स दशम के दमनकारी अध्यादेश ने क्रांति की अग्नि प्रज्वलित करने के लिये चिंगारी का कम किया। गणतंत्रवादियों, सम्पादकों, उदारवादियों और क्रांतिकारियों ने संगठित होकर चार्ल्स दशम के शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करने के लिए जानता का आह्वान किया, जिसके परिणामस्वरूप पेरिस में विद्रोह की ज्वाला फूट निकली। रात्रि के समय पेरिस से सर्वत्र क्रांति के नारे आकाश को गुंजाते रहे और चार्ल्स दशम के विरोधी पेरिस की गलियों और सड़कों पर मोर्चे जमाते रहे। सन् 1789 ई० राज्यक्रांति के ख्यातिप्राप्त नेता लाफायेत ने जो अब वृद्ध हो चुके थे फिर से क्रांति का संचालन किया। 27 जुलाई से तीन दिन तक दिन–रात जनता का सड़कों और गली–कूचों में राजा की सेना के साथ संघर्ष होता रहा । अन्ततः क्रांतिकारियों की अपार भीड़ ने टलरीज के राजप्रासाद पर आक्रमण करके उसे लूट लिया। अब चार्ल्स दशम ने विद्रोहियों के नेताओं से संधि करनी चाही, परन्तु उसका उपयुक्त समय हाथ से निकल चुका था। किसी ने भी संधिवार्ता के लिए किसी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाया । विवश होकर चार्ल्स दशम अपने दसवर्षीय पोते के लिए राजसिंहासन त्याग कर विदेश को भाग गया।

इस प्रकार क्रांति सफल हुई। गणतंत्रवादियों ने लाफायत के नेतृत्व में पेरिस के होटल डि विले में अस्थायी सरकार की स्थापना की। परन्तु फ्रांस में उस समय गणतंत्र की स्थापना नहीं की जा सकी जिसका प्रमुख कारण यह था कि वाटरलू की युद्ध भूमि में विजय प्राप्त करने वाले यूरोपीय राष्ट्रों को उस समय भी सन् 1781 ई० से 1815 ई० तक घटित क्रांति की घटनाओं और उनके अनिष्टकारी प्रभावों का स्मरण था। सभी दलों ने मिलकर बोबों वंश की दूसरी शाखा के राजकुमार ओर्लियन्स के ड्यूक लुई फिलिप को वैधानिक शासन की स्थापना के लिए आमंत्रित किया । लुई फिलिप ने उनके आग्रह को स्वीकार करते हुए वैधानिक शपथ लेते हुए फ्रांस का राजमुकुट धारण किया। उधर चार्ल्स दशम यूरोपीय देशों में मारा–मारा फिरता रहा और सन् 1836 ई० में आस्ट्रिया में परलोक सिधार गया ।

क्रांति के परिणाम (त्मेनसजे व जीम त्मअवसनजपवद)

(प) सन् 1830 ई० की क्रांति का सबसे प्रमुख परिणाम यह रहा कि फ्रांस के शासन की बागडोर बोर्बो वंश की प्रथम शाखा के हाथ से निकलकर छोटी शाखा के राजकुमार लुई फिलिप के हाथ में आ गई। राजकुमार लुई फिलिप अपने युवाकाल में फ्रांस की क्रांतिकारी सेना के साथ

युद्ध भूमि में जा चुका था। अतः क्रांतिकारियों ने उसे शासन– सूत्र प्रदान किये जाने पर किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। इस प्रकार क्रांति का विस्फोट तो

हुआ, किंतु उसे फ्रांस से राजतंत्र की समाप्ति करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इतना अवश्य हुआ कि वैध राजसत्ता की स्थापना हो गई।

(पप) फ्रांस के संविधान में कोई विशेष प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। नवीन संवैधानिक व्यवस्था में लुई 18वें के संविधान आज्ञा–पत्र की 10वीं धारा को रद्द कर दिया गया। इस धारा के अनुसार फ्रांस का शासक दमनकारी कानून लागू कर सकता था ।

(पपप) प्रेस पर लगे नियंत्रण को हटा दिया गया।

(पअ) कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार नहीं किया गया। सभी फ्रांसीसियों को धार्मिक स्वतंत्रता
प्रदान की गई।

(अ) सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उदारवादियों और गणतंत्रवादियों के निर्वाचन के अधिकार को विस्तृत करने की माँग पूरी नहीं की गई। फ्रांस की उस काल की 2 करोड़ 80 लाख की जनसंख्या में से केवल एक सीमित संख्या में ही मतदाताओं की सूची में उनके नाम सम्मिलित थे। इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया और मतदाताओं की संख्या यथापूर्ण बनी रही। इस प्रकार पेरिस के गली–कूचों और सड़कों पर रक्त की नदियाँ बहाकर गणतंत्रवादियों ने जिस सरकार का निर्वाचन किया उसी सरकार को सहयोग देने के लिए अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने के अधिकार से जनता पहले की भाँति ही वंचित रही ।

(अप) इस क्रांति का अन्य सुखद परिणाम यह रहा कि कट्टर राजसत्तावादियों और उच्च पादरियों ने जिन राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति कर ली थी उन्हें स्थगित कर दिया गया। उनके द्वारा सम्पन्न श्वेत आतंक (ँपजम ज्मततवत) जैसे अत्याचारपूर्ण कार्यक्रमों की पुनरावृत्ति की भी सम्भावना सदा के लिए जाती रही।

(अपप) लुई फिलिप ने जनता के अधिकारों का आदर करने का आश्वासन दिया। यह कार्य भी कुछ महत्वूपर्ण नहीं था। इस प्रकार सन् 1789 ई० की क्रांति के जो कार्य शेष रह गए थे उन्हें सन् 1830 ई० की राज्यक्रांति ने पूर्ण कर दिया। अब भविष्य के लिए क्रांति के मूल सिद्धान्तों एवं तत्वों अर्थात् समानता, वैधानिक स्वतंत्रता और धर्म–निरपेक्षता को सुदृढ़ आधार की प्राप्ति हो गई।

अन्य देशों पर प्रभाव (म्मिबजे वद वजीमत बवनदजतपमे) जुलाई सन् 1830 ई० में घटित फ्रांस की राज्यक्रांति का प्रभाव सुदूरगामी रहा। उसने यूरोप महाद्वीप के लगभग सभी देशों को प्रभावित किया। सभी देशों में क्रांति के पुनीत सिद्धान्तों तथा स्वतंत्रता समानता और भ्रातृत्व भावना की स्थापनार्थ आन्दोलन खड़े किये जाने लगे । जनसाधारण में निरंकुश शासकों का शासन उखाड़ फेंकने के लिए तैयारियाँ की जाने लगीं। इस क्रांति का प्रभाव समुद्र पार करके अमेरिका पर भी पड़ा। विभिन्न देशों पर पड़े जुलाई क्रांति के प्रभावों की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की है–

1. इंग्लैण्ड का प्रभाव – जुलाई की फ्रांसीसी राज्य क्रांति का इंग्लैंड पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय इंग्लैंड में टोरी दल की सरकार के हाथ में शासन की बागडोर थी। बैंलिंगटन का ड्यूक जो मेटरनिख का घनिष्ट मित्र एवं उसी के समान प्रतिक्रियावादी था, प्रधानमंत्री पद पर आसीन था । वह और उसकी सरकार जनता को किसी प्रकार की सुविधा देने के लिये प्रस्तुत नहीं थे। फ्रांस की क्रांति की सूचना पाकर इंग्लैंड की जनता उत्साह से भर उठी और मताधि ाकार की प्राप्ति के लिए आंदोलन करने लगी। उस इंग्लैंड में केवल धनिक वर्ग के व्यक्ति ही मतदाता बने हुए थे। हिग दल ने सुधार बिल लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया, किन्तु वह पास नहीं हो सका। इसके कुछ ही समय बाद वहाँ संसद के चुनाव हुए जिनके परिणाम उदारवादियों के अनुकूल रहे। अतः लोकसभा में ह्विग दल का बहुमत हो गया और शासन – सूत्र ह्विगदल की सरकार को प्रदान किया

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

गया। उन्होंने लोकसभा में सुधार बिल प्रस्तुत किया, परंतु इस बार भी वह पास नहीं हो सका। अतः लोकसभा भंग कर दी गई और फिर से चुनाव कराये गए। इस प्रकार ह्विगों का लोकसभा में स्पष्ट बहुमत हो गया और उनकी सुधर बिल पास कराने में सफलता प्राप्त हुई। परंतु लॉर्ड सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया। जनता में इससे विद्रोह खड़े होने लगे। लॉर्डसभा जनता के क्रांतिकारी प्रयासों को देखकर कर आतंकित हो उठी और उसने सुधार बिल पास करने के लिए अपनी सहमति प्रकट की अतः सन् 1830 ई० में फिर से सुधार बिल लोकसभा में स्वीकृत करके लार्ड सभा के पास भेजा गया। लॉर्ड सभा द्वारा पास किये जाने पर सुधार बिल कानून का रूप धारण कर गया और जनता को भी मतदान के अधिकार की प्राप्ति हो गई। इसके साथ ही इंग्लैंड की जनता को उस सुध ाार बिल द्वारा अन्य अनेक अधिकारों की भी उपलब्धि हुई । इस प्रकार फ्रांस की राज्य– क्रांति के प्रभाव से इंग्लैण्ड में जनता को विविध प्रकार के अधिकारों की प्राप्ति हुई ।

2. बेल्जियम पर क्रांति का प्रभाव – फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित होकर बेल्जियम की जनता ने भी 18 नवम्बर को हालैंड की पराधीनता की बेड़िया काटने के लिए सशस्त्र विद्रोह खड़ा कर दिया। हालैंड की सेना के साथ उसका संग्राम हुआ जिसमें बेल्जियम की जनता को विजय प्राप्त हुई ओर हालैंड की सेना भाग खड़ी हुई । हालैंड के राजा ने एक और सेना विद्रोहियों का दमन करने के लिए

भेजी, परंतु उसकी भी बेल्जियम की प्रजा ने बुरी तरह पराजित करके भगा दिया। यूरोप भर में इस घटना ने सनसनी उत्पन्न कर दी। बेल्जियम को शक्ति के आधार पर हालैंड से पृथक राज्य का रूप दिया जाता है। इसके उपरान्त बल्जियम का राजमुकुट सेक्स का वर्ग गोथा के राजकुमार लियोपोल्ड को पहनाया गया। फ्रांस, इंग्लैण्ड और रूस ने बेल्जियम को पूर्व तक बेलियम के तटस्थता स्थिर रही और किसी भी यूरोपीय देश का उस पर आक्रमण नहीं हुआ।

3. स्पेन पर क्रांति पर क्रांति का प्रभाव – नेपोलियन के पतन के उपरान्त बियना की कांग्रेस के निर्णयों के अनुसार नेपोलियन की कैद से लुटा हुआ स्पेन का राजकुमार सन् 1815 ई० में फर्डीनेण्ड सप्तम के नाम से स्पेन का शासक बना। वह भी एक प्रतिक्रियावादी शासक था । अतः उसने सन् 1812 ई० के संविधान को स्थगित करते हुए संविधान सभा को भंग कर दिया। प्रेस भाषण ओर लेख लिखने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गए । व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हरण करके क्रांतिकारी को राज्य की जेलों को भर दिया तथा क्रांति के अनेक पुजारियों को देश से निर्वासित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसने कुलीनों को फिर से विशेषाधिकारी दिये तथा चर्च की सम्पत्ति पुनः चर्च को वापिस कर दी। उसने देश में धार्मिक न्यायालयों की स्थापना की और खेलकुद एवं आमोद–प्रमोद में राजकोष रिक्त रहने लगा। उसके इन कार्यों से जनता में विद्रोह की भावना उत्पन्न होने लगी । सन् 1815 ई० में वहाँ के देशभक्तों ने ऐसा देशभक्तों ने ऐसा भीषण विद्रोह किया कि फर्डीनेण्ड सप्तम को अपने प्राण बचा कर भाग जाना पड़ा। परंतु फ्रांस के लुई 18वें ने 9,5000 फ्रांसीसी सैनिक भेजकर विद्रोह का दमन किया और फर्डीनेण्ड सप्तम के निरंकुश शासन की पुनर्स्थापना की। सन् 1830 ई० को फ्रांस की राज्य–क्रांति के समाचारों एवं चार्ल्स दशम के देश छोड़कर भाग जाने का विवरण ज्ञात करके स्पेन की राष्ट्रीय प्रवृत्ति के समर्थकों में अनभूत उत्साह का संचार हुआ। उनके हृदय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये उद्वेलित होने लगे। उन्होंने अनेक स्थानों पर विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित की, परन्तु सेना का समर्थन प्राप्त होने के कारण फर्डीनेण्ड सप्तम ने उन विद्रोहों का क्रूरता के साथ दमन कर दिया । सहस्त्रों देशभक्त कारागार में सड़ने के लिये डाल दिये गए और सैकड़ों की हत्या कर दी गई। सर्वत्र मौत का सा सन्नाटा छा गया, परन्तु देशभक्तों ने अपने प्रयास जारी रखे जिससे सन् 1834 ई० के चुनावों में उन्हें भारी सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने स्पेन के शासक को प्रशासनिक सुधारों की घोषणा करनी पड़ी। सन् 1812 ई० के संविधान के आधार पर एक नवीन संविधान तैयार किया गया जिसके अनुसार स्पेन में वैध राजसत्ता की स्थापना की गई और संसद के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमण्डल निर्मित किया गया। इस प्रकार सन् 1830 ई० को क्रांति के प्रभाव से स्पेन में वैध राजसत्ता की स्थापना सम्भव हुई ।

4. पुर्तगाल पर प्रभाव – नेपोलियन ने सन् 1807 ई० पुर्तगाल को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। वहाँ का शासक जॉन अपने परिवार, राजकोष और

प्रमुख सैनिकों सहित दक्षिणी अमेरिका स्थित अपने उपनिवेश ब्राजील को चला गया था। सन् 1820 ई० अंग्रेजी सेना ने वैलिंगटन के ड्युक की अध्यक्षता में फ्रांसीसियों को पुर्तगाल से निकला बाहर किया। उसके उपरान्त सन् 1820 ई० तक पुर्तगाल अंग्रेजों के अधिकार में रहा । अंग्रेजी शासन से उकता कर पुर्तगाली देशभक्तों ने विद्रोह करने आरम्भ कर दिये। अतः अंग्रेजी सेना को पुर्तगाल खाली करना पड़ा। देशभक्तों ने सन् 1812 ई० के संविधान के आधार पर अपने देश के लिए संविधान का निर्माण कर देश के शासन की बागडोर स्वयं सम्भाल ली।

सन् 1821 ई० में चतुर्मुखी मित्र मण्डल ने जॉन को पुर्तगाल वापिस बुला लिया वह तुरन्त ही ब्राजील का शासन अपने सबसे बड़े पुत्र को सौंप कर पुर्तगाल चला आया । देशभक्तों ने जॉन के शासक बनते ही संविधान की अवहेना एवं जनता के अधिकारों का हनन करने का प्रयास आरम्भ कर दिया। देशवासियों ने उसके शासन के विरुद्ध विद्रोह करके उसे पुर्तगाल से भगा दिया, परंतु मित्र राष्ट्रों ने अपनी सैनिक शक्ति का प्रयोग करके पुनः उसके निरंकुश शासन की स्थापना की। सन् 1826 ई० में जॉन का स्वर्गवास हो गया । ब्राजील के शासक ने अपनी पुत्री डोना मोरिया को पुर्तगाल के सिंहासन पर बिठा दिया। उसके चाचा डाम मिगुएल ने सन् 1828 ई० में स्वयं पुर्तगाल के शासन पर बलात् अधि ाकार कर लिया। डोना मेरिया ने उदार संविधान का आश्वासन देकर देशभक्तों की सहायता प्राप्त की। इस प्रकार पुर्तगाल गृह युद्ध की लपटों में भस्म होने लगा ।

जुलाई 1830 ई० की क्रांति के समाचारों से प्रभावित होकर पुर्तगाली देशभक्तों ने स्पेन, फ्रांस और इंग्लैंड के उदारवादियों से सहयोग प्राप्त करके अपनी शक्ति में वृद्धि की। 1834 ई० में ब्राजील का शासक डॉम पेड्रों भी अपनी पुत्री डोना मेरिया को पुर्तगाल के सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए आया। उसने डॉम मिगुण्ल को पराजित किया और अपनी पुत्री को फिर से पुर्तगाल की शासिका बनाने में सफलता प्राप्त की। डोनो मेरिया ने अपने दिये आश्वासन के अनुसार देश में उदार और वैधानिक शासन की स्थापना की। इस प्रकार पुर्तगाल भी फ्रांस की क्रांति से प्रभावित होकर वैध राजसत्ता की प्राप्ति में सफल हुआ।

5. जर्मनी का प्रभाव – जर्मनी में प्रशा जैसे विशाल और शक्तिशाली राज्य के अतिरिक्त हनोवर, हेस सेक्सनी आदि छोटे–छोटे राज्य भी थे। उन राज्यों में एकता का पूर्ण अभाव था। सन् 1830 ई० को फ्रांसीसी राज्य क्रांति के समाचारों ने जर्मनी राष्ट्रवादी उदार नेताओं में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार किया। उन्होंने विभिन्न राज्यों में निरंकुश शासन को निर्मूल करने के अभिप्राय से विद्रोह खड़े कर दिये थे। छात्रों अध्यापकों ने विशाल जूलूस निकाले और सभाओं में उत्तेजनापूर्ण भाषण किये। मेटरनिख इस प्रकार की उदार प्रवृत्तियों का कट्टर शत्रु था। अतः उसने जर्मन संघ की अत्यावश्यक सभा आयोजित करके उससे अनेक दमनकारी कानूनों की घोषणा कराई गई । अतः जर्मनी में

लेख लिखने, भाषण देने और समाचार पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। छात्रों के जलूस पर फ्रैंकफुर्ट में गोली चलाई गई तथा देश के समस्त छात्र संघों को भंग कर दिया। विश्वविद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों पर अंकुश रखने के लिए कठोर प्रवृत्ति के निरीक्षकों (ब्नतंजवते) की नियुक्ति की गई। जर्मन देशभक्तों की भारी संख्या देश से निर्वासित कर दी गई। उन सभी राज्यों में जहाँ उदार शासन की स्थापना की गई थी वहाँ सैनिक शक्ति का प्रयोग कर पुनः शासकों के निरंकुश शासन की स्थापना की गई। इस प्रकार मेटरनिख को जर्मनी में फ्रांस के क्रांति की प्रभावों को विनष्ट करने में सफलता प्राप्त हुई।

परंतु इतना होते हुए भी जर्मनी से राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को निर्मूल नहीं किया जा सका। वे उस समय तो दब सी गई थीं, परंतु भविष्य में किसी समय भी देश में विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित कर सकती थी । आगे चलकर यह बात सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। सन् 1848 ई० में फ्रांस में फिर एक क्रांति हुई जिसके प्रभाव से जर्मनी के राष्ट्रवादियों में एकता और संगठन का अद्भुत रूप से प्रसार हुआ और उन्होंने देश को संगठित राष्ट्र का रूप देने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की ।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा-प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

189

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा-प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

190

6. पोलैंड पर प्रभाव – सन् 1815 ई० में वियना के कांग्रेस के निर्णयों ने पोलैंड के उन प्रदेशों को जिन पर प्रशा और आस्ट्रिया ने उसका अंग–भंग करके अधि ाकार जमा लिया था, रूस को दिला दिया था। रूस के जार ने इस प्रकार प्राप्त पोलिश प्रांतों के साथ अपने कुछ और प्रदेश संयुक्त करके पोलैंड के राज्य की स्थापना की। उसने इस प्रकार से निर्मित राज्य को एक संविधान भी प्रदान किया, परंतु पोलिश देशभक्त इससे संतुष्ट नहीं हो सके। वे अपनी स्वतंत्रता की उपलब्धि के लिए प्रयत्नशील रहे। सन् 1825 ई० में रूस के जार अलैक्जैंडर प्रथम का स्वर्गवास हो गया और उसका भाई निकोलस रूस के सिंहासन पर आसीन हुआ। वह निरंकुश अत्याचारी और हठी शासक था ।

फ्रांस की जुलाई क्रांति के समाचारों से प्रेरणा प्राप्त करके पोलिश राष्ट्रवादियों ने संगठित होकर अचानक 29 नवम्बर 1830 ई० के दिन पोलैण्ड की राजधानी वारसा, में अचानक विद्रोह का बवण्डर खड़ा कर दिया । विद्रोह का विस्फोट इतना भीषण और भयानक हुआ कि वहाँ के रूसी शासक कोन्सटैन्टाइन के हाथ पैर फूल उठे और वहाँ से भागकर अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी। राष्ट्रीयता के उत्साह से परिपूर्ण पोलिश देश भक्तों ने रूसी अफसरों की हत्या

कर डाली। रूसी सेना को भी पोलैण्ड से भाग जाना पड़ा। राष्ट्रवादियों द्वारा पोलेंड में एक स्थायी सरकार की स्थापना की गई। उनके पास उस समय 50 सहस्त्र पोलिश सेना थी। उसी के बल पर वे एक वर्ष तक रूस की प्रबल शक्ति का वीरता के साथ सामना करते रहे। उन्होंने इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के उदारवादियों से सहायता के लिए अनेक करूणापूर्ण अपील की, परंतु वे लोग सहानुभूति रखते हुए भी रूस के भय से आतंकित होकर उनकी सहायता करने में असमर्थ रहे । अन्ततः रूसी सेनाओं को पोलैंड पर फिर अधिकार हो गया। रूस के जार ने पोलैंड को रूसी साम्राज्य में संयुक्त कर लिया और पोलिश देश – भक्तों की भारी संख्या साइबेरिया में उजाड़ शीतल प्रदेश में भयानक शीत में ठिठुर कर मर जाने के लिए निर्वासित कर दी गई। इस प्रकार लगभग अगले 25 वर्षों के लिए पोलैंड रूसी भालू के कठोर पंजों में पकड़ा गया । पोलैंड का सर्वस्व स्वाहा हो गया और रूस की तीक्ष्ण तलवार उसके ऊपर लटकने लगी।

7. स्विट्जरलैंड पर प्रभाव – उस समय स्विट्जरलैंड में अनेक छोटे–छोटे प्रांत (ब्ंदजवदे) थे जिसमें वहाँ की शासन व्यवस्था कुछ थोड़े से कुलीन समृद्ध परिवारों के ही हाथ में थी । जनता के प्रतिनिधियों को शासन में किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। सन् 1830 ई० की फ्रांस की राज्यक्रांति के समाचारों से प्रेरणा प्राप्त करके स्विट्जरलैंड के देश–भक्तों के देश के विभिन्न स्थानों में सभाओं का आयोजन किया और अधिकारों के लिए माँग करनी आरम्भ की। फलतः वहाँ की केन्द्रीय सरकार को शासन में विभिन्न प्रकार के सुधारों की स्थापना के लिये विवश होना पड़ा। परंतु इतने पर भी इन सुधारों द्वारा स्विट्जरलैंड के शासन को लोकतंत्रात्मक प्रशासन – प्रणाली के रूप में नहीं ढाला जा सका । परंतु आंशिक रूप में स्विस देश भक्तों को अपने प्रयासों में जिस सफलता की उपलब्धि हुई वह भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। इस सफलता की जो कुछ भी उपलब्धि हुई वह भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती। इस सफलता ने भविष्य में गणतंत्री सिद्धान्तों की स्थापना के लिए पथ प्रशस्त कर दिया सन् 1848 ई० को फ्रांस की तृतीय राज्यक्रांति के अवसर पर स्विस देश–भक्तों की अभिलाषा पूर्ण हुई ओर वहाँ का शासक पूर्ण रूप से गणतंत्र के सिद्धान्तों पर आधारित किया जा सका ।

8. इटली पर प्रभाव – फ्रांस की जुलाई सन् 1830 ई० में घटित राज्य – क्रांति ने इटली के विभिन्न राज्यों को भी प्रभावित किया। वहाँ के राष्ट्रवादी उदार देशभक्तों ने इटली में एक छोर से दूसरे छोर तक विद्रोहों की ज्वाला प्रचण्ड की । वारसा की रानी मेरी ड्यूक एवं मोडेना के ड्यूक को अपने प्राणों की रक्षार्थ वहाँ से भाग कर आस्ट्रिया में शरण लेनी पड़ी। पो नदी टाइवर नदी तक के सभी प्रांत विद्रोह की लपटों में धू–धू करके जलने लगे। क्रांतिकारियों का राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा निरंकुश शासकों के हृदय दहलाने लगा। इटली के निरंकुश शासकों और पोप ने मेटरिनिख से सैनिक सहायता की याचना की। मेटरनिख ने उनका संकेत पाते ही शक्तिशाली आस्ट्रियन सेना भेज दी जिससे

इटली भर में आन्दोलनों और विद्रोहों का क्रूरता के साथ दमन करके निरंकुश शासकों की सत्ता की

पुनर्स्थापना की। इस प्रकार इटली में फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव को निष्फल करते हुये क्रांति की लहर को अबरूद्ध कर दिया गया।

9. अमेरिका पर प्रभाव – फ्रांस की राज्यक्रांति के प्रभाव सूदूरगामी रहे। उन्होंने महासागरों को पार करके अमेरिका को भी प्रभावित किया । यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में फ्रांस की सन् 1789 ई० की राज्यक्रांति के विस्फोटक होने के पूर्व ही लोकतंत्र शासन की स्थापना की जा चुकी थी, परंतु वहाँ के शासन पर बड़े – बड़े धनपतियों एवं उद्योगपतियों ने अधिकार कर रखा था। जनता के अधिकारों की अमेरिका के संविधान में उपेक्षा की गई थी । वहाँ का समाज उस समय प्रधानतः दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग प्रभावशाली व्यापारियों, उद्योगपतियों और जमींदारों से निर्मित था। दूसरे वर्ग में साधारण प्रभावहीन और निर्धन व्यक्ति सम्मिलित थे, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में जाकर बसे थे। इसी प्रकार वहाँ एक वर्ग, ऐसे व्यक्तियों का था जो जनसाध ारण को अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान करने का पक्षपाती था। वहाँ के ध नीमानी व्यक्तियों को यद्यपि यूरोपीय – कुलीनों जैसे विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे, परंतु उन्होंने अपनी सम्पत्ति के बल पर शासन को प्रभावित कर रखा था उन्होंने अपने खेतों में काम करने के लिए सहस्त्रों अफ्रीकी हब्शियों और रेड इंडियनों को अपना दास बना रखा था।

सन् 1830 ई० की फ्रांसीसी क्रांति की लहर सुधारवादियों और उदारवादियों को संगठित होकर सुधारों की स्थापना और दास प्रथा की समाप्ति के लिए उग्र आन्दोलन खड़े करने की प्रेरणा प्रदान की । अतः देश भर में स्थान–स्थान पर सभाएं करके जनमत को उद्वेलित किया जाने लगा। सरकार को उन आन्दोलनों से आतंकित होकर शासन को अधिक उदार एवं जनहितकारी बनने के लिए विवश होना पड़ा। अस्पताल कल व कारखानों में काम करने वाले श्रमिक स्त्री–पुरुषों और बालकों की सुविधाएं विविध प्रकार के कानून, कारखाने अधि ानियम के अन्तर्गत बनाये गये जिनके कारण श्रम के घण्टे नियमित हो गए, श्रमिकों के स्वास्थ्य की देख–रेख के लिए प्रत्येक कारखानों में अस्पताल खोलने की व्यवस्था की गई तथा उसके लिए सुखदायी आवासों के निर्माण का प्रबन्ध ा किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी राज्यों में दास – प्रथा ैं(संअमतल) की समाप्ति कर दी गई तथा दक्षिणी देशों को ऐसा करने के लिए विवश किया जाने लगा। इस फ्रांस की सन् 1830 ई० की राज्यक्रांति के प्रभाव से संयुक्त राज्य अमेरिका में जनता के लाभार्थ अनेक प्रकार के सुधारों की स्थापना की गई।

लुई फिलिप (स्वनप चीपसपचम 1830 1848) भूमिका – 1830 ई० की क्रांति के पश्चात् ओर्लियन्स वंश के लुई फिलिप को फ्रांस का सम्राट घोषित किया गया। कारलाइल ने लुई फिलिप के विषय में लिखा है, इगेलाइट फिल्स, बाल्मी में छोटा–सा नौजवान था। वह बराबर वालों में छोटा था, किन्तु युद्धवीर था ।

युद्धों में वह निडर होकर चलता था । यह वही युद्धवीर इगेलाइट फिल्स था, जो शूरवीरता के कारण लुई फिलिप बनकर फ्रांस के राज सिंहासन पर बैठा । यद्यपि अभी वह सम्राट के पद के योग्य नहीं था, फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों में उसे फ्रेंच जाति का सम्राट बनना पड़ा। उसने अपने को फ्रांस का नागरिक सम्राट (ब्पजबमद ापदा वत ापदक व थ्तंदबम) घोषित किया। वह साधारण जीवन व्यतीत करता था । उसने बूब वंश के सफेद झण्डे के स्थान पर क्रांतिकारी तिरंगे को राष्ट्रीय चिह्न के रूप में स्वीकार किया । राष्ट्रीय गीत (डंतेमपससंपेम) की आवाज पुनः सुनाई देने लगी।

लुई फिलिप की आन्तरिक नीति

लुई फिलिप की स्वर्णिम मध्यवर्गीय नीति– लुई फिलिप ने अपने को फ्रांसीसी जनता का राजा घोषित किया अर्थात् यह घोषणा की कि वह फ्रांसीसी जनता की अनुमति से शासन करेगा । उसे यह अनुभव हो गया था कि दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर शासन करना असंभव होगा, इसलिए उसने उदार नीति का अनुसरण किया। लेकिन लुई फिलिप के समय मध्य वर्ग का प्रभाव था। अन्य वर्ग में भी उच्च वर्ग (स्ंथ्तंबी ठवनतहमचवेम) ने लुई फिलिप को अपना समर्थक बना लिया। उसकी इस नीति की स्वर्णिम मध्यवर्गीय (ळवसकम डमंद) नीति के नाम से भी पुकारा गया। ग्रेन्ट और टेम्परले ने इस नीति की व्याख्या करते हुए कहा है, लुई फिलिप ने कट्टर राजसत्तावादियों और गणतंत्रवादियों का पक्ष न लेकर, बुजुर्ग वर्ग

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
192

अर्थात् मध्य वर्ग का समर्थन करके, गोल्डन मीन नीति के रूप में मध्य वर्गीय शासन स्थापित करने का प्रयत्न किया।

लुई फिलिप के मन्त्रिमण्डल – लुई फिलिप को भी अनेक वर्गों के असन्तोष का सामना करना पड़ा। उसकी लोकप्रियता कितनी कम थी, इस बात का पता एक सदस्य द्वारा सम्राट के कार्यों के विषय में व्यक्त किये गये शब्दों से चल जाता है, कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नही । फ्रांस उससे ऊब गया है। लुई फिलिप के शासनकाल को भागों में विभक्त किया जा सकता। प्रथम भाग 1830 से 1840 ई० तक का है जिसमें मन्त्रिमण्डल अस्थायी रहे। इस काल के मन्त्रिमण्डल थे– लीफीक (1830–31) सीमीर (1831–32) मूल (1832–36) थीयर्स (1836–39)

और पुनः थीयर्स का द्वितीय मन्त्रिमण्डल (1840) । इस काल में विशेष रूप से 1831 से 1834 ई० के बीच मजदूरों के असन्तोष के कारण अनेक विद्रोह हुए। इन विद्रोहों के कारण गणतन्त्र दल की शक्ति उसके अनेक नेताओं की गिरफ्तारी के कारण कम होने लगी । सम्राट ने गणतन्त्रवादी पर अनेक प्रतिबन्ध ा लगा दिये। 1835 में ई० फिलिप पर दिये गए फीशी (थ्पेबवप) के हमले के कारण अनेक ऐसे कानून बनाये गए जिन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया। इन कानूनों की गणतन्त्रवादियों ने कटु आलोचना की। वे गुप्त रूप से अपना प्रचार कार्य करते रहे और लुई फिलिप के मध्यवर्गी शासन के शत्रु बन गए ।

गीजो मन्त्रिमण्डल – 1840 से 1849 तक गीजो का मन्त्रिमण्डल रहा । गीजो अनुदार दल का नेता था । उसने जुलाई में स्थापित राज्यसत्ता को स्वीकार किया था। गीजो ने अपनी नीति इस प्रकार घोषित की। अपने देश में क्रांति की गति को रोकना और दूसरे देशों में ऐसी नरमी से बर्ताव करना जिसमें वर्तमान संधियों का पालन हो और दूसरे राष्ट्रों के मामले में किसी प्रकार हस्तक्षेप न हो। 1830 ई० में जो सुधार लुई फिलिप ने स्वीकार व घोषित किये, उनको वह पर्याप्त व सनतोषजनक मानता था, लेकिन गीजो की निषेधात्मक और अनुदार नीति का परिणाम जनता का बढ़ता हुआ असन्तोष निकला। 1848 ई० की क्रांति को न गीजो रोक सका और न ही लुई फिलिप ।

विभिन्न दलों का असन्तोष – गणन्त्रवादी ही नहीं, बल्कि लेजिटिमिस्ट अर्थात कट्टर राजसत्तावादी भी लुई के शासन से इसलिए प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि राजा ने दैवी अधिकार के सिद्धान्त के अनुसरण की घोषणा नहीं की थी। बोनापार्टिस्ट दल, जिने नेपोलियन बोनापार्ट की गौरवशाली व साहसी बैदेशिक नीति को देखा था, लुई की कमजोर व दब्बू नीति से अप्रसन्न था। कैथोलिक पादरी और कट्टर कैथोलिक मतावलम्बी भी राजा से प्रसन्न नहीं थे। चार्ल्स दशम की भाँति शासन में उनका प्रभाव नहीं रहता था ।

सेन्ट सीमा और लुई ब्लाक द्वारा समाजवादी प्रचार– जनसाधारण व श्रमिकों के बढ़ते हुए असंतोष को अनेक लेखकों का प्रोत्साहन मिला। इन लेखकों के विचारों को समाजवादी नाम से पुकारा जाने लगा। इन विचारों में सेन्ट सीमा (ैंपदज ैपउवद) पहला व्यक्ति था जिसने भविष्य के समाजवादी विचार को प्रभावित किया । सेन्ट सीमा के अनुसार उत्पादन के साधनों पर राज्य का अध् िाकार होना चाहिए ताकि सभी श्रमिकों को उचित फल मिल सकें। फुरिए (थ्वनतपमत) बड़े–बड़े उद्योग व केन्द्रीयकरण को अच्छा नहीं मानता था। उसने अपनी व्यवस्था में समाज के छोटे–छोटे समुदायों को महत्व दिया। वह आर्थिक प्रशासन में नैतिक नियंत्रण का पक्षपाती था, न कि राजकीय हस्तक्षेप का । लुई ब्लांक (स्नपे ठसंदब) (1811–1882) ने समाजवाद को नया रूप दिया। उसने इस बात पर बल दिया कि श्रमिकों की भलाई राज्य के प्रयत्नों से ही सम्भव है। राज्य का कर्तव्य है कि उद्योग–धन्धों को अपने हाथ में लेकर सभी लोगों के काम के उचित अवसर प्रदान करे । उसने राष्ट्रीय कार्यशालाओं की स्थापना पर

जोर दिया । लुई ब्लाक ने लुई फिलिप की सरकार की खुलकर आलोचना की। उसे ऐसी सरकार कहा जिसमें केवल धनी लोगों का हित सम्भव है। उसके विचारों का मजदूरों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इससे समाजवादी विचारधारा व दल के पनपने में सहायता मिली।

औद्योगिक विकास– लुई फिलिप ने उद्योग को प्रोत्साहन प्रदान किया। इंग्लैंड से मशीनों का आयात किया गया। फ्रांस में नये–नये कारखाने खोले गये। रेलवे के विकास का कार्य एक ब्रिटिश कम्पनी को दिया गया। सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार की नीति अपनायी । किन्तु फ्रांस में ब्रिटेन की तुलना में औद्योगिक क्रांति का प्रभाव धीमा रहा ।

धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी नीति– आर्थिक क्षेत्र में सरकार ने तटस्थ रहने के प्रयत्न किये और नेपोलियनकालीन धार्मिक समझौते (कानकारडेट) का पालन किया। शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार की नीति उदार रही। प्रारम्भिक शिक्षा चर्च को सौंप दी गई। उच्च शिक्षण संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया।

लेकिन लुई फिलिप के सुधार केवल दिखावा था। 1847 में उसने कहा था, फ्रांस में कोई सुधारों की आवश्यकता नहीं है, सुधारों की मेरी इच्छा नहीं है। यदि प्रतिनिधि सुधारों के पक्ष में मत देंगे तो पीयर उनका विरोध करेंगे। यदि पीयर्स भी सुधारों का पक्ष लेंगे तो मैं अपनी वीटो द्वारा उसे निरर्थक बना दूँगा । इसलिए राज्य में मध्य वर्ग की छोड़कर अनेक वर्ग लुई फिलिप से असन्तुष्ट हो गए। यह तथ्य इस बात से पुष्टि हो जाता है कि 1832 ई० में लेजिटिमिस्ट लोगों ने विद्रोह किया। उन्हें डचेस डी बेरी ने उत्तेजित किया था। 1836 ई० में लुई नेपोलियन और 1840 ई० में बूलों (ठवनसवदहदम) ने राजगद्दी छीनने के लिए षड्यन्त्र रचे। गणतन्त्रवादियों ने भी 1831 और 1834 ई० में लियोन्स में विद्रोह भड़काया ।

है

लुई फिलिप की विदेश नीति–

वैदेशिक नीति में लुई फिलिप फ्रांसीसी जनता को वह यश व गौरव नहीं दे सका जिसकी वह भूखी थी। उसने इंग्लैंड से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये जिसके कारण फ्रांस की जनता वाअरलू की पराजय की बदला नहीं ले सकती थी। किन्तु इंग्लैंड से भी अच्छे सम्बन्ध कायम नहीं रह सके। लुई फिलिप ने अपने पुत्र का वैवाहिक सम्बन्ध स्पेन की रानी इसाबेला की छोटी बहन के साथ स्थिर कर दिया। इंग्लैंड इस वैवाहिक सम्बन्ध का विरोधी था ।

बेल्जियम में भी फ्रांस का अपमान हुआ। 1830 ई० जब बेल्जियम स्वतन्त्र हुआ तो वहाँ के लोगों ने लुई फिलिप के पुत्र को अपना राजा बनाना चाहा, लेकिन इंग्लैंड ने हस्तक्षेप करके 1831 ई० में लियोपाल्ड को बेल्जियम का राजा बना दिया।

उदारवादियों को सहायता न दे सकने के कारण इटली में भी लुई फिलिप ने

कमजोर विदेश नीति अपनाई ।

पूर्वी समस्या में भी लुई फिलिप का अपमान हुआ । लुई फिलिप मिश्र के गवर्नर मेहनत अली को सहायता देकर मिश्र व सीरिया को प्रभावित करना चाहता था, लेकिन इंग्लैंड ने लन्दन की संधि द्वारा फ्रांस के मनसूबों पर पानी फेर दिया । पोलैंड के लोगों के प्रति लुई फिलिप ने सहानुभूति तो प्रकट की लेकिन रूसी शासन से मुक्त होने के लिए उन्हें सैनिक सहायता न देकर उसने रूस को भी नाराज कर दिया। साथ ही पोलैंड के लोगों का

भी समर्थन नहीं प्राप्त कर सका।

1848 की क्रांति के कारण–

लुई फिलिप के शासन की कमजोर स्थिति का ला मार्टीन के इन शब्दों से पता लग जाता है, एक पत्थर का बुत भी इससे अच्छा शासन चला सकता था। चारों ओर के बढ़ते हुए विरोध ने 1848 ई० में क्रांति का रूप ले लिया उसके मूल में सक्रिय रहने वाली परिस्थितियाँ थीं–

1. विभिन्न राजनीतिक दलों का असन्तोष ।
2. लुई फिलिप का उच्च मध्य वर्ग के प्रभाव में आ जाना।
3. समाजवादी विचारधारा का बढ़ता हुआ प्रभाव।
4. असन्तोषजनक गृहनीति ।
5. कमजोर विदेश नीति ।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

6.

गीजो का मन्त्रिमण्डल द्य

ै मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

193

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ै मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

194

मताधिकार के बिस्तार को लेकर 1848 ई० में जो जन–आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसने लुई फिलिप की सरकार को उखाड़ फेंका। गीजो ने प्रतिनिधि सदन की रचना और मताधिकार के विस्तार का जमकर विरोध किया। थीयर्स और ओलिलों वारो (व्सकपसपवद इंततवज) ने जो इस समय के मुख्य नेता थे, संसदीय सुधारों के लिए प्रीतिभोज आयोजित करने का रास्ता अपनाया। 22 फरवरी 1848 ई० को पेरिस में समारोह आयोजित करने का निर्णय लिया गया, लेकिन सरकार ने ऐसे आयोजनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया । उत्तेजित भीड़ ने सरकारी आदेशों की परवाह नहीं की। सुधार जिन्दाबाद (स्वदह स्पअम तम. वितउे) तथा गीजों का नाश हो (क्वूद ूपजी ळनप्रवज) आदि नारे लगने लगे । अन्त में 24 फरवरी 1848 को राजा अपने नाती पेरिस के काउन्ट के पक्ष में

राजगद्दी छोड़कर इंग्लैंड चला गया।

क्रांति का प्रभाव–

1848 ई० के क्रांति का फ्रांस और यूरोप के अनेक देशों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अनेक देशों में निरंकुश शासन व पुरातन व्यवस्था के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन हुए। उनमें अनेक देशों की जनता को सफलता भी मिली।

फ्रांस– क्रांति के कारण फ्रांस में लुई फिलिप के शासन का अन्त हुआ । द्वितीय गणतंत्र की स्थापना हुई । नेपोलियन बोनापार्ट के भजीते लुई नेपोलियन को गणतन्त्र का अध्यक्ष बनाया गया। मजदूरों की स्थिति में सुधार हुआ। मताधि ाकार का भी विस्तार किया गया।

आस्ट्रिया – केवल आस्ट्रिया में नहीं, बल्कि समस्त आस्ट्रियन साम्राज्य में मेटरनिक की प्रतिक्रियावादी नीति के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हो गया। वियना उपद्रवों का केन्द्र बन गया । विद्यार्थियों तथा मजदूरों के अनेक विद्रोह हुएं मेटरनिख को वेश बदलकर आस्ट्रिया से इंग्लैंड भागना पड़ा। हेजन ने मेटरनिक के पतन की घटना का इस प्रकार वर्णन किया, मेटरिनक के पतन की घोषणा का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ । बाटरलू के उपरान्त यूरोप के लोगों के लिए यह विस्मयकारी समाचार था। उसके पराभाव के साथ–साथ ऐसी व्यवस्था का पतन हो गया जिसे उस समय तक अमेद्य समझा जाता था और इसी रूप में लोगों ने इस चीज का स्वागत किया।

हंगरी – हंगरी के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व लुई लोसूथ (स्वनपे स्वेनजी) और फ्रांसिस डीक कर रहे थे। लोसूथ लोकतांत्रिक विचारों का समर्थक था । वर्ग रहित समाज की स्थापना का पोषक था । लोसूथ एक समाचार–पत्र के माध्यम से जनता तक विचार पहुँचाता था। उस समाचार–पत्र पर प्रतिबन्ध लगया दिया गया । लुई फिलिप के पतन का हंगरी के आंदोलन पर विशेष प्रभाव पड़ा। अन्त में 31 मार्च 1848 ई० को आस्ट्रियन सरकार को हंगरी की अनेक बातें माननी पड़ी। स्वतंत्र मन्त्रि–परिषद की माँग स्वीकार की गई। इस मन्त्रिपरिषद में केवल हंगरी के सदस्य ही सम्मिलित किये गए। प्रेस को स्वतंत्रता दी गई। राष्ट्रीय सुरक्षा सेना की स्थापना की गई । सामन्त – प्रथा समाप्त की गई। यह भी तय किया गया कि डायट (क्पमज) प्रतिवर्ष बुडापेस्ट से मिला करे ।

बोहमिया – हंगरी के उदाहरण का बोहेमिया पर भी प्रभाव पड़ा । बोहेमिया की बहुसंख्यक चौक जाति की स्वायत्त शासन की माँग को स्वीकार किया गया। लेकिन आन्दोलन के हिंसात्मक रूप धारण कर लेने के कारण ये उपलब्धियाँ स्थायी न हो सकी अर्थात आस्ट्रिया ने क्रांतिकारियों को सख्ती से कुचल दिया।

इटली – इटली के अनेक राज्यों में क्रांति के परिणामस्वरूप आंदोलन शुरू किये गये। लोम्बार्डी, वेनेशि, पर्मा, मोडेना और टसकनी की जनता ने निरंकुश शासकों को हिला दिया। सार्डीनिया – पीडमाण्ट के राजा चार्ल्स एलबर्ड ने 4 मार्च 1848 को संवैधानिक सरकार की घोषणा की। यह ठीक है कि इन राज्यों से आस्ट्रियन आधिपत्य का प्रश्न उस समय नहीं उठ सका, लेकिन क्रांति से इटालियन राष्ट्रवादी आन्दोलन को नयी दिशा व प्रोत्साहन अवश्य ही मिले।

जर्मनी – जर्मनी के अनेक राज्यों को क्रांति ने प्रभावित किया। उपद्रवों से घबराकर प्रतिक्रियावादी शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने संविधान के निर्माण की बात स्वीकार कर ली । जर्मनी के एकीकरण को बढ़ाने का आशवासन दिया। जर्मन राष्ट्रीय सभा का चुनाव हुआ। लेकिन 1849 ई० में राष्ट्रीय सभा भंग
कर दी गई । पुनः निरंकुश शासन स्थापित हो गया। जर्मन एकीकरण का महत्वपूर्ण प्रयास विफल तो हो गया, लेकिन इससे लोगों में एकीकरण की भावना अवश्य ही जाग्रत हो गई।

इंग्लैंड – इंग्लैंड में भी सुधारों की माँग पर बल मिला। मजदूरों ने सुधारों को लेकर संसद के सम्मुख चार्टर प्रस्तुत किया। उसके आधार पर वहाँ एक नये आन्दोलन का सूत्रपात हुआ । इस आन्दोलन को इंग्लैण्ड के इतिहास में चार्टिस्ट आंदोलन के नाम से पुकारा गया। उस समय चार्टर की माँगों को यद्यपि स्वीकार नहीं किया जा सकता, लेकिन बाद में इंग्लैण्ड की संसद में समय – समय पर मजदूरों के हितों को लेकर अनेक कानून पास किये गए । आयरलैंड के राष्ट्रीय आन्दोलन को भी फ्रांस की क्रांति से प्रेरणा मिली।

1830 और 1848 ई० की क्रांतियों की तुलना–

समानताएँ– दोनों क्रांतियों में अनेक समानताएँ देखी जा सकती हैं। हेज महोदय ने तो यहाँ तक कहा है कि दोनों क्रांतियों में कोई मौलिक अन्तर नहीं था । प्रमुख समानताएँ निम्नलिखित थीं–

1. दोनों क्रांतियों में पेरिसवासियों का विशेष योगदान रहा।
2. दोनों क्रान्तियों के प्रस्फुटन का मूल कारण जनता का राजनीतिक असन्तोष था । 1830 की क्रांति चार्ल्स दशम की निरंकुश और प्रतिक्रियावादी नीति के परिणाम स्वरूप हुई और 1848 ई० की क्रांति लुई फिलिप के उच्च मध्यवर्ग के प्रभाव के कारण हुई।
3. दोनों ही बार शासकों के क्रातिकारियों को दबाने के लिए राष्ट्रीय गार्ड को आदेश दिये, लेकिन
सुरक्षा सेना ने क्रांतिकारियों का साथ दिया।
4. दोनों क्रांतियों के व्यापक प्रभाव हुए फ्रांस के बाहर यूरोप के अनेक देशों में सुधारवादी आन्दोलनों
इन क्रान्तियों से प्रोत्साहन मिला।
5.
को
दोनों ही क्रान्तियों के फलस्वरूप शासकों को फ्रांस की गद्दी छोड़कर इंग्लैंड भागना पड़ा।
6. दोनों क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य फ्रांस में सुधारवादी योजनाएँ लागू कर उदार व प्रगतिशील
शासन लागू करना था ।

क्रांति की विषमताएँ– दोनों क्रांतियों में अनेक समानताएँ होते हुए कुछ भिन्नताएँ

इकाई 11
राष्ट्रीय सभा के कार्य का मूल्यांकन

⁄1830 ई की क्रांति चार्ल्स दशम की निरंकुशप्रतिक्रियावादी और चर्च के समर्थकनीति के कारण हुई, जबकि 1848 की क्रांति लुई फिलिप की उच्च मध्ययवर्गीयनीति से उत्पन्न असंतोष के कारण हुई थी।

1830 ई० की क्रांति में मध्य वर्ग ने विशेष योगदान दिया अर्थात् इसी वर्ग ने चार्ल्स दशक का सबसे अधिक विरोध किया था, लेकिन 1848 ई० की क्रांति अनेक समाजवादी विचारकों ने भी फ्रांसीसी जनता को प्रोत्साहित किया।

1830 की क्रांति के पश्चात् फ्रांस में पुनः राजतंत्र की स्थापना हुई लेकिन 1848 ई० की क्रांति के पश्चात गणतन्त्र शासन की स्थापना की गई।

1830 की क्रांति की अपेक्षा 1848 की क्रांति ने मेटरिक की प्रतिक्रियावादी व्यवस्था को अधिक चोट पहुँचाई द्य

पश्चिमी विश्व

छव्जै

5.

1830 की क्रांति का तात्कालिक कारण जनता का चार्ल्स दशम द्वारा पारित चार अध्यादेशों का विरोध था और 1848 की क्रांति मताधिकार के विस्तार की माँग को लेकर आरम्भ हुई थी। भूमिका— लुई नेपोलियन अर्थात् नेपोलियन तृतीय का परिचय—

लुई नेपालियन का जन्म 1808 ई० में ईलरी के राज प्रसाद में हुआ था । वह हालैंड के राजा लुई बोनापार्ट का पुत्र था तथा फ्रांस के सम्राट नेपोलियन का भतीजा था। 1815 में वाटरलू में नेपोलियन की हार के बाद नेपालियन परिवार का पतन आरम्भ हो गया था नेपोलियन के कार्यों से बोनापार्ट परिवार का स्थान ऊँचा हो गया था। जनता की नेपालियन के प्रति विशेष श्रद्धा थी । अतः बोनापार्ट की इस प्रसिद्धि

बहुत

ँमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

195

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ँमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

196

का लाभ लुई नेपोलियन को मिलना निश्चित था। 1832 में नेपोलियन के पुत्र की मृत्यु

के बाद लुई नेपोलियन ही परिवार का एक मात्र सदस्य शेष था। 1840 में लुई

फिलिप ने लुई नेपोलियन को कैद कर लिया किन्तु वह जनता के सहयोग से कारागार से भाग निकला तथा 1848 ई० के राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय उसे जनता का विशेष सहयोग मिला तथा वह निर्वाचित घोषित कर दिया गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि जनता केवल बोनापार्ट नाम पर ही अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार थी।

लुई नोपोलियन द्वितीय फ्रेंच गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में– 1848 ई० में कारागार से भाग जाने के उपरान्त लुई नेपोलियन इंग्लैंड पहुँचा तथा इस घटना के उपरान्त फ्रांस में क्रांति के स्पष्ट चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे तथा 1848 ई० में क्रांति का विस्फोट हो गया। क्रांति के हो जाने पर लुई नेपालियन क्रांति में भाग लेने हेतु फ्रांस आ गया। पेरिस आने पर उसका जनता द्वारा भव्य स्वागत किया गया तथा क्रांति की सफलता के उपरान्त उसे राष्ट्रीय असेम्बली के लिए चार स्थानों से निर्वाचित घोषित कर दिया गया। किन्तु उसने असेम्बली का सदस्य बनने से इनकार कर दिया । 26 सितम्बर 1848 ई० को उसे पाँच स्थानों से असेम्बली का सदस्य मनोनीत किया गया। इस समय तक फ्रांस की जनता में लुई नेपोलियन के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास पैदा हो चुका था। अतः परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए राष्ट्रीय सम्मेलन का सदस्य बनने के केवल तीन माह उपरान्त की फ्रांस के द्वितीय गणराज्य के राष्ट्रपति पद हेतु निर्वाचन में भाग लिया तथा बहुत बड़े बहुमत से निर्वाचन में सफलता प्राप्त की। राष्ट्रपति पद के शपथ समारोह में उसने कहा था– मैं प्रजातन्त्र राज्य की प्रति बफादार रहूँगा । मेरा कर्तव्य स्पष्ट है और मैं इसे बचन पालक व्यक्ति की तरह मानूँगा तथा निभाऊँगा ।

राष्ट्रपति बनने के उपरान्त लुई नेपोलियन के कार्य – राष्ट्रपति निर्वाचित होने के उपरान्त लुई नेपोलियन ने निम्नलिखित कार्यों को किया–

(अ) मध्यम वर्ग के लोगों को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से उसने व्यापार तथा व्यवसाय के संरक्षण को दृष्टि
में रखकर अनेक व्यवस्थाएँ की थी।

(ब) देश के विभिन्न राजनीतिक दलों का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने ऐसे कानूनों का निर्माण करना चहा जिससे वह आगामी निर्वाचन में भी राष्ट्रपति निर्वाचित हो सके। किन्तु फ्रांस की राष्ट्रप्रतिनिधि सभा के विरोध के कारण वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। इस समय राष्ट्र प्रतिनिधि सभा ने एक कानून द्वारा मताधिकार को अत्यन्त सीमित कर दिया तथा केवल उन्हीं व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया जो केवल निश्चित धन – राशि टैक्स के रूप में देते थे। इस प्रकार के कानून से जनता में असंतोष व्याप्त हो गया किन्तु इस स्थिति का लाभ उठाते हुए लुई ने राष्ट्र – प्रतिनिधि सभा का भंग कर दिया तथा जनसाध ाारण का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने वयस्क मताधिकार की घोषणा भी कर दी। अनेक रिपब्लिक नेताओं को कैद कर लिया गया तथा सैकड़ों विद्रोहियों को सैनिकों द्वारा कुचल दिया गया । अतः इस प्रकार 1851 ई० में अपन षडयन्त्र सफल बनाकर लुई नेपोलियन फ्रांस का विधाता बन गया। अब

जनता के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा तथा 21 वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक पुरूष को जो फ्रांस का निवासी था मताधिकार प्रदान कर दिया गया तथा जनता के सम्मुख उद्घोषणा कर दिया कि फ्रांस की जनता लुई नेपोलियन के शासन को स्थायी रखने की इच्छुक है और उसे अधिकार देती है कि 2 दिसम्बर 1851 को उद्घोषित विचारों के आधार पर एक नवीन शासन विधान का निर्माण करे।

(स) फ्रांस में रोमन कैथोलिक धर्म की अनुयायी जनता की अधिकता थी, अतः उसने कैथोलिक से सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी एक सेना को रोम भेजा तथा वहाँ के देशभक्त मेजिनी को पदच्युत करके पोप को वहाँ का शासक बना दिया । नेपोलियन के इस कार्य से उसे कैथोलिकों का पूर्ण समर्थन एवं सहयोग प्राप्त हो गया ।

(द) नवीन शासन विधान का निर्माण– लुई नेपोलियन ने जनवरी 1851 ई० को एक नवीन शासन विधान की नींव डाली। जिसके परिणाम स्वरूप लुई नेपोलियन को अपने मन्त्रिमण्डल में स्वयं शामिल
करने का अधिकार प्राप्त हो गया। अब उसको 2 वर्ष के स्थान पर 10 वर्ष के लिए राष्ट्रपति नियुक्त कर दिया गया । लुई नेपोलियन ने व्यवस्थापन्न विभाग में तीन निम्नलिखित सभाओं का निर्माण किया–

(प) व्यवस्थापिका सभा – व्यवस्थापितका सभा के सदस्यों की संख्या 250 निश्चित की गई तथा इनका निर्वाचन सम्पूर्ण बालिग पुरूष मताधिकार के द्वारा निश्चित किया गया। इस सभा का कार्य प्रस्तावित कानूनों पर बहस करना व उन पर अपना मत प्रकट करना होता था ।

(पप) सीनेट – कानून की वैधानिक की जाँच करने हेतु एक सीनेट बनाई गई जिसका मुख्य कार्य यह
था कि वह देखभाल रखे कि कोई कानून शासन विरोधी न हो।

(पपप) राज्य परिषद – यह सभा कानूनों का मसौदा तैयार करने हेतु बनाई गई थी। तथा इसके सदस्यों
की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती थी ।

कार्यों का मूल्यांकन– अतः उपरोक्त सभी कार्यों के आधार पर लुई नेपोलियन फ्रांस की राजनीति में काफी प्रसिद्धि तथा जनमत प्राप्त कर चुका था। अब फ्रांस में समाजवाद का अन्त तथा एक गणतंत्र की स्थापना हो चुकी थी। जिसमें राजतन्त्रवादियों का बहुमत था । अतः फ्रांस का एकमात्र भाग्य विधाता बन गया। नवीन संविधान द्वारा वास्ताविक राज्यशक्ति राष्ट्रपति के हाथों में निहित कर दी गई तथा तीनों सभाओं पर राष्ट्रपति को पूर्ण अधिकार हो गया। अब राष्ट्रपति को मनमाने ढंग से कार्य करने की स्वतंत्रता थी तथा उसका कार्य–काल 10 वर्षों के लिए सुरक्षित था। वास्तव में उसके कार्यों ने तथा जनता के सहयोग ने लुई नेपालियन के सम्राट बनने के मार्ग को खोल दिया था।

लुई नेपोलियन एक सम्राट के रूप में– लुई नेपोलियन की महत्वाकांक्षा नेपोलियन बोनापार्ट के वंशानुगत अधिकारों को स्थापित करने की थी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने राष्ट्रपति के पद को 10 वर्षों के लिए सुरक्षित कर दिया तथा मताधि

ाकार नियमों में संशोधन करके जनमत को अपनी ओर कर लिया। थोड़े दिनों बाद उसने जनमत को पुनः प्रभावित किया व स्वयं सम्राट नेपोलियन तृतीय की उपाधि दी कि जनता की वास्तविक इच्छा यही है कि मुझे सम्राट नियुक्त किया जाए। इस उद्घोषणा के पक्ष में सीनेट ने प्रस्ताव पारित कर दिया तथा उद्घोषित किया कि राष्ट्रपति लुई नेपालियन फ्रांसीसी जनता तथा देश को समृद्धि के रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए फ्रांसीसियों से सम्राट की उपाधि ग्रहण करके राज सिंहासन को सुशोभित करें। फ्रांस की जनता ने बहुमत से इस प्रस्ताव को मानते हुए लुई नेपोलियन को अपना सम्राट मान लिया तथा अब फ्रांस में पुनः राजसत्ता की स्थापना हो गई।

नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षाएँ– नेपोलियन तृतीय 1852 ई० से 1870 ई० तक फ्रांस की राजगद्दी का स्वामी बना रहा। इस समय फ्रांस में ऐसी परिस्थितियाँ चल रही थी कि देश का श्रमिक, व्यापारी तथा जनसाधारण वर्ग सभी राज – सत्ता की सफलता अपने पक्ष में समझता था। इस समय कैथोलिक जनता को भी नेपोलियन का विश्वास प्राप्त था । नेपोलियन चाहता था कि फ्रांस की राजगद्दी उसके अपने वंश में ही रहे। इसलिए उसने अपना विवाह स्पेन की एक राजकुमारी यूजेनी से किया । लुई नेपोलियन के यहाँ एक पुत्र जन्म का हुआ जिसे प्रिंस इम्पीरियल कहा जाता है। नेपोलियन अपनी मृत्यु के बाद अपने पुत्र को फ्रांस का सम्राट बनाना चाहता था। यद्यपि इस कार्य को अन्तिम रूप देने के लिए उसे जनता का जनमत प्राप्त था किन्तु निम्नलिखित समस्याओं के कारण वह अपने उद्देश्य में असफल

रहा–

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

1.

इस समय फ्रांस की विदेशी शत्रुओं का भय बना हुआ था तथा युद्ध की समस्या का सामना भी नेपोलियन को करना था।

2

फ्रांस में अब भी अन्य दल लोकतंत्र के पक्षपाती थे। जिनसे नेपोलियन का तीव्र विरोध था । अब नेपोलियन ने जनता को अपने पक्ष में लेने के उद्देश्य से तथा राजसत्ता को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से कुछ सुधार किये तथा विरोधी दल के नेता औलिविवे को अपना प्रधानमंत्री नियुक्ति किया।

ै मसा–ि्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

197

पश्चिमी विश्व

3.

रिपब्लिक दल नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध कर रहा था ।

4.

1857 ई० के चुनाव में व्यवस्थापिका सभा में रिपब्लिकन दल के सदस्य निर्वाचित

हो गए जिनका विरोध नेपोलियन तृतीय के सामने एक समस्या थी ।

छव्जै

5.

बूब व और लियन्स वंशों के पक्षापतियों ने नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध किया ।

ैमसµ्प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

198

१

6.

1862 ई० के चुनावों में रिपब्लिक दल के सदस्यों की संख्या 35 हो गई व व्यवस्थापिका सभा में नेपोलियन का एक विरोधी दल थीयर्स के नेतृत्व में खड़ा हो गया था । यह दल भी नेपोलियन तृतीय का घोर विरोध कर रहा था ।
निष्कर्ष – यद्यपि अपनी उक्त विदेश नीति के आधार पर नेपोलियन फ्रांस की जानता का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम से मनाया और अपना नाम नेपोलियन तृतीय रखा। सीनेट में उसे फ्रांसीसियों के सम्राट की उपाधि दी। वह नेपोलियन की भाँति ही इतिहास में अपना नाम पैदा करना चाहता था। उसने फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य की स्थापना की ऊपर से देखने से उसकी स्थिति सुदृढ़ मालूम पड़ती थी। लेकिन उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थीं अनेक लोग उसके विरोधी थे। परंतु उनकी संख्या इतनी अधिक नहीं थी कि वे नेपोलियन का डटकर विरोध कर सकते। अतः जब वह सिंहासन पर बैठा तो उसके चारों ओर संकट थे। अतः उसने इन संकटों को दूर करने के लिए निम्नलिखित गृह तथा विदेश नीति अपनाई ।

1. गृहनीति– उसकी स्थिति सुदृढ़ नहीं थी इसलिए उसने अपने आपको जनता में प्रिय बनाना चाहा जिससे उसके विरोधी उसको किसी प्रकार हानि न पहुँचा सकें। उसकी गृहनीति का उद्देश्य स्वतन्त्रता के साथ सुव्यवस्था बनाना था। उसने अपने शासन काल में सुव्यवस्था बनाये रखने का प्रयत्न किया।

2. आर्थिक नीति – वह फ्रांस की जनता की बेकारी दूर करना चाहता था । बेकारी दूर करने के लिए उसने अनेक सड़कों का निर्माण करवाया, भवन बनवाये नहरों तथा रेलों का भी जाल बिछवाया । इसमें अधिक बेकार लोगों को काम मिला। कृषि की उन्नति के लिये उसने कृषकों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा दिलवाई। उनके ज्ञान वर्द्धन के लिए प्रदर्शनियाँ लगवाई। उन्होंने अच्छी खाद वितरित की । दलदली भूमि को सूखाकर कृषि के योग्य बनवाया। किसानों को सहकारी समितियों द्वारा सहायता दिलवाई। बैंकों की अनेक शाखाएं खुलवाई। इस प्रकार व्यापार को भी सहायता मिली। फ्रांस के व्यापारियों को विदेशों में माल भेजना सुरक्षित हो गया। इससे विदेशी निर्यात बहुत बड़ा । शासकीय खजाने में भी आमदनी बढ़ी और थोड़े ही दिन में फ्रांस की काया सी पलट गई।

3. श्रमनीति – उद्योगपति श्रमजीवियों के साथ बुरा व्यवहार करते थे। वे उनका शोषण भी करते थे और श्रमजीवियों के साथ पहले से खराब थी कि उन्हें दो

टाइम का खाना भी नहीं मिल पाता था । नेपोलियन तृतीय ने फैक्टरी सम्बन्ध ी अनेक सुधार किये। उसने मजदूरों को हड़ताल करने का अधिकार दिया तथा उन्हें अपना संघ बनाने का अधिकार दिया। इस प्रकार के सुधारों से मजदूर उसके कट्टर समर्थक बन गए।

4.

स्वतन्त्रता विरोधी नीति– नेपोलियन तृतीय फ्रांस की जनता की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं था । इसलिए उसने भाषण की स्वतन्त्रता पर रोक लगाई। समाचार पत्रों पर भी उसने प्रतिबन्ध लगा दिया। कोई भी ऐसा समाचार नहीं छापा जा सकता था। जो शासन के विरुद्ध हो । यदि कोई सम्पादक इस नियम की अवहेलना करता था तो उसको इतना भारी आर्थिक दण्ड दिया जाता था कि उसका प्रकाशन सम्बन्धी कार्य भी ठप्प हो जाये । उसने देश में गुप्तचरों का जाल बिछाया। ये गुप्तचर व्यक्तियों की कार्यवाहियों पर निगरानी रखते थे। कालेज के अध्यापकों को भी राज्य के प्रति वफादार होने की शपथ लेनी पड़ती थी और विद्यार्थी भी अपनी यूनियन नहीं बना सकते थे।

5. विरोधियों का दमन करने का प्रयास– उसने ऐसा कानून पास करवाया जिसके अनुसार विरोधी लोग कम से कम चुनाव में भाग ले सके। राजनीतिक अपराध में बन्दी व्यक्ति न तो मत दे सकता था और न ही चुनाव में खड़ा हो सकता था। उसने मत देने का अधिकार सब व्यक्तियों को दे दिया
और चुनाव क्षेत्रों की सूची इस प्रकार बनवाई कि प्रत्येक नगर के साथ एक–दो गॉव अवश्य रहे । नेपोलियन के समर्थक गांव में अधिक थे। इसलिए विरोधियों को जो शहर में रहते थे उन्हें चुनाव में अधिकतर सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने व्यवस्थापिका सभा पर भी अकुंश रखने के लिए सीनेट का निर्माण किया। सीनेट के सदस्यों का नामांकन नेपोलियन तृतीय के द्वारा होता था। व्यवस्थापिका सभा कानून भी नहीं बना सकती थी । इस प्रकार उसने विरोधियो का अन्त करने का प्रयास किया। शासन के विरुद्ध भाषण करने वाले व्यक्तियों को उसने जेल में डाल किया। इस प्रकार उसने अपने विरोधियों का दमन किया।

6. विदेश नीति – नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति को दो भागों में बाँट सकते हैं

पश्चिमी विश्व

छव्जै

1.

1852 से 1860

2.

1860 से 1870 तक

प्रथम भाग में उसे विदेशी नीति में बहुत अधिक सफलता मिली और फ्रांस का नाम बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ। लेकिन द्वितीय भाग में उसे कोई सफलता नहीं मिली और उसका पतन हो गया ।

7. विदेश नीति का प्रथम चरण–

रोमन सम्बन्धी नीति– वह अपने चाचा की भाँति ही विदेशों में ख्याति प्राप्त करना चाहता था और उसने राज्य सिंहासन पर बैठते ही यह कार्य किया। उसने रोम में गणतन्त्र के विरुद्ध सेनाएं भेजी और पोप का साथ दिया। इस प्रकार उसने पोप को तथा कैथोलिक जनता को अपना समर्थक बना दिया।

8. क्रीमियाँ युद्ध सम्बन्धी नीति– उसने क्रीमियाँ युद्ध के विरुद्ध टर्की का साथ दिया। क्योंकि वह पूर्व की ओर रूस का प्रभाव कम करना चाहता था। इस कार्य में उसे सफलता मिली और टर्की ने रूस को बुरी तरह हरा दिया। फ्रांस को इससे कोई आर्थिक लाभ न हुआ बल्कि फ्रांस के 75 हजार सैनिक और अरबों रूपया बरबाद हुआ। परंतु नेपोलियन की और फ्रांस की कीर्ति विदेशों में बहुत अधिक फैल गई। दोनों देशों ने संधि के लिए नेपोलियन तृतीय को शांति परिषद में सभापति के पद आसीन किया। इस समय वह अपने गौरव की चरम सीमा पर था । पेरिस यूरोप की राजनीति का प्रधान केन्द्र बन गया था।

9. रूमानियाँ सम्बन्धी नीति– नेपोलियन ने रूमानियाँ के देशभक्त लोगों का समर्थन किया और गणतन्त्र बनाने में सहायता देने के लिये फ्रांस ने एक सेना भेज दी। इससे टर्की और आस्ट्रिया के सम्राट को भी नेपोलियन की बात माननी पड़ी और वहाँ एक नवीन राष्ट्र का निर्माण हुआ ।

10. इटली सम्बन्धी नीति– उसने इटली के कावूर को सहायता देने का वचन दिया। कावूर ने उसकी सहायता से आस्ट्रिया को दो बार युद्धों में हराया और आस्ट्रिया को इटली खाली करना पड़ा। परंतु इसी समय उसने यह सोचा कि पीडामेंट का राज्य इतना सुदृढ़ हो जाएगा कि कभी भी फ्रांस को हरा सकता है। अतः उसने बीच युद्ध में ही फ्रांस की सेना को वापिस बुला लिया । अतः इटली के उदारवादी नेता उससे नाराज हो गए और इटली को विवश होकर आस्ट्रिया के साथ ज्यूरिक की संधि करनी पड़ी। यहाँ से उसके पतन का श्रीगणेश होता है। हेजन ने ठीक ही लिखा – नेपोलियन की गम्भीर कठिनाइयों का श्रीगणेश इटली युद्ध से ही होता है। यदि वह 1860 में स्वर्ग सिधार गया होता तो वह इतिहास में एक सफल शासकों में गिना जाता ।

11.

विदेश नीति का द्वितीय चरण–द्वितीय काल की विदेश नीति में उसे अनेक असफलताओं का सामना करना पड़ा। इससे फ्रांस की प्रतिष्ठा और गौरव को महान आघात पहुँचा ।

12. उपनिवेश सम्बन्धी नीति– फ्रांस अपने उपनिवेशों की संख्या बढ़ाना चाहता था और अपनी नीति को सफल बनाने के लिए उसने कूटनीति का सहारा लिया। जो उपनिवेश उससे अलग हो गये थे उन्हें सैनिक सहायता भी दी जिससे कि वह उपनिवेश उसकी तरफ मिल जाये । उसने अफ्रीका के अनेक उपनिवेशों पर सेना की सहायता से अधिकार कर लिया। 1860 ई० में चीनी तट पर अपना

ैमसप्–ि्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

199

पश्चिमी विश्व
छव्ज्ञै
`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
200

व्यापारिक एकाधिकार जमाया। मैक्सिको सम्बन्धी नीति में भी उसको असफलता का मुँह देखना पड़ा और इससे उसका पतन हो गया।

13. पोलैंड सम्बन्धी नीति– उसने पोलैंड के देशभक्तों को रूस के प्रभाव से मुक्त होने के लिये उत्साहित किया। वहाँ के देशभक्तों ने रूस के जार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जार ने सेना भेजकर देशभक्तों का दमन किया । सहस्त्रों व्यक्ति गोली का शिकार बना दिए गए। नेपोलियन तृतीय ने उसकी कोई सहायता नहीं की इससे देशभक्त पोल निवासी और फ्रांस में राष्ट्रवादी उसके विरोधी हो गए जो उसके पतन में सहायक हुए।

14. जर्मनी सम्बन्धी नीति– जर्मनी की औपनिवेशिक नीति भी असफल रही। वह जर्मनी के राष्ट्रीयकरण का समर्थक था। जब प्रशा और आस्ट्रिया में होलस्टीन प्रांत के प्रश्न पर युद्ध चला तो विस्मार्क ने नैपोलियन को इस बात के लिये राजी कर लिया कि फ्रांस तटस्थ रहे और इसके बदले में राइन तट के प्रदेश देने का वचन दिया। उसने सोचा था कि दोनों राष्ट्रों की युद्ध में शक्ति क्षीण हो जाएगी और इस प्रकार फ्रांस यूरोप में शक्ति शाली बन जाएगा। लेकिन यह उसकी कल्पना मात्र थी । अतः प्रथा ने आस्ट्रिया को बुरी तरह हराया ओर आस्ट्रिया को जर्मनी खाली करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार फ्रांस की सीमा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण हो गया। जो हमेशा फ्रांस के लिए सिर दर्द हो सकता था। इससे फ्रांस के राष्ट्रवादी नेपोलियन के विरोधी हो गए राष्ट्रीय एसेम्बली में बीयर्स ने गर्जना करते हुए कहा यह आस्ट्रिया की नहीं फ्रांस की पराजय थी नेपोलियन को बिना तैयारी किये ही प्रशा के साथ युद्ध करना पड़ा जिससे नेपोलियन की पराजय हुई और उसका पतन हो गया।

15. वैदेशिक नीति की असफलता के कारण– नेपोलियन तृतीय की औपनिवेशिक नीति कल्पना पर आधारित थी। उसने अपनी नीति का निर्माण विभिन्न परिस्थितियों के बीच किया था । दृढ़ता के साथ उसने किसी नीति का पालन नहीं किया। उसकी विदेशी नीति अस्थिर और डावाँडोल थी । उसकी क्रांतिकारी योजनाएं तूफान की भाँति बनती थीं और अस्थिर मनोवृति के कारण वे आसानी से मिट जाती थी । इसलिए नेपोलियन तृतीय कर पतन हो गया ।

16. इतिहास में स्थान– फ्रांस के इतिहास में नेपोलियन तृतीय विशेष स्थान है। नेपोलियन तृतीय यूरोप के लिए एक समस्या था । यूरोप वाले यह समझने में असमर्थ थे। वह महत्वाकांक्षी और अस्थिर बुद्धि का व्यक्ति था ।

पूर्वी समस्या

भूमिका – पूर्वी समस्या की व्याख्या विभिन्न यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने भिन्न प्रकार से की है। यह समस्या भिन्न–भिन्न रूप धारण करती रही है कभी बलकान प्रदेश को जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये और कभी

यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थी के कारण इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। तुर्क साम्राज्य के पतन के बाद किसको तुर्क राज्य पर शासन करने को मान्य किया जाए। यह समस्या यूरोपीय राष्ट्रों के बीच बनी रहीं। रूसी राजनीतिज्ञ इसे गठिया रोग के समान मानते हैं जो कभी पैरों को जकड़ लेता है, तो कभी हाथों को आसक्त कर देता है। हेजन के अनुसार पूर्वी समस्या तुर्की के भाग्य की समस्या थी, प्रिंस विस्मार्क इस समस्या को तुच्छ एवं सारहीन मानता था। वह कहा करता था, सम्पूर्ण पूर्वी समस्या ओमेरनियां की एक हथगोलाधारी सैनिक के हड्डियों के मूल्य के बराबर भी नहीं है। लार्ड मार्ले के अनुसार यह समस्या विभिन्न जाति एवं धर्म की न समझ में आने वाली समस्या थी ।

इस समस्या की उत्पत्ति के कारण–

1. बलकान प्रायद्वदीप की जनता में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार होना था। बलकान प्रदेश में स्लिाव जाति के लोग रहते थे। जाति भाषा और धर्म के आध ाार पर वे रूसियों से मिलते–जुलते थे। इसलिए रूसी जार उनके साथ सहानुभूति प्रकट करता था ।

2. तुर्की साम्राज्य अत्यधिक विस्तृत था। तुर्क में कोई ऐसा योग्य शासन नहीं हुआ। इसलिए तुर्की साम्राज्य छिन्न–भिन्न होने लगा। विभिन्न राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए वहाँ कौवे की तरह झपट्टा मारने लगे।

3.
विभिन्न राष्ट्र यूरोप में संतुलन रखते थे। इसलिए रूस को तुर्की साम्राज्य में प्रवेश करने नहीं देना चाहते थे।

4. तुर्क साम्राज्य जो विभिन्न जातियों का अजायबघर था। उसके निवासियों में धार्मिक मतभेद बहुत अधिक था। शासन प्रणाली भी विकृत हो चुकी थी ओर तुर्की साम्राज्य का पतन भी सुनिश्चित हो चुका था । इसलिए विभिन्न देश के राजनीतिक तुर्क साम्राज्य में स्वार्थ और अरुचियाँ रखते थे। इसके कारण जो समस्या आई उन्हें ही पूर्वी समस्या के नाम से पुकारा जाता है।

सर्विया का विद्रोह– सर्विया के देश–भक्तों ने 1848 में रूस का समर्थन पाकर विद्रोह कर दिया और तुर्की के गवर्नर मुस्तफा कमाल पासा का वध कर दिया और तुर्की सेना को मार भगाया। जार्ज मेटरनिक ने राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की और शासन अपने हाथ में सम्भाल लिया तुर्क सुल्तान रूस के डर की वजह से कुछ न कर सका। 1812 में जब नेपोलियन के साथ युद्ध में लगा था तब उसने एक विशाल सेना भेजकर सर्विया पर अधिकार कर लिया । नेपोलियन के पतन के पश्चात् रूस ने फिर से विद्रोह करा दिया और रूस के दबाव के कारण टर्की को स्वतन्त्रता प्रदान की। इस प्रकार टर्की के राजा का सर्विया पर नाममात्र का संरक्षण रहा। इस प्रकार यह पहला राज्य था। जो टर्की साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गया ।

ईरानियों का स्वतन्त्रता संग्राम– सर्विया में स्वतन्त्र देखकर अलैक्जैन्डर ने

हिप्सिलान्टी के नेतृत्व में तुर्की शासन के विरुद्ध विद्रोह के निम्नलिखित कारण थे।

1.

2.

3.

4.

5.

फ्रांस की राज्य क्रांति की राष्ट्रीय भावनाये ईरान में भी फैल गई गई थी और वे शासन करने लगे।

यहाँ के अधिकांश व्यक्ति यूनानी चर्च के समर्थक थे । तुर्की लोगों को गद्दार तथा काफिर समझते थे। वे सभ्य तथा सुसंस्कृत भी थे तथा शासन के कार्यों में हाथ बँटाते थे। इसलिए इन लोगों में स्वतन्त्रता की भावना का विकास हुआ वे टर्की साम्राज्य के विरुद्ध यूनानी साम्राज्य का खोया हुआ गौरव प्राप्त करना चाहते थे ।

तुर्क यूनानियों पर अत्याचार करते थे । इसलिए विद्रोह करना स्वाभाविक था ।

प्लेटो, अरस्तु और सुकरात जैसे दार्शनिकों एवं महान् देश भक्तों ने लोगों के हृदय में राष्ट्रीयता की भावनाओं को
भरा।

रूस का जार ईसाई धर्म को मानने वाला था वह यूनानियों को स्वतन्त्र होने के लिए प्रेरित करता
रहता था।

अलीफासा ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तुर्की का सुल्तान जब इस विद्रोह को दबाने में लगा था। उसी समय यूनानियों ने विद्रोह कर दिया ।

यूनान में विद्रोह – यूनान के विद्रोह को दबाने के लिए रूसी शासक ने एक सेना भेजी । अन्य देशों ने यूनान की सहायता नहीं की और यूनान को अकेले ही तुर्क साम्राज्य का सामना करना पड़ा परंतु इसे उन्हें सफलता नहीं मिली। विद्रोह बराबर होते रहे और अन्त में सुल्तान को विवश होकर मिस्र से सहायता माँगनी पड़ी। मिस्र के शासक ने अपने पुत्र इब्राहित की अध्यक्षता में एक सेना भेजी। उसने क्रीट पर अधिकार कर लिया और अनेक यूनानियों का वध कर डाला। इस भयंकर अत्याचार से यूरोप की जनता ने यूनानियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की और अपने शासकों पर यह दबाव डाला कि वे यूनानी जनता की सहायता करें।

विदेशी हस्तक्षेप– जनता के हस्तक्षेप से विवश होकर रूस, फ्रांस और इंग्लैंड की सरकारों ने तुर्क सुल्तान के अत्याचारों के लिए विरोध किया। उक्त देशों ने लिखा कि यूनान में मचे हुए भीषण रक्तपात को रोका जाए और यूनानियों को स्वतन्त्र कर दिया जाए। तुर्क सुल्तान ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अतः
पश्चिमी विश्व

इंग्लैंड फ्रांस और रूस टर्की सुल्तान ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। अतः इंग्लैंड, फ्रांस और रूस टर्की के प्रति युद्ध की घोषणा कर दी और अपने–अपने युद्धपोतो यूनानियों की सहायता के लिए भेज दिये। नेवारिन के युद्ध में विदेशी युद्धपोतो ने टर्की बेड़े को नष्ट कर दिया और सुल्तान की शक्ति को नष्ट कर दिया। इंग्लैंड में मन्त्रि मण्डल के परिवर्तन किये जाने के कारण वहाँ के प्रधानमंत्री ने जो केलिंग की नीति का विरोधी था, जंगीला बेड़ा वापिस बुला लिया। फ्रांस ने भी युद्ध से हाथ खींच लिया। रूस का जार अकेला युद्ध करता रहा और वह विजय प्राप्त करता हुआ कुस्तुनतुनिया जो कि टर्की की राजधानी थी, वहाँ पहुँच गया। तुर्की के सुल्तान को विवश होकर संधि करनी पड़ी।

एड्रियानोपल की संधि– एड्रियानोपाल की संधि ने टर्की की दुर्बलता संसार के सामने प्रकट कर दी। इस संधि की शर्तें निम्नलिखित थीं–

1. टर्की को यूनान देश को स्वतन्त्र मानना पड़ा तथा वेलेशिया और बोल्डिया में स्वयत्त शासन की
स्थापना करने के लिए विवश होना पड़ा।
2.
3.
4.

रूस को टर्की के कुछ भागों पर अधिकार हो गया, जिससे उसे व्यापारिक सुविध
ाएं भी मिली क्योंकि रूस भूमध्य सागर तक आसानी से पहुँच सकता था ।
रूमानिया के लोगों को एक अलग राज्य मान लिया गया। इस राज्य को टर्की को एक निश्चित धन राशि प्रतिवर्ष देनी पड़ती थी ।

इस संधि ने रूस के गौरव में चार चाँद लगा दिये और यह संधि मेटरनिख की पराजय भी थी। क्योंकि वियेना की कांग्रेस के बाद यह पहली राष्ट्रीय विजय थी । इस संधि के बाद यूनान को पूर्ण स्वतन्त्र देश मान लिया गया। परंतु देश में दलबन्दी होने के कारण वह गणतन्त्र की स्थापना न हो सकी और वहाँ राजतन्त्रात्मक सत्ता की स्थापना की स्थापना हुई। इस संधि के पश्चात् भी ईरान और टर्की से झगड़ा चलता रहा और अन्त में 1812 में यूनान पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया। अब उसका टर्की से कोई सम्बन्ध न रहा ।

पूर्वी समस्या का मिस्र से कमाल पासा ने पूर्वी समस्या में एक नवीन अध्याय की सृष्टि की – यूनानियों के विद्रोह में उसने सुल्तान की भारी सहायता की जिसके फलस्वरूप तुर्की के सुल्तान ने उसे क्रीट का गवर्नर बना दिया। इससे उसे संतोष न हुआ और उसने अपने पुत्र इब्राहिम को तुर्क साम्राज्य पर आक्रमण

करने के लिए भेजा। उसने एकेश्वर और दमिशक पर अधिकार कर लिया और तुर्की की राजधानी कुसतुनतुनिया पर आक्रमण कर दिया, इससे तुर्की का सुल्तान घबरा गया और उसने यूरोपीय राष्ट्रों से सहायता की प्रार्थना की। केवल रूस ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। इससे इंग्लैंड, फ्रांस और आस्ट्रिया चौंक उठे और उन्होंने सुल्तान अहम अली को सहायता का आश्वासन दे दिया। यद्यपि रूस की सेना को इब्राहिम की सेना से युद्ध नहीं करना पड़ा परंतु फिर भी जार ने अपनी सहायता के उपलब्ध में अपने पानी के जहाज वासफोरस जलडमरू मध्य तक लाने की स्वीकृति माँगी। दोनों मुसलमानों में संधि हो गई और तुर्क साम्राज्य पर रूसी प्रभावों के अंशों में वृद्धि हुई ।

लंदन की संधि – सुल्तान ने अपनी सेनाओं को जर्मनी युद्ध कला से प्रशिक्षित करवाया और इब्राहिम पर आक्रमण किया। इब्राहिम ने उसकी सेनाओं को कुचल दिया। महमूद अली के इस उत्कर्ष से विदेशी राष्ट्र घबरा गये। फ्रांस उसकी सहायता कर रहा था क्योंकि वह भूमध्य सागर में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करना चाहता था । इंग्लैंड के प्रधानमंत्री पार्ल्सटन ने रूस, आस्ट्रिया और प्रशा को मिलाकर लन्दन में एक समझौता किया जिसके अनुसार मिस्र पर पासा का मौरूसी अधिकार मान लिया गया। सीरिया व क्रीट तुर्क सुल्तान को वापिस दिला दिये गये तथा वासफोस के जलडमरूमध्य को विदेशी जहाजों के लिए बन्द कर दिया गया। इस प्रकार इंग्लैंड ने अपनी कूटनीतिक चाल से रूस और फ्रांस की महत्वाकांक्षा पर तुषारापात किया । यही इंग्लैंड की महान विजय थी।

`मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

202

क्रीमिया युद्ध

के कारण–

(क) टर्की पर रूस की नजर क्रीमिया के युद्ध से पूर्वी समस्या का तीसरा अध्याय आरम्भ होता है। रूस का जार निकोलस टर्की का पतन सुनिश्चित समझता था और उसके प्रदेशों पर अपना अधिकार

जमाना चाहता था ।

(ख) रूस और फ्रांस के शासकों में मतभेद – रूस में जार का यह विचार था कि नेपोलियन तृतीय

को फ्रांस के सिंहासन पर बैठने का पैतृक अधिकार नहीं है। उधर नेपोलियन तृतीय अपने चाचा नेपोलियन बोनापार्ट की पराजय का मुख्य कारण रूस को मानता था। जेरूसलम पर दोनों अपना–अपना अधिकार मानते थे। इसलिए दोनों में ईर्ष्या और मतभेद थे।

(ग) रूस के राजदूत की असफलता– रूस ने अपने

अपने राजदूत के हाथों टर्की को एक पत्र भेजा जिसमें यूनानी ईसाइयों की सुरक्षा का अधिकार रूस ने माँगा तथा जेरूसलम के पवित्र स्थानों के प्रबन्ध करने का अधिकार यूनानी चर्च को देने की माँग की। इंग्लैण्ड के राजदूत की सलाह के आधार पर टर्की ने रूस की माँगें अस्वीकार कर दी। इंग्लैंड ने फ्रांस

के पक्ष का समर्थन किया। फ्रांस तथा रूस टर्की के प्रश्न पर इंग्लैंड की सहायता चाहते थे। इंग्लैंड दोनों देशों के प्रभाव को नहीं बढ़ने देना चाहता था और वह इसे फ्रांस से अधिक खतरनाक समझता था। अतः उसने टर्की की समस्या में फ्रांस का पक्ष लिया इससे रूस और इंग्लैंड में शत्रुता बन गई ओर क्रीमिया का युद्ध अनिवार्य हो गया।

(घ) वियना नोट – इसके अनुसार टर्की में रहने वाले यूनानी ईसाइयों की सुरक्षा का भार रूस को दे दिया गया और तुर्की को स्वतंत्र मान लिया गया। जब यह प्रस्ताव तुर्की के पास भेजा तो उसने इस अस्वीकार कर दिया। इससे क्रीमिया युद्ध आवश्यक हो गया।

युद्ध का प्रारम्भ– जार ने डेन्यूव नदी के किनारे स्थित माल्डेशिया और बैलेशिया पर अधिकार जमा लिया। इसका इंग्लैंड और फ्रांस में विरोध किया गया। 1853 में फ्रांस इंग्लैंड का साथ पाकर तुर्क के सुल्तान ने युद्ध की घोषणा कर दी। यह युद्ध क्रीमिया युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

युद्ध की घोषणा और अन्त – तुर्की सुल्तान की सहायता के लिए फ्रांस और इंग्लैंड के युद्धपोत आ गए पीडामेन्ट के राजा ने 15 हजार सैनिकों से टर्की की सहायता की। रूस की कई स्थानों पर पराजय हुई द्य मित्र देशों की सेनाएं ऋतु की अनुकूलता न होने के कारण मर गई । इसी बीच जार निकोलस की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र ने मित्र देशों से पेरिस की संधि कर ली।

पेरिस की संधि की शर्तें–

1.

इस संधि के अनुसार यूरोप के सभी राष्ट्रों ने तुर्क साम्राज्य की मान्यता प्रदान की और उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया।

2. माल्डेशिया और बैलेशिया को स्वतंत्रता प्रदान की गई।

3.

काला सागर सभी देशों के युद्धपोतों के लिए बन्द कर लिया गया।

4. डैन्यूब नदी सभी के व्यापार के लिए खोल दी गई ।

5.

रूस की काले सागर में शास्त्रागर बनाने से रोका गया। इससे रूस की प्रगति पर रुक गई। युद्ध के परिणाम – यह युद्ध 2 वर्ष तक चलता रहा और बहुत अधि ाक धन–जन की हानि हुई। रूस का बलकान देशों पर प्रभाव कम हो गया । परंतु मित्र राष्ट्र टर्की के साम्राज्य को छिन्न–भिन्न होने से न रोक सके। रूस की भविष्य में प्रगति भी न रोकी जा सकी। इस युद्ध से इटली के एकीकरण में सहायता मिली। इस युद्ध में फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय गौरव की प्राप्ति हुई। उसने नेपोलियन की पराजय का बदला चुका दिया। अलेक्जेण्डर, द्वितीय को भी अपने राज्य सुधार करने पड़े। एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है, उसके काल में विश्व में लड़े जाने वाले भीषण युद्ध में क्रीमिया युद्ध सबसे अधिक निरर्थक था ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै
स्व–प्रगति की जाँच करें

5. 1930 के फ्रांसीसी क्रान्ति के परिणाम पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
6. फ्रांसीसी क्रान्ति का जर्मनी
पर क्या प्रभाव पड़ा ?
7. प्यूई ने पोलियन अर्थात नेपोलियन तृतीय का परिचय दें।

ॅमसस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
203
पश्चिमी विश्व
छव्ज्ै
ॅमसस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
204
यूरोप का विस्तार

औपनिवेशिक उदासीनता का अंत–

औपनिवेशिक इतिहास में 1815 में 1880 तक का काल, जैसा हम देख चुके है, शिथिलता का काल था परंतु इस युग के अन्त की ओर कई कारणों से औपनिवेशिक उदासीनता का अन्त हो गया। उपनिवेशों की प्रति यूरोपीय सत्ताओं का रूख बदला और साम्राज्यवाद ने नया रूप धारण कर लिया। 1880 तक नये साम्राज्यवाद ने काफी जो पकड़ लिया और अगले 25 वर्षों में संसार के अनाधिकृत अथवा पिछड़े हुए प्रदेशों पर अधिकार करने के लिए यूरोप की महान् सत्ताओं में भयंकर स्पर्धा रही जिसके फलस्वरूप उन्होंने समस्त अफ्रीका को आपस में बाँट लिया और एशिया के कई प्रदेशों तथा प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीपों पर अधिकार कर लिया। इस औपनिवेशिक दौड़ में मुख्य स्पर्धी तो इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी थे परंतु अन्य छोटे देश भी उपनिवेशों के लोभ का संवरण न कर सके और उन्होंने भी कुछ प्रदेश हस्तगत कर लिए।

साम्राज्यवाद की नवजागृति के कारण–

आर्थिक कारण – औपनिवेशिक लूट के कारणों में से एक कारण आर्थिक था। 1875 के बाद ठीक ऐसे समय जब फ्रांस, जर्मनी, इटली तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का औद्योगिकरण हो रहा था और उन देशों में उत्पादन बढ़ रहा था तथा औद्योगिक प्रतिस्पधियों के उत्पन्न हो जाने से इंग्लैण्ड को अपना माल बेचने की चिन्ता हो रही थी, यूरोपीय देशों ने संरक्षण नीति को अपनाकार अपने यहाँ बाहर से आने वाले माल पर भारी कर लगाना आरम्भ किया, जिससे विभिन्न देशों के बाजार अन्य देशों के माल के लिए बन्द हो गए और औद्योगिक देशों को अपना माल बेचने के लिए नये बाजार ढूँढ़ने की आवश्यकता दिखाई देने लगी । यह आवश्यकता अधीनस्थ उपनिवेशों द्वारा अच्छी प्रकार पूर्ण हो सकती थी क्योंकि उनमें प्रतिस्पर्धी देशों द्वारा किसी प्रकार की रुकावट के लगाये जाने का कोई डर नहीं था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण जिसमें यूरोप में सर्वत्र संरक्षण की नीति जारी थी,

औपनिवेशिक विस्तार का काल था। उधर 1873 में संसार भर में कीमतें गिरने लगी थी। जिससे नये उद्योगपतियों के मुनाफे कम हो रहे थे और वे अधिक लाभ की दृष्टि से अपनी पूँजी अन्यत्र लगाना चाहते थे। 1870 के पहले ब्याज की ऊँची दर पर बहुत सी पूँजी स्पेनिश तथा अमेरिका के अन्य पिछड़े हुए देशों को ऋण के रूप में दी जाती थी परन्तु ये ऋण प्रायः मारे जाते थे। यह देखकर वे यह अच्छा समझते थे कि पूँजी अपने देश के उपनिवेशों में रेलों, खानों आदि में लगायी जाए जिससे उन्हें मुनाफा भी पर्याप्त मिले और पूँजी मारी भी न जा सके। सामुद्रिक यातायात के साधनों की उन्नति के साथ दूरस्थ उपनिवेशों का भी सस्ते भोज्य पदार्थ, उष्ण कटिबन्धीय उत्पादों तथा कारखानों के लिए आवश्यक माल के प्राप्ति स्थानों की हैसियत से महत्व बढ़ा । भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों तथा तार और समुद्री तार के आविष्कार के फलस्वरूप दूर–दूर के प्रदेशों पर अधिकार करना और उन पर शासन करना भी सरल हो गया था।

–

सामाजिक कारण – इंग्लैण्ड तथा कुछ अंश तक जर्मनी में औद्योगिक व्यवस्था पूर्णता को प्राप्त हो जाने के कारण अच्छे परिवारों के तथा सुशिक्षित महत्वाकांक्षी युवकों के लिए अपने ही देशों में शीघ्र उन्नति करने के अवसर कम होते जा रहे थे। उन्हें उपनिवेशों की सेनाओं से प्रशासन तथा व्यवसायों में उन्नति करने तथा सफलता प्राप्त करने के अवसर प्राप्त हो सकते थे।

राजनीतिक तथा सैनिक कारण– इंग्लैंड के सामने तो किसी नये स्थान पर अधि ाकार करने हेतु जहाजों के लिए कोयला लेने के साधनों या बन्दरगाहों या नाविक अड्डों की आवश्यकता का बहाना सदैव उपस्थित रहता था। जर्मनी ने भी व्यापारिक तथा सामरिक बेड़े के निर्माण के बाद इसी प्रकार के वाहनों का उपयोग किया। फ्रांस के लिए भी जहाँ जनसंख्या जर्मनी की तुलना में बहुत ही शिथिल गति से बढ़ रही थी, अपने उपनिवेशों से सैनिक भर्ती करके अपनी सैन्य शक्ति के विस्तार का प्रलोभन था । इंग्लैण्ड को अपनी भारतीय सेना पर गर्व ही नहीं, भरोसा भी था । इस प्रकार सैनिकवाद के जमाने में सैन्य शक्ति के विस्तार की दृष्टि से उपनिवेश अति मूल्यवान थे। इसके अतिरिक्त वे जर्मनी, इटली आदि देशों के लिए जहाँ से प्रति वर्ष हजारों व्यक्ति अमेरिका, ब्राजील, अर्जेन्टाइना तथा अन्य देशों में बस कर अपनी मातृ भूमि से सदैव के लिए अलग होते जा रहे थे, इस दृष्टि से भी बड़े मूल्यवान हो सकते थे कि वहाँ मातृभूमि से बाहर जाने वाले लोग बसाये जो सकें ताकि उनका उससे सम्बन्ध न टूटे और वे आवश्यकता के समय उनकी सहायता न कर सकें।

उप–राष्ट्रीयता

–

उपनिवेशों से प्राप्त होने वाले ये उपर्युक्त लाभ बहुत कुछ अंश तक काल्पनिक थे क्योंकि उनसे जो लाभ अपेक्षित थे, वे असन्तोषजनक मात्रा में प्राप्त नहीं हुए। वास्तव में नये साम्राज्यवाद की मुख्य प्रेरक शक्ति उग्र राष्ट्रीयता से प्राप्त हुई ।

थी। उन दिनों राष्ट्रीयतावाद प्रतिक्रिया के विरुद्ध संघर्ष करके विजयी हो चुका था और जर्मनी में तथा उसका अनुकरण करके अन्य देशों में भी उग्र रूप धारण करता जा रहा था । इंग्लैण्ड और हालैण्ड जैसे छोटे से देश के अधीन विशाल साम्राज्य देख कर अन्य देशों में, विशेषकर जर्मनी, फ्रांस तथा इटली में भी साम्राज्य की इच्छा जागृत हुई। राष्ट्र के गौरव तथा राष्ट्रीय अभिमान की भावना के संतोष के लिए यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि उनके पास भी साम्राज्य हो । उनकी राष्ट्रीय अभिमान की भावना में अपनी सभ्यता तथा अपने धर्म के उच्च होने का अभिमान भी शामिल था, और उन लोगों में यह भावना और जोर पकड़ने लगी कि पृथ्वी के विभिन्न भागों में बसे हुए पथ – भ्रष्ट तथा पिछड़े हुए लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करके तथा उनमें अपनी उत्कृष्ट सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार कर उनका उद्वार करना तथा उन्हें ऊँचा उठाना। उनका कर्त्तव्य था । इस दृष्टि से असंख्य ईसाई पादरी अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपों को अपने धर्म तथा अपनी सभ्यता के प्रचार के लिए जाने लगे। ये पादरी लोग प्रायः नये साम्राज्यवाद के अग्रदूत बने । पहले वे लोग नये–नये प्रदेशों में पहुँचे ओर उनके पीछे–पीछे व्यापारी भी पहुँचने लगे। बाद में व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए सेना पहुँचने लगी और इस प्रकार साम्राज्य का विस्तार होने लगा। इन प्रचारकों में कुछ लोग तो सच्चे धार्मिक तथा मानव–प्रेमी लोग थे और उन्होंने वास्ताविक सेवा भी की परंतु उपनिवेशों के लोगों को व्यापारियों तथा सरकारी कर्मचारियों के अमानुषिक अत्याचारों का शिकार बनना पड़ा। कुछ भी हो, साम्राज्यवाद के विस्तार में इन धार्मिक तथा मानवतावादी प्रयत्नों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इन कारणों से नये साम्राज्यवाद की भावना समस्त यूरोप में व्याप्त हो गई और भीषण औपनिवेशिक स्पर्धा का श्रीगणेश हुआ।

अफ्रीका में साम्राज्यवाद

इस समय यूरोपीय लोगों के लिए दो विशाल प्रदेश खुले हुए थे – अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के असंख्य द्वीप। अफ्रीका का बँटवारा इस युग की एक अत्यन्त असाधारण घटना है। इसकी असाधारणता दो बातों में दिखायी देती है। प्रथम, इतना बड़ा काम बिना युद्ध के ही हो गया। समय–समय पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच तनातनी हुई जिससे कटुता भी उत्पन्न हुई, संघर्ष की सम्भावनाएँ भी दिखाई दीं, परंतु सभी संकटों को कूटनीति द्वारा निवारण हो गया। और युद्ध नहीं हुआ । द्वितीय यह बँटवारा धीरे–धीरे क्रमिक रूप से नहीं वरन् बड़ी तीव्रता से हुआ और पच्चीस तीस वर्ष में समाप्त हो गया। इसका कारण यह था कि इस समय जर्मनी तथा इटली के नये साम्राज्यहीन किन्तु उग्र राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण राज्य जर्मनी तथा इटली के नये साम्राज्यहीन किन्तु उग्र राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण राज्य मैदान में आ गये थे जो जल्दी–से–जल्दी अपने लिए साम्राज्य की स्थापना करने के लिए लालायित थे। इन नवागन्तुकों को देखकर इंग्लैण्ड और फ्रांस चौंक पड़े परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा तीव्र हुई। प्रत्येक राज्य जल्दी – से–जल्दी और अधिक–से–अधिक प्रदेश हस्तगत करने का प्रयत्न

करने लगा और इस प्रकार अफ्रीका का विभाजन बड़ी तेजी से समाप्त हो गया। यूरोप के बिल्कुल निकट होते हुए भी अफ्रीका प्रायः अज्ञात् प्रदेश था और अन्ध ाकारमय महाद्वीप कहलाता था। यूरोपीय लोग जो संसार भर में फैल चुके थे, उनके केवल तटीय भागों को ही स्पर्श कर सके थे। इसके मुख्य कारण भौगोलिक थे। 1875 के पहले तक उसका केवल दशमांश ही यूरोपीय राष्ट्रों के अधिकार में था । उत्तरी तट पर 1830 में फ्रांस से अल्जियर्स पर अधिकार करके उसके आसपास के प्रदेश

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

205

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

206

की भी अपने साम्राज्य में शमिल कर लिया था । दक्षिण में इंग्लैण्ड ने 1806 में हॉलैण्ड से केप कॉलोनी का प्रदेश छीन लिया था और 1843 में नेटाल पर अधि ाकार कर लिया था। पुर्तगाल के पास पूर्वी तट पर मोजाम्बिक तथा पश्चिमी तट पर अंगोला के तटीय प्रदेश थे जिनकी भीतर की ओर सीमाएँ अस्पष्ट थी। उन प्रदेशों के अतिरिक्त पश्चिमी तट पर भी कुछ स्थल फ्रांस (सेनेगल, गेबोन, तथा आइवरी कोस्ट) इंग्लैण्ड (गेम्बिया, सियरा लिओन, गोल्ड कोस्ट, लेगॉस तथा नाइजर नपदी का मुहाना) पुर्तगाल (पुर्तगीज गिनी तथा दो एक द्वीप) और स्पेन (रायो डी ओरी तथा स्पेनिस गिनी) के अधिकार में थे ।

उन्नीसवीं शताब्दी की आरम्भिक तीन– चार शताब्दियों तक अफ्रीका का मूल्य इतना ही था कि गोरे दास – व्यापारी वहाँ से हजारों हब्शियों को पकड़–पकड़ कर दास बना लेते थे और उन्हें अमेरिका के किसानों को बेचकर खूब लाभ उठाते थे। अफ्रीका की अपार प्राकृतिक सम्पत्ति के विषय में यूरोपीय लोगों को बहुत कम ज्ञान था। उसके भीतरी भागों का पता लगाने वाले तथा इस सम्पत्ति की ओर यूरोप का ध्यान आकर्षित करने वाले साहसिक अन्वेषक तथा मिशनरी लोग थे जो अपनी जान हथेली पर रख कर इन दुर्गम प्रदेशों में नाना प्रकार के संकटों का वीरतापूर्वक सामना करते हुए घूम–घूमकर वहाँ का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। इस सम्बन्ध में बटन स्पीक, ग्राण्ट बेकार, लिविंग्स्टन तथा स्टेनली के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने लीन, नाइजर, कांगों तथा जेम्बेजी नदियों के मार्गों का पता लगाया। ईसाई पादरी यह बात बड़ी विचित्र है कि अफ्रीका की इस लूट का आरम्भ किसी महान् सत्ता ने नहीं, बेल्जियम के राजा द्वितीय लियोपोल्ड ने किया । लियोपोल्ड की रुचि व्यावसयिक बातों में थी और उसकी व्यावसायिक बुद्धि भी बड़ी प्रखर थी। उसने लिविंगस्टन तथा स्टेनली की यात्राओं का हाल सुन रखा था और स्टेनली के वैज्ञानिक अन्वेषणों से लाभ उठाने की उसकी बड़ी

प्रबल इच्छा थी। उसने वैज्ञानिक अन्वेषण का प्रोत्साहन देने, अफ्रीका के अज्ञात प्रदेशों का पता लगाने तथा वहाँ के निवासियों को सभ्य बनाने के उद्देश्य से अपनी राजधानी ब्रूसेल्स में 1876 में एक अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक सम्मेलन आमन्त्रित किया, जिसके द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा की स्थापना की गयी । स्वयं लियोपोलड उसका सभापति बना। यह निश्चय हुआ कि प्रत्येक देश में इस सभा की समितियाँ बनायी जाएं जो इस कार्य के लिए धन एकत्रित करें। इस संस्था तथा विभिन्न राष्ट्रीय समितियों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप तथा नैतिक उद्देश्य शीघ्र ही लुप्त हो गए और प्रत्येक समिति अपने राष्ट्र के लिए अफ्रीका में प्रदेश प्राप्त करने के प्रयत्न करने लगी। स्वयं मूल सभा भी वस्तुतः एक बेल्जियन सभा रह गई। जब 1878 में स्टेनली अफ्रीका से लौटकर मारसेई में उतरा था तो इस संस्था की ओर से दो व्यक्तियों ने उससे गुप्त रूप से भेंट करके संस्था की ओर से वापस अफ्रीका लौट जाने के लिए अनुरोध किया था परंतु जन्म से अंग्रेज होने के कारण स्टेनली की इच्छा थी कि उसकी खोजों का लाभ इंग्लैण्ड को प्राप्त हो, परंतु जब इंग्लैण्ड ने उसके प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया और वह वहाँ से निराश हो गया तो उसने लियोपोल्ड से बातचीत की और कुछ लोगों को लेकर मध्य अफ्रीका के लिए पुनः रवाना हो गया। स्टेनली ने कांगो प्रदेश के भोले–भाले नीग्रो सरदारों को डरा–धमकाकर और बहला–फुसलाकर अपने प्रदेश यूरोपियनों को सौंप देने के लिए राजी कर लिया। तीन – चार वर्षों में ही उसने कोई 400 संधियाँ की और एक विशाल प्रदेश उसके हाथों में आ गया।

स्टेनली कांगो नदी के दक्षिण की ओर ही बढ़ पाया था कि उसके उत्तरी किनारे पर पहले ही से एक फ्रेंच साहसिक यात्री ब्राजा के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप फ्रांस का झण्डा फहर रहा था। अपनी सफलता के बाद स्टेनली ने एक बार फिर उसका लाभ इंग्लैण्ड को देना चाहा। उन दिनों ग्लेड्स्टेन प्रधानमंत्री था ।

उसने स्टेनली के प्रस्ताव को तो स्वीकार नहीं किया परंतु पुर्तगाल को समझा कर कांगों नदी के मुहाने के प्रदेश पर उसका अधिकार करा दिया और 1884 में उससे संधि करके उस प्रदेश पर उसके अधिकार को स्वीकार कर लिया तथा कांगो नदी में अंग्रेजों के लिए निर्बाध रूप से आने–जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार लियोपोल्ड के प्रदेश का सम्बन्ध समुद्र से टूट गया। उसने फ्रांस और जर्मनी से सहायता माँगी। फ्रांस में उन दिनों जूल्स फेरी विदेश मंत्री था। उसने लियोपोल्ड से संधि करके इंग्लैंड तथा पुर्तगाल की संधि को अस्वीकार कर दिया। ठीक इसी अवसर पर बिस्मार्क ने जो फ्रांस को प्रसन्न रखना चाहता था और अफ्रीका में अपनी औपनिवेशिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इंग्लैण्ड के विरुद्ध फ्रांस का समर्थन करना चाहता था, फ्रांस का समर्थन किया और इस समस्या पर विचार करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आमन्त्रित करने के उसके प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इन्हीं दिनों अनेक यूरोपीय राष्ट्रों के दूत मध्य– अफ्रीका में धूम रहे थे, नीग्रो सरदारों से संधियाँ करके बड़े–बड़े प्रदेश हस्तगत कर रहे थे और अपने प्रभाव क्षेत्र निर्धारित कर रहे थे। स्थिति

इतनी जटिल हो गई थी कि उसे सुलझाने के लिए तथा अफ्रीका के भावी बँटवारे के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा कुछ सामान्य सिद्धान्तों का निध ारिण अत्यन्त आवश्यक मालूम होने लगा ।

बर्लिन – सम्मलेन

–

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन बर्लिन में हुआ (1884–85)। उसके पहले की कांगो प्रदेश पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के (अर्थात् लियोपोल्ड के) दावों को संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी तथा फ्रांस स्वीकार कर चुके थे। तीन महीने की बातचीत के बाद एक सामान्य कानून (ळमतदतंस ।बज) तैयार हुआ और उस पर सभी के हस्ताक्षर हुए। इस सम्मेलन में स्विट्जरलैण्ड को छोड़कर सभी यूरोपीय राज्य तथा संयुक्त राज्य सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन के सामने तीन प्रश्न थे– कांगों प्रदेश तथा नाइजर प्रदेश के विषय में निर्णय करना और उन शर्तों का निर्धारण करना जिनकें अनुसार भविष्य में अन्य प्रदेशों पर उचित रीति से अधिकार किया जा सके। सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा का कांगो के प्रवाह – प्रदेश पर उसे कांगों फ्री स्टेट का नाम देकर अधिकार स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही उस प्रदेश का व्यापार सब राष्ट्रों के लिए खुला छोड़ दिया गया और कांगो नदी के यातायात पर एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग का नियन्त्रण स्थापित किया गया । नाइजर नदी के प्रदेशों के लिए भी वैसी ही व्यवस्था की गई। उस पर इंग्लैण्ड तथा फ्रांस का संरक्षण स्वीकार कर लिया गया और नदी के यातायात के नियन्त्रण में इंग्लैण्ड को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हुए। तीसरी समस्या के विषय में यह निश्चित हुआ कि किसी प्रदेश पर किसी सत्ता का अधिकार तभी स्वीकार किया जाएगा जब उस पर उसका अधि ाकार वास्तविक होगा, केवल नाममात्र का ही नहीं, और इसके साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि उसे अपने साम्राज्य में शामिल करने के पहले वह अन्य राष्ट्रों को सूचना दे ।

सम्मेलन ने अफ्रीका के निवासियों के नैतिक तथा भौतिक कल्याण के लिए चिन्ता प्रकट की थी और दास प्रथा एवं दास – व्यापार को रोकना तथा वहाँ के निवासियों की शिक्षा ओर सभ्यता से उन्नति करना अपना मुख्य उद्देश्य बतलाया था, परंतु इन पवित्र कामनाओं का शीघ्र ही अन्त हो गया और यूरोपीय राष्ट्रों ने बड़ी अमानुषिक व निर्दयता के साथ बेचारे भोले–भाले गरीब निवासियों का रक्त शोषण आरम्भ कर दिया। अफ्रीका में लूट मची रही और 1914 तक अबीसीनिया और लाइबेरिया को छोड़कर समस्त अफ्रीका को यूरोपियनों ने आपस में बाँट लिया।

–

कांगो का प्रदेश नाम के लिए तो अन्तर्राष्ट्रीय राज्य था परंतु वह वास्तव में 1908 तक लियोपोल्ड का व्यक्तिगत राज्य बना रहा, परंतु जब व्यापारियों द्वारा अफ्रीकनों पर किया जाने वाले भंयकर अत्याचारों की सर्वत्र शिकायतें होने लगी तो उसने अपना राज्य बेल्जियम की सरकार को सौंप दिया। इस प्रकार कांगो

फ्री स्टेट का प्रदेश जो स्वयं बेल्जियम से विस्तार में दस गुना बड़ा था और रबर की दृष्टि से कांगों का सर्वोत्तम भाग था, बेल्जियम का एक उपनिवेश बन गया ।

लियोपोल्ड की सफलता देखकर अन्य यूरोपियन राष्ट्र भी प्रोत्साहित हुए और अफ्रीका की लूट बड़ी तेजी से होने लगी । पुर्तगाल ने अंगोला तथा मोजाम्बिक की टूटी–फूटी तटीय बस्तियों से भीतर की ओर बढ़ना

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

207

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

208

प्रारम्भ किया और कुछ ही वर्षों में अंगोला तथा मोजाम्बिक में विस्तृत उपनिवेश स्थापित कर लिये । इटली ने इरीट्रिया तथा इटालियन सोमालीलैण्ड पर अधि ाकार कर लिया और 1911–12 में ट्रिपोली तथा साइनेनाक भी अपने साम्राज्य में शमिल कर लिये । जर्मनी ने भी 1884 से अफ्रीका की लूट में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। जो काम लियोपोल्ड के लिए स्टेनली ने किया था वही काम जर्मनी के लिए कार्ल पीटर्स ने किया जिसने दस दिनों के अन्दर कोई एक दर्जन संधियाँ करके पूर्वी अफ्रीका में 60,000 वर्ग मील पर अधिकार कर लिया। धीरे–ध ीरे उसने पश्चिम तट पर टोगोलैण्ट बेमरून तथा दक्षिण–पश्चिमी तट पर रायो डी जो नीरो तथा जिब्राल्टर के सामने टैनिजयर के प्रदेश पर अधिकार करने में सफल हुआ। फ्रांस ने एक बड़े विस्तृत प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया। उत्तरी किनारे पर एल्जियर्स के अतिरिक्त उसने 1882 में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया और आगे चलकर 1912 तक मोरक्को को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इन प्रदेशों के दक्षिण में उसने समस्त सहारा प्रदेश पर अधिकार करके पश्चिमी तट पर स्थित स्थानों का कांगो नदी से सम्बन्ध जोड़ दिया । पूर्वी तट पर सोमालीलैण्ड के भाग भी उसने अधिकार कर लिया और 1886 में मेडागास्कर द्वीप को भी साम्राज्य में शामिल कर लिया।

लूट का सबसे बड़ा भाग इंग्लैण्ड के हिस्से में पड़ा और साम्राज्यवादियों का अफ्रीका के पूर्वी भाग में उत्तर से दक्षिण तक ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न प्रायः पूरा हो गया, केवल बीच में जर्मन पूर्वी अफ्रीका का प्रदेश छूटा रहा। दक्षिण में उसके पास दक्षिण अफ्रीका तथा रोडेशिया थे और ब्रिटिश साम्राज्य की उत्तरी सीमा जर्मन पूर्वी अफ्रीका युगाण्डा तथा एंग्लो–इंजिपिश्यन सूडान और इजिप्ट (ब्रिटिश संरक्षण) में इंग्लैण्ड का अधिकार भूमध्यसागर तक विस्तीर्ण हो गया । इस विशाल प्रदेश के अतिरिक्त उसके पास पूर्वी तट पर ब्रिटिश सोमालीलैण्ड और पश्चिमी तट पर गेम्बिया सियरा लियोन गोल्ड कोस्ट तथा

नाइजीरिया के प्रदेश भी थे।

इजिप्ट में इंग्लैण्ड

इन अनेक प्रदेशों में से इंग्लैण्ड के लिए अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा की योजना में इजिप्ट तथा दक्षिण अफ्रीका की बड़ी महत्वपूर्ण स्थिति थी क्योंकि भारतवर्ष की ओर जाने वाले दोनों मार्गों पर इन्हीं देशों का नियन्त्रण था। हम पहले देख चुके हैं कि इंग्लैण्ड ने किस प्रकार फ्रांस के साथ मिलकर इजिप्ट के मामलों में हस्तक्षेप किया और बाद में फ्रांस के अलग हट जाने पर 1882 में अरबी पाशा के राष्ट्रीय विद्रोह के दमन के बाद इजिप्ट पर नाममात्र के लिए उसके शासक खेदिव का शासन रहा आया, परंतु देश में अंग्रेज सेना बनी रही और वास्तविक सत्ता अंग्रेज सलाहकारों के हाथों पहुँच गई। अंग्रेजों ने वहाँ सुध ाार किये आर्थिक व्यवस्था ठीक की एवं न्याय व्यवस्था में भी सुधार किये और सिंचाई की योजनाएँ भ बनाई । 1883 में एक प्रतिनिध्यात्मक विधानसभा का निर्माण भी किया गया और 1913 में उसे कानून बनाने के कुछ परिमित अधिकार दिये गए । प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर जब टर्की ने जर्मनी का साथ दिया तो 1914 में ब्रिटिश संरक्षण में लेने की घोषणा द्वारा वह ब्रिटिश साम्राज्य में शमिल कर लिया गया। इजिप्ट पर ब्रिटिश अधिकार स्थापित हो जाने से फ्रांस तथा इंग्लैंड में बड़ा मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। फ्रांस स्वयं अपनी इच्छा से ही अलग हट गया था परंतु बाद में उसे अपनी भूल मालूम हुई और दोनों देशों के बीच में कलह बढ़ने लगी । इजिप्ट के प्रश्न के कारण नाइजर प्रदेश स्याम, मेडागासकर आदि अन्य प्रदेशों में दोनों में प्रतिस्पर्धा तीव्र होने लगी। यह दशा वर्षों तक रही । अन्त में 1904 में दोनों में समझौता हुआ और कटुता मिटी द्य इजिप्ट के दक्षिण में सूडान था जिस पर इजिप्ट का ही आधिपत्य था । वहाँ के कट्टर मुसलमान विद्रोही हो रहे थे और 1885 में उन्होंने अपने एक नेता मुहम्मद अहमद के जो अपने आप को माहदी बतलाता था, नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। उन्होंने इजिप्ट की सेना को हराकर नष्ट कर दिया और खारतूम में उसके अंग्रेज जनरल गार्डेन की हत्या कर दी। इसके बाद कुछ वर्षों तक अंग्रेजों ने सूडान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया परंतु 1898 में किचनर ने ओमदुर्मन की लड़ाई में माहदी की सेना को परास्त करके सूडान पर पुनः इजिप्ट का अधिकार स्थापित कर लिया। उसी वर्ष जब कांगों की घाटी से एक फ्रेंच सेना ऊपरी नील की घाटी की ओर केप्टिन मार्चन्द की कमाण्ड में बढ़ने लगी और इजिप्शियन सूडान में फेशेडा नामक गाँव में फ्रेंच झण्डा गाड़कर उस प्रदेश पर फ्रेंच सरकार ने मार्चन्द को वापस बुला लिया और 1899

में इंग्लैण्ड से एक संधि करके इजिप्शियन सूडान पर इंग्लैण्ड का प्राधान्य स्वीकार कर लिया । सूडान पर इंगलैंड तथा इजिप्ट का संयुक्त राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार भूमध्य सागर से लेकर भूमध्यरेखा तक नील नदी के प्रदेश में इंगलैंड का अधिकार हो गया।

दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों को डच उपनिवेशवादियों के जो सत्रहवीं तथा

अठारहवीं शताब्दी में केप कॉलोनी में जा बसे थे, वंशों के विरोध का मुकाबला करना पड़ा। ये लोग बोअर (ठवमत) कहलाते थे। 1806 में हॉलैण्ड से यह प्रदेश छीन लिया गया था। बोअर लोग कृषक थे और अग्रेजी शासन से अप्रसन्न थे। जब 1833 में इंग्लैंड की सरकार ने समस्त साम्राज्य के गुलामों को स्वतन्त्र कर दिया तो बोअर लोग केप कॉलोनी को छोड़कर नेटाल में जा बसे और बाद में ऑरेंज तथा वाल नदियों को पार कर उनके उत्तरी किनारों पर जा बसे परंतु अंग्रेजों ने उनका पीछा न छोड़ा। उन्होंने 1843 में नेटाल पर अधिकार कर लिया और पाँच वर्ष बाद ऑरेंज तथा बाल नदी की बस्तियों पर भी धावा किया। परन्तु बोअर लोगों ने इसका दृढ़ता से विरोध किया और 1850 में इंग्लैण्ड को ट्रान्सवाल रिपब्लिक तथा ऑरेंज फ्री स्टेट के नाम से उन बस्तियों की स्वतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ी। 1877 में डिजरेली ने ट्रान्सवाल को ब्रिटिश साम्राजय में शामिल करने की घोषणा की परंतु बोअर लोगों ने उसका विरोध किया और 1881 में एक छोटी–सी अंग्रेज सेना की मजूबा हिल की लड़ाई में परास्त कर दिया। उस समय ग्लेड्स्टनो प्रधानमंत्री था। साम्राज्यवाद के विरुद्ध होने के कारण उसने अंग्रेजी सेना को वापस बुला लिया और ट्रान्सवाल की स्वतन्त्रता पुनः स्वीकार कर ली। परन्तु रेण्ड प्रदेश (जीम त्ंदक) में सोने का पता चलने पर 1886 पर बहुत से अंग्रेज ट्रान्सवाल में जाकर बसने लगे। शीघ्र ही इन विदेशियों (न्जपसंदकमते) की संख्या बोअर लोगों से अधिक हो गई और वे लोग शासन पर अधिकार करने तथा ट्रान्सवाल पर इंग्लैण्ड की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। इन विदेशियों में प्रमुख सेसिल रोड्स (ब्मबपस तीवकमे) था। उसके पास सोने तथा हीरों की खानों के रूप में अपार सम्पत्ति थी । वह शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीकी का प्रमुख राजनीतिज्ञ तथा उग्र ब्रिटिश साम्राजयवाद का प्रध ाान प्रतिपादक बन गया। उसने 1889 में ब्रिटिश साउथ अफ्रीका कम्पनी नामक एक कम्पनी का संगठन किया और थोड़े ही समय में उस समस्त प्रदेश पर अधि ाकार कर लिया जो उसके नाम से रोडेशिया कहलाता है। 1890 से 1896 तक वह केप कॉलोनी का प्रधानमंत्री रहा और इस काल में इंगलैण्ड के उपनिवेश मंत्री जोजेफ चेम्बरलैन से षड्यन्त्र करके ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट की डच रिपब्लिकों को फिर से ब्रिटिश साम्राज्य में शमिल करने के निमित उनसे युद्ध छेड़ने का प्रयत्न करने लगा। उसके एक मित्र डॉक्टर जेम्सन ने 1895 में शासन को पलट देने के उद्देश्य से ट्रान्सवाल पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया परंतु बोअर लोगें ने उसे परास्त कर दिया। इस घटना से ब्रिटिश तथा ट्रान्यवाल सरकार में बड़ा मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। ट्रन्सवाल का राष्ट्रपति इन दिनों पाल क्रूगर (च्ंनस ज्ञतनमंहमत) था । विदेशियों को मताधिकार देने के प्रश्न पर 1899 में इंग्लैण्ड तथा ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट के बीच युद्ध छिड़ गया। आरम्भ में तो जनरल बोथा (ठवजीं) तथा जनरल बेट ॅमज) के नेतृत्व में बोअर लोगों को काफी सफलता प्राप्त हुई परंतु उनके पास पर्याप्त साधनों को अभाव था । इंग्लैण्ड ने कनाडा, ऑस्ट्रिया तथा न्यूजीलैण्ड में और स्वयं अपने यहाँ स्वयं सेवकों की भर्ती करके साढे तीन लाख सेना लॉर्ड रॉबर्ड्स तथा लार्ड

किचनर के कमाण्ड में दक्षिण में भेजी जो बड़ी कठिनाई से बोअर लोगों को 1902 में परास्त कर सकी । बिरीनिगिग (टमतममदपहपदह) की सन्धि (मई 1902) के द्वारा बोअर लोगों ने डच भाषा की सुरक्षा तथा स्वशासन की शर्तों पर हथियार डाल दिये। ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और वे ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश बन गये। बोअर लोगों में असन्तोष बना रहा जिसे कभी करने के लिए 1906–07 में इंग्लैण्ड की लिबरल सरकार ने उन्हें उत्तरदायी स्वशासन प्रदान कर दिया और अन्त में 1909 में केप कॉलोनी नेटाल तथा इन दोनों प्रदेशों को सम्मिलित करके कनाड़ा के आदर्श पर उनकी एक यूनियन (न्दपवद व िवनजी ।तिपबं) बनाकर उसे डोमीनियन (क्वउपदपवद) का दर्जा देकर वास्तविक स्वतंत्रता प्रदान कर दी।

————

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

209

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

210

प्रशान्त महासागर

अफ्रीका के बँटवारे के साथ–साथ प्रशान्त महासागर के द्वीपों की भी छीन–झपटी चल रही थी जिसमें यूरोपीय राष्ट्रों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य भी भाग ले रहा था। 1900 तक प्रायः समस्त द्वीप किसी न किसी के पास पहुँच गये थे। इंग्लैण्ड और फ्रांस वहाँ पहले पहुँचे थे, अतः अधिकांश द्वीप उनके हाथ लगे परंतु हॉलैण्ड के पास भी एशिया के दक्षिण–पश्चिम में पूर्वी इण्डीज के द्वीप समूह में उसका विस्तृत साम्राज्य बना रहा। जर्मनी के न्यूगिनी के विशाल द्वीप के एक भाग तथा उसके उत्तर की ओर के कई द्वीप और सेमोआ द्वीप समूह के दो बसे बड़े द्वीपों पर अधिकार कर लिये । संयुक्त राज्य ने ग्वाम तथा फिलिपाइन द्वीप ले लिये। 1898 ई में हवाई द्वीप पर उसने अधिकार कर लिया और 1899–1900 में इंग्लैण्ड तथा जर्मनी से मिलकर सेमोआ द्वीप समूह में से कई द्वीपों को भी अपने साम्राज्य में शमिल कर लिया। इस द्वीप समूह के सम्बन्ध में कई बार संघर्ष का डर रहा परंतु अन्त में 1900 में एक समझौता हो गया जिसके द्वारा इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा संयुक्त राज्य के प्रभाव क्षेत्रों का निर्धारण हो गया और मामला सुलझ गया ।

एशिया

यूरोपीय राज्यों की आँखें अफ्रीका तथा प्रशान्त महासागर के अतिरिक्त एशिया पर भी लगी हुई लगी हुई थी। दक्षिण एशिया में भारतवर्ष पर तो इंग्लैण्ड ने अधिकार कर ही रखा था और रूस धीरे–धीरे साइबेरियन मैदान में होकर पूर्व

में प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ रहा था । चीन, मलय प्रदेश तथा पश्चिम सफलता पूर्वक फैला रही थी ।

–

रूस 1878 की बर्लिन – कांग्रेस के निर्णयों से बड़ा रुष्ट हो गया था और इंग्लैण्ड को अपना प्रधान शत्रु समझने लगा था। अतः उसने मध्य एशिया में इंग्लैण्ड से बदला लेने के विचार से पूर्व की ओर तेजी से बढ़ना आरम्भ किया। उसका पूर्व की ओर बढ़ने का केवल यही एक कारण नहीं था । उसकी बढ़ती हुई जनसंख्या, कृषि तथा गोरस उद्योग के विकास अन्य बड़े व्यवसायों की उन्नति तथा विदेशी व्यापार के विस्तार आदि सब का तकाजा था कि रूस के पास अधिकाधिक ऐसे बन्दरगाह हों जो वर्ष भर खुले रहें। इसी दृष्टि से वह दक्षिण की ओर कुस्तुनतुनियों तथा पश्चिम में एटलांटिक महासगर के तट पर बन्दरगाह प्राप्त करने का प्रयन्त कर रहा था, और इसी दृष्टि से पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट तथा दक्षिण – पूर्व में फारस की खाड़ी की ओर बढ़ना चाहता था। एशिया की ओर रूस की प्रगति क्रीमियन
युद्ध
के बाद ही प्रारम्भ ही गयी थी जबकि 1858 में उसने चीन की विवश करके आमूर नदी के उत्तर की ओर के समस्त प्रदेश की छीन लिया था और प्रशान्त महासागर के तट पर ब्लाडी बोस्टक की नींव डाली थी। इस प्रकार उसने उत्तर एशिया में समस्त साइबेरिया पर अधिकार कर लिया था । बर्लिन की कांग्रेस के पहले वह मध्य एशिया में भी काफी बढ़ चुका था और ताशकंद (1864), समरकंद (1868), खिवा (1873), तथा खोकन्द (1876) पर अधिकार कर चुका था । बर्लिन की संधि के समय वह अफगानिस्तान की सीमा तक पहुँच गया था और भारतवर्ष में अंग्रेज सरकार चिंतित हो उठी । इसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया (1878–79) और उसको परास्त करके एक दूसरे अमीर को सिंहासन पर बैठाया जो अंग्रेजों का मित्र था और जिसे भारतवर्ष की अंग्रेज सरकार एक बड़ी धनराशि देकर अपनी ओर बनाये रही। इस दिशा में अपनी प्रगति को अवरुद्ध हुआ देखकर रूस दूसरी दिशा में बढ़ा। उसने 1881 में तुक्रिसन की विजय पूर्ण कर ली और 1884 में मत्र पर अधिकार करके 1885 में वह पंजदेह तक पहुँच गया जहाँ फिर उसे अंग्रेजों के विरोध के कारण रूकना पड़ा। 1891 में उसने पामीर में घुसकर फिर अंग्रेजों के लिए पेरशानी खड़ी कर दी। दोनों देशों के बीच तनाव बढ़ा परंतु 1895 में दोनों ने मिलकर एक संयुक्त कमीशन द्वारा अपने साम्राज्यों की सीमाएँ निर्धारित करके झगड़े को समाप्त कर लिया। उधर सुदूर–पूर्व में उसने 1898 में पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह भी चीन से जबरन द्वारा पट्टे पर छीन लिया । पश्चिमी एशिया में रूस ने फारस पर भी अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया परंतु वहाँ भी इंग्लैण्ड ने उसका विरोध किया। अन्त में दोनों ने परस्पर समझौता (1907) करके फारस को दो प्रभाव – क्षेत्रों में बाँट लिया और उत्तरी भाग रूस तथा दक्षिणी इंग्लैण्ड के प्रभाव – क्षेत्र में पहुँच गया। मध्य– फारस में दोनों को कार्य करने की स्वतन्त्रता रही। इस

प्रकार रूस उत्तर और मध्य एशिया में बढ़ रहा था। इंग्लैण्ड भी मध्य एशिया में रूस की प्रगति को रोकने के साथ–साथ भारतवर्ष में पूर्व तथा
पश्चिम की ओर बढ़ रहा था। उसने पश्चिम में बलूचिस्तान तथा पूर्व में वर्मा और मलय प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया।

चीन

दक्षिण – पूर्व एशिया में फ्रांस के पास कोचीन – चीन तथा कम्बोडिया पहले से ही थे। उसने 1884 में अनाम तथा आर्किंग के प्रदेश भी उसमें शमिल करके इण्डो–चीन का विशाल संरक्षित राज्य बना लिया। ये समस्त प्रदेश उसने चीन से छीने थे और इस प्रकार उसने चीन के बँटवारे का सूत्रपात कर दिया था । उन्नीसवीं शताब्दी में एक बड़ी गम्भीर समस्या यह थी कि क्या यूरोपीय राज्य चीन की विशाल किन्तु क्षीण साम्राज्य को दीन कर आपस में बाँट लेंगे? इसी अवसर पर एक नया प्रतिस्पर्धा मैदान में उतर आया, वह था जापान ।

जापान का अभ्युदय

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान ने यूरोपीय लोगों को पास नहीं फटकने दिया था, परंतु 1853–54 में अमेरिकन नाविक मूथ्यू पेरी ने जापान से संधि करके अमेरिका के जहाजों के लिए जापानी बन्दरगाहों का उपयोग करने को अधिकार प्राप्त करके उसे गोरी जातियों के लिए खोल दिया। शीघ्र ही यूरोपियन राष्ट्रों ने जापान से इसी प्रकार की रियायतें प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया और जापान पर पाश्चात्य प्रभाव बड़ी शीघ्रता से बढ़ने लगा। अगले वर्षों में जापान में महान् परिवर्तन हुए। सम्राट (मिकाडो) ने, जो दीर्घ काल से नाममात्र का शासक था, सत्ता अपने हाथ में ले ली, सामन्तवाद का अन्त कर दिया गया, पश्चिमी उद्योगवाद, शिक्षा तथा सैनिकवाद का प्रचार हुआ और जापानियों में अपने इतिहास तथा अपनी जाति का जो अभिमान था उसने पाश्चात्य राष्ट्रीयतावाद तथा साम्राज्यवाद के समान ही उग्र रूप धारण कर लिया। उसने यूरोपियन राष्ट्रों के समान साम्राज्य निर्माण के लिए कमर कसी जिसके लिए उसे क्षीण प्रायः चीन में बड़ा उपयुक्त क्षेत्र दिखायी देता था ।

चीन की नोच–खसोट

हम अभी देख चुके है कि चीन का फ्रांस ने दक्षिण की और से अंग–भंग करना प्रारम्भ कर दिया था । इंग्लैण्ड ने 1882 हांगकांग का द्वीप ले लिया था और अन्य यूरोपीय राष्ट्रों ने भी संधियाँ करके समुद्र–तट पर कई स्थानों में विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे परंतु चीन की वास्तविक लूट जापान ने आरम्भ की । 1894–95 में उसने चीन युद्ध करके कोरिया का विस्तृत प्रदेश उससे अलग कर दिया (परन्तु 1910 तक उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया), फार्मेसा का द्वीप छीन लिया और ओकीनावा सहित ल्यू च्यू द्वीपों पर भी अधिकार कर लिया । वह उससे लियोओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर भी छीन लेना चाहता था, परन्तु फ्रांस तथा जर्मनी के समर्थन के साथ रूस ने उसका विरोध किया और उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी। इस अवसर पर यूरोपीय राष्ट्रों ने पुनः संधियों द्वारा चीन से कई बन्दरगाह पट्टे पर छीन लिये। इंग्लैण्ड ने बेहईवे, फ्रांस ने

क्वागचाऊ, जर्मनी ने किया उचाउ और रूस ने लियाआतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया।

बॉक्सर – विद्रोह

इस प्रकार निर्बल चीन यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ का शिकार बन रहा था। अनेक बन्दरगाह प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ और सब ने मिलकर उसके अधिकतम व्यापारिक शोषण के लिए उसे अनेक क्षेत्रों में विभक्त करने का निश्चय किया ताकि प्रत्येक राष्ट्र अपने–अपने क्षेत्रों में अपनी मनमानी करते रहे परंतु इसी समय दो घटनाएँ ऐसी हुई जिन्होंने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया विदेशियों के अत्याचारों से क्रुद्ध होकर चीन के देशभक्तों (ठव•मते) ने उन्हें बाहर निकालने के लिए विदेशियों पर आक्रमण कर दिया (1900)। इस पर इंग्लैण्ड फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, रूस, इटली तथा जापन की सम्मिलित सेना ने चीन पर आक्रमण करके पेकिंग पर अधिकार कर लिया। चीन को दबना पड़ा और युद्ध के हर्जाने के रूप में एक भारी रकम देनी पड़ी। सब राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय सेना के निर्माण के समय चीन से कोई प्रदेश न छीनने का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने उससे कोई भूमि न ली और युद्ध समाप्त होने पर उसकी अखण्डता की गारण्टी दी।

}

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ेमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

211

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

रूस–जापान का युद्ध

चीन की आखण्डता की गारण्टी की बात 1895 में की गई थी और उसी के आध ाार पर जापान को कोरिया पर अधिकार करने से रोका गया था परन्तु उसके बाद रूस ने लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया था। यह देखकर जापान समझ गया कि रूस का विचार मंचूरिया और कोरिया को हड़पने का था। उसने मंचूरिया में सेना भेजना आरम्भ कर दिया था और पोर्ट आर्थर की किलेबन्दी करके वहाँ अपना जहाजी बेड़ा रखना भी आरम्भ कर दिया था। जापान स्वयं इन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। अतः दोनों में वैमनस्य बढ़ा और फरवरी, 1904 में दोनों में युद्ध छिड़ गया ।

युद्ध के कारण–

1. उपर्युक्त घटना के फलस्वरूप उत्पन्न वैमनस्य के कारण दोनों में युद्ध अनिवार्य हो गया। इस

वैमनस्य के अलावा युद्ध के अनेक अन्य कारण भी थे।

2.

रूस के पास ऐसा कोई समुद्र तट नहीं था जो वर्ष भर खुला रहता हो । उसके

उत्तरी व पश्चिमी समुद्र–तट पर सर्दियों में बर्फ जम जाती थी। अतः वह किसी ऐसे समुद्र तट की तलाश में था जो बारहों महीने खुला रहे । पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट पर अधिकार करके वह अपनी इस इच्छा की पूर्ति करना चाहता था परन्तु जापान इसमें बहुत बड़ा बाधक था ।

3. मंचूरिया अन्न और लकड़ी का भण्डार था । वहाँ अनेक प्रकार की खानें थी। रूस और जापान दोनों ही मंचूरिया को प्राप्त करने के लिए लालायित थे। साथ ही रूस की ट्रान्स साइबेरियन रेलवे लाइन मंचूरिया से होकर जाती थी जिसकी सुरक्षा के लिए रूसी सैनिक व पदाधिकारी वहाँ रहते थे, जिससे जापान की सदैव खतरा बना रहता था और दोनों के मध्य तनावपूर्ण स्थिति बनी रहती थी ।

4.

5.

कोरिया पर भी रूस–जापान दोनों अपना–अपना प्रभाव जमाने के इच्छुक थे। इन परस्पर विरोधी महत्वाकांक्षाओं के कारण दोनों देशों के बीच मनमुटाव बढ़ रहा था और उनमें कभी भी युद्ध छिड़ सकता था ।

अभी तक विश्व में जापान की गणना एक साधारण से छोटे राज्य के रूप में थी परन्तु 1902 में इंग्लैण्ड ने उसके साथ संधि कर उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था जिससे उसका हौसला काफी बढ़ गया और वह रूस की चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया।

युद्ध का तात्कालिक कारण– एक छोटी सी घटना ने उपर्युक्त कारणों द्वारा प्रस्तुत बारूद में चिंगारी का कार्य किया । एक दिन कोरिया में रूस के कुछ सैनिक यालू नदी के किनारे लकड़ी काट रहे थे और एक साधारण सी बात पर उनका जापानी सिपाहियों से झगड़ा हो गया। झगड़े में कुछ रूसी सैनिक मारे गये, जिसके कारण क्रोधित होकर रूस ने अपनी सेनाएँ जापान पर आक्रमण करने के लिए भेज दी और दोनों देशों के मध्य युद्ध छिड़ गया। रूस की पराज्य हुई। अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मध्यस्थता के फलस्वरूप दोनों में पोर्टस्माउथ (अमेरिका) के स्थान पर संधि हुई जिसके द्वारा

1.

कोरिया की स्वतन्त्रता को दोनों ने स्वीकार किया परन्तु रूस को उसमें जापान के हितों का

प्राधान्य मानना पड़ा।

2. दोनों को मंचूरियां खाली करना पड़ा ।

3. जापान को रूस से लियाओतुंग प्रायद्वीप तथा पोर्ट आर्थर का पट्टा तथा खाखालिन का दक्षिणी आधा भाग प्राप्त हुआ । यह दूसरी घटना थी जिसने चीन में यूरोपीय राष्ट्रों के उत्पात को बन्द कर दिया।

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

212

रूस की पराज्य के कारण–

Notes

विश्व का इतिहास

1. यूरोप की विभिन्न शक्तियाँ एशिया में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को अपने लिए एक खतरा समझती थीं अतः उन्होंने युद्ध के समय रूस की कोई सहायता नहीं की और उसकी पराज्य हुई।

2.

3.

जिस समय रूस और जापान के मध्य युद्ध आरम्भ हुआ उस समय रूस में गृह–युद्ध चल रहा था। रूस की जनता सम्राटों की निरंकुशता के विरुद्ध अपने मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी, इसलिए जन सहयोग के अभाव में रूस इस युद्ध में पराजित हुआ ।

रूस की सेना भ्रष्ट अफसरों के नेतृत्व और अनुशासन के अभाव के कारण निर्बल थी और जापान की सुसंगठित एवं देश–प्रेम से अनुप्राणित सेना का मुकाबला नहीं कर सकती थी ।

युद्ध के प्रभाव–

1.

2.

3.

4.

यह युद्ध विश्व इतिहास के निर्णयक युद्धों में से एक था। इसके परिणामस्वरूप जापान एक महान् सशक्त सत्ता के रूप में विश्व – मंच पर उपस्थित हुआ। इंग्लैण्ड ने 1902 में उसके साथ संधि करके उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था। इस युद्ध ने उसे समस्त संसार की दृष्टि में वही पदवी दे दी और विश्व की महान शक्तियों में उसकी भी गणना होने लगी ।

जापान एशिया के देशों के लिए एक आदर्श बन गया ।

इस युद्ध के कारण रूस की सैनिक शक्ति का खोखलापन प्रकट हो गया और सुदूर–पूर्व में रूस के विस्तार पर अंकुश लग गया। बेन्स ने भी लिखा है, ”स्पष्टतः जापन ने रूस के सुदूर–पूर्व में बढ़ते हुए प्रभाव पर अंकुश लगा दिया था । ‘‘ इतिहासकार सी. डी. हेजन ने लिखा है कि इस विजय के फलस्वरूप जापान पूर्व में सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया।

रूस की यह पराजय और उसके यह राष्ट्रीय अपमान आगे 1905 में होने वाली राजनीतिक क्रांति का एक प्रमुख कारण था।

यूरोपीय राष्ट्र एशिया के समान दक्षिणी अमेरिका में भी लूट मचाना चाहते थे, विशेषकर जर्मनी ब्राजील पर अधिकार करना चाहता था जहाँ प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्या में जर्मन लोग जाकर बसते जा रहे थे परन्तु संयुक्त राज्य के मुनरो सिद्धान्त के कारण वे उधर न बढ़ सके।

इस साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का वर्णन करते–करते कही–कहीं हमने 1914 तक की घटनाओं की चर्चा की है । परन्तु मोटे तौर से यह औपनिवेशिक लूट उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक समाप्त हो चुकी थी और प्रायः समस्त अफ्रीका एवं एशिया का बहुत बड़ा भाग तथा प्रशान्त महासागर के समस्त द्वीप यूरोपीय

सत्ताओं तथा संयुक्त राज्य ने आपस में बाँट लिये थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो प्रदेश अब भी छीन लेने योग्य रह गये थे, वे थोड़े से ही थे– उत्तर पश्चिमी अफ्रीका में मोरक्की, एशिया में चीन तथा फारस ओर टर्की का सम्राज्य । अभी तक जितना बँटवारा हुआ था वह बिना युद्ध के ही हो गया था । जैसा हम देख चुके हैं, जापान ने उत्थान के कारण चीन यूरोपीय लोगों के आक्रमणों से बच गया। और फारस के सम्बन्ध में भी इंग्लैण्ड तथा रूस में समझौता हो गया। मोरक्को के विषय में फ्रांस तथा जर्मनी में बड़ी तनातनी हुई, परन्तु अन्त में 1911 में दोनों में समझौता हो गया । किन्तु टर्की के साम्राज्य के विषय में कोई समझौता हो, उसे पहले ही विभिन्न सत्ताओं का धैर्य छूट गया। वे परस्पर लड़ने लगी और प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। अगले खण्ड में हम उन घटनाओं का वर्णन करेंगे जिनका परिणाम इस विश्व युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

213

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

214

उदारवाद की विजय : इंग्लैण्ड

युद्धोत्तर समस्याएँ –

महायुद्ध की समाप्ति के समय इंग्लैण्ड में लॉर्ड जॉर्ज का सम्मिलित मन्त्रिमण्डल था जिसका निर्माण 1916 ई. में हुआ था। रणक्षेत्रों से दूर होने के कारण इंग्लैण्ड की उतनी हानि नहीं हुई थी जितनी फ्रांस या बेल्जियम की हुई थी और आरम्भ में जर्मनी को चूस लेने की भावना प्रबल होते हुए भी वहाँ लोग महायुद्ध को इतिहास की वस्तु समझने और यदि अन्य राष्ट्र उसे भूलने देते तो उसे भूलने के लिए तैयार थे। युद्ध की सामप्ति पर वह फिर अपनी पूर्व– स्थिति में पहुँच जाएगा परन्तु यह आशा शीघ्र ही निराशा में बदल गयी । इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय आय के चारों बड़े स्रोत सूखते जा रहे थे। प्रथम, उसका निर्यात गिर गया। बिटेन के कारखानों में बना हुआ माल पहले कई देशों में बिका करता था, परन्तु अब उन्हें उसकी आवश्यकता कम रह गयी थी। उसके तैयार माल का मुख्य खरीद्दार भारतवर्ष था, परन्तु युद्ध के दिनों में भारत के उद्योग–धंधे काफी उन्नति कर गये थे। वहाँ बहुत सा कपड़ा तथा अन्य सामान बनने लगा था। साथ ही, जापान ने भी अपने उद्योगों की तरक्की कर ली थी। जिन दिनों जर्मनी इंग्लैण्ड के जहाजों को डुबा रहा था और उसका माल भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों को नहीं पहुँच रहा था, उन दिनों जापान ने भारत तथा एशिया के अन्य बाजारों को अपने सस्ते माल से भरना आरम्भ कर दिया था और युद्ध के बाद इन बाजारों में जापान से मुकाबला करना इंग्लैण्ड के लिए कठिन हो गया।

यूरोप में कई देशों, विशेषकर, हॉलैण्ड, सकेण्डिनेविया तथा इटली को इंग्लैण्ड से बहुत–सा कोयला जाता था, परन्तु अब उसकी माँग में कमी हो गयी । जर्मनी क्षतिपूर्ति के रूप में फ्रांस को प्रति वर्ष 20 लाख टन कोयला देता था। फ्रांस को इतने कोयले की आवश्यकता नहीं थी और वह उसमें से बहुत–सा उन देशों को सस्ते दामों पर बेच दिया करता था । द्वितीय, कोयले के व्यवसाय के साथ इंग्लैण्ड के जहाजी व्यवसाय की भी हानि हुई। जहाजों को कोयला ढोने से जो आय होती थी वह कम हो गयी। हाँ, जर्मनी व्यापारी बेड़े को छीन लेने से इंग्लैण्ड के जहाजों को यात्री लाने व ले जाने से आय होने लगी, परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ के जहाज बनाने वाले कारखानों का काम कम हो गया और 1921 तक उन कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों में से दो तिहाई बेकार हो गये । तृतीय, इंग्लैण्ड का करोड़ों पौण्ड रूस में लगाया हुआ था और रूस की नयी बॉल्शेविक सरकार ने उसका भुगतान करना अस्वीकार कर दिया। पहले तो उसने अन्य देशों से मिलकर बॉल्शेविक – विरोधियों को सहायता देकर उसे हराने का प्रयत्न किया, परन्तु अन्त में बॉल्शेविक दल विजयी हुआ और इंग्लैण्ड का रूपया मारा गया। युद्ध के दिनों में इंग्लैण्ड ने बहुत–सा धन अपने मित्रों को भी ऋण के रूप में दिया था, जिसे प्राप्त करना कठिन था। इसके साथ ही, उसने स्वयं अमेरिका से कई अरब पौण्ड ऋण ले रखा था जिसे चुकाना अत्यन्त कठिन था। अन्त में, इंग्लैण्ड में धन की कमी हो गयी थी और लन्दन का स्थान निम्न हो गया क्योंकि युद्ध की समाप्ति के साथ ही इंग्लैण्ड को भी बड़ी विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा।

बेकारी

झ

–

इन समस्याओं में सबसे विकट समस्या बेकारी की थी। जुलाई 1921 में इंग्लैण्ड में बेकार मजदूरों की संख्या 20 लाख से भी अधिक थी। कारखानों के मालिक मजदूरी की दरों में कमी करना चाहते थे क्योंकि उसके बिना उनका व्यय पूरा नहीं हो सकता था और मजदूर कम मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार नहीं थे। लॉर्ड जॉर्ज को इस समस्या पर ध्यान देना पड़ा। उसने 1911 में बिस्मार्क का अनुकरण करके मजदूरों की बेकार के समय के लिए बीमा व्यवस्था की थी जिसके अनुसार बीमा – फण्ड में सरकार भी कुछ रूपया देती थी। उसने राज्य की ओर से दिये जाने वाले धन में वृद्धि कर दी और बेकार मजदूरों को निर्वाह व्यय दिया जाने लगा। यह व्यवस्था करके उसने मजदूरों की भूखों मरने से और क्रांतिकारी विचारों से तो रक्षा कर ली परन्तु उससे इंग्लैण्ड की आर्थिक दशा में कोई सुधार नहीं हो सकता था। बजट में घाटा हो रहा था और इस व्यवस्था की सफलता के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी । उसने कई प्रकार से व्यय में बचत की, आय–कर की दर में भारी वृद्धि की और 1921 में चिरकाल

अतः

से प्रतिष्ठित मुक्त व्यापार की नीति का परित्याग करके बाहर से आने वाली कुछ

वस्तुओं पर आयात कर
लगाया।

कंजरवेटिव सरकार – बाल्डविन का प्रथम मन्त्रिमण्डल

लॉयड जॉर्ज के कंजरवेटिव लोग सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने उसका समर्थन करना बन्द कर दिया। उसने त्याग पत्र दे दिया और नये निर्वाचन के कंजरवेटिव दल ने विजयी होकर अपना मन्त्रिमण्डल बनाया जिसमें बोनकर लॉ प्रधानमन्त्री बना परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उसने कुछ दिन बाद ही त्याग–पत्र दे दिया और उसके स्थान पर बाल्डविन प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ। कंजरवेटिव दल देश की आर्थिक दशा को सँभालने के लिए यह आवश्यक समझता था कि मुद्रा के बाजार में लन्दन की स्थिति पहले जैसी ही हो जाए। परन्तु यह कार्य सरलं नहीं था । उसे बहुत सा धन अपने कर्जदारों से वसूल करना था परन्तु उसे भी 210 करोड़ पौण्ड अमेरिका को देना था। उसने यह घोषणा की कि यदि अमेरिका अपना ऋण छोड़ दे तो इंग्लैण्ड भी अपना ऋण छोड़ देगा, परन्तु अमेरिका इस बात के लिए तैयार नहीं था । इंग्लैण्ड के लिए संसार में अपनी साख बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक था। अतः उसने अमेरिका के सारे ऋण का भुगतान 62 किस्तों में करने का वचन दिया । यह एक बहुत भारी जिम्मेदारी थी। इतना ऋण नये कर लगाकर ही चुकाया जा सकता था जिसका भार देश के उद्योगों पर ही पड़ने वाला था। इससे उद्योगों की भारी हानि की सम्भावना थी परन्तु कंजरवेटिव सरकार ने ऐसा करके संसार में इंग्लैण्ड की स्थिरता तथा ईमानदारी का प्रमाण देकर उसकी प्रतिष्ठा पुनः जमा ली। इसके साथ ही बड़ी कठिनाइयाँ भी उसने इंग्लैण्ड की मुद्रा को सोने के आधार पर पुनः स्थिर कर दिया और लन्दन फिर से संसार का बैंकर हो गया।
होते हुए

प्रथम मजदूर सरकार

यह व्यवस्था अप्रैल, 1925 तक पूर्ण हो सकी, परन्तु इसके पहले ही कंजरवेटिव दल के हाथों से सत्ता निकल चुकी थी । बाल्डविन संरक्षण की नीति में आगे बढ़ना चाहता था परन्तु इसके लिए वह देश की स्वीकृति चाहता था, अतः उसने 1924 में नया निर्वाचन कराया जिसमें कंजरवेटिव दल को 258, लिबरल दल को 157 और लेबर दल को 191 स्थान प्राप्त हुए । लिबरल तथा लेबर दल आयात – कर के विरुद्ध थे। इन दोनों की संख्या कंजरवेटिव दल से अधिक होने के कारण उसे त्याग पत्र देना पड़ा और लिबरल दल के समर्थन के साथ लेबर दल ने इंग्लैण्ड के इतिहास में प्रथम बार अपना मन्त्रिमण्डल बनाया जिसमें रेमजे मैक्डॉनल्ड प्रधानमंत्री बना।

–

मजदूर दल की उन्नति उदार दल का ह्रास

युद्धोत्तर इंग्लैण्ड की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना मजदूर (स्ंइवनत) दल का उत्थान तथा उदार दल का अवसान है। उस समय औद्योगिक मजदूरों की दशा बिगड़ रही थी। उनके रहन–सहन की व्यवस्था बड़ी खराब थी, बेकारी

बराबर बनी हुई थी और देश में बाहुल्य होते हुए भी गरीबी उनके सामने मुँह खोले खड़ी थी। मजदूर दल इन बीमारियों का एकमात्र इलाज समाजवाद समझता था और मुख्य उद्योग–धंधों, रेलवे, बैंकों तथा भूमि के राष्ट्रीकरण की माँग करता था ताकि जो धन अभी तक पूँजीपतियों की तिजोरियों में पहुँचता था, वह सरकार के कोष में जाने लगे और सरकार सम्पत्ति का अधिक न्यायपूर्ण वितरण कर सके। मजदूरों को यह कार्यक्रम बड़ा आकर्षक मालूम होता था। अतः मजदूर दल का जोर बढ़ने लगा। अनुदार (ब्वदेमतअंजपअम) दल समाजवाद का विरोधी था और उसका दावा था कि पूँजीवादी व्यवस्था में ही बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल आवश्यक सुधार करके स्थिति ठीक की जा सकती है। उदार (स्पइमतंस) दल के पास इन दोनों के बीच की कोई ऐसी बात नहीं थी जिसे वह देश की जनता के समक्ष रखता । अतः धीरे–धीरे उसकी शक्ति क्षीण होने लगी।

मजदूर सरकार का भंग

मैकडॉनल्ड ने अपनी सरकार का तो निर्माण कर लिया परन्तु उदार दल की सहायता पर निर्भर होने के कारण जो समाजवाद का विरोधी था, वह उद्योगों तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं कर सकता

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ै मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

215

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ै मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

216

था, और ऐसे ही काम कर सकता था जिससे उदार दल वाले नाराज न हों, अतएव वह केवल कुल आयात–निर्यात करों को निरस्त करवाने और मजदूरों के लिए मकानों के निर्माण के लिए संसद से स्वीकृति लेने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाया। वह बेकारी का भी कोई हल नहीं निकाल सका परन्तु उसकी इस मर्यादित नीति से उसके ही दल के कुछ लोग असन्तुष्ट हो गये तथा उदार दलीय लोग उसके खर्चीलेपन तथा बेकारों की सहायता के लिए किये जाने वाले व्यय से नाराज हो गये, और जब उसने रूस के व्यापार से लाभ उठाने की दृष्टि से उसकी साम्यवादी सरकार को कूटनीतिक स्वीकृति प्रदान की तो उदार दल ने चिढ़कर उसका साथ छोड़ दिया। इस पर मैक्डॉनल्ड ने संसद को भंग कराकर दूसरा निर्वाचन करवाया (अक्टूबर, 1924), परन्तु उसमें अनुदार दल की विजय हुई द्य मजदूर दल को 155 स्थान मिले और उदार दल को केवल 361 मैक्डॉनल्ड ने त्याग–पत्र दे दिया और स्टेनली बाल्डविन दूसरी बार प्रधानमन्त्री बना।

बाल्डविन का द्वितीय मन्त्रिमण्डल सामान्य हड़ताल –

बाल्डविन का मन्त्रिमण्डल 5 वर्ष तक रहा। उसने मेंक्डॉनल्ड की नीति का परित्याग करके संरक्षण की नीति अपनायी परन्तु उसका आरम्भ कोयले के उद्योग में हुआ। युद्ध – काल में कोयले की माँग बहुत थी और खानों में खूब काम हो रहा था, परन्तु युद्ध के बाद देश के अन्दर कारखानों की माँग कम हो गयी और बाहर की माँग तो प्रायः समाप्त हो गयी। अतः कई खानें बन्द हो गयीं और हजारों मजदूर बेकार हो गए, कठिनाई बढ़ी और मई, 1926 में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। ट्रेड यूनियनों ने उनकी सहायता की और उनके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए यातायात (रेलवे आदि), छापाखानों तथा खानों आदि के मजदूरों ने भी हड़ताल कर दी और इस प्रकार हड़ताल का मनोवांछित फल नहीं निकला। सरकार ने जनता से सहायता की प्रार्थना की और हजारों स्वयंसेवकों ने हड़तालियों का काम सँभाल कर उन्हें विफल कर दिया। आम हड़ताल तो नौ दिन में ही टूट गयी । परन्तु कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूरों की हड़ताल 6 महीने तक चलती रही। अन्त में जाड़ा आने पर उन्हें भी दबना पड़ा और मालिकों की (कम वेतन और अधिक काम की) शर्तों को समझकर करके उन्होंने हड़ताल समाप्त कर दी। इस संकट का तात्कालिक परिणाम तो प्रतिक्रियावादी हुआ, यद्यपि यह अल्पकालीन ही रहा। संसद ने एक एक्ट (ज्तंकम क्पेचनजमे ।बज) पारित करके हड़ताल को गैर–कानूनी घोषित कर दिया, पिकेटिंग का निषेध कर दिया और ट्रेड यूनियन के कामों पर भी कई प्रकार के नियन्त्रण लगा दिये । इस प्रतिक्रियावादी लहर में अनुदार लोगों ने लॉर्ड–सभा को उन अधिकारों में से जो 1911 में छीन लिये गये थे, कुछ अधि ाकार वापस देने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका घोर विरोध होने पर उन्हें अपना इरादा छोड़ना पड़ा। जैसा हम अभी कह चुके हैं, यह प्रतिक्रियावादी लहर अल्पकालीन रही। 1928 में संसद ने स्त्रियों को भी उन्हीं शर्तों पर मताधिकार दे दिया जिन पर पुरूषों को प्राप्त था, और इस प्रकार स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार देकर संविधान को पूर्णतया प्रजातन्त्रीय बना दिया।

द्वितीय मजदूर सरकार

अगले वर्ष (1929) में संसद का चुनाव हुआ जिसमें मजदूर दल को सबसे अधि ाक (289) स्थान मिले। अनुदार दल की स्थिति गिर गयी । उसे केवल 259 स्थान प्राप्त हुए और उदार दल को 58 स्थान मिले। बाल्डविन ने त्याग–पत्र दे दिया और रेमजे मैक्डॉनल्ड ने द्वितीय मजदूर मन्त्रिमण्डल बनाया । (1929–1931)। पार्लियामेण्ट में अपना अजेय बहुमत न होने के कारण उसे फिर भी उदार दल का समर्थन लेना पड़ा। इस बार भी वह आर्थिक समस्याओं को हल करने में सफल नहीं हो सका और दुर्भाग्यवश 1931 में उसे विश्वव्यापी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा, जिससे इंग्लैण्ड की बैंकिग व्यवस्था में बड़ी अस्थिरता आ गयी, सरकारी बजट में घाटा होने लगा और देश के आर्थिक क्षेत्र में बड़ा आतंक छा गया। उसके अर्थ मंत्री स्नीडन ने सरकारी व्यय और बेकारों को दी जाने वाली सहायता में कमी करने का प्रस्ताव किया। मैक्डॉनल्ड ने तो उसका समर्थन किया परन्तु इस प्रश्न पर मजदूर दल में फूट पड़ गयी । मन्त्रिमण्डल

के अधिकांश सदस्यों ने भी उसका समर्थन करना अस्वीकर कर दिया। इस पर मैक्डॉनल्ड ने अनुदार और उदार दल से उस राष्ट्रीय संकट में उसकी सहायता करने और सम्मानित मंत्रिमण्डल बनाने का प्रस्ताव किया। अनुदार दल वाले और कुछ उदार दल वाले राजी हो गए। मैक्डॉनल्ड ने समस्त
मंत्रिमण्डल का त्याग–पत्र दे दिया और एक नये राष्ट्रीय (छंजपवद ब्वंसपजपवद) मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया (अगस्त 1931), जिसमें
जिसमें कुछ मजदूर दल के और कुछ उदार दल के परन्तु अधिकांश मन्त्री अनुदार दल के थे । अनुदार दल के नेता बाल्डविन ओर नेविन चेम्बरलेन इस मंत्रिमण्डल में शमिल थे।

राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल

राष्ट्रीय मंत्रिमण्डल को अपनी सारी शक्ति आर्थिक संकट का मुकाबला करने में लगानी पड़ी। कर बढ़ाये गये और सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कमी की गयी। उसने पौण्ड का सोने से सम्बन्ध तोड़ दिया (सितम्बर, 1931) जिससे पौण्ड का मूल्य गिर गया, इंग्लैण्ड संसार के बाजारों में अन्य देशों से जिन्होंने पहले ही अपनी मुद्रा का मूल्य गिरा रखा था, बराबरी से मुकाबला कर सका और ब्रिटिश व्यापार को प्रोत्साहन मिला, इससे देश में पुनः विश्वास लौट आया। यह देखकर मैक्डॉनल्ड ने अपनी राष्ट्रीय सरकार की नीति के लिए जनता का अनुमोदन प्राप्त करने हेतु संसद का नया निर्वाचन कराया जिसमें राष्ट्रीय सरकार के समर्थकों को 615 में से 493 स्थान प्राप्त हुए। मैक्डॉनल्ड पुनः प्रध ानमन्त्री बना, बॉल्डविन उप–प्रधानमंत्री हुआ, नेबिल चेम्बरलेन अर्थ – मंत्री नियुक्त हुआ, जॉन साइमन विदेश मंत्री बनाया गया । मैक्डॉनल्ड प्रधानमंत्री तो था परंतु वास्तव में संसद और मंत्रिमण्डल दोनों में अनुदार दल का प्राधान्य था । पार्लियामेण्ट में अनुदार दल के 327 सदस्य थे। 1931 से 1939 तक ब्रिटिश सरकार अनुदार एवं राष्ट्रीय रही । नाम के लिए तो वह सम्मिलित (ब्वंसपजपवद) सरकार थी परन्तु वह वास्तव में अनुदार – दलीय थी। जिस प्रकार युद्ध–काल में अनुदार दल ने उदार – दलीय लॉर्ड जॉर्ज को अपने मंत्रिमण्डल में सम्मिलित कर लिया था, उसी प्रकार अब उन्होंने मजदूर – दलीय मैक्डॉनल्ड को अपने साथ ले लिया और 1935 तक मैक्डॉनल्ड के नेतृत्व 1935 से 1937 तक बाल्डविन के नेतृत्व में और उसक आगे नेविल चेम्बरलेन के नेतृत्व में सरकार द्वारा अनुदार एवं राष्ट्रीय नीति का करीब–करीब परित्याग करके संरक्षण – नीति अपना ली गयी और अनेक वस्तुओं पर भारी आयात कर लगाये गये। इसके साथ ही ब्रिटिश डॉमीनियनों के व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए ओटाबा की इम्पीरियल कॉन्फ्रेंस में उसने उनके मुकाबले में अन्य देशों से आयात पर अधिक ऊँचे कर लगाना स्वीकार किया। सन् 1934 तक विश्व में सर्वत्र आर्थिक संकट प्रायः समाप्त हो चुका था। कुछ तो उसके प्रभाव से और कुछ उपर्युक्त उपायों से राष्ट्रीय सरकार इंग्लैण्ड की आर्थिक दशा सँभाल सकी परन्तु 1935 से यूरोप के वातावरण में अशान्ति छाने लगी और जर्मनी की सैनिक नीति के कारण सभी देश शस्त्रास्त्र बढ़ाने लगे। इंग्लैण्ड ने महायुद्ध की समाप्ति के

बाद अपनी सैन्य शक्ति बहुत घटा ली थी, परन्तु कुछ वर्षों से उसने अपनी थल सेना तथा जल–सेना के व्यय में वृद्धि करना आरम्भ कर दिया था। अब उसमें और भी वृद्धि की गयी। इससे सरकार के व्यय में भारी वृद्धि होने लगा। इसके साथ ही, अभी तक बेकारों की सहायता के लिए भी काफी व्यय हो रहा था । इस व्यय के भार को कुछ तो, जैसा हम अभी लिख चुके हैं, गोल्ड स्टैण्ड का परित्याग करके और कुछ संयुक्त राज्य की ऋण की किस्त देना बन्द करके सरकार ने कम करने का प्रयत्न किया।

साम्यवाद और फासिज्म

युद्धोत्तर – काल के अधिकांश में, जैसा अभी तक प्रकट हो गया होगा, और सबसे अधिक संकटमय समय में इंग्लैण्ड में अनुदार दल के प्राधान्य रहा । उदार दल इस समय निर्बल पड़ गया था और अनुदार दल का विरोध करने वाला मुख्य दल मजदूर दल था। मैक्डॉनल्ड और उसके साथियों (छंजपवदंस संइमतपजमे) के पृथक हो जाने से मजदूर दल की क्षति तो अवश्य पहुँची थी और वह कुछ निर्बल भी हो गया था, परन्तु यह निर्बलता अल्पकालीन थी और देश में अनुदारवाद का विरोध अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि इंग्लैण्ड में क्रांति या अधिनामकतन्त्र की तैयारी हो रही थी। इतना तो अवश्य था कि युद्धोत्तर काल में इंग्लैण्ड में पार्लियामेण्टरी शासन की असाधारण मात्रा में आलोचना होती रही। एक ओर तो कुछ मजदूर लोग और कुछ बुद्धिजीवी लोग रूसी ढंग के साम्यवाद का समर्थन कर रहे थे, और दूसरी ओर, एक व्यक्ति सर ओस्वाल्ड मोजले (पत ेंसक डवेसमल) जो कभी अनुदारवादी और कभी उग्र मजदूर दलीय रह चुका था, फासिज्म से प्रभावित होकर संसद तथा यहूदियों के विरुद्ध प्रचार कर रहा था और काली कुर्ती वालों का एक दल संगठित कर रहा था परन्तु साम्यवादियों की संख्या इंग्लैण्ड में अधि
ाक नहीं थी और मोजले का कोई विशेष प्रभाव नहीं था उसका

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

और उसके साथियों का जनता मजाक उड़ाती थी। इन लोगों को जो इतनी कम सफलता प्राप्त हुई, वह इस बात का प्रमाण है कि इंग्लैण्ड की जनता में जनतंत्र के प्रति अगाध भक्ति थी । इंग्लैंड के बहुसंख्यक लोग या तो अनुदार दल के अथवा मजदूर दल के समर्थक थे और दोनों ही दल अपने देश की परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं को बनाये रखना चाहते थे।

पंचम जॉर्ज की मृत्यु के पहले ही 1935 में मैक्डॉनल्ड ने त्याग–पत्र दे दिया था

और उसके स्थान पर बाल्डविन तीसरी बार प्रधानमंत्री बन चुका था, वह 1937 तक प्रधानमंत्री रहा। उसके बाद जेलिव चेम्बरलेन प्रधानमंत्री बना। इन दोनों के समय में यूरोप की राजनीति अत्यन्त अशान्त रही और सरकार का ध्यान अधि ाकतर यूरोप के झमेलों में लगा रहा।

परराष्ट्र नीति

महायुद्ध की समाप्ति के बाद इंग्लैण्ड के लिए सबसे बड़ा काम मित्र राष्ट्रों से मिलकर पराजित राष्ट्रों के साथ संधि करना और यूरोप की नवीन व्यवस्था करना था। लॉयड जॉर्ज ने 1918 के सामान्य निर्वाचन के आरम्भ में घोषणा की थी कि हमारा प्रथम कार्य न्यायपूर्ण एवं स्थाई शान्ति की संधि करना और यूरोप का इस प्रकार नव–निर्माण करना है कि भविष्य में कभी युद्ध की आवश्यकता न पड़े।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि लॉयर्ड जॉर्ज की नीति से दोनों उद्देश्य पूरे नहीं हुए। वर्साय के संधि न्यायपूर्ण नहीं हुई और यूरोप की व्यवस्था भी ऐसी हुई, जिससे 20 वर्ष बाद ही द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। इस अनर्थ का दायित्व बहुत कुछ अंशों में इंग्लैण्ड की परराष्ट्र नीति पर था ।

अव्यवस्थित नीति

वर्साय के बाद इंग्लैण्ड के समक्ष सुरक्षा की प्राप्ति के लिए केवल दो उपाय थे–यूरोपीय अथवा विश्व–संतुलन की नीति का परित्याग करके सामूहिक सुरक्षा के लिए राष्ट्र संघ का पूर्ण समर्थन करना या यूरोप में सबल राष्ट्र के विरुद्ध निर्बल राष्ट्रों की सहायता देने की परम्परागत नीति का अवलम्बन करना । इंग्लैण्ड को सामूहिक सुरक्षा में बिल्कुल विश्वास नहीं था। उस नीति के पालन में उसे अपने कन्धों पर बड़ी भारी जिम्मेदारियाँ लेनी पड़ती जिसके लिए वह तैयार नहीं था। दूसरी नीति के पालन के लिए वर्साय – संधि की सैनिक ध ााराओं पर अमल करना जर्मनी के पुनः सैन्यीकरण को रोकना और ऐसा सम्भव न होने पर फ्रांस तथा लघु मैत्री के राष्ट्रों को पूर्ण सहायता देना तथा जर्मनी पर रुकावट डालने के लिए रूस से सहयोग करना आवश्यक था परन्तु इंग्लैंड ने इन दोनों नीतियों में से किसी को भी नहीं अपनाया । उसने बड़ी अनिच्छापूर्वक राष्ट्र संघ का समर्थन किया और बाद में उसे धोखा दिया। उसने फ्रांस के विरुद्ध जर्मन गणतन्त्र का और बाद में नात्सी जर्मनी का समर्थन किया तथा रूस को रुष्ट कर दिया।

साम्यवाद का भय

जैसा हम देख चुके हैं, यह नीति आत्मघाती थीं। इसका कारण यह था कि राष्ट्र संघ के अन्तर्गत सामूहिक सुरक्षा और सहयोग में ब्रिटिश जनता का विश्वास होते हुए भी इंग्लैण्ड का अनुदार दल इन सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता था। दोनों युद्धों के बीच के काल में कुछ वर्षों के अतिरिक्त इसी दल के हाथ में सत्ता रही। उसकी धारणा थी कि भविष्य में यूरोप में जर्मनी और रूस तथा एशिया में रूस और जापान ही बड़े राज्य होंगे। वह रूस के साम्यवाद को अपने तथा ब्रिटिश साम्राज्य के लिए बड़ा खतरनाक समझता था और चाहता था कि

पश्चिम में जर्मनी (और इटली) और पूर्व में जापान रूस पर आक्रमण करके उसे समाप्त कर दें। अतः वह जर्मनी और जापान को सहायता देता रहा और पूर्वी यूरोप के उसके मित्रों को 'सहायता देने से रोकता रहा । यह भी सम्भव था कि ये तीनों शक्तियाँ रूस को परास्त करने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खतरनाक बन जायें परन्तु उसे यह खतरा साम्यवाद के खतरे के समक्ष तुच्छ दिखाई देता था। इस प्रकार सारतः साम्यवाद के खतरे को दूर रखना ही ब्रिटिश पर राष्ट्र नीति का मूल मंत्र था।

जर्मनी से सहानुभूति – फ्रांस की नाराजी

जर्मनी से सहानुभूति के अन्य कारण भी थे। यह बात इंग्लैण्ड के हित में नहीं थी कि यूरोप में फ्रांस ही एकमात्र शक्तिशाली राज्य रह जाये । अतः उसने पेरिस के शान्ति सम्मेलन में जर्मनी को खण्ड–खण्ड हो जाने से बचाने का प्रयत्न किया। इंग्लैण्ड व रूस से फ्रांस नाराज था। संधियाँ हो जाने के बाद शीघ्र ही फ्रांस और इंग्लैण्ड में मतभेद हो गया और इंग्लैण्ड की नीति स्पष्टतः जर्मनी के पुनरूत्थान की समर्थक बन गयी। इसके कई कारण थे। सर्वप्रथम अंग्रेज भूलने तथा क्षमा करने के लिए स्वभाव से तैयार रहता है, और इसके साथ ही वह अपने मित्रों और अपने साथ किये हुए उपकारों को भी सरलता से भूल जाता है । द्वितीय, फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिए जर्मनी की ओर से चिन्तित था और उसे सदैव निर्बल ही देखना चाहता था। इसके विपरीत, इंग्लैण्ड का हित इसमें था कि जर्मनी का शीघ्रातिशीघ्र पुनरूत्थान हो जाये ताकि वह उसके साथ फिर से व्यापार कर सके । तृतीय सुरक्षा के विषय में दोनों के विचार बिल्कुल भिन्न थे। इंग्लैण्ड युद्ध से सुरक्षा चाहता था अर्थात् युद्ध को रोकना चाहता था। वह उन शिकायतों को दूर करना चाहता था जिनके कारण युद्ध होने की सम्भावना हो सकती थी। वह शस्त्रास्त्रों में कमी करना चाहता था कि युद्ध या शस्त्रास्त्र – प्रतियोगिता न हो और युद्ध का डर मिट जाये परन्तु फ्रांस युद्ध के समय सुरक्षा चाहता था अर्थात् अपने पक्ष को इतना सुदृढ़ बनाना चाहता था कि युद्ध छिड़ने पर उसकी पराजय न हो सके। इसलिए वह वर्साय की संधि ा में, जिसे वह किसी अंश तक अपनी सुरक्षा की गारण्टी समझता था, लेसमात्र भी संशोधन नहीं चाहता था और जर्मनी से बलपूर्वक उसका पूर्णतया पालन कराना चाहता था। इंग्लैण्ड झगड़ा मिटाने तथा युद्ध की आशंका को रोकने के लिए समझौते की बातचीत द्वारा संधि में संशोधन चाहता था। इंग्लैण्ड और फ्रांस के मनोमालिन्य का इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण दूसरा कोई नहीं था। अन्त में, क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध समझता था। जिस प्रकार शत्रु को उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सकता है और उसका दण्ड कम किया जा सकता है उसी प्रकार वह क्षतिपूर्ति की राशि में कमी कराना चाहता था परन्तु फ्रांस ने क्षतिपूर्ति का शाब्दिक अर्थ ग्रहण कर रखा था। जर्मनी ने उसकी हानि की थी और उसकी पूर्ति करना उसका कर्त्तव्य था । क्षतिपूर्ति की राशि में कमी करना उसे अन्याय दिखायी देता था। इस प्रकार इंग्लैण्ड का रूख जर्मनी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था और इस कारण आरम्भ से ही दोनों में मतभेद हो गया। जब 1923 में फ्रांस ने

Notes

विश्व का इतिहास

जर्मनी पर दबाव डालने के लिए रूर– प्रदेश पर आक्रमण किया तो इंग्लैण्ड ने उसका विरोध किया ।

फ्रांस को प्रसन्न करने का प्रयत्न

इतना होते हुए भी वह फ्रांस को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। फ्रांस जर्मनी की ओर से आक्रमण होने की दशा में इंग्लैण्ड से सैनिक सहायता की गारण्टी चाहता था। इस पर जनवरी, 1922 में लॉयर्ड जॉर्ज ने उसे सहायता की गारण्टी दी परन्तु फ्रांस का आग्रह था कि उसक साथ एक सैनिक समझौता भी हो जिसमें यह स्पष्ट कर दिया जाये कि इंग्लैण्ड क्या सहायता देगा। इंग्लैण्ड की सरकार इस प्रकार वचनबद्ध होना नहीं चाहती थी। अतः उसने गारण्टी वापस ले ली। इंग्लैण्ड को जैसा हम देख चुके हैं, सामूहिक सुरक्षा में विश्वास नहीं था, फिर भी उसने फ्रांस का भय मिटाने के लिए जर्मनी को फ्रांस के साथ सुरक्षा संधि करने और राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जिसका परिणाम लोकान–संधि में प्रकट हुआ।

राष्ट्र संघ के प्रति उदासीनता

इंग्लैण्ड ऊपर से तो राष्ट्र संघ के आदर्श के प्रति श्रद्धा प्रकट करता रहा परन्तु आरम्भ से ही उसके कार्य ऐसे रहे जिससे राष्ट्र संघ में निर्बलता आने लगी। राष्ट्र संघ के निर्माण के लिए उत्तरदायी स्वयं लॉयर्ड जॉर्ज भी उसे केवल एक अलंकारिक संस्था समझता था। यूरोपीय झगड़ों में बीच–बचाव करने में वह राष्ट्र संघ के द्वारा काम करने की अपेक्षा सदैव या तो राजदूतों की समिति के द्वारा अथवा केन्स में, जीनोआ (जिनोबा में नहीं) में या अन्यत्र विशिष्ट सम्मेलन आमन्त्रित करके काम करना अधिक पसन्द करता था। जब 1923 में कॉर्फ्यू के विवाद में इटली ने राष्ट्र संघ की उपेक्षा की तो इंग्लैण्ड ने राष्ट्र संघ का साथ नहीं दिया और जैसा हम देख चुके हैं राजदूतों

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॽमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

219

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॽमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

220

की समिति द्वारा विवाद का निर्णय करके उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचायी। इसी प्रकार जब 1931 में जापान ने चीन के मंचूरिया प्रदेश पर आक्रमण किया और चीन ने राष्ट्र संघ के समक्ष विवाद प्रस्तुत किया तब भी इंग्लैण्ड के ही रूख के कारण राष्ट्र संघ जापान के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाया। आगे चलकर जब हिटलर ने राष्ट्र संघ से सम्बन्ध–विच्छेद कर दिया और जर्मनी के पुनः शस्त्रीकरण की घोषणा करके वर्साय की संधि को भंग कर दिया तब भी

इंग्लैण्ड नेउसका कोई खास विरोध नहीं किया। इसी प्रकार जब 1934 में उसने ऑस्ट्रिया की सरकार को पलटने का प्रयत्न किया तब भी ऐसा ही हुआ। उन दिनों इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय सरकार थी जिसमें सर जॉन साइमन परराष्ट्र मंत्री था। उदार फ्रांस में लावाल परराष्ट्र – मंत्री के पद पर था । उन दोनों को आशा थी कि जब 1935 से सार – प्रदेश जर्मनी के पास चला जायेगा तो जर्मनी से समझौता हो सकेगा और वह फिर से राष्ट्र संघ में शामिल हो जायेगा । परन्तु यह आशा पूर्ण नहीं हुई । हिटलर का साहस बढ़ता गया जिसमें मुसोलिनी की सफलता ने और भी वृद्धि की ।

–

ऑस्ट्रिया पर हिटलर के असफल आक्रमण के बाद इंगलैंड के रूख में परिवर्तन होता हुआ प्रतीत हुआ । 1934 में इंग्लैण्ड में शान्ति के प्रश्न पर जनमत संग्रह (ठतपजपेी छंजपवदंस च्मंबम ठंससवज) हुआ जिसे प्रकट हुआ कि इंग्लैण्ड की बहुसंख्यक जनता सामूहिक सुरक्षा की समर्थक थी। उन्हीं दिनों मैक्डॉनल्ड ने त्याग–पत्र दिया और संसद का निर्वाचन हुआ । अपने पक्ष में बहुमत प्राप्त करने के लिए बाल्डविन ने कहा कि राष्ट्र संघ ब्रिटिश नीति का मूलाधार बना हुआ है। हम राष्ट्र संघ का समर्थन करने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। इंग्लैण्ड ने अप्रैल 1935 में इटली और फ्रांस के साथ मिलकर स्ट्रेसा सम्मेलन में हिटलर के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित किया, और जब अबीसीनिया पर इटली ने आक्रमण किया तो उसने राष्ट्र संघ में इटली का जोरदार विरोध भी किया । परन्तु यह सब दिखावा मात्र ही था। स्ट्रेसा की घोषणा के पहले ही वह जर्मनी से नाविक समझौता करके वर्साय संधि को भंग करने में उसे स्वयं सहायता दे
चुका था और इटली के विरुद्ध कार्यवाही करने में भी उसने शिथिलता दिखलायी ।

यह दिखावा भी शीघ्र समाप्त हो गया । हिटलर इंग्लेण्ड की कमजोरी को अच्छी तरह समझ चुका था । अब उसने निर्भीक होकर अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करना आरम्भ किया। उसने राइन– प्रदेश में अपनी सेना भेज दी, ऑस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया और अन्त में चौकोस्लोवाकिया को हड़प लिया, जिसमें स्वयं इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भी सहायता दी।

चौकोस्लोवाकिया के विनाश के बाद अवश्य इंग्लैण्ड की आँखें खुली और उसने अन्य राज्यों से मिलकर हिटलर के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयत्न किया, पोलैण्ड रूमानिया, ग्रीस तथा टर्की को सहायता की गारण्टी दी और रूस से भी संधि करने का प्रयत्न किया, परंतु उस समय तक काफी देर हो चुकी थी। यदि चौकोस्लोवाकिया के विषय में इंग्लैण्ड और फ्रांस रूस से सहयोग करके हिटलर का मुकबला करते तो वह अवश्य रूक जाता। रूस से संधि न हो सकी। उसने जर्मनी से संधि कर ली।

से

रूस की सोवियत सरकार से तो, जैसा हम आम्भ में ही कह चुके हैं, इंग्लैण्ड रुष्ट था और उसके नाश की दृष्टि से ही वह जर्मनी तथा इटली का समर्थन

कर रहा था। क्रांति के तुरन्त बाद ही इंग्लैण्ड ने अन्य राष्ट्रों से मिलकर क्रांति – विरोधियों को सहायता दी थी और स्वयं उसकी सेना ने रूस पर आक्रमण भी किया था। केवल 1924 में कुछ दिनों के लिए मैक्डॉनल्ड की प्रथम मजदूर सरकार के समय में रूस कुछ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सके थे, परन्तु उसके बाद इंग्लैण्ड की अनुदार सरकार ने उसक साथ अपने सम्बन्ध सुधारने या सामूहिक सुरक्षा के लिए उसका सहयोग प्राप्त करने को कोई प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि रूस दोनों बातों के लिए तैयार था। चौकोस्लोवाकिया के विषय में रूस सैनिक सहायता देने को तैयार था परन्तु इंग्लैण्ड ने उससे परामर्श तक नहीं किया। अन्त में जब उसने रूस से संधि करने का प्रयत्न किया उस समय भी उसका दिल साफ नहीं था। उन्हीं दिनों वह छिपे – छिपे हिटलर से भी समझौता करने का प्रयत्न कर रहा था।

सुदूर–पूर्व में

सुदूर–पूर्व में भी इंग्लैण्ड की नीति वैसी ही निर्बल रही जैसी यूरोप में थी । इंग्लैण्ड का हित इसी में था कि चीन अखण्ड और स्वतन्त्र बना रहे। संयुक्त राज्य जापान के अत्यधिक उत्कर्ष को सहन नहीं कर

सकता था। यदि इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य, दोनों मिलकर आरम्भ में ही जापान को रोकने का प्रयत्न करते तो मंचूरिया में उसका आक्रमण रोका जा सकता था, परन्तु इंग्लैण्ड ने इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया। सुदूर–पूर्व में तो इंगलैण्ड ने अत्यधिक कायरता दिखलायी। जापानी लोग अंग्रेजों का अपमान करते रहे, परन्तु चेम्बरलेन उसको सहन करता रहा ।

–

इस प्रकार युद्धोत्तर काल में इंग्लैण्ड की परराष्ट्र नीति बढ़ी परन्तु स्वयं उसके तथा यूरोप के लिए घातक रही। यूरोप में प्राधान्य के भय से और ब्रिटिश शासक वर्ग के हितों को बॉल्शेविज्म की ओर से खतरा देखकर, इंग्लैण्ड न जर्मनी को उस सीमा तक बढ़ जाने दिया जहाँ वह स्वयं इंग्लैण्ड और फ्रांस की सुरक्षा के लिए खतरनाक हो गया। अपनी निर्बल नीति के कारण ही उसने इटली को भूमध्य सागर में और जापान को पूर्व में अत्यधिक शक्तिशाली हो जाने दिया और अपने साम्राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया । यदि जर्मनी के साथ किये हुए अन्याय का प्रतिकार करके इंग्लैण्ड और फ्रांस राष्ट्र संघ के द्वारा सामूहिक रक्षा के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते तो विश्व को द्वितीय विश्व–युद्ध न देखना पड़ता ।

ब्रिटिश साम्राज्य

महायुद्ध का प्रभाव

–

प्रथम महायुद्ध का ब्रिटिश साम्राज्य पर काफी प्रभाव पड़ा । उसक फलस्वरूप इंगलैण्ड तथा साम्राज्य के अन्य प्रदेशों के पारस्परिक सम्बन्ध में बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। युद्ध के आरम्भ में कोई नहीं कह सकता था कि साम्राज्य पर

उसका क्या प्राभाव होगा और साम्राज्य के विभिन्न भाग इंग्लैण्ड का कहाँ तक साथ देंगे, परन्तु इंग्लैण्ड ने जो साम्राज्यवादी नीति अपना रखी थी उसका युद्ध में औचित्य सिद्ध हो गया और आयरलैण्ड तथा दक्षिण अफ्रीका व ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति का प्रमाण प्राप्त होने के साथ ही इस महायुद्ध के फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में भी वृद्धि हुई। जैसा हम देख चुके हैं, राष्ट्र संघ ने इंग्लैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड को टर्की और जर्मनी के साम्राज्य के अनेक भागों का शासन आदेश के रूप में अपनी ओर से सौंपा।

युद्धकालीन साम्राज्य – मंत्रि–परिषद

किन्तु महायुद्ध का सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव परोक्ष था। युद्ध के पहले साम्राज्य की विदेश नीति का निर्धारण इंग्लैण्ड की सरकार करती थी और इसी परिणामस्वरूप समस्त साम्राज्य अपने आप ही युद्ध में शमिल हो गया था परन्तु 1915 से ही डॉमिनियनों के मंत्री उन पर प्रभाव डालने वाली नीतियों के निध ार्रण में भाग लेने की माँग करने लगे। इंग्लैण्ड ने इस माँग पर विचार करके दिसम्बर 1916 में एक युद्धकालीन साम्राज्य मंत्रि–परिषद (प्उचमतपंस ॅंत ब्ंइप. दमज) का निर्माण किया, जिसमें समस्त डॉमिनियनों और भारतवर्ष के प्रतिनिधि ा आमन्त्रित किये गये। इसके पहले भी 1887 से साम्राज्य की सामान्य समस्याओं पर परामर्श करने के लिए समय–समय पर साम्राज्य – सम्मेलन होते रहते थे, परन्तु संविधानिक दृष्टि से यह कैबिनेट उन सम्मेलनों से भिन्न थी । यह 6 समकक्ष राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक समिति थी जिसमें इंग्लैण्ड का प्रध ाानमंत्री अध्यक्ष का पद ग्रहण करता था ।

डॉमिनियन – स्वराज्य

.

युद्ध समाप्ति पर शान्ति सम्मेलनों में इंग्लैण्ड के प्रतिनिधियों के साथ डॉमिनियनों तथा भारतवर्ष के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए और सभी राष्ट्र संघ के सदस्य भी बन गये। आगे चलकर धीरे – धीरे डॉमिनियनों की स्वतन्त्रता अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी। वे संसार के विभिन्न राज्यों में अपने–अपने राजदूत रखने लगे और विदेश नीति में भी स्वतंत्रता का व्यवहार करने लगे। लोकानों–संधि को इंग्लैण्ड ने स्वीकार किया परन्तु डॉमिनियिनों का दर्जा बढ़ने लगा और स्थिति को स्पष्ट करने तथा संविधानिक रूप देने के लिए बाल्फौर के नेतृत्व में 1926 में एक साम्राज्य – सम्मेलन किया गया। उसमें साम्राज्य के संविधान पर विचार हुआ और एक घोषणा (ठंसविनत क्मबसंतंजपवद) द्वारा समस्त डॉमिनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वेच्छा से शामिल, क्राउन के प्रति सामान्य भक्ति से परस्पर सम्बद्ध और ग्रह एवं बाह्म नीति में एक–दूसरे से स्वतंत्र परस्पर समकक्ष, स्वायत्तशासी राष्ट्र स्वीकार कर लिये गये। सन् 1930

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ैः

ैमसफ–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

221

इकाई 12
पवित्र युरोपीय संघ की स्थापना

डॉमिनियनों में भी आयरिश फ्री स्टेट की अपनी स्थिति असन्तुष्ट थी । प्रथम महायुद्ध के पहले अल्स्टर के प्रान्त के अतिरिक्त शेष आयरलैण्ड को स्वराज्य देने की व्यवस्था की गयी थी परन्तु उसका विरोध हुआ था और इतने में ही महायुद्ध छिड़ गया था। अतः वह व्यवस्था स्थगित कर दी गयी थी । महायुद्ध के दौरान 1916 में आयरलैण्ड में विद्रोह भी हुआ था परन्तु उसका दमन कर दिया गया था। युद्ध की समाप्ति पर इस समस्या को हल करना आवश्यक हो गया और दिसम्बर 1921 से सिनफिन दल के नेताओं तथा ब्रिटिश सरकार के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अल्स्टर के अतिरिक्त शेष आयरलैण्ड को आयरिश फ्री स्टेट के नाम से डॉमिनियन का पद प्राप्त हुआ परन्तु सिनफिन दल के उग्र सदस्यों को यह व्यवस्था, जिसके अनुसार आयरलैण्ड का अंग–भंग हो गया था और वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बना हुआ था, पसन्द नहीं आयी। उसका नेता डी बेलेरा था। वह नरम मिनफिन नेताओं का विरोध करता रहा। इन दोनों पक्षों में संघर्ष चलता रहा और कुछ दिनों तक तो आयरलैण्ड में एक भयंकर गृह–युद्ध चलता रहा। डीबेलनरा तथा उसके अनुयायी आयरिश संसद का वर्षों तक बहिष्कार करते रहे। अन्त में देश में जनमत उनका समर्थन करने लगा। यह देखकर डी–बेलरा और उसके अनुयायी राजनीतिक जीवन में भाग लेने लगे (1927) और शीघ्र ही संसद में बहुमत प्राप्त करके शासन अपने हाथों में लेने में सफल हो गये (1932)। उस वर्ष डी बेलेरा शासन का अध्यक्ष बन गया और उसने प्रेजीडेण्ट की पदवी धारण की। उसने अगले वर्ष इंग्लैण्ड के बादशाहों के प्रति भक्ति की शपथ ली तथा गवर्नर–जनरल के पद का अन्त करके इंग्लैण्ड से सांविधानिक सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। आगे चलकर (1937) उसने नये संविधान का निर्माण किया और आयरिश फ्री स्टेट के डॉमिनियन के स्थान पर आयर (म्पतम) के स्वतंत्र एवं पूर्ण संप्रभुत्व–युक्त राज्य की घोषणा

की। इस प्रकार आयरलैण्ड की स्वतंत्रता का युद्ध जो शताब्दियों से चला आ रहा था, समाप्त हुआ, परन्तु अल्स्टर फिर भी उससे लग रहा और बिटिश द्वीप समूह का भाग बना
रहा।

भारतवर्ष

महायुद्ध के दौरान भारतवर्ष में स्वशासन की माँग बढ़ रही थी और लोकमान्य तिलक तथा ऐनी बेसेण्ट के नेतृत्व में स्वराज्य के लिए आन्दोलन भी आरम्भ हो गया था। इंग्लैण्ड को भारतवर्ष से युद्ध में बहुमूल्य सहायता मिल रही थी और सरकार को अधिक सहायता की आवश्यकता थी। इस कारण भारतवासियों को सन्तुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार भारत–सचिव मॉण्टेग्यू ने अगस्त, 1917 में घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीति शासन के प्रत्येक विभाग में भारतवासियों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने और स्वशासन सम्बन्धी संस्थाओं का सामान्य विकास करने की है ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित हो सके। इस घोषणा के बाद माण्टेग्यू भारतवर्ष पहुँचा और तत्कालीन वामसराय चेम्सफोर्ड के साथ भारतवर्ष का भ्रमण करके उसने दोनों के परामर्श से एक रिपोर्ट (डवदजंहनम–त्मचवतज) प्रस्तुत की जिसमें भारतवर्ष के प्रान्तों में निर्वाचित विधानसभाओं की स्थापना करने और प्रान्तीय शासन के कुछ विभागों का प्रबन्ध विधानसभाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपकर द्वैध शासन (क्लंतबील) स्थापित करने की सिफारिश की। केन्द्रीय सरकार में विधानसभा का विस्तार करने और उसे कुछ विशेष अधिकार देने के अतिरिक्त किसी खास परिवर्तन की सिफारिश नहीं की गयी ।

इस रिपोर्ट के आधार पर संसद ने 1919 में कानून बनाकर 1920 में नया संविध ाान लागू किया। कुछ लोगों ने इसका समर्थन किया परन्तु भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने उसका विरोध किया और निर्हिनतापूर्वक काम नहीं हो सका। 1921 में भारत में गाँधीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ जिसने
}

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को सही अर्थों में राष्ट्रीय – जन–संग्राम में परिवर्तित कर दिया। 1927 में ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष की स्थिति पर विचार करने के एक कमीशन नियुक्त किया जिसने 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । परन्तु भारतवर्ष में सभी दलों ने कमीशन का बहिष्कार किया था और असंतोष बढ़ रहा था। इस असंतोष नहीं 1930–34 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन को जन्म दिया यह देखकर सरकार ने भारतीय समस्या पर पूर्ण रूप से विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार, ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की लन्दन में गोलमेज – सभाएँ की (1930–32) । इन सभाओं की सिफारिशों के आधार पर संसद ने 1935 में एक एक्ट पारित किया जिसके अनुसार प्रान्तों में गवर्नरों के विशेषाधिकारों के साथ पूर्ण स्वराज्य की व्यवस्था की गयी और समस्त भारतवर्ष

(देशी राज्यों सहित) के लिए संघ शासन की व्यवस्था की गयी और जिसमें वायसराय के हाथों में कुछ महत्वपूर्ण विषयों (रक्षा विदेश नीति आदि) के अतिरिक्त शेष विषयों को केन्द्रीय विधानसभा के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपने का निर्णय किया गया। 1937 में प्रान्तों में तो नया संविधान लागू हो गया, परन्तु देशी राजाओं ने सम्मिलित होने में विलम्ब किया। अतएव केन्द्र में कोई परिवर्तन नहीं हो सका। 1939 में द्वितीय विश्व–युद्ध छिड़ जाने से संविध् ाान का केन्द्र सम्बन्धी भाग स्थगित कर दिया गया। नये संविधान का एक परिणाम यह हुआ कि वह भारतवर्ष से पृथक हो गया।

इजिप्ट

भारतवर्ष का स्वतन्त्रता आन्दोलन तो द्वितीय विश्व–युद्ध के पूर्व तक पूर्णतया सफल नहीं हुआ, परन्तु इजिप्ट को सफलता मिली। इजिप्ट पहले टर्की के साम्राज्य का भाग था। 1882 से वहाँ अंग्रेजों ने अपना प्राधान्य जमा लिया था और महायुद्ध के आरम्भ में ही उसे अपने साम्राज्य का एक संरक्षित प्रदेश घोषित कर दिया था। युद्ध की समाप्ति के बाद वहाँ स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन छिड़ गया जिसके परिणामस्वरूप 1922 में स्वेज नहर तथा इजिप्ट के अन्दर ब्रिटिश संचार – सांधनों (ब्वउउनदपबंजपवद) के संरक्षण के लिए कुछ नियन्त्रणों से बड़ा असंतोष हुआ, क्योंकि उनके कारण इजिप्ट में अंग्रेजी सेना रहती थी जिससे उनकी स्वतन्त्रता केवल दिखावटी ही रह गयी थी। इस कारण वर्षों तक गड़बड़ी होती रही। अन्त में 1936 में एक संधि की गयी जिसके अनुसार इंग्लैण्ड ने स्वेज नहर की रक्षा के अधिकार के बदले में काहिरा तथा अलेक्जेण्ड्रिया से अपनी सेना हटा लेने का वचन दिया और इजिप्ट ने अपनी परराष्ट्र – नीति को इंग्लैण्ड के अनुकूल रखना स्वीकार किया। सूडान में जैसी स्थिति थी वैसा ही बनी
रही।

इराक

जैसा हम बतला चुके हैं, महायुद्ध के बाद राष्ट्र संघ ने मेसोपोटामिया के शासन का भार इंग्लैण्ड को सौंपा था। 1921 में एक अरब सरदार अमीर फैजल वहाँ का बादशाह नियुक्त किया गया और उसे भविष्य में स्वतंत्रता प्रदान करने का वचन इजिप्ट पर लगायी गयी थी उसी प्रकार की मर्यादाओं के साथ उसे स्वतन्त्र कर दिया गया। स्वतंत्र मेसोपोटामिया का नाम इराक रखा गया और 1932 में वह राष्ट्र संघ का सदस्य भी बना लिया गया।

पेलेस्टाइन

मेसोपोटामिया के समान पेलेस्टाइन के शासन का भार भी राष्ट्र संघ ने इंग्लैण्ड को सौंपा था । यहाँ अंग्रेजों को आरम्भ से ही बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की ओर संसार में सर्वत्र बिखरे हुए यहूदियों में पेलेस्टाइन में जहाँ के वे मूल निवासी थे, अपना राष्ट्रीय घर बसाने के लिए आन्दोलन हो रहा था । उस आन्दोलन के नेता डॉ. बीजमेन के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने 1917 में एक घोषणा (ठंसविनत क्मबसंतंजपवद) द्वारा पेलेस्टाइन में

यहूदियों को राष्ट्रीय घर प्रदान करने का वचन दिया था। अब उसे अपना वचन निभाना पड़ा और उसने यूरोप तथा अमेरिका के यहूदियों को पेलेस्टाइन में बसने का निमन्त्रण दिया। यहूदी धनी थे । वे बड़ी संख्या में आकर पेलेस्टाइन में बसने लगे और अरबों से अनाप–शनाप भूमि खरीदने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अरबों के हाथों से बहुत–सी भूमि निकल गयी थी और बहुत से अरब भूमिहीन मजदूर बन गये । अरब लोगों को यह बहुत बुरा लगा और वे यहूदियों

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

स्व–प्रगति की जाँच करें

8. जापान का अभ्युदय पर एक टिप्पणी लिखें।

9. बॉक्सर विद्रोह पर टिप्पणी लिखें।

10. रूस, जापान युद्ध के कारण लिखें

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

223

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

का विरोध करने लगे। वे ब्रिटिश सरकार से भी बड़े रुष्ट हुए जिसने बाल्फोर – घोषणा में ही उनके नागरिक तथा धार्मिक अधिकारी को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाने का वचन दिया था, और युद्ध करके के दिनों में अरबों को स्वतन्त्र कर देने की भी प्रतिज्ञा की थी।

अरबों का असन्तोष बढ़ता रहा और 1929 में उसने यहूदियों के विरुद्ध विद्रोह का रूप धारण कर लिया। दोनों में लड़ाई–झगड़ा और मार–काट होने लगी। इंग्लैण्ड ने पेलेस्टाइन में आकर बसने वाले यहूदियों की संख्या में कमी करके और कभी–कभी उनका आना बिल्कुल बन्द करके अरबों का असंतोष कम करने का प्रत्यन किया, परन्तु व्यर्थ धीरे–धीर दलों में राष्ट्रीयता और धार्मिक कट्टरता की भावना बड़े उग्र रूप में व्याप्त हो गयी और तनाव बढ़ता रहा ।

अन्त में 1936 में ब्रिटिश सरकार ने इस झगड़े पर विचार करते हुए और उसका अन्त करने के लिए सुझाव देने के निमित एक कमीशन नियुक्त किया जिसने पेलेस्टाइन के विभाजन का प्रस्ताव दिया। उसने सिफारिश की कि पेलेस्टाइन का उत्तरी भाग यहूदी राज्य बना दिया जाये, दक्षिणी भाग अरबों का राज्य रहे और बीच का भाग जिसमें जेरूसलम, बेथलेहम आदि ईसाई तीर्थ स्थान हैं, ब्रिटिश प्रबन्ध में ही रहे । योजना का दोनों ओर से विरोध हुआ, अतः वह निरस्त कर दी गयी और एक नयी योजना संसद के समक्ष प्रस्तुत की गयी परन्तु इसी बीच द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया और यह मामला टल गया।

ेमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
224
सारांश
यूरोप की इस संयुक्त व्यवस्था से अनेक लाभ हुए। इस समय यूरोप के इतिहास में शान्ति रही । युद्ध, बेकारी, भुखमरी आदि को रोकने के लिए अनेक देशों की जनता ने प्रयास किए। परंतु यह केवल उन्हीं देशों तक सीमित रही। उन प्रयासों ने किसी प्रकार के युद्ध का रूप धारण नहीं किया । मित्र मण्डल को ही उसका सम्पूर्ण श्रेय प्राप्त है। वास्तव में मित्र मण्डल की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग पर एक महत्वपूर्ण प्रयास था तथा यूरोप में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने में उसने सराहनीय सफलता प्राप्त की थी। इस प्रकार यूरोपीय व्यवस्था को राष्ट्रसंघ तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ का अग्रगामी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पूर्वी समस्या की व्याख्या विभिन्न यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने भिन्न प्रकार से की है। यह समस्या भिन्न–भिन्न रूप धारण करती रही है कभी बलकान प्रदेश को जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये और कभी यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थी के कारण इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। तुर्क साम्राज्य के पतन के बाद किसको तुर्क राज्य पर शासन करने को मान्य किया जाए । यह समस्या यूरोपीय राष्ट्रों के बीच बनी रहीं। रूसी राजनीतिज्ञ इसे गठिया रोग के समान मानते हैं जो कभी पैरों को जकड़ लेता है, तो कभी हाथों को आसक्त कर देता है। हेजन के अनुसार पूर्वी समस्या तुर्की के भाग्य की समस्या थी, प्रिंस विस्मार्क इस समस्या को तुच्छ एवं सारहीन मानता था । वह कहा करता था, सम्पूर्ण पूर्वी समस्या ओमेरनियां की एक हथगोलाधारी सैनिक के हड्डियों के मूल्य के बराबर भी नहीं है। लार्ड मार्ले के अनुसार यह समस्या विभिन्न जाति एवं धर्म की न समझ में आने वाली समस्या थी।

अलेक्जेण्डर, द्वितीय को भी अपने राज्य सुधार करने पड़े। एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है, उसके काल में विश्व में लड़े जाने वाले भीषण युद्ध में क्रीमिया युद्ध सबसे अधिक निरर्थक था।

इस साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का वर्णन करते–करते कही–कहीं हमने 1914 तक की घटनाओं की चर्चा की है। परन्तु मोटे तौर से यह औपनिवेशिक लूट उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक समाप्त हो चुकी थी और प्रायः समस्त अफ्रीका एवं एशिया का बहुत बड़ा भाग तथा प्रशान्त महासागर के समस्त द्वीप यूरोपीय सत्ताओं तथा संयुक्त राज्य ने आपस में बाँट लिये थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो प्रदेश अब भी छीन लेने योग्य रह गये थे, वे थोड़े से ही थे – उत्तर पश्चिमी अफ्रीका में मोरक्की, एशिया में चीन तथा फारस ओर टर्की का सम्राज्य। अभी तक जितना बँटवारा हुआ था वह बिना युद्ध के ही हो गया था। जैसा हम देख चुके हैं, जापान ने उत्थान के कारण चीन यूरोपीय लोगों के आक्रमणों से बच गया । और फारस के सम्बन्ध में भी इंग्लैण्ड तथा रूस में

समझौता हो गया। मोरक्को के विषय में फ्रांस तथा जर्मनी में बड़ी तनातनी हुई, परन्तु अन्त में 1911 में दोनों में समझौता हो गया । किन्तु टर्की के साम्राज्य के विषय

में कोई समझौता हो, उसे पहले ही विभिन्न सत्ताओं का धैर्य छूट गया। वे परस्पर लड़ने लगी और प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। अगले खण्ड में हम उन घटनाओं का वर्णन करेंगे जिनका परिणाम इस विश्व युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार युद्धोत्तर काल में इंग्लैण्ड की परराष्ट्र – नीति बढ़ी परन्तु स्वयं उसके तथा यूरोप के लिए घातक रही। यूरोप में प्राधान्य के भय से और ब्रिटिश शासक वर्ग के हितों को बॉल्शेविज्म की ओर से खतरा देखकर, इंग्लैण्ड न जर्मनी को उस सीमा तक बढ़ जाने दिया जहाँ वह स्वयं इंग्लैण्ड और फ्रांस की सुरक्षा के लिए खतरनाक हो गया। अपनी निर्बल नीति के कारण ही उसने इटली को भूमध्य सागर में और जापान को पूर्व में अत्यधिक शक्तिशाली हो जाने दिया और अपने साम्राज्य की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया। यदि जर्मनी के साथ किये हुए अन्याय का प्रतिकार करके इंग्लैण्ड और फ्रांस राष्ट्र संघ के द्वारा सामूहिक रक्षा के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते तो विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध न देखना पड़ता ।

अन्त में 1936 में ब्रिटिश सरकार ने इस झगड़े पर विचार करते हुए और उसका अन्त करने के लिए सुझाव देने के निमित एक कमीशन नियुक्त किया जिसने पेलेस्टाइन के विभाजन का प्रस्ताव दिया। उसने सिफारिश की कि पेलेस्टाइन का उत्तरी भाग यहूदी राज्य बना दिया जाये, दक्षिणी भाग अरबों का राज्य रहे और बीच का भाग जिसमें जेरूसलम, बेथलेहम आदि ईसाई तीर्थ स्थान हैं, ब्रिटिश प्रबन्ध में ही रहे । योजना का दोनों ओर से विरोध हुआ, अतः वह निरस्त कर दी गयी और एक नयी योजना संसद के समक्ष प्रस्तुत की गयी परन्तु इसी बीच द्वितीय विश्व–युद्ध छिड़ गया और यह मामला टल गया।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. पवित्र संघ का महत्व (प्उचवतजंदबम व िभ्वसल ।ससपंदबम) – अनेक कारणों से पवित्र संघ की बड़ी–बड़ी आलोचना की गई है, परन्तु फिर भी इसका अपना महत्व है। उसने वर्षों के रक्तपात तथा छल–प्रपंच के उपरांत अहिंसा और बन्धुत्व की भावना की स्थापना करने महत्वपूर्ण कार्य किया । पवित्र संघ (भ्वसल ।ससपंदबम) में ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि प्रत्येक शासक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझे तथा जिस प्रकार एक पिता अपने परिवार पर शासन करता है उसी प्रकार शासक को भी अपनी प्रजा पर शासन करना चाहिए।

2.

'' पवित्र मित्र संघ राजनैतिक एवं सामाजिक कष्टों का निवारण करने में इस कारण असफल नहीं रहा कि उसके समर्थकों में ईमानदारी की भावना का अभाव था, न ही उसके उद्देश्यों में किसी प्रकार का पाप छिपा था । वरन् इसलिए कि

इसके नियम अस्पष्ट थे साथ ही इस पर हस्ताक्षर करने वाले शासकों का इसे सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं था । ''

3. लैवेख सम्मेलन को समाप्त हुए अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि चौथे सम्मेलन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और पंचमुखी मित्र मण्डल का यह चतुर्थ अधिवेशन 1820 ई० में इटली के प्रसिद्ध नगर बेरौना में हुआ ।

4. यूनान तथा टर्की की स्थिति ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था। इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से जनवरी 1825 ई० सेंट पीटर्स वर्ग में रूस के शासक जार ने कन्सर्ट के सदस्य देशों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस सम्मेलन में भी इंग्लैंड ने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा । आस्ट्रिया का प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित अवश्य था परंतु इस अधिवेशन में उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया और इस प्रकार इस सम्मेलन में काई विशेष निर्णय नहीं हो पाया। इस प्रकार के व्यवहार से रूस क्रुद्ध हो गया और उसने घोषणा कर दी कि भविष्य में यूनान तथा टर्की के विषय में वह मित्र राष्ट्रों से विचार–विमर्श किये बिना ही इच्छानुसार कार्य करेगा। इस प्रकार सेंट पीटर्सवर्ग का अधिवेशन समाप्त हो गया और इसके साथ ही यूरोप की संयुक्त व्यवस्था समाप्त हो गई, क्योंकि भविष्य में इसका कोई अधिवेशन नहीं किया गया।

5. क्रांति के परिणाम (त्मेनसजे व्‌जीम त्मअवसनजपवद)

प) सन् 1830 ई० की क्रांति का सबसे प्रमुख परिणाम यह रहा कि फ्रांस के शासन की बागडोर बोर्बो वंश की प्रथम शाखा के हाथ से निकलकर छोटी शाखा के राजकुमार लुई फिलिप के

पश्चिमी विश्व

छव्स्

ैमस‌–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

225

पश्चिमी विश्व

छव्स्

ैमस‌–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

226

हाथ में आ गई। राजकुमार लुई फिलिप अपने युवाकाल में फ्रांस की क्रांतिकारी सेना के साथ युद्ध–भूमि में जा चुका था। अतः क्रांतिकारियों ने उसे शासन – सूत्र प्रदान किये जाने पर किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। इस प्रकार क्रांति का विस्फोट तो हुआ, किंतु उसे फ्रांस से राजतंत्र की समाप्ति करने में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इतना अवश्य हुआ कि वैध राजसत्ता की स्थापना हो गई।

पप) फ्रांस के संविधान में कोई विशेष प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। नवीन संवैधानिक व्यवस्था में लुई 18वें के संविधान आज्ञा – पत्र की 10वीं धारा को रद्द कर दिया गया। इस धारा के अनुसार फ्रांस का शासक दमनकारी कानून लागू कर सकता था ।

पपप) प्रेस पर लगे नियंत्रण को हटा दिया गया।
पअ) कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार नहीं किया गया। सभी फ्रांसीसियों को धार्मिक स्वतंत्रता
प्रदान की गई।
अ) सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उदारवादियों और गणतंत्रवादियों के निर्वाचन के अधिकार को विस्तृत करने की माँग पूरी नहीं की गई। फ्रांस की उस काल की 2 करोड़ 80 लाख की जनसंख्या में से केवल एक सीमित संख्या में ही मतदाताओं की सूची में उनके नाम सम्मिलित थे। इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया और मतदाताओं की संख्या यथापूर्ण बनी रही । इस प्रकार पेरिस के गली–कूचों और सड़कों पर रक्त की नदियाँ बहाकर गणतंत्रवादियों ने जिस सरकार का निर्वाचन किया उसी सरकार को सहयोग देने के लिए अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने के अधिकार से जनता पहले की भाँति ही वंचित रही ।
अप) इस क्रांति का अन्य सुखद परिणाम यह रहा कि कट्टर राजसत्तावादियों और उच्च पादरियों ने जिन राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति कर ली थी उन्हें स्थगित कर दिया गया। उनके द्वारा सम्पन्न श्वेत आतंक (ॅपजम ज्मततवत) जैसे अत्याचारपूर्ण कार्यक्रमों की पुनरावृत्ति की भी सम्भावना सदा के लिए जाती रही।
अपप) लुई फिलिप ने जनता के अधिकारों का आदर करने का आश्वासन दिया। यह कार्य भी कुछ
महत्वूपर्ण नहीं था । इस प्रकार सन् 1789 ई० की क्रांति के जो कार्य शेष रह गए थे उन्हें सन् 1830 ई० की राज्यक्रांति ने पूर्ण कर दिया। अब भविष्य के लिए क्रांति के मूल सिद्धान्तों एवं तत्वों अर्थात् समानता, वैधानिक स्वतंत्रता और धर्म निरपेक्षता को सृदृढ़ आधार की प्राप्ति हो गई।
–

6. जर्मनी का प्रभाव– जर्मनी में प्रशा जैसे विशाल और शक्तिशाली राज्य के अतिरिक्त हनोवर, हेस सेक्सनी आदि छोटे–छोटे राज्य भी थे। उन राज्यों में एकता का पूर्ण अभाव था। सन् 1830 ई० को फ्रांसीसी राज्य क्रांति के समाचारों ने जर्मनी राष्ट्रवादी उदार नेताओं में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार किया। उन्होंने विभिन्न राज्यों में निरंकुश शासन को निर्मूल करने के अभिप्राय से विद्रोह खड़े कर दिये थे। छात्रों अध्यापकों ने विशाल जूलूस निकाले और सभाओं में उत्तेजनापूर्ण भाषण किये। मेटरनिख इस प्रकार की उदार प्रवृत्तियों का कट्टर शत्रु था । अतः उसने जर्मन संघ की अत्यावश्यक सभा आयोजित करके उससे अनेक दमनकारी कानूनों की घोषणा कराई गई। अतः जर्मनी में लेख लिखने, भाषण देने और समाचार पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। छात्रों के जलूस पर फ्रैंकफुर्ट में गोली चलाई गई तथा देश के समस्त छात्र संघों को भंग कर दिया । विश्वविद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों पर अंकुश रखने के लिए कठोर प्रवृत्ति के निरीक्षकों (ब्नतंजवते) की नियुक्ति की

गई। जर्मन देशभक्तों की भारी संख्या देश से निर्वासित कर दी गई। उन सभी राज्यों में जहाँ उदार शासन की स्थापना की गई थी वहाँ सैनिक शक्ति का प्रयोग कर पुनः शासकों के निरंकुश शासन की स्थापना की गई। इस प्रकार मेटरनिख को जर्मनी में फ्रांस के क्रांति की प्रभावों को विनष्ट करने में सफलता प्राप्त हुई।

परंतु इतना होते हुए भी जर्मनी से राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को निर्मूल नहीं किया जा सका। वे उस समय तो दब सी गई थीं, परंतु भविष्य में किसी समय भी देश में विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित कर सकती थी । आगे चलकर यह बात सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। सन् 1848 ई० में फ्रांस में फिर एक क्रांति हुई जिसके
प्रभाव से जर्मनी के राष्ट्रवादियों में एकता और संगठन का अद्‌भुत रूप से प्रसार हुआ और उन्होंने देश को संगठित राष्ट्र का रूप देने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की ।

7. भूमिका – लुई नेपोलियन अर्थात् नेपोलियन तृतीय का परिचय–

लुई नेपालियन का जन्म 1808 ई० में ईलरी के राज प्रसाद में हुआ था। वह हालैंड के राजा लुई बोनापार्ट का पुत्र था तथा फ्रांस के सम्राट नेपोलियन का भतीजा था। 1815 में वाटरलू में नेपोलियन की हार के बाद नेपालियन परिवार का पतन आरम्भ हो गया था नेपोलियन के कार्यों से बोनापार्ट परिवार का स्थान बहुत ऊँचा हो गया था। जनता की नेपालियन के प्रति विशेष श्रद्धा थी । अतः बोनापार्ट की इस प्रसिद्धि का लाभ लुई नेपोलियन को मिलना निश्चित था । 1832 में नेपोलियन के पुत्र की मृत्यु के बाद लुई नेपोलियन ही परिवार का एक मात्र सदस्य शेष था। 1840 में लुई फिलिप ने लुई नेपोलियन को कैद कर लिया किन्तु वह जनता के सहयोग से कारागार से भाग निकला तथा 1848 ई० के राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय उसे जनता का विशेष सहयोग मिला तथा वह निर्वाचित घोषित कर दिया गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि जनता केवल बोनापार्ट नाम पर ही अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार थी।

लुई नोपोलियन द्वितीय फ्रेंच गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में– 1848 ई० में कारागार से भाग जाने के उपरान्त लुई नेपोलियन इंग्लैंड पहुँचा तथा इस घटना के उपरान्त फ्रांस में क्रांति के स्पष्ट चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे तथा 1848 ई० में क्रांति का विस्फोट हो गया। क्रांति के हो जाने पर लुई नेपालियन क्रांति में भाग लेने हेतु फ्रांस आ गया। पेरिस आने पर उसका जनता द्वारा भव्य स्वागत किया गया तथा क्रांति की सफलता के उपरान्त उसे राष्ट्रीय असेम्बली के लिए चार स्थानों से निर्वाचित घोषित कर दिया गया। किन्तु उसने असेम्बली का सदस्य बनने से इनकार कर दिया। 26 सितम्बर 1848 ई० को उसे पाँच स्थानों से असेम्बली का सदस्य मनोनीत किया गया। इस समय तक फ्रांस की जनता में लुई नेपोलियन के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास पैदा हो चुका था। अतः परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए राष्ट्रीय सम्मेलन का सदस्य बनने के केवल तीन माह उपरान्त की फ्रांस के द्वितीय गणराज्य के राष्ट्रपति पद हेतु निर्वाचन

में भाग लिया तथा बहुत बड़े बहुमत से निर्वाचन में सफलता प्राप्त की। राष्ट्रपति पद के शपथ समारोह में उसने कहा था– मैं प्रजातन्त्र राज्य की प्रति बफादार रहूँगा । मेरा कर्तव्य स्पष्ट है और मैं इसे बचन पालक व्यक्ति की तरह मानूँगा तथा निभाऊँगा ।

8. जापान का अभ्युदय : उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान ने यूरोपीय लोगों को पास नहीं फटकने दिया था, परंतु 1853–54 में अमेरिकन नाविक मूथ्यू पेरी ने जापान से सौंध करके अमेरिका के जहाजों के लिए जापानी बन्दरगाहों का उपयोग करने को अधिकार प्राप्त करके उसे गोरी जातियों के लिए खोल दिया । शीघ्र ही यूरोपियन राष्ट्रों ने जापान से इसी प्रकार की रियायतें प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया और जापान पर पाश्चात्य प्रभाव बड़ी शीघ्रता से बढ़ने लगा। अगले वर्षों में जापान में महान् परिवर्तन हुए । सम्राट (मिकाडो) ने, जो दीर्घ काल से नाममात्र का शासक था, सत्ता अपने हाथ में ले ली, सामन्तवाद का अन्त कर दिया गया, पश्चिमी उद्योगवाद, शिक्षा तथा सैनिकवाद का प्रचार हुआ और जापानियों में अपने इतिहास तथा अपनी जाति का जो अभिमान था उसने पाश्चात्य राष्ट्रीयतावाद तथा साम्राज्यवाद के समान ही उग्र रूप धारण कर लिया। उसने यूरोपियन राष्ट्रों के समान साम्राज्य – निर्माण के लिए कमर कसी जिसके लिए उसे क्षीण प्रायः चीन में बड़ा उपयुक्त क्षेत्र दिखायी देता था ।

''

राष्ट्र

9. बॉक्सर – विद्रोह : इस प्रकार निर्बल चीन यूरोपीय राष्ट्रों के स्वार्थ का शिकार बन रहा था । अनेक बन्दरगाह प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ और सब ने मिलकर उसके अधिकतम व्यापारिक शोषण के लिए उसे अनेक क्षेत्रों में विभक्त करने का निश्चय किया ताकि प्रत्येक अपने–अपने क्षेत्रों में अपनी मनमानी करते रहे परंतु इसी समय दो घटनाएँ ऐसी हुई जिन्होंने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया विदेशियों के अत्याचारों से क्रूद्ध होकर चीन के देशभक्तों (ठव•मते) ने उन्हें बाहर निकालने के लिए विदेशियों पर आक्रमण कर दिया (1900)। इस पर इंग्लैण्ड फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, रूस, इटली तथा जापन की सम्मिलित सेना ने चीन पर आक्रमण करके पेकिंग पर अधिकार कर लिया। चीन को दबना पड़ा और युद्ध के हर्जाने के रूप में एक भारी रकम देनी

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

227

पश्चिमी विश्व

छव्जै

पड़ी। सब राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय सेना के निर्माण के समय चीन से कोई प्रदेश न छीनने का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने उससे कोई भूमि न ली और युद्ध

समाप्त होने पर उसकी अखण्डता की गारण्टी दी।

10. रूस, जापान युद्ध के कारण–

1. उपर्युक्त घटना के फलस्वरूप उत्पन्न वैमनस्य के कारण दोनों में युद्ध अनिवार्य हो गया। इस
वैमनस्य के अलावा युद्ध के अनेक अन्य कारण भी थे।

2. रूस के पास ऐसा कोई समुद्र तट नहीं था जो वर्ष भर खुला रहता हो । उसके उत्तरी व पश्चिमी
समुद्र–तट पर सर्दियों में बर्फ जम जाती थी। अतः वह किसी ऐसे समुद्र तट की तलाश में था जो बारहों महीने खुला रहे । पूर्व में प्रशान्त महासागर के तट पर अधिकार करके वह अपनी इस इच्छा की पूर्ति करना चाहता था परन्तु जापान इसमें बहुत बड़ा बाधक था।

3. मंचूरिया अन्न और लकड़ी का भण्डार था। वहाँ अनेक प्रकार की खानें थी। रूस और जापान दोनों ही मंचूरिया को प्राप्त करने के लिए लालायित थे। साथ ही रूस की ट्रान्स–साइबेरियन रेलवे लाइन मंचूरिया से होकर जाती थी जिसकी सुरक्षा के लिए रूसी सैनिक व पदाधिकारी वहाँ रहते थे, जिससे जापान की सदैव खतरा बना रहता था और दोनों के मध्य तनावपूर्ण स्थिति बनी रहती थी।

4. कोरिया पर भी रूस–जापान दोनों अपना–अपना प्रभाव जमाने के इच्छुक थे। इन परस्पर विरोधी महत्वाकांक्षाओं के कारण दोनों देशों के बीच मनमुटाव बढ़ रहा था और उनमें कभी भी युद्ध छिड़ सकता था ।

5. अभी तक विश्व में जापान की गणना एक साधारण से छोटे राज्य के रूप में थी परन्तु 1902 में इंग्लैण्ड ने उसके साथ संधि कर उसे एक महान् सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया था जिससे उसका हौसला काफी बढ़ गया और वह रूस की चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया।

अभ्यास–प्रश्न

1.
पवित्र संघ (भ्वससल ंससपंदबम) से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों एवं सफलताओं का वर्णन कीजिये।

2. यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के कार्यों का विश्लेषण कीजिये ।

3.
संयुक्त व्यवस्था की असफलता के कारणों का वर्णन करें।

4.
1830 की फ्रांसीसी क्रांति का वर्ण करें। इसके कारणों की समीक्षा करें।

5.
1830 की फ्रांसीसी क्रांति का अन्य देशों पर प्रभाव का वर्णन करें।

6.
1848 की क्रांति का वर्णन कीजिये। यूरोपीय इतिहास में इसके महत्व का परीक्षण कीजिए ।

7.

1848 की क्रांतियों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

8. नेपोलियन तृतीय की गृह एवं विदेश नीति का वर्णन कीजिए।

9.

एक राजनेता के रूप में नेपोलियन तृतीय का मूल्यांकन करें।

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

228

10. पूर्वी समस्या की प्रकृति एवं यूरोपीय शक्तियों के हस्तक्षेप का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

11. क्रीमिया की लड़ाई के कारणों एवं परिणामों की विवेचना कीजिए ।

12. साम्राज्यवाद की नवजागृति के कारणों पर प्रकाश डालें द्य 1

13. अफ्रीका में यूरोपीय साम्राज्यवाद पर टिप्पणी लिखें।

14. एशिया से यूरोपीय साम्राज्यवाद के प्रसार की समीक्षा करें।

15. युद्धोत्तर समस्याओं का वर्णन करें।

16. इंग्लैण्ड की परराष्ट्र नीति की समीक्षा करें।

17. राष्ट्र संघ के प्रति इंग्लैण्ड की उदासीनता के कारणों पर प्रकाश डालें।

18. ब्रिटिश साम्राज्य की संक्षिप्त समीक्षा करें।

अध्याय – 9

अमेरिकी गृह–युद्ध

इस अध्याय के अन्तर्गत :

अमेरिकी गृह–युद्ध के कारण

संवैधानिक सिद्धान्त

आर्थिक सिद्धान्त

राष्ट्रवाद, संघ स्तर पर इसके प्रभाव

संघीय सम्पत्ति पर अधिकार

गृह युद्ध का आरम्भ, लिंकन की भूमिका एवं अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाएँ

दक्षिणी भाग पर उत्तरी भाग की जीत के प्रमुख कारण

अध्याय के उद्देश्य :

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे

अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे अमेरिकी संवैधानिक और आर्थिक सिद्धान्त समझ सकेंग राष्ट्रवाद, के कारण का विश्लेषण कर सकेंगे संघ स्तर पर इसके प्रभाव तथा संघीय संपत्ति पर अधिकार समझ सकेंगे गृह–युद्ध का आरम्भ, लिंकन की भूमिका एवं अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाएँ जान सकेंगे

अमेरिका के दक्षिणी भागों पर उत्तरीभागों की जीत के प्रमख कारण समझ सकेंगे

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ैे
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
229
पश्चिमी विश्व
छव्ज्ैे

परिचय

अमेरिका के गृह–युद्ध के कारणों की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। पर इस व्याख्या के करते समय यह विस्मृत कर दिया गया है कि युद्ध कभी किसी एक कारण से नहीं होता, बल्कि अनेक कारणों के मिले–जुले प्रभाव के परिणामस्वरूप होता है। कुछ कारण तो कई साल पहले उत्पन्न हो जाते हैं और धीरे–धीरे प्रभाव डालते रहते हैं। 1861–65 के गृह–युद्ध पर यह बात पूर्णतया लागू होती है। इस गृह–युद्ध के कारणों की व्याख्या निम्न प्रकार की गयी है–

1. गृह–युद्ध का कारण शैतान लोग थे ैवउम डपेबीपमअवनतमे च्मतेवदे ूमतम ब्नेम वि्बपअपस ॅत) – युद्ध का कारण शैतान लोग थे यह विचार 1861 से 1900 तक मान्य रहा। इस सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि उत्तर दक्षिण के कुछ शैतान लोग ही इस युद्ध के कारण थे ।

(प) दक्षिण के लेखकों का विचार (टपमू वि जीम ॅतपजमते वि जीम ैवनदजी) – दक्षिण के लेखकों ने उत्तर के लोगों के विरुद्ध यह आरोप लगाया कि वे दक्षिण को और उसके रीति–रिवाजों को नष्ट करना चाहते थे। उनके अनुसार गृह–युद्ध के मुख्य कारण निम्न प्रकार थे–

() एण्टी स्लेवरी सोसाइटियाँ।

(इ) कांग्रेस में एण्टी स्लेवरी सदस्य ।

(ब) दास प्रथा समाप्त करने की माँग करने वाली याचिकाओं में निरन्तर वृद्धि ।

(क) दक्षिण को टैक्सास तथा मैक्सिको में प्राप्त लाभों में वंचित करने का प्रयास
।

(म) विलमोट सुझावों का अनेक बार उठाया जाना,

(f) कन्सास में जॉन ब्राउन के कार्य,

(ह) कन्सास को लोकोम्पटन संविधान के अन्तर्गत यूनियन में सम्मिलित न किया जाना, (ी) उत्तर के लोगों द्वारा भगोड़े गुलामों से सम्बंधित कानूनों का पालन न किया जाना,

(प) कोलम्बिया डिस्ट्रिक्ट में गुलामों के व्यापार और गुलाम प्रथा पर प्रहार,

(प)

दक्षिण को नष्ट करने तथा उस पर शासन करने के लिये रिपब्लिकन पार्टी की एक क्षेत्रीय पार्टी बनाया जाना,

(ा) उत्तर द्वारा ड्रेड स्काट मुकदमे के निर्णय को अस्वीकार कर देना,

(ए) गुलाम प्रथा और दक्षिण के प्रति लिंकन का क्रांतिकारी दृष्टिकोण

उपरोक्त उदाहरण देकर लेखकों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि दक्षिण के लोगों को उत्तर द्वारा प्रस्तुत अनेक कारणों से बाध्य होकर यूनियन

से अलग होना पड़ा और अन्त में अपनी सुरक्षा के लिए युद्ध करना पड़ा।

(प्ि) उत्तर के लेखकों का विचार आक्रमण (टपमू व िजीम ॅतपजमते व िजीम छवतजी) उत्तर के लेखकों ने दक्षिण के लोगों पर यह आरोप लगाया कि वे यूनियन को तोड़ना चाहते थे। उत्तर के लोगों का कहना है कि दक्षिण के लोग देश को इस बात के लिये बाध्य करना चाहते थे कि देश गुलाम प्रथा को न केवल वैध माने बल्कि उसकी सुरक्षा भी करे और दक्षिण तथा अन्य किनारों के साथ – साथ उत्तर में भी इसे फैला दे । इन लेखकों ने भी गृह–युद्ध के कारण नहीं बताये हैं जो दक्षिण के राज्यों ने बताये हैं परन्तु उन्होंने उसके लिए उत्तरदायित्व दक्षिण के लोगों पर डाला हैं इन लेखकों ने निम्न कारण बताये है।

ैमसस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

(प) आक्रमण

गुलाम प्रथा के विरोधी लोगों पर लगातार आक्रमण ।

230

(पप) गैंग प्रस्ताव – गैंग प्रस्ताव जिसके बल पर कांग्रेस में याचिकाएँ नहीं भेजी जा सकती

(पपप)

थीं।

टकसाल को कब्जे में करके गुलाम प्रथा का क्षेत्र बढ़ाने का षड़यन्त्र ।

(पअ) षड्यन्त्र – दास – समर्थक सीनेटरों द्वारा कन्सास – नेब्रास्का एक्ट पास कराने का षड़यन्त्र । (अ) समझौता तोड़ना मिसौरी समझौते को रद्द किया जाना । (अप) निर्णय – ट्रेड स्काट मुकदमे का फैसला जिसे प्रायः गुलामों के मालिकों सुप्रीम कोर्ट

के जजों, प्रेसीडेण्ट के बीच साँठ–गाँठ माना जाता है।

(अपप) विभिन्न कानून – उत्तर पर जबरदस्ती भगोड़े तथा गुलामें से संबधित विभिन्न कानूनों

का लादा जाना।

(अपपप) गुलामों का आयात

–

अमेरिका में चोरी–छिपे गुलामों का लाया जाना और विदेशी

गुलाम व्यापार को कानूनी मान्यता दिलाने का प्रयास करना ।

(प•) शक्ति– प्रदर्शन – कांग्रेस में दक्षिण वालों द्वारा शक्ति का प्रयोग द्य

(•)

पार्टी का विखंडन – लिंकन को प्रेसीडेण्ट बनवाने के लिए 1860 में बार्ल्सटन डेमोक्रेटिक पार्टी को तोड़ने का प्रयास ताकि दक्षिण के यूनियनिस्टों को यूनियन से अलग होने के लिए बाध्य होना पड़े और इस शक्ति के बल पर उत्तर के हितों को क्षति पहुँचाना और अपने स्वार्थों को पूरा करना ।

(•प) गोलाबारी – फेडरिल सम्पत्ति पर आधिपत्य करना और सूस्टर पर

गोलाबारी करना । (•पप) संविधान की रक्षार्थ – उत्तर के लोगों ने तर्क दिया है कि उत्तर को यूनियन व संविधान की रक्षा के लिए उन पर हो रहे आक्रमण के विरुद्ध यह युद्ध लड़ना पड़ा।

निष्कर्ष – वर्तमान मान्यता यह है कि यह युद्ध किसी पक्ष के षडयंत्र के कारण नहीं हुआ था बल्कि इसलिये हुआ था कि दोनों पक्षों के हितों के बीच संघर्ष था, ये हित ऐसे थे कि उनके बीच कोई समझौता या तालमेल बैठा पाना संभव नहीं था ।

2. संवैधानिक सिद्धांत (ब्वदेजपजनजपवदंस जीमवतल) – कुछ विद्वानों के अनुसार राज्यों को प्रभुसत्ता के बारे में संविधान का अलग–अलग अर्थ लगाया जाना भी इस युद्ध का मुख्य कारण था । ये अर्थ निम्न प्रकार थे–

(प) केन्द्रीकृत सरकार– उत्तर के लोग एक ऐसी केन्द्रीकृत केन्द्रीय सरकार के पक्ष में थे, जिसके

पास व्यापक अधिकार हो।

(पप) राज्यों का प्रभुत्व – दक्षिण के लोग चाहते थे कि अधिकार राज्यों के साथ रहे, क्योंकि

संविधान के निर्माता ऐसा ही चाहते थे।

दक्षिण का पक्ष (जीमॅजंजमउमदज वि जीम`वनजी) दक्षिण के लोगों ने निम्न प्रकार कहा–

.

(प) केन्द्र सरकार के प्रयास– गृह–युद्ध का वास्तविक कारण गुलाम प्रथा नहीं थी बल्कि केन्द्र

सरकार द्वारा शक्ति को अपनी मुट्ठी में रखना था ।

(पप) यूनियन का तोड़ा जाना– उत्तर बालों पर आरोप लगाते हुए उन्होंने कहा कि संविधान बनाने वालों ने जो यूनियन बनायी थी, उसे तोड़ने का कार्य उत्तर वालों ने किया और उत्तर के लोगों ने संविधान में दी गई गारन्टियों को मानने से इन्कार कर दिया। इसी कारण दक्षिण को बाध्य होकर यूनियन को छोड़ना पड़ा।

(पपप) राज्य के पृथक होने का अधिकार– दक्षिण वालों ने यह तर्क दिया कि यूनियन प्रभुसत्ता राज्यों का एक कनफेडरेशन है और उसमें सम्मिलित प्रत्येक राज्य यूनियन से अलग हो जाने का अधिकार रखता है। इसके विपरीत उत्तर के लोगों का कहना था कि दक्षिण के लोगों को यूनियन से अलग होने का कोई अधिकार नहीं था, उनका प्रयास असंवैधानिक था ।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ॅमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

231

पश्चिमी विश्व

छव्जै

उत्तर पक्ष (जीम ैजंजमउमदज व जीम छवतजी) – उत्तर के लेखक मानते थे कि यद्यपि संविधान
में
गुलाम प्रथा को स्थान दिया गया है, लेकिन यह प्रथा अमेरिकी लोकतंत्र के सिद्धांतों के विरुद्ध थी, इसलिए इसकी समाप्ति करनी पड़ी। गुलाम प्रथा की बुराई के प्रति उत्तर के लोगों के मन में बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई थी।

3. आर्थिक सिद्धान्त (म्बवदवउपब जीमवतल) – प्रथम विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि गृह युद्ध का मुख्या कारण था – चार्ल्स मेरी बीयर्ड ने यह व्याख्या प्रारम्भ की। इस व्याख्या में उसने यह बताया कि उत्तर और दक्षिण में अलग–अलग मजदूर प्रथा प्रचलित थी। इस बात को दोनों एक दूसरे के लिए खतरा मानते थे। दक्षिण के राज्यों की अर्थ–व्यवस्था मुख्यतः गुलामों पर निर्भर थी। इसके विपरीत उत्तर के राज्यों की अर्थ–व्यवस्था ऐसे किसानों पर निर्भर थी जो मजदूरों पर श्रमिक रखकर अपना काम कराते थे। पश्चिम की ओर विस्तार के कारण इन व्यवस्थाओं के बीच टकराव उत्पन्न हो गया था। उत्तर–दक्षिण दोनों राज्यों के लोग यह चाहते थे कि मिसौरी के आगे के क्षेत्र में उनकी मजदूरी प्रथा की जड़े जम जाये। इसी प्रयास के कारण दोनों में मुख्य संघर्ष हो गया। इस संघर्ष का परिणाम गृह–युद्ध था ।

इन लेखकों के अनुसार अमेरिका में उद्योगों का विकास हो जाने के पश्चात् कृ षि प्रधान दक्षिणी राज्यों और उद्योग प्रधान उत्तरी राज्यों के मध्य विरोध और भी बढ़ गया। उत्तरी अमेरिका के नये उद्योगपतियों ने केन्द्रीय सरकार से संरक्षण तथा सहायता की। दक्षिण के बागवानों के स्वामियों तथा पश्चिम के किसानों ने उद्योगपतियों की इस माँग का विरोध किया लेकिन रेलों के बनने के बाद उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र के किसान उत्तर के उद्योगपतियों के साथ हो गए और दोनों ने मिलकर गुलाम प्रथा के नाम पर दक्षिण का विरोध प्रारम्भ कर दिया।

4. राष्ट्रवाद (छंजपवदसपेउ) – एक विचारधारा के अनुसार गृह–युद्ध का कारण राष्ट्रवाद की भावना थी । आर्थिक विकास तथा भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप उत्तरवासियों में राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ हो गयी थी, लेकिन दक्षिण में इस भावना की कमी थी । यद्यपि दक्षिण में भी यूनियनिस्ट जैसे ग्रुप अमेरिकी राष्ट्रवाद की भावना के स्थान पर दक्षिण के प्रति राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ थी वहाँ पर इन लोगों की संख्या पर्याप्त थी, जिन पर राष्ट्रवाद का कोई प्रभाव नहीं था, अतएव वे संघ से पृथक होना चाहते थे।

5. सामाजिक और राजनैतिक कारण ैवबपंस ंदक च्वसपजपबंस ब्ंनेमे) कुछ लोगों के अनुसार उत्तर और दक्षिण में आधारभूत सामाजिक और राजनैतिक अन्तर था। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है–

(प) दक्षिण (जीम ैवनजी) दक्षिण के लोगों का मत था कि गुलामी प्रथा पर आध

ाारित सामाजिक व्यवस्था में गुलामों तथा उनके मालिकों दोनों का सुख था । दक्षिण की अर्थ–व्यवस्था पर बागानों के गिने–चुने मालिकों का पूर्ण नियंत्रण था ओर बागानों के मालिक तत्कालीन समाज में कुलीन – वंशी लोग बन गये थे।

(पप) उत्तर (जीम छवतजी) उत्तर के लोगों का सामाजिक लोकतंत्र में विश्वास था । गुलाम प्रथा को

वे सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना में एक भारी बाधा मानते थे ।

संघ स्तर पर प्रभाव (म्मिबज वद जीम न्दपवद स्मअमस) – संघ स्तर की राजनीतिक व्यवस्था पर दक्षिण के लोगों का प्रभुत्व था। वे इस सत्ता का प्रयोग अपने हितों की वृद्धि करने के लिए करना चाहते थे। उत्तर के लोगों दक्षिण के लोग के इस प्रभुत्व को समाप्त करना चाहते थे। अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के लोगों ने गुलाम प्रथा का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार गुलाम प्रथा ने उत्तर के लिए कोई व्यावहारिक महत्व था और न दक्षिण के लिये। उनका मत है कि दोनों पक्षों के राजनीतिज्ञों ने निजी राजनीतिक लाभ उठाने के लिए ही इस मसले को इतना महत्वपूर्ण

बनाया था।

6. रोमांचवाद और भौतिकवाद के मध्य संघर्ष – (ब्वदसिपबज ठमजूममद त्वउंदजपबपेउ ंदक डंजमतपंसपउे) कुछ अन्य विद्वानों ने गृह–युद्ध दक्षिण के रोमांचवाद तथा उत्तर के भौतिकवाद के मध्य एक संघर्ष था। दोनों के मध्य दृ ष्टिकोण में अन्तर होने के कारण उनके बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया जिसका परिणाम संघर्ष में निकला।

7. अन्य कारण (व्जीमत त्मेंवदे) – कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार उत्तर और दक्षिण के मध्य जलवायु की भिन्नता तथा भौतिक कारणों से गृह–युद्ध हुआ । विलियम टेलर का कहना है कि यह युद्ध – अमरीका के बदले में कठोर दण्ड के रूप में ईश्वर का अभिशाप था ।

अमेरिका के इतिहास में 1840 से कुछ पूर्व नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ । आर्थिक परिवर्तन ने जो 19वीं शताब्दी के पहले दस–बीस वर्षों में प्रारम्भ हुआ और लगभग गृह–युद्ध तक चला, वहाँ की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों को काफी मात्रा में प्रभावित किया । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह परिवर्तन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि यूरोप में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् का परिवर्तन है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अमेरिका के जन–जीवन में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखी गयीं–

1. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि

पश्चिमी विश्व

छव्जम्

2

जनसंख्या का पश्चिमी प्रदेशों की ओर प्रवास तथा

3. ग्रामीण क्षेत्रों सें घनी जनसंख्या का नगरों और कस्बों की ओर जाना ।

1790 में अमेरिका की जनसंख्या लगभग 40 लाख थी। 1820 तक एक करोड़ 1830 तक 1.3 करोड़ 1846 में 1.7 करोड़ तथा 1850 और 1860 में यह क्रमशः 2.3 करोड़ और 3.1 करोड़ तक पहुँच गई थी। इस काल में नीग्रो दासों की जनसंख्या में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई ।

1808 के पश्चात् नीग्रो दासों का अमरीका में लाया जाना विधि द्वारा वर्जित कर दिया गया था। अमरीका निग्रो की जनसंख्या की वृद्धि अनुपात से, तुलनात्मक दृष्टि से, श्वेत अमेरिका जनसंख्या की वृद्धि दर से बहुत काम थी।

अमेरिका की जनसंख्या वृद्धि का श्रेय केवल वहाँ की स्थानीय जनता को ही नहीं है वरन् यूरोप के प्रवासियों का भी इस जनसंख्या में वृद्धि का श्रेय है। 1840 और 1850 में यूरोप के 15 लाख प्रवासी अमेरिका में आये। इस अवधि में यूरोप से प्रतिवर्ष तीन लाख व्यक्ति अमेरिका में आ रहे थे। ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैंड, स्कैन्डीनेविया, नीदरलैण्ड, बैल्जियम, फ्रांस और स्विटजरलैण्ड से आने वाले लोगों की संख्या सबसे अधिक थी। तीसरे नम्बर में रूस, बाल्टिक राज्यों और टर्की के लोग आते है। सबसे कम संख्या इटली, स्पेन, पुर्तगाल और ग्रीस से आने वाले लोगों की थी।

इस प्रकार आने वाले लोग अधिकतर पश्चिम की ओर बढ़े। इस पश्चिमी प्रवाह को फ्रेडिल जैकसन टरनर जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार ने अमेरिका के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

टरनर के अनुसार, इस प्रकार की प्रगति ने अमेरिका की सभ्यता तथा राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला हैं यह पश्चिमी प्रवाह अमेरिका के इतिहास में वहाँ के साहित्य में और पूर्ण जन–जीवन में एक अद्भुत स्थान रखता हैं इस पश्चिमी प्रवाह के मुख्य राज्य ये थे – उत्तरी डैकोटा, दक्षिणी डैकोटा, नेब्रास्कार, कैन्सास, ओकलाहोमा तथा टैक्सास। इन्हीं राज्य में मोन्टाना, आयोबा, वायोमिग, कोलोरोड़ो, ऊटाह नैवदा, न्यू मैक्सिकों और ऐरीबोना, जो कि पहाड़ी राज्यों के नाम से जाने जाते हैं तथा प्रशान्त महासागर के राज्यों में वाशिंगटन, औरेंगन तथा केलीफोर्निया भी सम्मिलित थे।

इस विकासोन्मुख सभ्यता में आर्थिक उपकरणों का बहुत अधिक हाथ था। जैसे–जैसे औद्योगिक प्रगति हुई, लोग ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर आने लगे । यातायात एवं परिवहन के साधनों में उन्नति हुई। जल–परिवहन मिसिसीपी और ओहायों जैसी नदियों में तेजी से बढ़ने लगा। भाप नौकाओं (स्ट्रीम बोटों) के विकास से जल – परिवहन तीव्र और सुविधाजनक हो गया। राष्ट्रीय राजपथ (हाइवेज) और टर्पपाइक

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

233

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ैे

जैसे फिलाडेल्कि – पिटसवर्ग और राष्ट्रीय मार्ग (नेशनल रोड) ने परिवहन के

साधनों में काफी सहायता दी।

1830 में और इसके पश्चात् रेलगाड़ियों में तथा रेलगाड़ी सम्बन्धी तकनीकी में उन्नति हुई। इसी कारण रेल और सड़क यातायात के बहुत महत्वपूर्ण साधन बन गये। इन सभी कारणों से माल और व्यक्तियों की गतिशीलता में तीव्रता से वृद्धि हुई । नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी और साथ–ही–साथ कस्बों की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई।

1840 से 1860 तक उत्तर–पूर्व के नगरों का काफी तेजी से उत्थान हुआ। ये नगर कुछ ही वर्षों में जनसंख्या के दृष्टिकोण से दुगने और तिगुने बड़े हो गये थे ।

1860 के निर्वाचन – अभियान काल में दक्षिण के अनेक नेताओं ने यह धमकी दी कि यदि राष्ट्रगान के निर्वाचन में गणतंत्रवादियों की विजय होगी तब दक्षिण संघ से अलग हो जाएगा। इस अलगाववादी प्रवृत्ति का आधार राजनीतिक था। दक्षिण अपनी अल्पसंख्यक स्थिति की रक्षा चाहता था ।

दक्षिण द्वारा प्रस्तुत तर्क– (।हतनउमदज च्नजवितजी इल जीम`वनजी) दक्षिण द्वारा प्रस्तुत तर्क निम्न प्रकार थे–

`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

234

(प)

संघ सम्प्रभु राज्यों का एक समुदाय था ।

(पप)

वे जब कभी चाहें इससे अलग हो सकते हैं। गवर्नर और विधानसभा निर्वाचन कराकर राज्य सम्मेलन बुला सकते हैं।

(पपप) दक्षिण पृथकतावादी अध्यादेश पारित करवाकर संघ से अलग हो सकता है।

अमेरिका का परिसंघ राज्य (ब्वदमिकमतंजम`जंजमे व ि।उमतपबं) दक्षिण कैरोलीना संघ से पृथक होने का विचार कर रहा था। 20 दिसम्बर 1860 को उसने संघ से स्वयं को पृथक कर लिया। लिंकन के राष्ट्रपति बनने के छः महीने के भीतर ही दक्षिण के छः राज्य संघ से पृथक हो गये। फरवरी 1861 में छः पृथक राज्यों के प्रतिनिधियों ने मोटगोमरी (डवदजहवउमतल) में एक नये दक्षिणी राष्ट्र का निर्माण किया जिसे अमेरिका का परिसंघ राज्य (ब्वदमिकमतंजम`जंजमे व ि।उमतपबं) कहते है ।

संघीय सम्पत्ति पर अधिकार– (।द्दम•जपवद वि न्दिपवद च्तवचमतजल). पृथक् राज्यों ने अपनी सीमा के अन्तर्गत स्थित संघीय सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित कर लिया। पर दूर तटवर्ती किलों पर वे अधिकार नहीं कर सके। इनमें दक्षिण कैरोलीना के चार्ल्सटन बन्दरगाह का फोर्ट सुम्टर और फ्लोरिडा के पेसकोला बन्दरगाह में फोर्ट पिकेस प्रमुख दुर्ग थे। दक्षिण कैरोलीना ने मुम्टर दुर्ग के आत्मसमर्पण के लिये वाशिंगटन में प्रतिनिधि भेजे। इस समय सुम्टर मेजर राबर्ट ऐंड्रसन के अधीन एक सेना थी । राष्ट्रपति बुचानन ने उसे दुर्ग समर्पित करना

अस्वीकार कर दिया। जनवरी 1861 में उसके आदेश पर एक शस्त्रविहीन मालवाहक जहाज स्टार ऑफ दी वेस्ट (ैजंत व ि जीम ॅमेज) कुछ सामान और सेना लेकर सुम्टर दुर्ग की ओर चल पड़ा पर इसके बन्दरगाह पहुँचने से पूर्व ही इस पर गोलाबारी शुरू कर दी गई, जिसके कारण यह लौट
गया।

समझौते के प्रयास (म्मितजे वित त्मबवदबपसपंजपवद) – इस मध्य बुचानन ने कांग्रेस से यह सिफारिश की कि वह दक्षिणी राज्यों से समझौता करने और संघ को अक्षुण्ण रखने के लिये कदम उठाये। सीनेट और प्रतिनिधि सदन ने समझौता करने के लिये समितियाँ नियुक्त की। सीनेट समिति ने केटकी के सीनेटर जाॅन जे० क्रीटनडेन के प्रस्ताव पर विचार किया। इसे क्रीटेनडेन समझौता कहते हैं। इसमें अनेक संवैधानिक संशोधनों के सम्बन्ध में बतलाया गया । था कुछ प्रमुख विषय निम्न प्रकार थे–

(प) राज्यों में दासत्व – राज्यों में दासत्व बनाये रखने के सम्बन्ध में प्रावधान।

(पप) भगोड़े दास – भगोड़े दासों के बारे में दक्षिण को संतुष्ट करने के प्रावधान।

(पपप) कोलम्बिया में दास कोलम्बिया जिले में दासत्व के बारे में प्रावधान।

ूपदह

व्यवस्था (।ततंदहमउमदजे) दासत्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था का प्रस्ताव रखा गया–

–

(प) क्रीटेनडेन मिसौरी समझौता रेखा की 361ध्2 अक्षांश पर पुनः स्थापित करना चाहता था जिसके उत्तर में दासत्व पर प्रतिबन्ध लगाना और जिसके दक्षिण में दासत्व बने रहने के बारे में कहा
गया।

(पप) समिति के दक्षिणी सदस्य क्षेत्रीय विभाजन मान लेना चाहते थे ।

गणतंत्रवादियों ने इस व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। राष्ट्रपति लिंकन का यह मत था कि मिसौरी समझौते के पुनर्सस्थापन से लैटिन अमेरिका में दक्षिणी साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन मिलेगा ।

शान्ति सम्मेलन (च्मंबम ब्वदमितमदबम) – बर्जीनिया के विधानमण्डल ने वाशिंगटन में एक शान्ति सम्मेलन आयोजित किया। इससे अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया था। फरवरी 1861 में 12 राज्यों के प्रतिनिधियों ने समझौते के प्रस्ताव पर विचार–विमर्श किया। इसमें मुख्यतः क्रीटेनडेन परियोजना पर ध्यान दिया गया। सम्मेलन की योजना को सीनेट में कोई समर्थन नहीं मिला।

अतः यह प्रयास असफल रहा।

लिंकन के प्रयास (म्वितजे उंकम इल स्पदबवसद) – 4 मार्च 1861 को राष्ट्रपति लिंकन राष्ट्रपति बने । इस समय तक उत्तर दक्षिण के बीच कोई समझौता नहीं हो पाया था। अपने उद्घाटन भाषण में लिंकन ने कहा संविधान की अपेक्षा संघ अधिक पुराना है, कोई भी राज्य स्वेच्छा से संघ से अलग नहीं

हो सकता, पृथकतावादी अध्यादेश अवैध है। पृथकतावाद के लिए हिंसात्मक कार्य विद्रोहात्मक और क्रांतिकारी है इस प्रकार राष्ट्रपति ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सभी राज्यों में कानून लागू करने तथा पृथक हुए राज्यों में संघीय सम्पत्ति पर पुनराधिकार करने के लिये कृत–संकल्प है। इसमें सुम्टर और पिकेस के दुर्ग भी सम्मिलित थे।

सुम्टर दुर्ग ँ(नउचजमत थ्वतज) – लिंकन को सुम्टर दुर्ग पर अधिकार करने का अवसर मिला । वहाँ मेजर एन्डर्सन को रसद का अभाव होने लगा था। स्थिति इतनी भयावह हो गयी थी कि यदि समय पर रसद नहीं पहुँच पाती तो दुर्ग को खाली करना पड़ता । लिंकन इस अवसर का लाभ उठाकर सुम्टर दुर्ग पर अधि ाकार करना चहाता था । उसने राहत के लिये नौ सैनिक अभियान भेजने का निश्चय कर लिया तथा दक्षिण कैरोलिना के अधिकारियों को इसकी सूचना दे दी। लिंकन की इस चाल ने परिसंघ सरकार को धर्म संकट में डाल दिया। अभियान का विरोध न करने का तात्पर्य संघ के सामने आत्मसमर्पण करना था । मोटगोमरी सरकार ने चार्ल्सटाउन स्थित परिसंघ सेना के प्रभारी जनरल पी०टी० बौरेगार्ड को

सुम्टर दुर्ग पर अधिकार करने के लिये भेज दिया 12, 13 अप्रैल 1861 को दुर्ग पर बमबारी की गई। 14 अप्रैल को एन्डर्सन ने आत्म–समर्पण कर दिया। इस प्रकार गृह–युद्ध शुरू हो गया।

लिंकन ने संघ के सदस्य राज्यों को सेना भेजने का आदेश दे दिया । इसी समय चार अन्य दास राज्य संघ से अलग होकर परिसंघ में मिल गये । इसी समय एक परिवर्तन भी हुआ – वर्जीनिया का पश्चिमोत्तर क्षेत्र 1863 में संघ में पश्चिम वर्जीनिया ॅ(मेज टपतहपदपं) के नाम से पुनः सम्मिलित हो गया। शेष चार दास, राज्यों अर्थात मेरीलैंड, डिलावेयर केटकी और मिसौरी ने संघ का साथ दिया। लिंकन ने मेरीलैड और मिसौरी के सैनिकों को पुनः नियुक्त कर दिया।

गृह–युद्ध का आरम्भ (ठमहपद ्दपदह व जीम ब्पअपस ॅंत)– गृह–युद्ध के प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में दो परस्पर विरोधी विचार निम्न प्रकार है–

(प) परिसंघ पर उत्तरदायित्व – एक विचार के अनुसार गृह–युद्ध परिसंघ ने शुरू किया।

(पप) संघ पर उत्तरदायित्व – दूसरा विचार यह है कि गृह–युद्ध लिंकन ने शुरू किया। 4 जुलाई 1861 को लिंकन ने शुम्टर दुर्ग के सम्बन्ध में कांग्रेस में यह संदेश दिया, इस संकट काल में – दक्षिण कैरोलीना के गवर्नर को सूचित करना है कि सुम्टर दुर्ग की रक्षा के लिये हमें कुछ करना है । इससे यह प्रकट होता है कि लिंकन किसी भी स्थिति में सुम्टर दुर्ग को परिसंघ से बाइट

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ॅमसस्–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

235

रखना चाहता था। इसी मध्य परिसंघ ने सुम्टर दुर्ग पर बमबारी करके उसे आत्म–समर्पण करने के लिये विवश कर दिया। अतः गृह–युद्ध के लिए लिंकन उत्तरदायी था ।

परिसंघ के राष्ट्रपति डेविस और उपराष्ट्रपति स्टीफेनस तथा विभिन्न परिसंधियों ने गृह–युद्ध के लिए लिंकन को दोषी ठहराया। स्टीफेन्स ने 1868 में प्रकाशित अपनी पुस्तक (। ब्वदेजपजनजपवदंस अपमू व िजीम संजम ॅत ठमजूममद जीम `जंजमे) में लिखा है कि यह ठीक है कि परिसंघ ने ही पहली गोली चलाई। लेकिन क्या सुम्टर दुर्ग पर अधिकार ने युद्ध को जन्म दिया। इसके प्रश्नोत्तर में अन्तर्राष्ट्रीय – विधि, विशेषज्ञ हैलम (भ्ंससंउ) ने कहा है, युद्ध में आक्रमण वह नहीं जो पहले बल का प्रयोग करता है, बल्कि वह है जो बल का प्रयोग करने के लिये बाध्य कर देता है हैलम के अनुसार लिंकन ने ग्यारह जहाजों के साथ राहत संगठित दल जिसमें 280 तोपें और 2400 सैनिक थे, न्यूयार्क से सुम्टर दुर्ग भेजे। उन्हें सुम्टर दुर्ग पर अधिकार करने का आदेश भी दिया था, इस प्रकार लिंकन परिसंघ सरकार द्वारा सुम्टर दुर्ग पर बमबारी करने के लिये उत्तरदायी था ।

दोनों पक्षों की स्थिति (जीम च्वेजपजपवद व िजीम ठवजी च्तजपमे), गृह–युद्ध के समय दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की स्थिति काफी दृढ़ थी। इसके प्रमुख निम्न कारण थे–

(प) आर्थिक सुदृढ़ता – आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तर काफी सम्पन्न था।

(पप) उत्पादन – युद्धकाल में इसका उत्पादन काफी बढ़ गया था।

–

(पपप) जनाधिक्य उत्तर में जनाधिक्य भी अधिक था अतः सैनिकों की भर्ती की सुविधा थी । उत्तर

में 93 राज्य थे वहाँ की जनसंख्या लगभग दो करोड़ बीस लाख थी ।

–

दक्षिण ैवनजी) दक्षिण या परिसंघ राज्यों की संख्या नौ थी । वहाँ की जनसंख्या नब्बे लाख थी इनमें साढ़े तीस लाख दास थे। परिसंघ के तोपखाने के प्रधान जोसिया गोर्गस ने शस्त्रास्त्रों के निर्माण में भारी योगदान किया फिर भी परिसंघ के शास्त्रों में गुणात्मक और परिमाणात्मक कमी थी । दक्षिण की अर्थव्यवस्था भी उन्नत नहीं थी । वहाँ सैन्य आपूर्तियों जैसे वस्त्र जूते, कम्बल तथा औषाधियों आदि का भी अभाव था । परिणामतः सन् 1863 के बाद गृह–युद्ध में दक्षिण का मनोबल मिरने लगा था।

उत्तर (छवतजी) उत्तर का यातायात और परिवहन दक्षिण की अपेक्षाकृत उत्तम था। उत्तर में रेलमार्ग लगभग 20,000 मील और दक्षिण में 10,000 मील था।

उत्तर में जलमार्ग की सुविधा थी । यही कारण था कि युद्ध काल में यह सुविध ापूर्वक अपनी सेना और सैन्य सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने लगे।

ने

संघीय सेना में वृद्धि (प्दबतममेम पद न्दपवद ।तउल) – गृह–युद्ध आरम्भ होने के समय संघ की नियमित सेना की संख्या 16000 थी। इसकी अधिकांश टुकड़ियाँ पश्चिमी प्रदेशों में बिखरी थी । लिंकन गृह–युद्ध लड़ने के लिये 75000 सैनिकों की आवाश्यकता अनुभव की। उसने संवैधानिक अनुमति के प्राप्त किये बिना ही तीन वर्षों के लिये 42000 स्वयं सेवकों की सेना संगठित की और नियमित सेना में 23000 सैनिकों की वृद्धि की ।

1863 में कांग्रेस ने अनिवार्य सैनिक सेवा अधिनियम पारित किया। संघ और राज्यों के उच्च पदाधिकारियों, कृषकों, धमोपदेशकों आदि को इस अनिवार्य सैनिक सेवा से छूट दी गई थी। यह व्यवस्था की गयी थी कि कोई भी व्यक्ति अपने स्थान पर दूसरे व्यक्ति को देकर या सरकार को तीन सौ डालर शुल्क देकर अनिवार्य सैनिक सेवा से मुक्त हो सकता था। इस कानून का उद्देश्य अनिवार्य सैनिक सेवा को प्रोत्साहित करना था । प्रत्येक राज्य को विभिन्न भर्ती या पंजीयन जिलों में बाँट दिया गया था। प्रत्येक जिले को यह आदेश दे दिये गये थे कि उसने एक निश्चित संख्या में स्वयंसेवक भर्ती करते है । इन प्रयासों के परिणामस्वरूप संघ की सेना में सैनिकों की संख्या लगभग पन्द्रह लाख हो गयी। दूसरी ओर परिसंघ में सैनिकों की संख्या केवल नौ लाख थी ।

विरोध – (व्चचेपजपवद) – कुछ लोगों ने अनिवार्य सैनिक भर्ती का कड़ा विरोध ा किया । प्रवासियों, मजदूरों और शांतप्रिय लोकतंत्रवादियों ने इसका कड़ा विरोध किया। कुछ स्थानों में इसके विरोध में हिंसात्मक कार्यवाहियाँ भी हुई हैं। जुलाई 1863 में न्यूयार्क नगर में चार दिनों तक दंगा जारी रहा। दंगा शान्त करने के लिए संघ सेना का बुलाना पड़ा । लोकतांत्रिक गवर्नर ने अनिवार्य सैनिक सेवा की निन्दा की। न्यूयार्क के होराशियों सिमूर का यह तर्क था कि संघीय सरकार को अनिवार्य सैनिक सेवा का कोई संवैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं था । इस आधार पर उन्होंने लिंकन प्रशासन को खुलेआम चुनौती दी।

लिंकन की भूमिका (त्वसम व स्पिदबवसद) – स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये लिंकन ने अपने परामर्शदाताओं को नियुक्त किया। इसमें गणतंत्रवादी दल की प्रत्येक विचारधारा के लोग थे । सेवार्ड नेज और स्टैनटन उच्चकोटि के परामर्शदाता थे।

गृह–युद्ध काल में लिंकन युद्ध विभाग का प्रधान था। उसने निम्न व्यवस्था की –

लिंकन

(प) उसने विद्रोह के दमन के लिये सेना बुलाई,

(पप) उसने अनियमित ढंग से नियमित सेना की संख्या में वृद्धि की,

(पपप) उसने दक्षिण की नौ सैनिक नाकेबन्दी करने की घोषणा की।

दो दल (ज्ूव ळतवनचे)
–
संघ के दो दल बन गये थे–
(प) गृह–युद्ध के विरोधी – संघ में दक्षिण दास राज्यों के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोकतांत्रिक
दल के शान्ति समर्थक गृह–युद्ध का विरोध करने लगे।
(पप) गृह–युद्ध के समर्थक– लोकतंत्रवादी युद्ध का समर्थन करते थे और लिंकन प्रशासन में पद भी ग्रहण करना चाहते थे । राष्ट्रवाद की बलिवेदी पर राज्य के अधिकारों का बलिदान किया
जा रहा था।
युद्ध विरोधियों को बन्दी बनाने लगा। स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिये उसने बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम को स्थगित कर दिया।
1862 में यह घोषणा की गयी कि जो व्यक्ति या राज्य अनिवार्य सैनिक सेवा को हतोत्साहित करेगा, उनकी सुनावाई सैनिक अदालत में होगी। इस आरोप में लगभग 13000 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और जेल में डाल दिये।
गुटों का निर्माण (थ्वतउंजपवद व ि ळतवनचे) गणतंत्रवादी और लोकतंत्रवादी दलों में आतिवादी (त्मकपबंसे) और उदारवादी (स्पइमतंसे) दो गुट हो गये थे । दासत्व प्रश्न पर दोनों में काफी भिन्नता थी ।
(प) अतिवादी (त्मकपबंसे) अतिवादियों के नेता पेंसिलवेनिया के थैडस स्टेबेस तथा मेसाचुसेट्स के सीनेटर चार्ल्स सुमनगर और औहियों के सीनेटर बेजामिन एफ० वार्ड थे ।
–
(पप) उदारवादी (स्पइमतंसे) उदारवादियों का नेता राष्ट्रपति लिंकन था। अतिवादी गृह–युद्ध काल में दासत्व का अंत चाहने लगे। इसके लिये वे हिंसात्मक कार्यवाही करने से भी नहीं हिचकते थे। उदारवादी भी दासत्व का अन्त चाहते थे पर वे ऐसा धीरे–धीरे और शान्तिमय ढंग से करना चाहते थे। लिंकन स्वामिभक्त दास राज्यों में दास स्वामियों को उचित क्षतिपूर्ति देकर दासत्व का उन्मूलन के प्रश्न पर गृह–युद्ध भी लड़ना नहीं चाहता था। इसका कारण यह था कि इससे सीमा स्थित दास राज्यों के संघ से विमुख होने की संभावना थी ।
.
जब्ती अधिनियम (ब्वदपिबंजपवद ।बज) अगस्त 1861 में पारित जब्ती अधिनियम (ब्वदपिबंजपवद ।बज) के अनुसार उन दासों को उन्मुक्त कर दिया गया जिन्हें विद्रोह कार्यों में लगाया गया था । दासत्व के उन्मूलन की दशा में प्रमुख कदम निम्न प्रकार उठाये गये–
(प) अप्रैल 1862 में कोलम्बिया में दासत्व का उन्मूलन कर दिया गया था।
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्

`मसZ–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
237
पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
`मसZ–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
238

(पप) जून 1862 में राष्ट्रीय प्रदेशों में दासत्व का उन्मूलन किया गया। (पपप) 1862 में अतिवादियों ने दासत्व उन्मूलन का निश्चय किया ।
(पअ) जुलाई में उन्होंने कांग्रेस के सामने दूसरी बार जब्ती अधिनियमन रखा। इस अधिनियम ने विद्रोह में भाग देले वाले दासों को उन्मुक्त घोषित कर राष्ट्रपति को नीग्रो लोगों को सेना में बहाल करने के लिये अधिकृत किया ।
.
अतिवादी (त्कपबंसे) अब गणतंत्रवादी दलों पर अतिवादियों का नियंत्रण होने लगा । सम्पूर्ण राष्ट्र यह मानने लगा कि गृह–युद्ध का एकमात्र उद्देश्य दासत्व का उन्मूलन है। लिंकन संघ की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण रखना चाहता था। इसके लिये वह अपने दल और विशेषकर अतिवादियों का समर्थन प्राप्त करना चाहता था।
–
लिंकन के प्रयास (थ्विितजे उंकम इल स्पदबवसद) – जुलाई 1862 में लिंकन ने अतिवादियों के हाथ से स्वयं अपने हाथ में दासत्व मुक्ति का नेतृत्व लेने का निश्चय किया। 22 सितम्बर 1862 को उसने अपनी अंतिम उन्मुक्ति घोषणा जारी की। इसने परिसंघ प्रदेशों के दासों को सर्वदा के लिये उन्मुक्त कर दिया। टेनेसी, पश्चिम वर्जीनिया और दक्षिणी लुईसियाना अपवाद स्वरूप थे इन प्रदेशों को इस कारण छोड़ दिया गया क्योंकि ये शत्रु प्रदेश नहीं थे, अतः राष्ट्रपति की युद्ध शक्तियों की परिधि से बाहर थे। उन्मुक्ति की घोषणा का प्रभाव (म्ििबज व्म्उंदबपचंजपवद क्मबसंतंजपवद)
उन्मुक्ति घोषणा द्वारा शीघ्र ही कुछ दासों को उन्मुक्त कर दिया गया तथा इस घोषणा ने यह भी निश्चित कर दिया कि दासत्व उन्मूलन और संघ की एकता के लिये युद्ध अवश्यम्भवी है। संघीय सेना द्वारा दक्षिणी प्रदेशों पर अधिकार स्थापित करते ही उन्मुक्ति घोषणा एक तथ्य बन गई और हजारों दास स्वतंत्र हो गए। दासों को सेना में भर्ती कर लेने से भी वे उन्मुक्त हो गये । गृह–युद्ध के दौरान लगभग 186000 दास सेना में भर्ती किये गये थे । ग्रहयुद्ध के अन्त तक दो संघ दास – राज्यों मैरीलैंड और मिसौरी तथा परिसंघ के तीन अधिकृ त राज्यों टेनेसी अकन्सिस और लुइसियाना में दासत्व का उन्मूलन कर दिया गया था। सन् 1865 के आरम्भ में कॉंग्रेस ने संविधान के तेरहवें संशोधन का अनुसमर्थन कर दासत्व का सर्वत्र उन्मूलन कर दिया। इस समय तक दास प्रथा नामक सामाजिक संस्था का अस्तित्व शेष नहीं रहा था ।
जून 1864 में संघ सम्मेलन की बैठक ने लिंकन को राष्ट्रपति पद के लिये

मनोनीत किया। इस कार्य में अतिवादियों ने लिंकन का समर्थन नहीं किया। टेनेसी के एंड्रिव जॉनसन का मनोनयन उपराष्ट्रपति पद के लिये किया गया। निर्वाचन में लिंकन को विजय प्राप्त हुई। उसे 212 मत मिले। इसके विपरीत उसके विरोधी मैक्कलेलन को केवल 21 मत मिले। लिंकन को जन – निर्वाचन में 2,213,000 मत मिले और मैक्कलेलन को 180500 मत मिले। इस प्रकार लिंकन केवल 4,00,000 मतों से आगे था ।

लिंकन की भावना (त्वसम व सिपदबवसद) – युद्ध के प्रथम तीन वर्षों में लिंकन ने बहुत कुछ किया। नीति निर्धारण करने सांमरिक, योजनाएँ बनाने और यहाँ तक कि रणनीति निर्देशन करने में उसकी भूमिका प्रमुख थी।

(प) जनरल विनफील्ड स्कॉट– प्रारम्भ में लिंकन जनरल विनफील्ड स्कॉट से परामर्श लेता था । स्कॉट इस समय काफी वृद्ध हो चुका था और कोई निर्णय नहीं ले पाता था । उसने नवम्बर 1861 को अवकाश गृहण किया।

(पप) जार्ज बी. मैक्लालन– लिंकन ने उसके स्थान पर युवक जार्ज बी० मैक्लालन को सेनाध्यक्ष नियुक्त किया किन्तु मैक्लालन में रणनीति निर्धारण की योग्यता न थी । अतः लिंकन ने उसे मार्च 1862 में हटा दिया।

(पपप) हेनरी डब्ल्यू हैलेक– जुलाई में जनरल हेनरी डब्ल्यू. हैलेक को नियुक्त किया गया।

(पअ) यूलीसिस एस. ग्रांट – 1864 में यूलोसिस एस. ग्रांट को सेनाध्यक्ष बनाया गया। उसे वाशिंगटन

की राजनीति पसंद न थी, अतः अपने सेना का प्रधान कार्यालय वाशिंगटन से ले जाकर पोटमेक

में स्थापित किया। वह युद्ध के हर पक्ष के बारे में काफी सोच सकता था और राजनीति का निर्धारण कर सकता था। लिंकन भी ग्रांट पर काफी विश्वास करता था।

युद्ध संचालन समिति ॅत ब्वउउपजजमम) – युद्ध में लिंकन की सक्रियता आधुनिक युद्ध प्रणाली में उस महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर सकेत करती है। जिसमें असैनिक पदाधिकारी भी राजनीति का निर्माण करते हैं। सैनिक मामलों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण असैनिक आविष्कार युद्ध संचालन समिति है। यह कांग्रेस के दोनों सदनों की एक संयुक्त अन्वेषण समिति है । यह युद्ध नीतियों की निर्धारण करती है। दिसम्बर 1861 में ओहयो के सीनेटर बेडामिन एफ. वार्ड की अध्यक्षता में इस समिति की नियुक्ति की गई। आदिवासियों ने लिंकन की योजना का विरोध यह कहकर किया कि युद्ध संचालन समिति द्वारा नियुक्त किये गये अनेक सेनाध्यक्षों में योग्यता का अभाव है। वास्तव में ये आक्षेप निराधार थे।

अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनायें निम्न प्रकार हैं–

1. दक्षिण कैरोलीना का यूनियन से पृथक होना ैमचंतंजपवद व ैवनजी बंतवसपदं तिवउ न्दपवद)– दक्षिण के राज्यों ने पहले से ही धमकी दे रखी थी कि रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार को राष्ट्रपति चुन लिया गया तब वे यूनियन से पृथक हो जायेंगे। लिंकन के राष्ट्रपति चुने जाते ही उन्होंने अपनी धमकी के

अनुसार कार्यवाही शुरू कर दी। इस मामले में पहला पग दक्षिण कैरोलीना के विधान मण्डल ने यूनियन से पृथक होने के प्रश्न पर विचार करने हेतु एक विशेष कन्वेशन बुलाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास कर दिया। कन्वेशन की बैठक 8 दिसम्बर 1860 में ई। उसने यूनियन के
पृथक
होने का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास कर दिया। इस कार्यवाही के लिये मुख्य कारण निम्न प्रकार बताये गये–
(प) उत्तर के तेरह राज्यों ने संविधान का उल्लंघन करते हुए व्यक्तिगत स्वाध ीनता सम्बन्धी कानून
पास कर दिये हैं।
(पप) एक ऐसा व्यक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया है जो गुलाम प्रथा का कट्टर विरोधी है। (पपप) उत्तर के लोगों के लाभ के लिये दक्षिण के लोगों पर भारी प्रशुल्क लगाये गये हैं।
2. कॉनफेडरेट स्टेट्स ऑफ अमेरिका (ब्वदमिकमतंजम ैजंजमे व ि।उमतपबं) – यूनियन से पृथक होने की घोषणा करने के बाद शीघ्र ही दक्षिण कैरोलीना ने अन्य दास राज्यों के नाम एक खुला पत्र जारी किया । पत्र में कहा गया कि वे उसके साथ मिलकर दक्षिण के राज्यों की एक अलग कॉनफेडरेसी बनायें। एक महीने के भीतर ही चार अन्य राज्यों अर्थात् फ्लोरिडा, अलबामा, मिसीसिपी और जार्जिया ने भी यूनियन से पृथक होने को घोषणा कर दी। लुइसियाना और टैक्सास भी यूनियन से पृथक हो गये। इस प्रकार सात राज्य यूनियन से पृथक हो गये।
फरवरी 1861 में उपरोक्त सातों राज्यों के प्रतिनिधियों की बैठक माण्टगोमरी अलाबामा में हुई। उन्होंने कानफेडरेट ऑफ अमरीका गठन का लिया। इस कानफेडरेसी ने अपना संविधान स्वीकार किया और मिसीसिपी के जेफरसन डेविस को अपना प्रेसीडेण्ट चुन लिया।
3. वाशिंगटन में प्रतिक्रिया (त्म–ंबजपवद पद ॅंपदहजवद) – कपास उत्पन्न करने वाले दक्षिण के राज्यों की इस कार्यवाही से वाशिंगटन के राजनीतिज्ञ बड़े चिन्तित थे। राष्ट्रपति जेम्स बुचानन ने दक्षिण में इन राज्यों के प्रति समझौते का दृष्टिकोण अपनाया। कांग्रेस को भेजे गये अपने वार्षिक सन्देश में राष्ट्रपति बुचानन ने यह घोषणा की कि दक्षिण के राज्यों का यूनियन से पृथक होना गैर संवैधानिक है। पर इसके साथ उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि न तो कांग्रेस के पास और न ही राष्ट्रपति के पास ऐसा कोई अधिकार है कि वे किसी राज्य को यूनियन से पृथक होने से रोक सके। बुचानन के इस संदेश पर उत्तर के लोगों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथापि उत्तर का रवैया दक्षिण के साथ समझौता का रहा ।
□
4. समझौता के प्रयास (ंमवितजे वित त्मबवदबपजपंजपवद)– उत्तर और दक्षिण के मध्य समझौता

पश्चिमी विश्व
छव्जै
ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
240
कराने के लिय अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव 'क्रिटेनडेन समझौता' प्रस्ताव था। क्रिटेनडेन ने अपने प्रस्ताव में निम्नलिखित सुझाव रखे–

(प) पुराने मिसौरी समझौते की 30. 30 इंच उत्तरी अक्षांश रेखा के दक्षिण की ओर के किसी राज्य में गुलाम प्रथा के मामले में कांग्रेस को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। (पप) भविष्य में किसी अप्रिय विवाद को न उठने के लिये इस बात को एक संशोधन के द्वारा
संविधान में सम्मिलित कर दिया जाना चाहिये।
(पपप) भविष्य में इस बात में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिये ।

5. प्रतिनिधि सदन के प्रयास– दक्षिण के राज्यों से समझौता करने के लिये हाउस ऑफ रिप्रिजेन्टेटिव ने भी एक प्रस्ताव पास करके कांग्रेस और जनता पर सदैव के लिये इस बात पर रोक लगा दी कि जिस राज्य में गुलाम–प्रथा पहले से ही हो उस राज्य की जनता की सहमति के बिना वे उस राज्य में गुलाम प्रथा के मामले में कोई हस्तक्षेप न करे ।

6. संघीय किलों पर आधिपत्य – (।द् दमंजपवद वन्दिपवद थ्वतजे) – दक्षिण के राज्यों ने अमेरिका के किलों, शस्त्र – भण्डार युद्ध–सामग्री गोला–बारूद और अन्य सम्पत्ति पर आधिपत्य करना शुरू कर दिया । दक्षिण के राज्यों को कानफेडरेट सरकार ने फोर्ट सुम्टर, फोर्ट पिकेन्स की वेस्ट और ड्राई पुर्तगाल को छोड़कर इन सात राज्यों में यूनियन के स्थित सभी किलों, टकसाल, डाकघर, कस्टम – हाउस आदि पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

7. राष्ट्रपति लिंकन का प्रथम भाषण– (थ्पतेज ैचममबी वच्तिमेपकमदज स्पद. बवसद)– अपने भाषण में राष्ट्रपति लिंकन ने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुये यह घोषणा की कि जिन इलाकों में गुलाम–प्रथा विद्यमान है, उनमें वह हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। उन्हें हस्तक्षेप करने का कोई कानूनी अधिकार भी नहीं है, लेकिन सार्वभौमिक कानून और संविधान को देखने हुये इन राज्यों की यूनियन एक स्थायी यूनियन है । अतएव जो राज्य यूनियन से अलग हो गये हैं अगर वे पुनः वापस नहीं आ जाने तो अन्ततः युद्ध का आश्रय लिया जायेगा। उन्होंने यह सुझाव रखा कि जिन चौकियों पर अभी तक कानफेडरेट्स ने कब्जा नहीं किया है, वे अपने इलाके में फेडरेल कानूनों को लागू करें।

8. युद्ध का प्रारम्भ (ठमहद्दपदह वर्ित) – 12 अप्रैल को सुम्टर पर आक्रमण

होने से पहले उत्तर के अधिकांश लोगों की यह धारणा थी कि अभी भी युद्ध से भिन्न कोई रास्ता निकल सकता है। फोर्ट सुम्टर नामक किला चार्ल्सटन बन्दरगाह में एक टापू पर स्थित है। दक्षिण के लोगों ने इसे चारों ओर से घेर लिया। परिणामतः यहाँ रसद कम पड़ गयी थी और नई रसद न पहुँचने पर इसे हथियार डालने का अभिप्राय होगा कि उत्तर के लोगों ने कानफेडरेसी को स्वतंत्र मान लिया है। लिंकन ने अपनी कैबिनेट की राय के विरुद्ध फोर्ट सुम्टर को बचाने के लिये वहाँ सहायता दल भेजने का निर्णय ले लिया। प्रत्युतर में जेफरसन डेविस ने चार्ल्सटन की सेनाओं को इस किले पर गोलाबारी करने की आज्ञा दी। 12 अप्रैल 1861 को कानफेडरेट की सेनाओं ने इस किले पर गोलाबारी करके इसे हथियार डालने के लिये बाध्य कर दिया। यह गृह–युद्ध का प्रथम धमाका था। लिंकन ने इस विद्रोह को दबाने के लिये 75,000 स्वयं सेवक भेज दिये इसके साथ ही उसने आदेश दिया कि कानफेडरेट के सभी बन्दरगाहों की नाकेबन्दी कर दी जाये। इस प्रकार युद्ध आरम्भ हो गया।

9. अन्य राज्यों की स्थिति (जैम च्वेपजपवद व िव्जीमत ेजंजमे) – अन्य आठ गुलाम राज्यों की स्थिति अभी तक अनिर्णीत थी। उन्होंने यह निर्णय नहीं किया था कि वे किस और जायें। अब उनके लिये यह निर्णय लेना आवश्यक हो गया कि उन्हें उत्तर के साथ रहना है या दक्षिण के साथ जाना है। चार राज्यों अर्थात् वर्जीनिया, अरकन्सास, केनेसी और नार्थ कैरोलीना ने कानफेडरेसी का पक्ष ग्रहण किया। शेष चार गुलाम राज्य अर्थात् मेरीलैंड, डेलावेयर, केन्टकी और मिसौरी यूनियन में शमिल रहे।

10. युद्ध

के चढ़ाव व उतार (न्चे ंदक क्वूदे व ित)– दोनों पक्षों के मध्य गृह युद्ध मुख्यतः पूर्वी और पश्चिमी मोर्चे पर हुआ। पूर्वी मोर्चे पर वर्जीनिया के निकट घमासान युद्ध हुआ। पश्चिमी मोर्चे पर टेनसी और मिसौरी की सीमा पर युद्ध हुआ। यूनियन की सेना ने दक्षिण के सभी महत्वपूर्ण बन्दरगाहों की नाकेबन्दी कर दी ताकि वहाँ से न कोई माल बाहर जा सके और न कोई माल बाहर से वहाँ आ सके।

() पूर्वी मोर्चे पर लड़ाई ॅत वद म्ंजमतद थ्तवदज)– पूर्वी मोर्चे पर लड़ाई का प्रमुख उद्देश्य कानफेडरेसी की राजधानी रिशमाण्ड पर आधिपत्य स्थापित करना था। जुलाई 1861 में मैकडोवेल की अधीनता में 30,000 सैनिकों की एक सेना ने वर्जीनिया आक्रमण करने का प्रयास किया। इस आक्रमण में कानफेडरेसी की सेना ने व्यूरीगार्ड ओर जानस्टन के नेतृत्व में उत्तर की सेना को बुलटन नामक स्थान पर पराजित कर दिया। परिणामतः यूनियन की सेना भाग कर वाशिंगटन आ गई।

सन् 1862 में बी0 मैक्ललान के नेतृत्व में यूनियन की सेना ने रिशमाण्ड पर आधि ापत्य स्थापित करने की पुनः कोशिश की । युद्ध में यूनियन की सेना को सफलता प्राप्त हुई। वह रिशमाण्ड से केवल पाँच मोल की दूरी तक जा पहुँची

थी पर उसके बाद मैक्लालन को समुद्र तट की ओर पीछे हटना पड़ा। सात दिन के युद्ध में जो 26 जून से 1 जुलाई तक चला, जानस्टन घायल हो गया था। अतः उसके स्थान पर जनरल राबर्ट ई० ली को कानफेडरेसी को सेवा की कमान सौंप दी गई। न्यू आर्लियन्स तथा लुईसियानों के दक्षिणी भाग पर यूनियन की सेना का आधिपत्य स्थापित हो गया।

(इ) पश्चिमी मोर्चे पर युद्ध ॅ(त वद ॅमेजमतद थ्तवदज)– पश्चिमी मोर्चे पर एक वर्ष तक सीमावर्ती राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये युद्ध होता रहा। केन्टकी और मिसौरी से दक्षिण की सेनाओं को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। वर्जीनिया की पश्चिमी काउण्टियों की कानफेडरेसी से पृथक करने का एक स्वतंत्र राज्य के रूप में यूनियन में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार दक्षिण ने ओहिया नदी के साथ की एक मजबूत रक्षा पंक्ति खो दी।

पश्चिमी मोर्चे पर यूनियन की सेना ने फोर्ट हेनरी और फोर्ट डोमेलसन पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार पश्चिमी टेनेसी के एक लम्बे–चौड़े हिस्से पर यूनियन का आधिपत्य स्थापित हो गया। तत्पश्चात् यूनियन की फौजें दक्षिण की ओर कोरिन्थ, मिसीसिपी और सेम्फीस टेनेसी की ओर अग्रसर हुई। अप्रैल 1862 में कानफेडरेसी की फौज ने शिलोह में ग्राण्ट पर आक्रमण किया। भारी कष्ट सहन करने के बाद भी ग्राण्ट मोर्चे पर डटा रहा। इसी मध्य यूनियन की समुद्री ने न्यू आर्लियन्स पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार विक्सवर्ग पर आक्रमण करने का मार्ग साफ हो गया। विक्सवर्ग से ही कानफेडरेसी फौज पश्चिम के साथ अपना सम्पर्क बनाये हुये थी। इन सैनिक गतिविधियों का यूनियन को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ था कि जनरल ग्रान्ट जैसा सेनापति उभर कर सामने आ गया, जिसने अन्त में ली को पराजित किया।

इसी मध्य पूर्वी मोर्च पर कानफेंडरेसी की सेना ली के नेतृत्व में आक्रमण शुरू कर दिये। कानफेडरेसी की फौजों ने उत्तर की और बढ़ गयी। ली पेनसिलबेनिया पर आक्रमण करके अंटलांटिक तट और पश्चिम के बीच रेल मार्ग को काटना चाहता था। इस प्रकार उत्तर के सामने पराज्य का गम्भीर खतरा था। इस अवसर पर लिंकन ने मैक्लालन को पुनः भेजा। मैक्लालन ने परिसंघीय सेना पर मनासांस में आक्रमण कर दिया। पर यह आक्रमण असफल रहा। ली के नेतृत्व में परिसंघ सेना ने मेरी लैण्ड पर आक्रमण कर दिया, पर मैक्लालन ने उसके आक्रमण को विफल कर दिया। ली को वर्जीनिया से पीछे हटना पड़ा। मैक्लालन ने ली का इससे अधिक पीछा नहीं किया। लिंकन ने रुष्ट होकर मैक्लालन को हटा दिया।

(ब) समुद्री युद्ध (डंतपजपउम ॅंत) – यूनियन की सेना ने दक्षिण के समस्त महत्वपूर्ण बन्दरगाहों की नाकेबन्दी कर रखी थी, अतः दक्षिण के आयात–निर्यात को इसे भारी क्षति हो रही थी ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

स्व– प्रगति की जाँच करें : 1. क्या अमेरिकी गृह–युद्ध का एक कारण राष्ट्रवाद

की भावना भी महत्वपूर्ण रही है?

2. उत्तर – दक्षिण के बीच विचार संघर्ष में शान्ति के प्रयास हेतु लिंकन के प्रयास स्पष्ट करें।

ेमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

241

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्े

ेमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

242

कानफेडरेसी की सेना इस नाकेबन्दी को तोड़ने के प्रयास में थी ।

(प) लोहे से मढ़े जहाजों का प्रयोग (न्म वि प्तिवद – ब्वंजमक ैीपच) – मार्च 1862 में वर्जीनिया के नॉरफॉक समुद्री अड्डे से यूनयिन के पुराने फ्रीगेट मैरीमैक नामक विशाल पोत को वर्जीनिया नाम देकर बाहर निकाला गया। इसको चारों ओर से लोहे से मढ़ दिया गया। इसके ऊपर एक तोप भी फिट कर दी गई थी। इस फ्रीगेट ने यूनियन के दो जहाज डुबो दिये। कुछ समय बाद प्रत्युत्तर में यूनियन के समुद्री बेड़े ने लोहे से मढ़ा हुआ अपना जहाज मोनीटर समुद्र में उतार दिया। इस पर घूमने वाली तोपें फिट थी। दोनों जहाजों में टक्कर हुई। इस लड़ाई में उत्तरी अमेरिका की विजय हुई क्योंकि उसके बाद वर्जीनिया पुनः दिखाई नहीं पड़ा ।

(पप) विदेशों से जहाज मँगाना (ब्संस थ्वत ैीपचे थ्तवउ थ्वतमपहद ब्वनदजतपमे) – कानफेडरेसी ने विदेशी से लड़ाकू जहाज प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने इंग्लैण्ड से शक्तिशाली तोपें भी प्राप्त कीं। दक्षिण ने इंग्लैंड से अलबामा नामक प्रसिद्ध जहाज प्राप्त कर लिया। इस जहाज ने यूनियन की 63 नावों को महासागर में डुबो दिया। पर शीघ्र ही यूनियन ने अन्य देशों विशेष रूप से इंग्लैंड को इस बात के लिये सहमत कर लिया कि वह कानफेडरेसी को कोई जहाज न दो।

(क) दासों की मुक्ति की घोषणा (क्मबसंतंजपवद वि म्उंदबपचंजपवद वि ैसंअमे) – गृह–युद्ध शुरू होने के समय से ही लिंकन पर दबाव डाला जाता रहा कि वह दास प्रथा की समाप्ति के नाम पर युद्ध की घोषणा कर दे । लिंकन को यह कार्य उपयुक्त व समयानुकूल प्रतीत हुआ । अतएव उसने अमेरिका की सेना के कमाण्डर इन चीफ के रूप में 22 सितम्बर 1862 को दासों की मुक्ति की घोषणा कर दी। इस घोषणा में कहा गया कि ऐसे हर राज्य या राज्य के किसी विशिष्ट भाग, जिसके निवासी उस दिन अमेरिका के विरुद्ध विद्रोह कर रहे होंगे, में रहने वाले वे लोग जो गुलाम हैं, वे सब जनवरी 1863 को स्वतंत्र हो जायेंगे और आगे वे सदैव स्वतंत्र रहेंगे।

(म) सन् 1863 के मुख्य युद्ध (डंपद ठंजजसमे वि 1863) – सन् 1863 का साल प्रारम्भ होत ही पूर्वी मोर्चे और पश्चिमी मोर्चे दोनों पर भारी परिवर्तन होने लगे। यूनियन की फौजों को फ्रेडरिक्स वर्ग में दिसम्बर 1862 और चान्सलर विले में

मई 1863 में पराजित होना पड़ा। इस विजय से प्रोत्साहित होकर कानफेडरेसी ने पेसिलबोनिया पर आक्रमण करके युद्ध को उत्तर के क्षेत्र में ले जाने का निश्चय किया। तीन वर्ष तक घमासान युद्ध के बाद ली को वर्जीनिया वापस जाना पड़ा। पश्चिमी मोर्चे पर जनरल ग्राण्ट ने काफी समय तक घेरा डालने के बाद विक्सवर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। यह स्थान पश्चिम में कानफेडरेसी का मजबूत गढ़ था। शीघ्र ही चिकामूगा में भीषण युद्ध के बाद ग्राण्ट को विजय प्राप्त हुई। इस प्रकार सन् 1863 के अन्त तक जार्जिया में प्रवेश करने का रास्ता साफ हो गया।

(f) 1864 में शर्मन का आक्रमण (।जजंबा व िीमतउवद पद 1864) – मार्च 1864 में ग्राण्ट को

यूनियन की सेना का जनरल इन चीप नियुक्त किया गया। कोल्ड हार्बर के निकट ग्राण्ट ने ली की सेना को नष्ट करने का प्रयास किया। लेकिन दोनों की सेना नष्ट हुई । ग्रान्ट को 65,000 तथा ली को 31,000 सैनिकों से वंचित होना पड़ा। इसी मध्य संघ की सेना ने शर्मन के नेतृत्व में अटलांटा में युद्ध किया। संघ सेना ने 2 सितम्बर 1864 को अटलांटा पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने जार्जिया में होकर अपना आक्रमण करना शुरू किया। कानफेडरेसी की सेना ने शर्मन का विरोध नहीं किया। शर्मन जहाँ–जहाँ से होकर गुजरा उस क्षेत्र को पूरी तरह से नष्ट करने की नीति अपनाई । उसने यह घोषणा की, मैं दक्षिण की कमजोरी को पोल खेलना चाहता हूँ कि दक्षिण के लोग यह बात भली प्रकार समझ ले कि युद्ध और एक व्यक्ति द्वारा की गई बरबादी दोनों समान हैं। फरवरी 1865 में यूनियन की फौजों ने उत्तर की ओर कूच किया और दक्षिण कैरालीना को भी उसी प्रकार नष्ट किया जैसे जार्जिया को किया था।

(ह) एपोमेटाक्स की विजय (ब्वदुनमेज व ि।चचवउंजजं•) – यूनियन की अन्तिम विजय ग्राण्ट

के सेनापतित्व में हुई। इस निर्णायक विजय ने गृह–युद्ध को समाप्त कर दिया। ग्राण्ट ने मई 1864 में पूर्वी मोर्चे की कमान सम्भाली थी। काफी अच्छी सेना होने के बावजूद भी अनेक भयावह लड़ाइयाँ लड़ने के बाद वह रिशमाण्ड को पूरी क्षति पहुँचा पाया था ।

1 अप्रैल 1865 को ली ने ग्राण्ट के सम्मुख और 26 अप्रैल 1865 को जान्सटन ने टी. शर्मन के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया। इस प्रकार कानफेडरेसी की पराज्य हुई और गृह–युद्ध समाप्त हो गया। अमेरिका के इतिहासकारों के मध्य सदैव से ही यह विवाद चला आ रहा है कि क्या गृह–युद्ध अवश्य होना था या इसे रोका जा सकता था। इस संबंध में निम्नलिखित दो मत हैं–

(प) अपरिहार्य – बीयर्ड आदि लेखकों का कहना है कि उत्तर–दक्षिण के बीच हितों का ऐसा संघर्ष

था कि उनक मध्य कोई समझौता नहीं हो सकता था। युद्ध ही उस संघर्ष के समाधान का एकमात्र साधन था। इस प्रकार युद्ध अपरिहार्य था ।

(पप) व्यर्थ – पर्सी ग्रेग और वग्रेस आदि विद्वानों ने युद्ध की अनिवार्यता के बारे

में संदेह प्रकट किया है। चौनिंग ने भी इस युद्ध को गैर– आवश्यक युद्ध माना है । रेशडेल ने कहा है कि इस भयानक युद्ध के बिना एक–दो पीढ़ियों के बाद गुलाम प्रथा स्वतः समाप्त हो गई होती। अतः यह व्यर्थ
था।
इस दोनों मतों द्वारा प्रस्तुत तर्कों का विवरण निम्न प्रकार है–
(1) युद्ध अपरिहार्य था (̆त ̈ प्दकपेचमदेपइसम) – जो लेखक यह मानते हैं कि युद्ध अवश्य होना था, अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–
(प) विभाजन (क्पअपेपवद)– इस युद्ध से पूर्व अमेरिका उत्तर और दक्षिण दो क्षेत्रों में बँट गया था ।
दोनों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक रीतियाँ परस्पर प्रतिकूल थीं।
(पप) विरोधी हित (ब्वदजतंकपबजवतल प्दमजमतमेज) दोनों के हित एक–दूसरे से इतने विपरीत
थे कि उनके बीच कोई बीच का रास्ता या समझौता नहीं हो सकता था।
(पपप) आर्थिक क्षेत्र (म्बवदवउपब थ्पमसक)
() आर्थिक क्षेत्र में दक्षिण मुख्यतः कृषि प्रधान था, जबकि उत्तर औद्योगिक दृष्टि से
प्रगतिशील था।
(इ) दक्षिण में खूब अनाज और कच्चा माल होता था पर वहाँ कोई उद्योग नहीं था । उत्तर
में उद्योग थे।
(ब) दक्षिण मुख्यतः दास – श्रमिकों पर निर्भर था। इसके विपरीत उत्तर में स्वतंत्र मजदूर थे। (क) दक्षिण में कोई उद्योग नहीं थे और वह संरक्षणात्मक करों के विरुद्ध था, इसके विपरीत
उत्तर में उद्योग–धन्धे स्थापित थे।
(पअ) सामाजिक क्षेत्र – सामाजिक क्षेत्र में दोनों के क्षेत्रों के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता था । दक्षिण की सामाजिक व्यवस्था गुलाम–प्रथा पर आधारित थी। इसके विपरीत उत्तर का समाज गुलाम – प्रथा का विरोधी था ।
–
(अ) राजनैतिक क्षेत्र (च्वसपजपबंस थ्पमसक) राजनैतिक मामलों में दोनों क्षेत्र फेडरल सरकार पर
प्रभुत्व रखना चाहते थे।
अतः इस प्रश्न पर कि नये राज्यों को गुलाम राज्य के रूप में या स्वतंत्र राज्य के रूप में यूनियन में सम्मिलित किया जाये, उत्तर और दक्षिण के मध्य – निरन्तर विवाद रहता था। यदि वे स्वतंत्र राज्य के रूप में सम्मिलित होते थे तो उत्तर की शक्ति बढ़ जाती थी। इसके विपरीत यदि ये
पश्चिमी विश्व
छव्ज्मे

दास राज्य के रूप में सम्मिलित होते तब दक्षिण की शक्ति बढ़ जाती थी। इसके विपरीत यदि ये दास राज के रूप में सम्मिलित होते तब दक्षिण की शक्ति बढ़ जाती ।

(अप) संवैधानिक मुद्दा (ब्वदेजपजनजपवदंस प्ेेनम)

संविधान और राज्य के अधिकारों के बारे में उत्तर और दक्षिण दोनों की अलग–अलग व्याख्या थी–

() शक्तिशाली केन्द्रीकृत सरकार– उत्तर के लोग यह चाहते थे कि एक शक्तिशाली केन्द्रीकृत सरकार हो जिसके पास बहुत अधिकार हो ।

(इ) राज्यों के पास पर्याप्त अधिकार– इसके विपरीत दक्षिण के लोग इस बात के समर्थक थे कि राज्यों के पास काफी अधिकार रहने चाहिये ।

(अपप) गुलाम प्रथा का संविधान की व्याख्या (ैसंअमतल ंदक जीम प्दजमत.चतमजंजपवद व िजीम बवदेजपजनजपवद) – गुलाम प्रथा और संविधान दोनों की व्याख्या दोनों पक्ष अपने–अपने ढंग से करने थे। दक्षिण के लोगों का कहना था कि गुलाम प्रथा को संविधान में मान्यता दी गयी है अतएव उसे समाप्त करना संविधान का उल्लंघन होगा। इसके विपरीत उत्तर के लोगों का विचार था कि गुलाम प्रथा अमेरिकी लोकतंत्र के सिद्धान्त के ही विरुद्ध है। अतः इसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

2. युद्ध रोका जा सकता था ? (ॅंत बवनसक इम कपेचमदेमक ूपजी) – उपरोक्त मत के विपरीत कुछ इतिहासकारों के अनुसार युद्ध रोका जा सकता था, उनके अनुसार चार वर्ष के इस गृह–युद्ध के दौरान देश के विनाश के बाद जो कुछ प्राप्त हुआ था वह इसके बिना प्राप्त किया जा सकता था। इस मत के समर्थक अपने पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–

(प) युद्ध ही एकमात्र मार्ग नहीं – निःसंदेह उत्तर और दक्षिण के बीच उनकी सामाजिक व्यवस्था मजदूर प्रणाली, संस्कृति, आर्थिक हित, राजनैतिक उद्देश्य, संवैधानिक सिद्धान्त, जीवन–दर्शन तथा नैतिकता का स्तर जैसे मामलों में गम्भीर मतभेद और अन्तर थे तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि इन मतभेदों का समाधान करने के लिये युद्ध आवश्यक था और युद्ध के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं था ।

(पप) मनोवैज्ञानिक कारण – युद्ध दासत्व आदि कारणों से नहीं हुआ बल्कि युद्ध के कारण मनोवैज्ञानिक थे। दोनों पक्षों के बीच पारस्परिक आदान–प्रदान और

विचार–विमर्श का अभाव था। दोनों पक्षों ने इन कारणों को बहुत बढ़ा–चढ़ाकर उछाला।

(पपप) पारस्परिक गलतफहमियाँ– दक्षिण के लोगों ने यह गलती की कि उन्होंने गुलाम प्रथा के विनम्र विरोधियों तथा कट्टर विरोधियों के मध्य कोई भेद नहीं किया था। यदि यह भेद कर लिया गया होता तब संघर्ष न होता । इसी प्रकार उत्तर के लोगों ने छिटपुट घटनाओं का अर्थ यह निकालने की गलती की कि दक्षिण के लोग सारे देश में गुलाम प्रथा का विस्तार करना चाहते है।

(पअ) इच्छा के विपरीत– अधिकांश लोग मतभेदों को दूर करने के लिये युद्ध नहीं चाहते थे। अतः

यह युद्ध व्यर्थ ही लड़ा गया।

झ

(अ) निहित स्वार्थ – राजनीतिज्ञों, भाषण देने वालों और अखबारों के सम्पादकों ने अपने निजी लाभ के लिये जनता को गुमराह किया और उनकी भावनाओं को उभारा । क्षेत्रीय भावना को इस सीमा तक उभारा और उकसाया गया कि लोगों ने तर्कपूर्ण ढंग से सोचना ही बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षों के लोग एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस प्रकार दोनों पक्षों के प्रमुख नेताओं के गैर उत्तरदायी दृष्टिकोण के कारण ही यह युद्ध हुआ । यह निष्कर्ष रैश्डल के इस मत के अनुरूप है कि सारी पीढ़ी की गलतियों के कारण ही यह युद्ध हुआ ।

गृह–युद्ध के दौरान दोनों पक्षों की स्थिति इतनी अधिक अनिश्चित थी कि यह कह पाना असम्भव था कि कौन – सा जीतेगा ।

1. उत्तर का पक्ष – उत्तर की स्थिति निम्न प्रकार सुदृढ़ थी–

(प) उत्तर की सुदृढ़ भौतिक साधन– भौतिक साधनों के मामलों में उत्तर की स्थिति दक्षिण की

तुलना में सुदृढ़ थी।

(पप) दक्षिण की सुदृढ़ सैनिक स्थिति– सैनिक दृष्टि से कुछ मामलों में दक्षिण की स्थिति उत्तर

की अपेक्षा अधिक अच्छी थी।

(पपप) जनसंख्या मुद्दा – जनसंख्या के संबंध में उत्तर का पलड़ा दक्षिण की तुलना में कुछ भारी था। उत्तर के साथ जो 23 राज्य थे उनकी कुल जनसंख्या 2 करोड 20 लाख थी। इसके विपरीत दक्षिण के साथ जो ग्यारह राज्य थे उनकी कुल जनसंख्या 90 लाख थी। इस 90 लाख की जनसंख्या में तीस लाख से कुछ अधिक गुलाम थे, जिन्हें लड़ाई के अन्तिम दिनों में ही प्रयोग किया गया। उत्तर में भी काफी लोग खेती, उद्योग और व्यापार के कम में लगे हुए थे। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे सेना में काम करेंगे तथापि जनसंख्या का मुद्दा अधिक महत्वपूर्ण नहीं था। इस संबंध में टी. एल. लिबरमोर ने कहा है कि दक्षिण को उत्तर की तुलना में कम मानव–शक्ति की आवश्यकता थी और दोनों की जनसंख्या में जो अन्तर था उस पर विचार करते

समय हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि उत्तर को केवल आक्रमण के लिये ही अधिक आदमियों की आवश्यकता नहीं थी बल्कि दक्षिण से छिन जाने वाले इलाकों पर आधिपत्य बनाये रखने के लिये भी उसे अधिक आदमियों की आवश्यकता थी ।

(पअ) उत्तर की विकसित औद्योगिक स्थिति– उद्योगों की दृष्टि से उत्तर अधिक उन्नत था और इसमें रेल की अच्छी व्यवस्था थी। लगभग सभी औद्योगिक क्षेत्र उत्तर में ही स्थित थे। दक्षिण को तैयार चीजें उत्तर कारखानों से मँगानी पड़ती थी ।

(अ) युद्ध सामग्री के लिये निर्भरता – उद्योगों के विकसित होने से उत्तर युद्ध का सारा आवश्यक समान स्वयं बना सकता था। इसके विपरीत दक्षिण की युद्ध सामग्री के लिये बाहर के देशों पर निर्भर रहना पड़ता था। युद्ध काल में उत्तर के समुद्री बेड़ों ने दक्षिण के बन्दरगाहों की नाकबन्दी करके बाहर से सामना मँगाने के सभी मार्ग बन्द कर दिये थे।

2. दक्षिण का पक्ष – दक्षिण की स्थिति निम्न प्रकार सुदृढ़ थी– कुछ मामलों में दक्षिण की स्थिति
उत्तर की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक थी ।

(प) सैनिक जीवन– दक्षिण के लोगों को सैनिक जीवन का अधिक अभ्यास था ।

(पप) सेनापतित्व – दक्षिणके पास राबर्ट ई०ली और स्टोनवाल जैक्सन जैसे योग्य सेनापति भी थे।

(पपप) प्रतिरक्षात्मक युद्ध–दक्षिण को उत्तर के आक्रमण से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने को लड़ना
था।

}

(पअ) हार को बचाना मात्र – दक्षिण यूनियन से अलग हो गया था। अब यह काम उत्तर को करना
था कि वह उसे यूनियन में पुनः शामिल होने के लिये बाध्य करे। दक्षिण के सामने केवल यही कार्य था कि वह किसी प्रकार स्वयं को हार से बचाता रहे। इससे उत्तर स्वयं बाध्य होकर समझौता कर लेता ।

(अ) विस्तृत क्षेत्र – उत्तर को युद्ध में विजयी होने के लिए दक्षिण को निर्णायक पराज्य देनी थी। दक्षिण के सम्पर्ण भाग को जीतना एक बडा भारी काम था, क्योंकि दक्षिण के राज्य 5 लाख वर्ग मील से अधिक क्षेत्र में फैले हुए थे। कानफेडरेसी के जनरल यूरीगार्ड ने कहा था कि,

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

245

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै
`मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
246

बहुत कम लोगों को अपनी स्वतंत्रता के लिए इतनी सुविधाजनक स्थिति में लड़ना पड़ा होगा, जितनी सुविधाजनक स्थिति में कानफेडरेसी को अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ने का अवसर मिला और उसके बावजूद भी अगर सैनिक युद्ध में उनकी पराज्य हो गई, तो किसी भी देश को युद्ध लड़कर स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। दक्षिण के पास विशाल भौतिक साधन हैं, पहाड़, नदियाँ रेल व तार जैसे रक्षा के साधन है, देश के लिए भीतर युद्ध के लिए सुविधापूर्ण व्यवस्था है। ऐसी स्थिति में भी यदि दक्षिण हार जाता है, तो एक देश के रूप में इसकी जनता के लिए यह बड़ी बदनामी की बात होगी जब तक कि यह सिद्ध न कर दिया जाये कि उसकी हार का कारण भौतक विषमता नहीं बल्कि कुछ और ही था।

उत्तर की जीत के प्रमुख कारण

(डंपद ब्ंनेमे व जीम टपबजवतल व जीम छवतजी)– निम्नलिखित कारणों से गृह–युद्ध में उत्तर की विजय हुई–

(1) जनसंख्या – (च्वचनसंजपवद) – उत्तर और दक्षिण दोनों ओर सेना में उन्हीं लोगों को भर्ती किया, जो स्वयं भर्ती होने के इच्छुक थे, पर जल्दी ही दोनों को परिस्थितिवश जबरी लामबंदी का सहारा लेना पड़ां दक्षिण में जनसंख्या बहुत थोड़ी थी, अतः जल्दी ही वहाँ स्वेच्छा से भर्ती होने वाले लोगों का अन्त हो गया। दक्षिण ने अप्रैल 1862 में जबरी लामबंदी की आज्ञा निकाली । फेडरल सरकार तथा राज्यों की सरकारों ने स्वेच्छा से भर्ती होने वालों को आकृष्ट करने के लिए उदारतापूर्वक धन तथा सुविधाएँ दीं। परिणामतः युद्ध लम्बा खिंच जाने पर भी उत्तर की सेना में अधिक संख्या में सैनिकों का विद्यमान होना दक्षिण के लिए एक मनोवैज्ञानिक तथा वास्तविक भय का कारण बन गया। यद्यपि उत्तरी सेना के बहुत से सैनिक युद्ध में मारे गये थे, लेकिन युद्ध के अन्तिम वर्षों में ऐसा प्रतीत होता था कि यूनियन की सेनायें लगातार आगे बढ़ रही हैं। इसके विपरीत दक्षिण की सेना के सैनिकों के मारे जाने से दक्षिण की सेना लड़ने से भयभीत हो गयी थी । हतोत्साहित सेना का पराजित होना अवश्यभावी होता है।

(2) वित्त (थ्पदंबबम) – उत्तर के पास अपेक्षाकृत सम्पत्ति अधिक थी। वह दक्षिण की तुलना में अधिक सुविधापूर्वक धन का प्रबन्ध करने की स्थिति में था। उसने विभिन्न प्रकार के कर लगाकर धन एकत्र किया। कांग्रेस ने पहली बार आयकर लगाया । खाद्यान्न, कपड़ा, तम्बाकू, शराब, रेल के टिकट आदि सभी पर कर लगाये गये। कांग्रेस ने शुल्क भी बढ़ा दिये, जिससे आय बढ़ गई। करारोपण से उत्तर के उद्योगों को संरक्षण भी मिल गया जिससे उनको उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिला।

धन एकत्र करने के लिए फेडरल सरकार ने 25 मिलियन डालर से अधिक मूल्य

के बांड जारी किये। उसने करैन्सी बढ़ा दी। 400 मिलियन डालर से अधिक कीमत की ग्रीन बैक नामक कागजी करेन्सी जारी की गयी। इस करेन्सी के बदले में सोने या चाँदी की सुरक्षित मात्रा नहीं रखी गई बॉडों की बिक्री को प्रोत्साहन देने और अच्छी करैन्सी की व्यवस्था करने के उद्देश्य से कांग्रेस ने 1836 में नेशनल बैंकिंग एक्ट पास किया। दूसरी और कानफेडरेसी के पास धन की मात्र सीमित थी । युद्ध शुरू होने पर उसे यह आशा थी कि वह अपनी कपास बेचकर धन प्राप्त कर लेगी। लेकिन युद्ध प्रारम्भ होते ही उत्तर ने दक्षिण के बन्दरागाहों की नाकेबन्दी कर दी थी जिस कारण दक्षिणी कानफेडरेसी अपनी कपास बेच नहीं पायी । दक्षिण ने भी करोड़ों डालर की कागजों मुद्रा जारी की लेकिन इस करैन्सी को पूरी मान्यता नहीं मिली । अन् कोई उपाय न देखकर कानफेडरेसी ने नागरिकों को समान के बदले में जबरदस्ती यह करैन्सी लोने के लिये बाध्य किया। उसने इस प्रकार धन के बजाय उत्पादन सामग्री के रूप में कर एकत्र करके किसी तरह अपना काम चलाया।

(3) उत्पादन में वृद्धि (प्दबतमेंम पद च्तवकनबजपवद) – उद्योगों की दृष्टि से उत्तर दक्षिण से रेष्ठतर था। उत्तर का औद्योगिकरण इस युद्ध में दक्षिण की हार काएक प्रमुख कारण बन गया। यदि युद्ध लम्बी अवधि तक न चलता तो दक्षिण के लोग उत्तर की इस सुविधाजनक स्थिति का सामना उस युद्ध सामग्री से कर सकते थे जो उन्होंने फेडरल सरकार के किलों पर आधिपत्य स्थापित करके वहाँ से प्राप्त की थी और जो सामग्री वे नाकाबन्दी होन के बावजूद बाहरी देशों से मँगा रहे थे।

युद्ध लम्बा खिचने पर दक्षिण को यूरोपीय देशों से युद्ध सामग्री नहीं मिल सकी। इसका कारण यह था कि उत्तर की समुद्री सेना ने उसके बन्दरगाहों की नाकाबन्दी कर दी भ। दक्षिण के सैनिकों को अच्छा भोजन, वस्त्र–शस्त्र उपलब्ध ा नहीं हो पाते थे। सैनिक कैम्पों में सफाई की भी व्यवस्था उपयुक्त नहीं थी। इसके विपरीत उत्तर की सेना को आवश्यकता की सारी चीजें उत्तर के कारखानों से मिल जाती थी। कृषि के क्षेत्र में उत्तर ने कृषि की गई मशीनरी की सहायता से खूब उत्पादन बढ़ाया जो साधारण जनता और सैनिकों की आवश्यकता के लिये ही काफी नहीं था बल्कि फालतू अनाज बाहर भी भेजा गया।

(4) योग्य सेनापति (।इसम ळमदमतंसे) – गृह–युद्ध प्रारम्भ होने पर कानफेडरेसी की सेना में अमेरिका के सबसे योग्य सेनापति थे । राबर्ट ई०ली महान और वीर सेनापति था, पर डेविस ने अपने निरंकुश स्वभाव के कारण अपने सेनापतियों की सैनिक प्रतिभा का पूरा लाभ नहीं उठाया। उसने उनको काम करने की पूरी स्वतंत्रता नहीं दी। इसके विपरीत लिंकन अपने सेनापतियों को पूरी स्वतंत्रता देने को तैयार रहता था। इस योग्य सेनापति ग्राण्ट ने ही रिशमाण्ड में ली को पराजित किया और उसे हथियार डालने को बाध्य किया। इसके अतिरिक्त दक्षिण ने एक भूल और की थी। युद्ध के शुरू में वह उत्तर पर आक्रमण करने में चूक गया और चुप बैठा रहा । इसका परिणाम यह हुआ कि इस अवधि में

उत्तर ने अपनी सेना तथा आर्थिक साधनों को पूरी तरह से युद्ध के लिये तैयार कर लिया ।

5. योग्य राजनैतिक नेता (।इसम च्वसपजपबंस स्मंकमते)– युद्ध की नीति निध ार्रित करने तथा सेनापतियों की नियुक्ति के मामले में लिंकन ने अनेक गलतियाँ की थीं। लेकिन उसमें जनता की इच्छा और भावना के अनुकूल स्वयं के बदलने की योग्यता थी । उसमे अपना विरोध और अपनी आलेचना सहने की अदम्य क्षमता थी। अतएव उसे सदैव सहयोग मिलता रहा ।

दूसरी ओर, यद्यपि डेविस हिम्मती, ईमानदार और योग्य प्रशासक के गुणों से सम्पन्न था, लेकिन संकट के समय नेतृत्व प्रदान करने के लिये जिस शारीरिक और भावनात्मक बल की आवश्यकता होती है उसका उसमें पूर्ण अभाव था । उसमें सहनशीलता का गुण नहीं था । अपनी सरकार के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। कानफेडरेल कांग्रेस द्वारा पास किये गये 38 बिलों पर उसने बीटो का प्रयोग किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे सहयोग नहीं मिल सका ।

6. श्रेष्ठ समुद्री सेना (छवइसम छंअंस च्वूमत) – उत्तर की समुद्री सेना श्रेष्ठ थी । युद्ध के दौरान उत्तर का समुद्री बेड़ा पूरी तरह से समुद्र पर छाया रहा। दक्षिण बेड़ा उसको चुनौती नहीं दे पाया। इसने उत्तर को समुद्र की ओर कानफेडरेसी पर आक्रमण करने का अवसर मिला। इसके साथ–साथ उसे दक्षिण के सभी बन्दरगाहों में नाकेबन्दी और भी अधिक दृढ़ होती रही । यह नाकाबन्दी दक्षिण की पराज्य का एक प्रमुख कारण बनी। नाकाबन्दी होने के कारण कानफेडरेसी यूरोप के देशों से मशीनें तथा गोला–बारूद नहीं मँगा सकी। इनके बिना दक्षिण युद्ध में जीत नहीं सकता था । दक्षिण अपने बन्दरगाहों की नाकाबन्दी के कारण अपना कपास भी यूरोप को नहीं भेज पाया। कपास बेचकर दक्षिण को जो धन मिलता, वह भी नाकाबंद के कारण उसे नहीं मिल पाया। नाकाबन्दी के बावजूद कुछ सामान यूरोप के देशों से दक्षिण आ रहा था लेकिन वह बहुत मँहगा मिलता था । दक्षिण ने उत्तर का सामना करने के लिए समुद्री बेड़ा बनाने का प्रयास तो किया पर उसके पास नवीन प्रकार के उन्नत तथा प्रभावी जंगी जहाज बनाने के औद्योगिक साधन नहीं थे। नाकाबन्दी ने दक्षिण के आर्थिक जीवन को अवरुद्ध कर दिया और दक्षिण की पराज्य हुई द्य

7. विदेशी सहायता न मिल पाना (छवद ।अंपसंइपसपजल वथ्वितमपहद ंपक)– यूरोप के देशों में से कोई भी देश कानफेडरेसी की सहायता के लिये नहीं आया। रूस और जर्मनी ने उत्तर को समर्थन प्रदान किया। फ्रांस और इंग्लैण्ड तटस्थ रहे। यद्यपि दोनों का झुकाव दक्षिण की ओर था, लेकिन उन्होंने दक्षिण की कोई सक्रिय सहायता नहीं की । एक व्यापारी देश होने के कारण इंग्लैण्ड ने तटस्थ रहना ही हित में समझा और इस प्रकार उत्तर और दक्षिण दोनों से व्यापार कर सका।

पश्चिमी विश्व

छव्जै

स्व–प्रगति की जाँच करें

3. गृह–युद्ध के समय दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की स्थिति काफी दृढ़ थी? इसके प्रमुख कारण लिखें।

4. गृह–युद्ध की स्थिति पर नियंत्रण के लिए लिंकन ने जो व्यवस्था की थी, उसे स्पष्ट करें।

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

247

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

सारांश

राजनीतिज्ञों, भाषण देने वालों और अखबारों के सम्पादकों ने अपने निजी लाभ के लिये जनता को गुमराह किया और उनकी भावनाओं को उभारा । क्षेत्रीय भावना को इस सीमा तक उभारा और उकसाया गया कि लोगों ने तर्कपूर्ण ढंग से सोचना ही बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षों के लोग एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस प्रकार दोनों पक्षों के प्रमुख नेताओं के गैर उत्तरदायी दृष्टिकोण के कारण ही यह युद्ध हुआ । यह निष्कर्ष रैश्डल के इस मत के अनुरूप है कि सारी पीढ़ी की गलतियों के कारण ही यह युद्ध हुआ ।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर :

1. राष्ट्रवाद (छंजपवदसपेउ) – एक विचारधारा के अनुसार गृह–युद्ध का कारण राष्ट्रवाद की भावना थी। आर्थिक विकास तथा भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप उत्तरवासियों में राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ हो गयी थी, लेकिन दक्षिण में इस भावना की कमी थी । यद्यपि दक्षिण में भी यूनियनिस्ट जैसे ग्रुप अमेरिकी राष्ट्रवाद की भावना के स्थान पर दक्षिण के प्रति राष्ट्रवाद की भावना दृढ़ थी वहाँ पर इन लोगों की संख्या पर्याप्त थी, जिन पर राष्ट्रवाद का कोई प्रभाव नहीं था, अतएव वे संघ से पृथक होना चाहते थे । 2. लिंकन के प्रयास (म्ििवतजे उंकम इल स्पदबवसद) – 4 मार्च 1861 को राष्ट्रपति लिंकन राष्ट्रपति बने। इस समय तक उत्तर दक्षिण के बीच कोई समझौता नहीं हो पाया था। अपने उद्घाटन भाषण में लिंकन ने कहा संविधान की अपेक्षा संघ अधिक पुराना है, कोई भी राज्य स्वेच्छा से संघ से अलग नहीं हो सकता, पृथकतावादी अध्यादेश अवैध है । पृथकतावाद के लिए हिंसात्मक कार्य विद्रोहात्मक और क्रांतिकारी है इस प्रकार राष्ट्रपति ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सभी राज्यों में कानून लागू करने तथा पृथक हुए राज्यों में संघीय सम्पत्ति पर पुनराधिकार करने के लिये कृत–संकल्प है। इसमें सुम्टर और पिकेस के दुर्ग भी सम्मिलित थे ।

3. इसके प्रमुख निम्न कारण थे–

.

प) आर्थिक सुदृढ़ता आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तर काफी सम्पन्न था।

पप) उत्पादन

युद्धकाल में इसका उत्पादन काफी बढ़ गया था ।
पपप) जनाधिक्य उत्तर में जनाधिक्य भी अधिक था अतः सैनिकों की भर्ती की सुविधा थी । उत्तर
में 93 राज्य थे वहाँ की जनसंख्या लगभग दो करोड़ बीस लाख थी।
4. लिंकन की भूमिका (त्वसम व िस्पदबवसद)– स्थिति पर नियंत्रण करने के लिये लिंकन ने अपने परामर्शदाताओं को नियुक्त किया। इसमें गणतंत्रवादी दल की प्रत्येक विचारधारा के लोग थे। सेवार्ड नेज और स्टैनटन उच्चकोटि के परामर्शदाता थे।
गृह–युद्ध काल में लिंकन युद्ध विभाग का प्रधान था। उसने निम्न व्यवस्था की –
(प) उसने विद्रोह के दमन के लिये सेना बुलाई,
(पप) उसने अनियमित ढंग से नियमित सेना की संख्या में वृद्धि की,
(पपप) उसने दक्षिण की नौ सैनिक नाकेबन्दी करने की घोषणा की।
अभ्यास प्रश्न
1.
अमेरिकी गृह–युद्ध के कारणों की समीक्षा करें।
2.
गृह–युद्ध के आरम्भ का वर्णन करें।
3. अमेरिकी गृह–युद्ध की प्रमुख घटनाओं की समीक्षा करें।
ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
4.
दक्षिण पर उत्तर की जीत सुनिश्चित करने वाले कारणों का विवरण दें।
248
अध्याय – 10
इटली का एकीकरण
इस अध्याय के अन्तर्गत :
कार्वेनरी का प्रारम्भ
☐ राष्ट्रवादियों और देशभक्तों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम की तैयारियाँ
मेजिनी और पीडमान्द का प्रादुर्भाव
☐ गैरीवालडी का योगदान
माक्किवश – डी– कैवूर का इटली के एकीकरण में योगदान कैवर की विदेश नीति
सम्राट विक्टर इमैन्युएल द्वितीय
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :
कार्वेनरी का प्रारम्भ क्यों हुआ?
☐ राष्ट्रवादियों और देश भक्तों द्वारा इटली में स्वतंत्रता संग्राम की तैयारियों के कारण समझ सकेंगे

bdkbl 13
ifo= ;jkih; l?k dk egRo

परिचय

नेपोलियन बोनापार्ट ने इटली के अनेक छोटे–छोटे राज्यों का अन्त करके उनको एक बड़े साम्राज्य के रूप में गठित कर दिया था। फलस्वरूप इटली की जनता में राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता आदि की भावनाएँ जागृत हो गयीं और वे देश का एकीकरण करने का प्रयास करने लगे।
1815 ई० नेपोलियन प्रथम का पतन हो गया और वियना कांग्रेस निर्णयों के अनुसार इटली को पुनः छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त कर दिया गया। प्राचीन राजवंशों के शासकवर्ग के उत्तराधिकारियों का इन राज्यों के राज्य सिंहासन पर पुनः अधिकार हो गया। इनमें से अनेक निरंकुश तथा स्वेच्छाचार थीं। साथ ही वे प्रतिक्रियावादी भी थे। शासन सत्ता प्राप्त करते ही उन्होंने अनेक कल्याण के कानूनों को समाप्त कर दिया। लोम्बार्डी तथा बेनिशिया आस्ट्रिया के साम्राज्य के अंग बन गये। असकनी परमा, लुक्का तथा मोडेन ने छोटे–छोटे राज्यों को आस्ट्रिया के राजकुमार अथवा राजकुमारियों को दे दिये गये। सेवाय में विक्टर इमेनुयल तथा पोप में रोप का शासन स्थापित था। इस प्रकार मैटरनिख के शब्दों में इटली केवल एक भौगोलिक उक्ति थी ।
कार्वेनारी का प्रारम्भ इस प्रकार वियना में एकत्रित रजनीतिज्ञों ने इटली को छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित कर दिया परन्तु वे इटलीवासियों में व्याप्त स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व की भावना एवं राष्ट्रीयता के उच्च विचारों को समाप्त नहीं कर सके। इटलीवासियों का विचार था कि वियना कांग्रेस में सम्मिलित राजनीतिज्ञों ने देश के छोटे–छोटे भागों में विदेशी शासकों को दे दिया है और वे सब उनके दास हो गये हैं। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर उन्होंने अपने देश को विदेशियों के लिए कार्बोनारी (ब्तइवदंतल) नामक गुप्त समितियाँ स्थापित कर लीं। इस सम्बन्ध में ग्रांट तथा टैम्परले का कथन है– इटली के एकीकरण के कार्य को करने के लिए गुप्त समितियाँ जिनमें कार्बोनारी सर्वप्रमुख है, प्रत्येक स्थान पर स्थापित की गयी ।
वियना कांग्रेस ने इटली की सारी व्यवस्था को समाप्त करके पुराने राज्यों का पुनरुद्धार किया था । सम्पूर्ण इटली छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित था। षीडमौण्ट सार्डीनिया परम, मोडेना, अस्कनी, नेपुल्स, सिसली आदि इटली के प्रमुख राज्य थे । लोम्बार्डी और विनिशहा दो राज्य आस्ट्रिया के अधीन थे। इनके अलावा पोप का अलग स्वतंत्र राज्य था । (टमपद–दं ब्वदहतमे) के पश्चात् इन सभी राज्यों में वहाँ के प्राचीन निरंकुश राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन कर दिए गए और राष्ट्रीयता तथा उदार विचारों का प्रभाव नष्ट करा

दिया गया।

इटली के राष्ट्रवादी और देशभक्तों हेतु पुरातन व्यवस्था की यह स्थिति असह्य थी। नेपोलियन के जमाने में वे राष्ट्रीय एकता का अनुभव कर चुके थे और चाहते थे कि उनका देश राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर एक हो जाये और इटली में जनतंत्र के सिद्धान्तों के आधार पर शासन कायम हो । परन्तु राष्ट्रीयता के नाम पर इटली में किसी प्रकार का आन्दोलन मेटरनिख के रहते असम्भव था। इस हालत में जगह–जगह गुप्त समितियाँ संगठित होने लगीं। इनमें ब्तइवदंतल समिति सबसे प्रमुख थी । संवैधानिक स्वतंत्रता का प्राप्त करना एवं विदेशियों को इटली से बाहर निकालना इस समिति के प्रमुख उद्देश्य थे। इटली देशभक्तों की यह एकमात्र संस्था थी जिसमें सभी वर्ग के लोग सम्मिलित थे। 1834 तक कार्बोनरी समिति के नेतृत्व में ही इटली का स्वातन्त्र्य संग्राम चलता रहा ।

1820–21 के विद्रोह – स्पेन के विद्रोह से प्रेरणा लेकर 1820 में नेपेल्स और 1821 में पीडमौण्ट के देशभक्तों की क्रांति की ज्वाला को भीषण रूप से सुलगाकर वहाँ के राजाओं को खदेड़ भगाया गया परन्तु मेटरनिख ने ऑस्ट्रिया से सेना भेजकर इटली के दोनों राज्य की क्रांतियों का दमन करवा दिया और यह नवीन संविधानों को भंग कर राज्य सिंहासनों पर पुनः निरंकुश राजाओं को बैठा दिया। तत्पश्चात् इटली में प्रतिक्रियावादी कठोर शासन प्रारम्भ हुआ। उन पर भीषण अत्याचार किए गये। जीरो की संस्था में क्रांतिकारी जेल में बन्द कर दिए गए।

1830–31 के विद्रोह – असंतोष की ज्वाला इटली में बुझी नही । सम्पूर्ण इटली में ब्तइवदंतल समितियों का जाल बिछा दिया गया। इटली के राष्ट्रवादी चुपके–चुपके राष्ट्रीयता संग्राम की तैयारी करने लगे। 1820 में फ्रांस में जुलाई क्रांति की सफलता ने इटली के देशभक्तों में नवजीवन का संचार किया । इटली के एक कोने से दूसरे कोने तक विद्रोह की अग्नि धधक पड़ी। इसी बीच आस्ट्रिया की सेना तुरन्त इटली पहुँच गयी और विद्रोहियों का दमन क्रूरतापूर्वक किया गया। क्रांति की लहर फिर रुक गयी। इस प्रकार इटली में उदारवाद को एक बार फिर पराज्य मिली।

मेजिनी और युवा इटली – 1815 से 1831 तक इटली की एकता स्थापित करने के लिए जो प्रचार हुए थे वे बेकार साबित हुए । इसी समय इटली में ड्रंपदप नामक एक महान् विभूति का प्रादुर्भाव हुआ उसने इटली के राष्ट्रीय जीवन में एक नयी जान फूँक दी। इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन का वह पैगम्बर था। बचपन से ही उसमें देशभक्ति की भावना कूट–कूटकर भरी थी । 1830 की क्रांति के पूर्व वह कार्बोनरी समिति का सदस्य था। उस वर्ष की क्रांति में उसने भी भाग लिया था जब क्रांति दबा दी गयी तो सेबोना दुर्ग में उसे कैदी बनाकर भेज दिया गया था। जेल में उसको इटली मुक्त करने के आह्वान मिला था। बाद में वह निष्कासित कर दिया गया। देश–विदेश में घूमने के बाद वह 1831 ई० फ्रांस पहुँचा और वहाँ ल्वनदह प्सजंसल नामक एक संस्था की स्थापना की जिसने

राष्ट्रीय आन्दोलन में शीघ्र ही कार्बोनरी का स्थापना ले लिए और नवीन इटली के निर्माण में बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया। युवकों पर मेजिनी का पूरा–पूरा भरोसा था। उसका कहना था कि यदि समाज में क्रांति लानी हो तो क्रांति का नेतृत्व नवयुवकों के हाथ में दे दो । युवक समाज के सदस्यों में असीम शक्ति छिपी होती है। इस प्रकार मेजिनी के पास ऐसे बहुत से नवयुवक इकट्ठे हो गए, जिसमें देशभक्त का अपार जोश था और जो भारी से भारी कठिनाइयों का सामना करने के लिए भी तैयार थे। मेजिनी ने अपनी संस्था द्वारा देश–प्रेम की उत्कृष्ट भावना उत्पन्न की। चरित्रवान, वीर साहसी और स्वतंत्रता संग्राम के लिए योग्य सैनिक बनाया और संगठित करके उनमें विप्लव की प्रवृत्ति उत्पन्न की। मजिनी के संदेशों ने युवकों में जोश फूँक दिया। स्थान–स्थान पर इसकी शाखाएँ खुलने लगी और दो वर्ष के भीतर ही इसके साठ हजार सदस्य हो गए। इटली का स्वतंत्रता संग्राम एक नये युग में प्रविष्ट हुआ और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए शक्तिशाली जनमत तैयार हो गया।

इसी समय इटली के कुछ निर्वासित देशभक्त इटली से बाहर काम कर रहे थे। विदेशों में इटली के एकीकरण के पक्ष में प्रचार करना उसका मुख्य उद्देश्य था । इनमें उन्हें आशातीत सफलता मिली। विदेशों का जनमत इटली के पक्ष में तैयार होने लगा। इटलीवालों के साथ इंग्लैण्ड की पूरी सहानुभूति थी ।

इटली के सारे राष्ट्रवादियों में अपार जोश छाया रहा। सन् 1818 ई० में, जब सारे यूरोप में क्रांतियाँ प्रारम्भ हुईं तो उसका इटली पर भी प्रभाव पड़ा। इटली के एक छोर से दूसरे छोर तक राष्ट्रवादी और प्रजातांत्रिक आन्दोलन शुरू हो गए। सिसली के लोगों ने इसी वर्ष सिसली के सुधार एवं लोगों के राजनीतिक अधिकार हेतु विद्रोह शुरू किया । वहाँ के राजा ने शुरू में विद्रोह का दमन किया, परन्तु अन्त में उसे मुँह की खानी पड़ी और सिसली में वैधानिक सरकार स्थापित हो गई। मार्च 1848 में तीनों राज्यों – नेपल्स, सिसली और टस्कनी संविधान जारी करके संसदीय शासन लागू कर लिया गया । इटली के अधीन इस प्रकार लोम्बार्डी और विनिशिया को छोड़कर लगभग सारे इटली में सांविध ाानिक राजतंत्र स्थापित हो गए ।

सन् 1850 ई० के पहले ही पीडमांट इटली के देशभक्तों का केन्द्र बन गया था। फिर इटली में केवल यही राज्य था जिसका शासक इटली का था जो अनेक कठिनाइयों के बीच में रहकर भी संविधान में आस्था रखता था। इसी बात को लेकर उसने सन् 1858 ई० में आस्ट्रिया के साथ घमासान युद्ध किया था। अतः इटली के सभी देशभक्तों को यह गहरा विश्वास जम गया था कि पीडमान्ट के नेतृत्व में ही उनके देश का कल्याण हो सकता है।

मेजिनी के समान इटली में एक दूसरा देशभक्त था जिसने अपने प्रसिद्धपत्र त्पेवतहपउमदजव के द्वारा सुधार और एकता के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया। उसके विचारों से प्रेरित होकर टपबजवत म्उंदनमस प्प ने 1850 में को अपने मंत्रिमण्डल में ले लिया। वह सन् 1852 ई० में प्रधानमंत्री भी हो गया और काबूर इस पद पर सन् 1861 तक बना रहा। सिर्फ बीच में उसे पद त्याग

करना पड़ा था ।

काबूर

के प्रधानमंत्री हो जाने के बाद इटली की स्वतंत्रता और एकता दूसरे राष्ट्रों की सहायता पर निर्भर करती है। ऐसा उसे विश्वास था । उसने पिडमांट में संसदीय शासन प्रणाली का विकास किया तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया। उसने देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया ओर वाणिज्य–व्यवसाय की उन्नति के लिए विशेष प्रबन्ध किया । कारखानों को सरकारी सहायता दी ओर रेलों, सड़कों तथा नहरों का विस्तार किया। शिक्षकों की उन्नति की गई और सेना में सुधार किया गया। काबूर ने चर्च की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया। उसने कृषि को उन्नत किया और दलदलों एवं उजाड़ प्रदेशों को हरे–भरे खेतों में परिवर्तित कर दिया। देखते–देखते पीडमाण्ट एक आधुनिक राज्य बन गया।

इटली के एकीकरण के लिए काबूर की अपनी नीति और अपना तरीका अलग था। काबूर अपनी नीति द्वारा इटली को आस्ट्रिया की ताकत से शक्ति दिलाकर सेवाय वंश के नेतृत्व में एक करना चाहता था । अतः काबूर इटली की समस्या को एक अन्तर्राष्ट्रीय बना देना चाहता था। 1815 से बराबर इटली को आस्ट्रिया का घरेलू मामला समझा जाता था ।

एक बार काबूर ने कहा था, हम चाहें या न चाहें, हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है। अतएव आस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस को समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करके इटली का एकीकरण सम्भव बनाना । काबूर नीति था । इधर टर्की के प्रश्न को लेकर रूस से इंग्लैंड और फ्रांस का झगड़ा चल रहा था काबूर के लिए यह बहुत ही सुन्दर मौका था। वह शीघ्र की फ्रांस और इंग्लैण्ड की क्रीमिया की लड़ाई में तन–मन–धन से मदद करने लगा। सार्डीनिया की सेना बहुत बहादुरी के साथ लड़कर विजय प्राप्त कर अपने देश लौट आयी। इसी जीत से पीडमाण्ट को अत्यधिक लाभ हुआ। पेरिस की संधि के अवसर पर सन् 1856 ई० में काबूर ने इटली के प्रश्न को उठाया और आस्ट्रिया के शासन की खूब भर्त्सना की । फलतः सारे यूरोप की बड़ी–बड़ी शक्तियाँ भी उस समस्या पर विचार करने लगीं।

काबूर ने पुनः एक दूसरा कदम उठाकर फ्रांस के शासक नेपोलियन को इटली की मदद हेतु अपनी तरफ मिला लिया। इन दोनों में सन् 1856 में संधि हुई। यह तय हुआ कि आस्ट्रिया के युद्ध में नेपोलियन तृतीय सार्डीनिया की मदद करेगा। साथ ही साथ यह भी तय किया गया कि लम्बार्डो और बैनिशिया से खदेर कर ये दोनों प्रांत मिला दिये जायेंगे । नेपुल्स और रोम को अक्षुण्ण रखा जायेगा और बचे हुए को अलग राज्य बना दिया जाये । बदले में फ्रांस को नीस और सेवाय देने की बात कही गई।

प्लाम्बियर समझौते के अनुसार आस्ट्रिया से युद्ध का बहाना ढूँढ़ना सार्डीनिया का उत्तरदायित्व था। इसीलिए उसने शीघ्र ही सार्डीनिया का शस्त्रीकरण करना

प्रारम्भ कर दिया। इस पर आस्ट्रिया ने उसे चेतावनी देना प्रारम्भ किया और तीन दिनों के भीतर ही उसने उत्तर माँगा परन्तु काबूर ने इस ओर ध्यान न दिया और अपनी योजना में ही व्यस्त रहा। अन्त में आस्ट्रिया ने सेनापति गले के नेतृत्व में 1,00,000 सेना के साथ 19 अप्रैल 1859 ई को को पीडमाण्ट पर आक्रमण कर दिया। इसके ठीक 10 दिनों बाद 29 अप्रैल 1859 ई० को फ्रांस से भी दो लाख सैनिक काबूर की मदद में आ पहुँचे । युद्ध में आस्ट्रिया की सेना हर जगह पराजित होने लगी। आस्ट्रिया की सेना लोम्बार्डी से खदेड़ दी गई । प्रतीत होने लगा था कि कुछ ही दिनों में इटली पर आस्ट्रिया के प्रभाव एवं आधि ापत्य का अन्त हो जायेगा ।

जिस समय काबूर विजय प्राप्त कर रहा था उसी समय नेपोलियन ने उसे धोखा दे दिया और युद्ध से अलग हो गया। इतना ही नहीं उसने टपबजवत म्उंदनमस से बिना पूछे ही श्रनसल 14, 1859 में आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ से टपससंतिंदबम नामक स्थान पर मुलाकात कर एक संधि कर ली और अपनी सेना युद्ध भूमि से हटा लिया। काबूर युद्ध को जारी रखना चाहता था परन्तु सम्राट के राजी न होने पर काबूर ने अपना पद त्याग दिया। अन्त में दुःखित होकर काबूर ने अपने एक मित्र से कहा था कि – छवजीपदह तमउंपदे वित उम दवू इनज जव चनज ' इनससमज जीतवनही उल ीमंक तत्पश्चात् म्उंदनमस ने द्वितीय रेटाजी को अपना प्रधानमंत्री बनाया परन्तु उससे काम नहीं निकलता था। इसलिए 20 जनवरी, 1860 ई० को काबूर पुनः प्रधानमंत्री हुआ ।

राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने की भावना 1859 में ही प्रबल हो गई थी। आटिया के साथ युद्ध आरम्भ होने से सारा इटली राष्ट्रीयता की लहर से ओतप्रोत था । उसी समय मध्य इटली की जनता ने विद्रोह कर दिया

और प्रस्ताव स्वीकार करके यह निर्णय किया कि उनके राज्य सार्डीनिया के साथ मिला दिये जाएँ । काबूर ने नेपोलियन को नीस और सेवाय का लालच देकर इस बात पर राजी करा लिया। फलतः मध्य इटली के राज्य परमा, मोडेना तथा रोम सार्डीनिया में मिल गए। बैनेशिया को छोड़कर समस्त इटली उत्तरी इटली तथा मध्यवर्ती डचियों में एक शक्तिशाली इटालियन राज्य का निर्माण हो चुका था । 2 अप्रैल 1860 की सम्राट टपबजवत म्उंदनमस के नवीन संघीय शासन के अन्तर्गत ट्यूरिन में संसद का उद्घाटन किया ।

1860 ई० में सिसली की जनता ने बूब के निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ऐसे मौके पर प्रसिद्ध महान देशभक्त गैरीबाल्डी आगे बढ़ा। गैरीबाल्डी को इटली महत्ता और एकता में वैसा ही विश्वास था जैसा कि सन्तों को ईश्वर में रहता है। मई 1860 ई० में गैरीबाल्डी ने अपने प्रसिद्ध एक हजार कुर्तीवालों के साथ जेनोआ से प्रस्थान किया ओर सिसली पर आक्रमण कर दिया। 18 मई 1860 को कैलेटैफी नामक स्थान पर गैरीबाल्डी और नेपल्स की सेनाओं में पहली टक्कर हुई। गैरीबाल्डी विजयी हुआ

और 5 दिनों के भीतर वह सिसली की राजधानी पैलरमों तक पहुँच गया और अपने आपको उसने सिसली का अधिनायक घोषित कर दिया। तत्पश्चात् उसने

यह घोषणा की कि नेपल्स ओर सिसली इटली के राज्य में उसी समय शामिल किये जायेंगे जबकि रोम को जीत कर वह टपबजवत म्उंदनमस को राजा घोषित करेगा । गैरीबाल्डी अब रोम पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। इटली ने राष्ट्रीय एकीकरण को पूर्ण करने के लिए 27 अक्टूबर 1860 की नेपल्स का शासन सम्राट विक्टर इमान्युएल को सौंप दिया। नवम्बर में दक्षिणी इटली में जमनत कराया गया। जनता ने जबरदस्त बहुमत से इटली के राज्य में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। 7 नम्वबर को विक्टर इमैन्युएल के साथ फिर नेपल्स आया। 9 दिसम्बर, 1860 को नेपल्स के राजमहल में एक भव्य दरबार का आयोजन करके सम्राट टपबजवत म्उंदनमस को संयुक्त इटली का राज्य सिंहासन अर्पित किया गया। गैरीबाल्डी ने विधिवत अपने अधिकार को त्याग कर विक्टर इमैन्युएल को राजा घोषित किया। इटली की मुक्ति कराने में गैरीबाल्डी ने परमवीर का काम किया । इतिहास में गैरीबाल्डी सदा अपने त्याग से अपूर्व देशभक्ति और आश्चर्यपूर्ण वीरता के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

बेनेशिया और रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली का एकीकरण हो चुका था। परंतु दुर्भाग्यवश 7 जून 1861 ई० में ही काबूर की मृत्यु हो गयी । इटली के इतिहास में काबूर का नाम सदा अमर रहेगा। इटली के एकीकरण का प्रधान श्रेय मेजिनी, गैरीबाल्डी, काबूर तथा विक्टर इमैन्युएल को है। जैसा कि इतिहासकार केटेलबी ने लिखा है – जेमिनी एक अव्यावहारिक आदर्शवादी था तथा गैरीबाल्डी एक महान लड़ाकू था परन्तु काबूर के बिना मेजिनी का आदर्श और गैरीबाल्डी की वीरता निष्फल लड़ाई और निराशा के इतिहास में एक अध्याय और बढ़ा देते । वास्तव में काबूर के द्वारा ही इटली का एकीकरण संभव हुआ। यह काबूर के महान मस्तिष्क का कार्य था जिसने मेजिनी की प्रेरणा की कूटनीतिक शक्ति थे और गैरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र के रूप में परिणत कर दिया।

तत्पश्चात् इटली वाले एक ऐसे मौके की ताक में थे, जब आस्ट्रिया की विपत्ति से लाभ उठाकर वे वेनेशिया पर कब्जा कर लें। 1866 में आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध छिड़ गया । इटली ने बेनेशिया पर आक्रमण कर दिया। जब आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध समाप्त हुआ तो विस्मार्क बेनेशिया को विक्टर इमैन्युएल को दिया गया। जब जनमत कराया गया तो जनता ने इटली के पक्ष में अपना मत दिया और 1866 ई० में बेनेशिया इटली में मिला लिया गया।

इस तरह सम्पूर्ण इटली का एकीकरण हो गया परंतु रोम अभी भी अलग था। रोम पर अधिकार करने का अवसर इटली को 1870 ई० में मिला। उस वर्ष फ्रांस और प्रशा के बीच युद्ध शूरू हो गया। इसी समय उसने रोम पर आक्रमण कर 20 सितम्बर ई० को उस पर अधिकार कराया गया। पोप के पक्ष में केवल 16 मत मिले। अतः रोम इटली में शमिल हो गया। 1871 ई० में रोम स्वतंत्र हो गया और संयुक्त इटली को राजधानी बनाया गया। जून 1871 ई० में टपबजवत म्उंदनमस अपने परिवार, राजदरबारों और संसद के साथ रोम चला आया ।

स्व–प्रगति की जाँच करें :

1. कैवूर के पद त्याग करने और पुनः पदासीन होने की घटना स्पष्ट करें।

2. विक्टर इमैन्युप्ल की मृत्यु

तत्पश्चात् जनता को सम्बोधित करते हुए उसने कहा – '' हम रो में आ गए हैं और यहीं रहेंगे ।'' इस तरह इटली का एकीकरण पूरा हो गया। अन्त में सन् 1878 में टपबजवत म्उंदनमस की मृत्यु हो गई ।

इटली के एकीकरण के विभिन्न चरण

प्रथम चरण (थ्पतेज ैजंहम) – पीडामाण्ट के प्रधानमंत्री काबूर ने फ्रांस के सम्राट नेपोलियन तृतीय को नीस तथा सेवाय के प्रदेश प्रदान करने का लालच देकर पीडामाण्ट के लिए दो लाख फ्रांसिसी सैनिकों की सहायता प्राप्त कर ली और विक्टर इमैन्युएल से आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। मजेन्टा तथा सेलफिरमी के युद्ध में आस्ट्रिया को पराजित करके लोम्बार्डी से निकाल दिया गया। इस प्रकार लोम्बार्डी को प्राप्त कर लेना इटली एकीकरण का प्रथम चरण था ।

द्वितीय चरण ैमबवदक ैजंहम) – उत्तरी इटली की परमा, मोडेना, रोमेगना तथा रस्कनी आदि छोटी–छोटी रियासतों की जनता के हृदयों में राष्ट्रीय भावनाएँ प्रबल हो उठी थीं। अतः जनमत के आधार पर इन्हें पीडमाण्ट के साथ सम्मिलित करने का निश्चय किया । आस्ट्रिया ने इस प्रकार के निश्चय का दृ ढ़ता के साथ विरोध किया परंतु काबूर के प्रयत्नों के फलस्वरूप नेपोलियन तृतीय ने इसका समर्थन किया और आस्ट्रिया के विरोध की अवहेलना कर दी। इन चारों राज्यों ने जनमत के समय पीडमाण्ट के साथ विलय कर दिया गया।

तृतीय चरण (जीपतजी ैजंहम) – सिसली निवासियों ने 1860 ई० में अपने राज्य के बूब वंशीय शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ग्यारह सौ सैनिकों के साथ वीर गैरीबाल्डी ने सिसली पर अधिकार कर लिया । नेपल्स के शासक को अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागना पड़ा । गैरीबाल्डी ने अपनी विजय से उत्साहित होकर नेपल्स पर आक्रमण कर दिया और नेपिल्स पर उसका निर्विरोध अधिकार हो गया।

विक्टर इमैनुएल ने पोप के अन्तर्गत तथा अम्ब्रिया तथा मार्चेज (न्उइतपं ंदक डंतबीमे) के प्रदेशों को अपने अधिकारों में कर लिया। 27 अक्टूबर 1860 को गैरीबाल्डी नेपिल्स और सिसली का शासन विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को अर्पित कर दिया। अम्ब्रिया, मार्चेज, नेपिल्स को जनमत द्वारा पीडमाण्ट के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया । यह इटली का तृतीय चरण था जिसे पूर्ण करते ही बेनेशिया तथा रोम के अतिरिक्त सम्पूर्ण इटली का एकीकरण हो चुका था।

चतुर्थ चरण – (थ्वतजी ैजंहम) – 1866 ई० में ओस्ट्रो प्रशियन युद्ध (।नेजतव – च्तनेेपंद ॅंत) हुआ। प्रशा के प्रधानमंत्री विस्मार्क ने विक्टर इमैन्युएल को वचन दिया था कि यदि वह बेनेशिया पर आक्रमण करे तो वह उसे प्राप्त हो सकता है। एक विशाल आस्ट्रियन सेना इटालियन सेना का सामना करने के लिए बेनेशिया में पड़ी थी । अतः वह प्रशा के विरुद्ध अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग नहीं कर सका । विवश हो आस्ट्रिया को प्रशा के साथ संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार बेनशिया का प्रदेश इटली को प्रदान किया

गया।

पाँचवाँ (थ्पजीि जंहम) – 1870 ई० में फ्रेको प्रशियन (थ्तंदबव च्तनेेपंद ॅंत) युद्ध आरम्भ हो जाने पर विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को रोम पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया, क्योंकि नेपालियन तृतीय ने अपनी सेना वापस बुला ली थी। नेपोलियन तृतीय के पतन के उपरांत विक्टर इमैन्युएल ने रोम पर आक्रमण करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। एक विशाल समारोह का आयोजन करके इटली को राजधानी घोषित किया गया। इस प्रकार इटली का एकीकरण सम्भव हो सका।

काबूर और गैरीबाल्डी

कैबूर (ब्ंअवनत) दृ 10 अगस्त 1810 ई० को टुरिन नामक नगर के एक कुलीन वंश में कैबूर का जन्म हुआ था। इसके पिता माक्किवश – डी– कैबूर ने उसे इंजीनियरिंग की शिक्षा दिलाई। इसके पश्चात् कैबूर सेना में भर्ती हो गया परंतु यह कार्य उसी रुचि के अनुसार नहीं था । अतः उसने 1831 ई० में त्याग–पत्र दे दिया। अब वह अपने पिता की जमीदारी की देखभाल करेन लगा । यहाँ रहकर उसने इतिहास

तथा अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के साथ–साथ फ्रांसीसी समाचार पत्रों के लिए अंग्रेजी अनाज अधिनियम (जैम म्दहसपेी ब्वतद स्ूं) के विरुद्ध आलोचनात्मक लेख लिखे । उसने देश तथा विदेश की कृषि समितियों में भाग लिया। अपने देश में उसने रेल व्यवस्था की उन्नति के लिए प्रयास किये। इसी काल में उसने प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्थाओं के अध्ययन के उद्देश्य से इंग्लैण्ड, फ्रांस स्विटजरलैण्ड की भी यात्रा की । वह इंगलैड की सभा (भ्वनेम व ब्वउउवदे) से सर्वाधिक प्रसन्न हुआ। इंग्लैण्ड की लोकसभा से प्रभावित होकर उसने एक बार कहा था– ओह यदि मैं अंग्रेज होता तो मैं इस समय तक कुछ होता और मेरा नाम पूर्ण रूप से अपरिचित नहीं होता ।

कैबूर ने 1847 ई में रिसओरिज्जीमेट (त्पेवतपहपउमदज) नामक उदार नीति वाले समाचारपत्र का सम्पादन करके अपने आपको इटली के एकीकरण में लगा दिया। वह अब धीरे–धीरे चारों ओर प्रसिद्ध होने लगा । 1848 ई० में पोलैण्ड के संसद सदस्य निर्वाचित होने पर उसने अनेक लोककल्याण कारी नियम पारित कराये। 1850 में उसे पीडमाण्ट के मंत्रिमण्डल में कृषि तथा वाणिज्य विभाग का मंत्री नियुक्त किया गया। 1851 ई में उसे अर्थ विभाग भी सौंप दिया गया । वह अत्यन्त कार्य कुशल तथा योग्य मंत्री था, जिससे प्रभावित होकर पीडमाण्ट के शासक विक्टर इम्न्युयल ने उसे 1852 ई में सार्डीनिया और पीडमाण्ट के सम्मिलित राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया।

वह सदैव ही इटली के एकीकरण के विषय में सोचा करता था और उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन भर प्रयत्न किया तथा काफी सफल भी रहा । कैबूर एक उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ तथा प्रजातंत्र का समर्थक था। उसने अपने एक मित्र को एक बार लिखा था। संसद अधिवेशन होते समय मैं अपने आपको सर्वाधिक शक्तिशाली अनुभव करता हूँ। मैं अपनी उत्पत्ति को धोखा नहीं दे सकता और

न ही अपने सम्पूर्ण जीवन के सिद्धान्तों को त्याग सकता हूँ। मैं स्वतंत्रता का पुत्र हूँ। और आज मैं जो कुछ भी हूँ उसके लिए स्वतंत्रता का ही ऋणी हूँ। यदि उसकी प्रतिभा पर पर्दा डाला जाना हो तो मैं इस कार्य को नहीं कर सकूँगा ।

कैबूर प्रधानमंत्री के रूप में (1852–1861)

(ब्ंअवनत े चतपउम–डदपेजमत 1852–1861)

गृह–नीति (भ्वउम च्वसपबल) – कैबूर सार्डीनिया पीडमाण्ट की संरक्षता में इटली का एकीकरण करने का इच्छुक था और इस कार्य के लिए इटली के अन्य राजाओं को भी प्रेरित करना आवश्यक था । सार्डीनिया पीडमाण्ट के संरक्षण में इटली के एकीकरण के लिए अन्य राजाओं को प्रेरित करने के उद्देश्य से कैबूर ने सार्डीनिया पीडमाण्ट को एक आदर्श राज्य में परिवर्तन कर दिया। जिसके फलस्वरूप अन्य राज्य उसका नेतृत्व करने के लिए उनकी ओर आकर्षित होने लगे । सार्डीनिया पीडमाण्ट को आदर्श प्रजातंत्रीय राज्य बनाने के लिए कैबूर ने निम्नलिखित कार्य किए–

उसने व्यापारिक उन्नति के लिए फ्रांस तथा इंग्लैण्ड आदि देशों में व्यापारिक संधियाँ कीं जिसके फलस्वरूप सार्डीनिया से पीडमाण्ट में आने वाले माल पर चुंगी की दर कम कर दी गई। इनसे

केवल कच्चा माल ही सुगमता से प्राप्त होने लगा वरन् सभी प्रकार का माल सस्ता हो गया। यातायात के साधनों की उन्नति करने के उद्देश्य से रेलों तथा सड़कों की व्यवस्था ठीक प्रकार से की गई और उसने 1854 ई० से प्युरिन से जेनेवा तक की एक महत्वपूर्ण रेलवे लाइन का उद्घाटन किया।` कृषि की उन्नति के लिए अनेक सहकारी समितियों की स्थापना की गई। व्यापारिक उन्नति के लिए पुराने बैकों में सुधार करने के साथ–साथ नवीन बैंकों की भी स्थापना की गई और स्वतंत्रता एवं मुक्त व्यापार के सिद्धान्त (च्तपदबपचसम व िथ्तमम जतंकम) को अपनाया गया ।

शिक्षा में भी आश्चर्यजनक उन्नति की गई और अनेक नवीन शिक्षण संस्था की स्थापना की गई।

5. गणतंत्र के साथ–साथ आतंकवाद का भी प्रचार किया गया तथा सामुद्रिक एवं व्यापारिक अड्डों की स्थापना की गई और जनरल मारेलोला की अध्यक्षता में सैन्य शक्ति में न केल वृद्धि की गई वरन् सेना का पुनर्गठन भी किया गया।

पश्चिमी विश्व

चर्च की सम्पत्ति पर अनेक प्रकार के कर लगाये गये और अनावश्यक गिरजाघरों को समाप्त कर दिया। कैबूर स्वतंत्र देश में स्वतंत्र धर्म के सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था । अतः उसने पोप की सत्ता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया और सार्डीनिया पीडमाण्ट को एक वैधानिक राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया तथा वह प्रायः कहा करता था – वह अपने चारों ओर इटली की जीवित शक्तियों को आकर्षित कर लेगा और फिर जिस उद्देश्य की प्राप्ति की उससे उपेक्षा की जाती है उसमें इटली का नेतृत्व करने में वह समर्थ होगा।

विदेश नीति (थ्वतमपहद च्वसपबल)– यूरोप में इटली के लिए मित्रों की खोज

ही कैबूर की विदेश नीति की आधारशिला थी । एक कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति वह जानता था कि इटली को आस्ट्रिया के चंगुल से बिना अन्य राष्ट्रों की सहायता से मुक्त नहीं कराया जा सकता और इस कारण मित्र राष्ट्रों की खोज ही उसकी विदेश नीति का प्रथम लक्ष्य था प्रो० राबर्ट ने इस सम्बन्ध में लिखा है उसने सार्डीनिया के लिये यूरोपीय देशों का सम्मान तथा उसकी मित्रता प्राप्त करना ही अपना प्रथम लक्ष्य बनाया। उसने मेजिनी तथा उसके सहयोगियों की क्रांतिकारी योजनाओं, जिन्होंने कि उनको व्यवस्थित सरकार के समर्थकों से पृथक कर दिया था, का कठोरता के साथ दमन कर दिया।

अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिए कैबूर ने निम्न प्रयत्न किए –

कैबूर ने 1855 ई० में लोम्बार्डी से भागे हुए शरणार्थियों को अपने यहाँ स्थान प्रदान किया और आस्ट्रिया ने उनके ऊपर अपना विरोध प्रकट करते हुए वियना से अपने राजदूत को वापस बुला लिया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस ने कैबूर का समर्थन किया। सार्डीनिया पीडमाण्ट की सरकार ने शरणार्थियों को सहायता प्रदान की।

सार्डीनिया पीडमाण्ट के समाचार–पत्र आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रचार करने लगे और जनता ने युद्ध सामग्री खरीदने के लिए धन एकत्रित करना आरंभ कर की निन्दा की क्योंकि उनके विचार में रूस के विरुद्ध टर्की की प्रतिक्रियावादी सरकार की सहायता करना अनुचित तथा अर्थहीन था । कैबूर ने उनकी आलोचना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और युद्ध – क्षेत्र में निरन्तर अपनी सेनायें भेजता रहा। उसका विचार था – '' यूरोप की वर्तमान राजनैतिक स्थिति में इटली के एकीकरण में ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस के साथ मित्रता ही एकमात्र उपाय है जो कि हमें सहायता के रूप में प्राप्त है। ''

अतः इंग्लैण्ड तथा फ्रांस की सहायता के लिए सार्डीनिया की सेना भेजी गई, जिसने युद्ध क्षेत्र में आश्चर्यजनक वीरता का परिचय देते हुए अद्‌भुत सफलता प्राप्त की । जब सार्डीनिया की सेना ने कैबूर से क्रीमिया की कीचड़ के विषय में शिकायत की तो कैबूर ने उत्तर दिया था– इस कीचड़ से इटली का नव–निर्माण होगा।

3. क्रीमिया के युद्ध के उपरान्त 1856 में पेरिस की शान्ति सभा में कैबूर को भी आमंत्रित किया गया और इस प्रकार सार्डीनिया पीडमाण्ट को भी यूरोपीय राष्ट्रों में वही स्थान प्राप्त हो गया जिसके लिए कैबूर लालायित था । पेरिस की शान्ति सभा में कैबूर ने अन्य शक्तिशाली यूरोपीय राष्ट्रों के सम्मुख आस्ट्रिया पर अनेक दोष लगाये तथा इस कार्य में उसे फ्रांस और इंग्लैण्ड का समर्थन प्राप्त हुआ। अपने देश वापस आने पर उसने सहर्ष अपनी सरकार को सूचित किया शक्तिशाली राष्ट्रों ने घोषित किया कि इटली के दोषों को दूर करने के उपाय न केवल इटली के हित में वरन् यूरोप के हित में आवश्यक है ।

इस प्रकार क्रीमिया के युद्ध में भाग लेकर सार्डीनिया पीडमाण्ट का राज्य इटली के एकीकरण के आन्दोलन का नेतृत्व करने लगा।

4. इंग्लैण्ड तथा फ्रांस दोनों ही आस्ट्रिया विरोधी थे इसलिये कैबूर ने इन दो

देशों की मित्रता प्राप्त करने का प्रयास किया। कैबूर को इंग्लैण्ड की शासन प्रणली ने आत्यधिक प्रभावित किया था और इंग्लैण्ड की जनता की सहानुभूति इटली के एकीकरण के प्रश्न में थी परंतु इंग्लैण्ड की सरकार 1815 ई० की वियना व्यवस्था को बनाये रखना चाहती थी। फ्रांस पोप की अध्यक्षता में इटली के एकीकरण के पक्ष में था और वियना व्यवस्था को समाप्त करने का इच्छुक था । इस प्रकार इटली के नेता कैबूर के लिये इंग्लैण्ड तथा दो भिन्न मत वाले देशों की मित्रता प्राप्त करना ठीक कार्य था।

फ्रांस के समय भी ओसीनी ने इटली जिन्दावाद का नारा लगाया था। ओसीनी के इस बलिदान से नेपोलियन तृतीय अत्यधिक प्रभावित हुआ। कुछ व्यक्तिगत भय के कारण, कुछ इटली की वास्तविक शक्ति तथा इंग्लैण्ड एवं आस्ट्रिया के मध्य बढ़ती हुई मैत्री को रोकने के उद्देश्य से सम्राट नेपोलियन तृतीय कैबूर के साथ संधि करने के लिए सहमत हो गया।

इटली का एकीकरण

कैबूर का मूल्यांकन मुख्यतया कैबूर का ही कार्य था । गैरीबाल्डी तथा मैजिनी की कल्पनाओं को उसने साकार किया। उसके सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं होगा वह तीव्र बुद्धि वाला था उसने मैजिनी की प्रेरणा को एक कूटनीतिज्ञ शक्ति तथा गैरीबाल्डी की तलवार को राष्ट्रीय शस्त्र में परिवर्तित कर दिया। कैबूर स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र को घोर समर्थक तथा कट्टर उपासक था। उसके विषय में ठीक ही लिखा गया कि यदि यूरोपीय शक्तियों का विश्वास सहानुभूति में से जिनकी बुद्धि को संकटकालीन स्थिति में मान्यता प्रदान की जाती है, एक न होता तो मैजिनी के समस्त प्रयास संदेहपूर्ण षड्यंत्रों में विफल हो जाने तथा गैरीबाल्डी का शस्त्रों का चमत्कार इटली के इतिहास में अनुत्पादक देशभक्ति का एक और अध्याय जोड़ देना ।

महान् राजनीतिज्ञ कैबूर ने इटली के संगठित राज्य को दृढ़ता प्रदान की तथा उसे विकास के पथ पर अग्रसर किया। केवल कैबूर ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसे इटली के एकीकरण करने जैसे कठिन कार्य में आश्चर्यजनक सफलता मिली। नेपोलियन तृतीय उसकी पत्नी तथा उसके विश्वासपात्र मंत्रियों ने सार्डीनिया की विजय में सशंकित होकर तथा रोम में पोप की सत्ता बनाये रखने के उद्देश्य से सार्डीनिया के साथ विश्वासघात करके आस्ट्रिया के साथ संधि कर ली तो कैबूर को नेपोलियन के इस कार्य से महान दुख हुआ और हृदय से उसने अपने एक मित्र को लिखा– मेरे पास सिवाय इसके कि मैं अपने सिर में गोली मारकर आत्महत्या कर लूँ अन्य कोई उपाय नहीं हैं उसने नेपोलियन तृतीय की सहायता के बिना ही युद्ध करने का निश्चय किया, जिससे उसके दृढ़ निश्चय होने का आभास मिलता है।

1867 में कैबूर का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए इंग्लैण्ड की लोकसभा में लार्ड पामस्टर्न (स्वतक च्ंसउमतेजवद) ने कहा था– कैबूर ने आदर्शों की ओर इंगित करने वाला तथा कहानियों को सुसज्जित करने के लिए अपने नाम को अमर कर लिया है।

माड्यूल 5

इकाई 14

अमेरिका में गृह युद्ध के कारण

अमेरिका के एकीकरण को सफल बनाने वाले व्यक्तिमें कैबूर के बाद गैरीबाल्डी का ही स्थान आता है। इटली के नीस नामक नगरमें 1877 ई० में गैरीबाल्डीका जन्म हुआ था। उसकी पढ़ने–लिखने में रुचि नथी, इस कारण वह भूमध्यसागरीय प्रदेशों में व्यापार करने लगा था। कालान्तरमें मैजिनी द्वारा स्थापित यंग इटली (ल्वनदह प्जंसल) नामक संस्था का सदस्यबन गया । प्रो. मुकर्जी ने गैरीबाल्डी को इटालियन स्वतंत्रता का वीर पुरुषकहकर पुकारा है। अन्य इतिहासकार के अनुसार– गैरीबाल्डी में शेर का हृदयतथा बैंक का मस्तिष्क था।

उसने 1931 ई० में सार्डीनिया के नाविकों के विद्रोह का नेतृत्व किया और सार्डीनिया की सरकार ने . उसे मृत्यु दण्ड देने का निश्चय किया। सूचना मिलने पर गैरीबाल्डी अपने प्राण बचाकर अमरीका भाग गया। वहाँ पर उसने अपना विवाह रचा लिया। अमरीका में रहकर उसने लाल कमीज (त्मक ेीपतज) के नाम से एक दल की स्थापना की। इसके सदस्य लाल कमीज पहनते थे और ये सदस्य अमरीका के गृह–युद्ध में भाग लेने कारण गुरिल्ला युद्ध प्रणाली में अति प्रशिक्षित हो गये थे ।

12 वर्ष उपरान्त 1848 ई० में वह पुनः इटली वापस आ गया और आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्धों में भाग लेता रहा । सार्डीनिया के सम्राट द्वारा आस्ट्रिया के साथ संधि कर लेने के उपरान्त वह स्विटजरलैण्ड चला गया। 1849 ई० उसने असफल रूप से नेपोलियन के विरुद्ध रोम के गणतंत्र की रक्षा की और वह पुनः अमरीका
भाग गया।

अमरीका में इस बार उसने व्यापार द्वारा अपार धन एकत्रित कर लिया और 1854 ई० युद्धों में वह पुनः इटली वापस आ गया। सार्डीनिया के निकट उसने कैपरैरा नामक (ब्मचतमत) नामक द्वीप खरीद लिया और वहीं पर उसने रहना आरम्भ कर दिया। 1856 ई० में कैबूर से भेंट करने के उपरान्त वह इटली के वैध ा राजसत्ता का समर्थक बन गया। जब सार्डीनिया के शासक विक्टर इमैनुएल ने 1859 ई० में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो वह कैबूर की समिति से कोनो तथा मेग्गिओरे (ब्वउप ंदक डंहहिपवतम)के निकटवर्ती प्रदेशों में अपने तीन हजार स्वयंसेवकों के साथ आस्ट्रिया से निरन्तर युद्ध करता रहा। विक्टर इमैनुएल ने ज्युरिच की संधि के अनुसार युद्ध बन्द कर दिया तो कैबूर तथा गैरीबाल्डी को घोर निराशा हुई। फलस्वरूप कैबूर ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया और गैरीबाल्डी स्विटजरलैड
चला गया।

नेपिल्स तथा सिसली राज्यों की जनता ने 1860 ई० में इन स्थानों में निरंकुश और स्वेच्छाचारी बुर्बो वंशीय शासक फ्रांसिस द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह कर

दिया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस से नेपिल्स तथा सिसली के राज्य सार्डीनिया से संधि ा करने का परामर्श दे चुके थे। इन देशों ने यह भी स्पष्ट कह दिया कि नेपिल्स तथा सिसली अपने यहाँ आवश्यक सुधार करे तथा इटली के एकीकरण एवं सार्डीनिया के सम्राट इमैनुयल की अध्यक्षता में वैध शासन प्रणाली के सिद्धान्तों को स्वीकार कर ले।

नेपिल्स के शासन ने इस परामर्श की अवहेलना कर दी, जिसके फलस्वरूप यहाँ की जनता ने कैबूर तथा गैरीबाल्डी के समर्थन पर अपने शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का समाचार सुनकर गैरीबाल्डी तुरन्त अपने 2072 स्वयंवेकों सहित जेनेवा से सिसली के बन्दरगाह मारसला (डंतंसं) जा पहुँचा और सिसली राजधनी पारलेमो (च्तसमउव) पर आक्रमण कर दिया। केलेटफीमी के युद्ध में गैरीबाल्डी ने अपने स्वयंसेवकों को इस प्रकार प्रोत्साहन दिया था – '' यहाँ हम इटली का निर्माण करेंगे अथवा प्राण देंगे। ''

झ

इस प्रकार विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् गैरीबाल्डी से सिसली की राजधानी पालेरमी (च्संमतउव) में प्रवेश किया, जहाँ कि क्रांतिकारी जनता ने उसका भव्य स्वागत किया। मिलाजो (डपसेंव) के युद्ध के उपरान्त सम्पूर्ण दक्षिण इटली पर गैरीबाल्डी का अधिकार हो गया। फ्रांस के शासक नेपोलियन तृतीय ने मेमीना जलडमरूमध्य (ैजतंपज व िडमेपदं) पर अधिकार करने के लिए इंग्लैण्ड से सहायता की प्रार्थना की. परन्तु इंग्लैण्ड ने इसे इटली की आंतरिक समस्या कहकर सहायता देना अस्वीकार कर दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि गैरीबाल्डी इटल का सम्राट नेपिल्स पर गैरीबाल्डी का आक्रमण होने के पूर्व ही 6 सितम्बर 1860 ई० को अपने परिवार सहित गेटा (ळंपजं) भाग गया और नेपिल्स पर गैरीबाल्डी का बिना युद्ध के अधिकार हो गया और वहाँ का भी अधि ानायक बन गया।

कैबूर गैरीबाल्डी के नेपिल्स पहुँचने के पूर्व ही वहाँ परसेनो (चंतेंदव) नामक व्यक्ति द्वारा विद्रोह करवाकर नेपिल्स को सार्डीनिया में मिलाना चाहता था परन्तु अपनी योग्यता में असफल रहा और गैरीबाल्डी ने रोम के राज्य तथा बेनेशिया पर आक्रमण करने का निश्चय किया । फलस्वरूप गैरीबाल्डी तथा कैबूर में मतभेद उत्पन्न हो गया और उसने कैबूर के साथ असहयोग की घोषणा कर दी। दोनों में

मतभेद उत्पन्न हो गया और उसने कैबूर के साथ असहयोग की घोषणा कर दी। दोनों के मतभेद के तीन मुख्य कारण थे–

1. गैरीबाल्डी के जन्मस्थान नीस को कैबूर ने 1860 में प्यूरिन की संधि द्वारा फ्रांस के शासक

नेपोलियन तृतीय को देकर गैरीबाल्डी को अपने ही घर में विदेशी बना दिया ।

पश्चिमी विश्व

छळ्जै

2.

कैबूर ने सिसली विजय में गैरीबाल्डी को प्रत्यक्ष सहायता प्रदान नहीं की। कैबूर ने सिसली विजय में गैरीबाल्डी के नेपिल्स पर आक्रमण करने के पूर्व ही कैबूर ने वहाँ

3.

पर परसेनी (च्मतेंदव) नामक व्यक्ति से उपद्रव करा उसे सार्डीनिया के राज्य में मिलाने का प्रयास किया।

इस मतभेद के सम्बन्ध में सारा दोष कैबूर का ही नहीं था। उसके पक्ष में भी निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

1. मोडेना, पारमा घस्कनी तथा रोमेगना आदि छोटे–छोटे राज्यों को 1850 ई० में संगठित कर लिया गया था। इसके लिए फ्रांस के शासक की अनुमति आवश्यक थी और जिसे कुछ भेंट देकर ही प्राप्त किये गये ।

2

सार्डीनिया तथा सिसली के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे अतः कैबूर गैरीबाल्डी की प्रत्यक्ष सहायता नहीं कर सकता था क्योंकि ऐसा करना उसके लिए असम्भव तथा अवैध ाानिक था ।

3. कैबूर को भय था कि कहीं गैरीबाल्डी ने नेपिल्स में गणतंत्र स्थापित न कर दे जो भविष्य में विक्टर इमैन्युएल की वैधानिक राजसत्ता की संरक्षता में इटली के एकीकरण में बाधक हो। इसी कारण उसने गैरीबाल्डी पूर्व ही नेपिल्स पर अधि ाकार करने का प्रयास किया।

उपर्युक्त कारणों से ही दोनों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गया। गैरीबाल्डी के रोम तथा बेनेशिया पर आक्रमण करने से कैबूर और भी अधिक चिन्तित हो उठा। बेनेशिया के प्रदेश पर आस्ट्रिया पर पोप का अधिकार था। रोम की सहायतार्थ फ्रांस ने अपनी सेनाएँ भेज दीं। बेनेशिया पर इस समय आक्रमण करने का तात्पर्य था – आस्ट्रिया से शत्रुता में वृद्धि करना और रोम पर आक्रमण का तात्पर्य था – नेपोलियन तृतीय के क्रोध को निमंत्रित करना । कैर नेपोलियन से शत्रुता की वृद्धि में पक्ष में नहीं था। क्योंकि इटली का एकीकरण उसके सहयोग के अभाव में अधूरा था । गैरीबाल्डी के रोम पर प्रस्थान करते समय उसने कहा था– इटली की विदेशी आक्रमणों, दोषी सिद्धान्तों तथा पागल व्यक्तियों से रक्षा की जानी चाहिये ।

अम्ब्रिया (न्उइतपं) तथा मार्चेस (

डंतबीमे) नामक राज्यों के उदारवादियों का दमन पोप की एक विशाल सेना ने बड़ी क्रूरता के साथ किया था। कैबूर ने पोप से इस सेना को भंग करने की प्रार्थना की। इससे पूर्व ही नेपोलियन तृतीय अम्ब्रिया तथा मार्चेज पर आक्रमण करने को तथा इस सेना को भंग करने की स्वीकृति ले चुका था। पोप का उत्तर प्राप्त होने के पूर्व ही सार्डीनिया की सेना ने कस्टलाफिडार्डो (ब्ंजसमपिकंतकव) के युद्ध में पोप की सेनाओं को पराजित करके अनकोन (।दबवदं) मर्चेज (डंतबीमे) तथा अम्ब्रिया के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् रोमन तथा रोमन तथा नेपिल्स के निकट गैरीबाल्डी की सेनायें भी पहुँच गईं।

गैरीबाल्डी तथा सार्डीनिया की संयुक्त सेनाओं ने केपुआ (ब्चनं) गेरिगालिनों स्थान पर 26 अक्टूबर 1860 को सार्डीनिया के सम्राट का अभिवादन इन शब्दों में किया– ''मैं इटली नरेश को प्रणाम करता हूँ। ''

इस वाक्य से गैरीबाल्डी का विक्टर इमैन्युएल के प्रति अगाध श्रद्धा प्रदर्शित होती है। 1861 ई० में सार्डीनिया की सेना गेटा (ळमंमजं) नामक स्थान पर आक्रमण कर दिया और वहाँ का शासक फ्रांसिस द्वितीय वहाँ से भाग गया। 1860 ई० से गैरीबाल्डी उदारता से अपने द्वारा विजित प्रदेशों विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को भेंट कर दिये । सम्राट ने उसे अनेक उपाधियों तथा उपहारों से अलकृत करना चाहा, परन्तु गैरीबाल्डी ने उन सबको अस्वीकार कर दिया और 9 नम्वबर 1860 ई० को वह एक झोला आलू लेकर अपने निवास स्थान के परेरा के द्वीप पर चला गया। 6 जून, 1861 ई० को त्युरिन नामक नगर में उसकी मृत्यु हो गयी ।

स्व–प्रगति की जाँच करें : 3. संक्षेप में कैवर का मूल्यांकन करें।

4. स्पष्ट करें कि गैरीबाल्डी की विक्टर इमैन्युएल के

ह

प्रति आगाध श्रद्धा थी ।

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

259

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

इटली में आज भी गैरीबाल्डी की निःस्वार्थ भावना और अजेय साहस तथा शैर्य की गाथाएँ बड़े गर्व के साथ पढ़ी और सुनी जाती हैं।

सम्राट विक्टर इमैन्युएल द्वितीय (ज्ञपदह टपबजव म्उंदनमस प्प) – सेवाय वंशीय सम्राट चार्ल्स एल्वर्ट का पुत्र विक्टर इमैन्युएल द्वितीय था । उसे सार्डीनिया तथा पीडमाण्ट का साम्राज्य 1848 ई० क्रांति के उपरान्त अपने पिता से उत्तराधि ाकारी में प्राप्त हुआ था और 1852 ई० में इसी ने कैबूर को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इसने इटली के एकीकरण में असाधारण योगदान दिया परन्तु इसकी सेवायें गम्भीर तथा गुप्त थी।

विक्टर इमैन्युएल द्वितीय ने कैबूर को इटली एकीकरण करने में पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी । इटली को शक्तिशाली तथा संगठित राष्ट्र के रूप में निर्मित करने में विक्टर इमैन्युएल ने कैबूर को पूरा–पूरा सहयोग तथा समर्थन प्रदान किया । वह कैबूर का अन्धा होकर समर्थन नहीं करता था। इसी कारण कैबूर को 1856 तथा 1859 में त्याग–पत्र देना पड़ा। वह योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति था। उसे कैबूर से अत्यधिक प्रेम तथा परन्तु इटली के प्रति उसका प्रेम असीमित था ।विक्टर इमैनयुएल ने 1855 ई० में इटली की क्लरीकल पार्टी (ब्समतपबंसच्ंतजल) से समझौता कर लिया तो कैबूर अप्रसन्न हो गया और उसने त्याग पत्रदे दिया।

ी

इकाई 15

इटली का एकीकरण

कैबूर का मूल्यांकन (म्जपउंजम व ब्ंअवनते ।बीपमअमउमदज) मुख्यतया कैबूर का ही कार्य था। गैरीबाल्डी तथा मैजिनी की कल्पनाओं को उसने साकारकिया। उसके सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं होगा वह तीव्र बुद्धि वाला थाउसने मैजिनी की प्रेरणा को एक कूटनीतिज्ञ शक्ति तथा गैरीबाल्डी की तलवारको राष्ट्रीय शस्त्र में परिवर्तित कर दिया। कैबूर स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र को घोरसमर्थक तथा कट्टर उपासक था। जर्मनी की राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रमुख राज्यों, जैसे प्रशा, सेक्सनीआदि में सामान्यतया नौकरशाही ही व्यापक रूप से विद्यमान थी । पवित्र रोमनसम्राट होने के कारण आस्ट्रिया के राजवंश हैम्सबर्ग को सैद्धांतिक रूप से विशिष्ट राजकीय गौरव प्राप्तथा।

में मान्यता प्रदान की जाती है, एक न होता तो मैजिनी के समस्त प्रयास संदेहपूर्ण षड्यंत्रों में विफल हो जाने तथा गैरीबाल्डी का शस्त्रों का चमत्कार इटली के इतिहास में अनुत्पादक देशभक्ति का एक और अध्याय जोड़ देना। 1861 ई० में सार्डीनिया की सेना गेटा (ळमंमजं) नामक स्थान पर आक्रमण कर दिया और वहाँ का शासक फ्रांसिस द्वितीय वहाँ से भाग गया। 1860 ई० से गैरीबाल्डी उदारता से अपने द्वारा विजित प्रदेशों विक्टर इमैन्युएल द्वितीय को भेंट कर दिये। सम्राट ने उसे अनेक उपाधियों तथा उपहारों से अलकृत करना चाहा, परन्तु गैरीबाल्डी ने उन सबको अस्वीकार कर दिया और 9 नम्वबर 1860 ई० को वह एक झोला आलू लेकर अपने निवास स्थान के परेरा के द्वीप पर चला गया। 6 जून, 1861 ई० को त्युरिन नामक नगर में उसकी मृत्यु हो गयी । इटली में आज भी गैरीबाल्डी की निःस्वार्थ भावना और अजेय साहस तथा शैर्य की गाथाएँ बड़े गर्व के साथ पढ़ी और सुनी जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. इटली की स्वतंत्रता में मेजिनी का क्या योगदान था ? विवेचना करें।

2

इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन करें।

3. कैबूर की उपलब्धियों का मूल्यांकन करें तथा गैरीबाल्डी का जीवनपरिचय देने हुए उसके

योगदानों का विवरण दें।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

ैमस-िप्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

261

पश्चिमी विश्व

अध्याय – 11

छव्ज्म्

जर्मनी का एकीकरण, (1815–1870)

इस अध्याय के अन्तर्गत :

जर्मनी के एकीकरण की पृष्ठभूमि

फ्रांसीसी क्रान्ति के पहले जर्मनी की स्थिति

जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ

☐ मैटरनिस और जर्मनी

उदार वादी आन्दोलन का प्रारम्भ

☐ श्लेजबिग हाल्सटीन का प्रश्न

☐

फ्रैंकफर्ट संसद की सफलता

☐ एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा ऐरफर्ट संसद
बिस्मार्क का उदय उसकी रक्त और तलवार की नीति
ेमस–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
262
अध्याय के उद्देश्य :
इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे :
जर्मनी के एकीकरण की पृष्ठ भूमि समझ सकेंगे
फ्रांसीसी क्रान्ति के पहले जर्मनी की स्थिति समझ सकेंगे
जर्मनी के एकीकरण में उपस्थित बाधाओं के कारण समझ सकेंगे
☐ मैटरनिख और जर्मनी की स्थिति समझ सकेंगे
उदारवादी आन्दोलन का प्रारम्भ समझ सकेंगे श्लेजविग हाल्सटोन के प्रश्न की समीक्षा कर सकेंगे फ्रैंकफर्ट संसद की सफलता के कारण समझ सकेंगे
☐ एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा ऐरफर्ट संसद का विश्लेषण कर सकेंगे विस्मार्क का उदय उसकी रक्त और तलवार की नीति की व्याख्या कर सकेंगे
जर्मन एकीकरण की पृष्ठभूमि – उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी का एकीकरण यूरोप के इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना है। फ्रांसीसी क्रांति (1789) से पहले जर्मनी यूरोपीय देशों में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था, जिसमें लगभग 300 राज्य थे। इन राज्यों में कुछ राजनीतिक और कुछ धार्मिक इकाइयाँ होती थीं। कुछ नाइट्स तथा कुछ मार्गेव्स (डंतहतंअमे) होते थे और कुछ स्वाधीन राज्य भी होते थे, आठ राज्यों के शासक, जो आस्ट्रिया को चुनते थे, इलैक्टर कहलाते थे।
परिचय
जर्मनी के राज्य भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से भिन्न–भिन्न आकार के थे। व्यापारिक दृष्टि से इन राज्यों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते है– उत्तर, मध्य, दक्षिण । जर्मनी के उत्तरी भाग के कुछ उल्लेखनीय राज्य थे– प्रशा (च्तनेपं), सैक्सनी (ैंगवदल), हैनोवर (भ्ंदवअमत), फ्रेंकफर्ट (थ्तंदा – वितज) इत्यादि, मध्य भाग में राइन – लैंड (तैपदम – स्ंदक) और दक्षिण में वुर्टेम्बर्ग, बवेरिया, वादेन, पैलेटिनेट, हेस – डर्मेस्टाट इत्यादि ।
जर्मन राज्य संपत्ति, सामरिक शक्ति और प्रशासकीय व्यवस्था में भी एक–दूसरे से भिन्न थे। इन्हें चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है–
1. अभिजात वर्ग– जिन्हें सम्राट से सीधे भूमि मिलती थी ।
2
स्वतंत्र राज्य – लुबेक, उल्म, हैनोवर, नूरेम्बर्ग
3. धार्मिक इकाइयाँ– मेंज, ट्रायर, कोलोन के मतदाता, साल्जवर्ग के प्रधान ध र्माध्यक्ष और बैम्बर्ग
मुन्स्टर के धर्माध्यक्ष इत्यदि ।
4. गैर– धार्मिक राजनीतिक इकाइयाँ– बैंडेनमबर्म, प्रशा, सेक्सनी, बेवेरिया, पैलेटिनेट, बुर्टेम्बर्ग, हैनोवर इत्यादि । इन राज्यों ने जर्मनी के इतिहास में ही

नहीं वरन् यूरोपीय इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । जर्मनी के दक्षिणी राज्यों का राजनीतिक दृष्टिकोण और सामान्य चिंतन उत्तरी भाग के राज्यों की अपेक्षा अधिक उदार था । उदाहरणार्थ, उत्तरी राज्य प्रशा का दृष्टिकोण स्वेच्छाचारी व रूढ़िवादी था, जबकि दक्षिण में बवेरिया, बुर्टेम्बवर्ग या वाददेन की शासन में उदारता थी ।

जर्मनी की राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रमुख राज्यों, जैसे प्रशा, सेक्सनी आदि में सामान्यतया नौकरशाही ही व्यापक रूप से विद्यमान थी । पवित्र रोमन सम्राट होने के कारण आस्ट्रिया के राजवंश हैम्सबर्ग को सैद्धांतिक रूप से विशिष्ट राजकीय गौरव प्राप्त था। परंतु उनके नामामात्र (ज्पजनसंत) के शासक होने के कारण वास्तव में प्रमुख राज्यों पर उनका राजनीतिक प्रभुत्व नहीं था। सभी राज्यों के अधिकार अपनी–अपनी पैतृक – भूमि – सीमा से जुड़े हुए थे। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि अठारहवीं शताब्दी में फ्रेडरिक द ग्रेट के समय से प्रशा राजनीतिक और सामरिक दृष्टि से एक प्रगतिशील राज्य में परिणत हो रहा था और उसे जर्मनी में एक विशिष्ट स्थान व सम्मान मिल रहा था, इसलिए आस्ट्रिया और प्रशा की पास्परिक प्रतिद्वंद्विता का सूत्रपात हुआ। जर्मन राज्य राजनीतिक दृष्टि से विखंडित होते हुए भी एक–दूसरे से जुड़े हुए थे और यह योगसूत्र था, पवित्र रोमन सम्राट के प्रति सैद्धांतिक रूप से आदर की भावना । राज्यों के पारस्परिक संबंध सूत्रों का दूसरा प्रमुख कारण डाइट (क्पमज) था। डाइट में 300 राज्यों के प्रतिनिधि एक जर्मनी के राजवंशों एवम् शासकों द्वारा मनोनीत होते थे। ये प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों से प्रेरित न होकर राजदूतों का संघमात्र थी। इसके पास न तो अपनी कार्यकारी शक्ति थी, न इसका निजी राजस्व था और न ही इसके पास सैन्य शक्ति थी। इस प्रकार डाइट सब राज्यों का संयुक्त मंच होते हुए भी भीतरी रूप से समस्त राज्यों को संगठित करने में असफल थी। आस्ट्रिया साम्राज्य की सीमा पर यदि कोई संकट आता था तो डाइट उसकी सहायता के लिए विभिन्न राज्यों से उनकी स्वीकृति से सैन्य बल को एकत्रित करती थी। किंतु ऐसी संयुक्त व्यवस्था कभी स्थायी नहीं होती थी । बाल्तेयर का कहना था कि आस्ट्रिया साम्राज्य न तो पवित्र था न रोमन था

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

263

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

264

और न ही साम्राज्य था । अपितु पवित्र रोमन साम्राज्य की धारणा जर्मनों में प्रभावशाली रही जब कि यूरोप के अन्य देशों में उतनी प्रभावशाली नहीं थी ।

वास्तव में इस धारणा ने देश की राजनीति एकता में बाधा प्रस्तुतु की । इस सिद्धान्त के विश्वास को लेकर जनमानस में वाद–विवाद उत्पनन हुए, जिसने सुधारवादी आंदोलन का रूप धारण किया और उसके फलस्वरूप जर्मन जनता दो धार्मिक समूहों में विभक्त हो गई।

1. उत्तर जर्मनी – प्रोटेस्टेंट (प्रशा, हैनोवर, सेक्सनी आदि)

2. दक्षिण जर्मनी – कैथेलिक (वारे, बबेरिया, बुर्टेम्बर्ग आदि) कैथेलिक धर्म में प्रध ाान भूमिका आस्ट्रिया की थी। इसमें जोसेफ द्वितीय ने अठारहवीं शताब्दी के उदारवाद से प्रभावित होकर कुछ सुधार करने चाहे थे जो सफल न हो सके जिससे आस्ट्रिया एक रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी राज्य के रूप में ही रह गया। इस प्रकार, राजनीतिक व धार्मिक शक्तियों के विभाजन के कारण जर्मनी का विकेंद्रीकरण होता चला गया और कोई एक स्थायी राजनीतिक राष्ट्रीय केंद्रीभूत व्यवस्था स्थापित न हो सकी। यही कारण था कि जर्मनी के छोटे–छोटे राज्य वियना जैसे बहुत शक्तिशाली व प्रभावशाली राज्यों के परिमण्डल में आते रहे। जर्मनी का विकेंद्रीकरण क्रमशः अधिक होता गया क्योंकि पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट का पद निर्वाचनात्मक हो गया था और निर्वाचक मण्डली कुछ जर्मन नृपति भी थे। अतः सम्राट के मध्ययुगीन प्रभाव व शक्ति का कोई महत्व नहीं रहा । फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व जर्मनी की स्थिति – फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व जर्मनी की बौद्धिक विचारधारा का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं था। सत्रहवीं शताब्दी में ही लैटिन का स्थान जर्मन भाषा ने लिया । फ्रांसीसी क्रांति ने सन् 1789 में जर्मनी की बौद्धिक विचार–धारा ने नवीन प्रखरता व शक्ति प्रदान की थी, परंतु जर्मनी की बौद्धिक विचारधारा का मूल जर्मनी की भूमि में ही था। में

सन् 1789 में जर्मनी में सामंती व्यवस्था विद्यमान थी। ग्रामीण व नागरिक दोनों प्रकार की जीवन–पद्धतियाँ प्रचलित थीं। राइन – भूमि में कृषि दास प्रथा प्रचलित थी। कुछ स्थानों पर दोनों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था और कुछ स्थानों में दासप्रथा का अंत कर दिया गया था (श्लेसबिग होल्सटीन, 1783–1800)

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जर्मनी के आर्थिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। किसानों को कोई विशेष सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं, क्योंकि सरकार उन्हें एक अधीन वर्ग के रूप में ही रखना चाहती। कुछ स्थानों को छोड़कर कृषिदासों की स्थिति दयनीय थी। बँधुआ श्रम के लाभ छोड़कर कोई इन्हें मुक्ति देना नहीं चाहता था।

जर्मनी में अनेक निर्यात उद्योग भी स्थापित हो चुके थे, जैसे–सूत, ऊन, कपड़ा, स्टील, लोहा, कोयला, सीसा आदि। ये उद्योग एकाधिकार युक्त श्रेणियों के अध ीन थे। इनकी कार्य–पद्धति व चिंतन आधुनिक नहीं था । पूर्वी जर्मनी की आर्थिक सम्पन्नता के कारण इनकी सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक भिन्नताओं ने राज्य के प्रति निष्ठा रखने के लिए तो उन्हें सचेत किया किंतु उनमें राष्ट्रीय जीवंतता (छंजपवदंस टपतपसपजल) का उदय नहीं हो गया।

फ्रांसीसी क्रांति तथा जर्मनी – सन् 1786 की फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव से जर्मनी एक संक्रांति काल में पहुँचा। फ्रांस से सम्पर्क तथा नेपोलियन के आक्रमण व शासन के फलस्वरूप जर्मनी में आधुनिक युग का उदय हुआ। सन् 1806 में पवित्र रोमन सम्राट की समाप्ति हुई। इससे जर्मन समाज की प्राचीन धार्मिक रूढ़ियाँ क्षीण होती गईं। साथ ही इस परिवर्तन के फलस्वरूप जर्मन लोगों में अपनी भूमि, अपनी संस्कृति के प्रति चेतना भी बढ़ती गई और पवित्र रोमन सम्राट की उपाधि समाप्त हो जाने से यह बात भी प्रतिष्ठित हुई कि जर्मनी संघ (ळमतउंद ब्वदमिकमतंजपवद) का कोई भी राज्य अपना शक्ति – बल बढ़ाकर जर्मन – संघ में प्रभुत्व स्थापित कर सकता था ।

जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ– जर्मन की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर दुष्टिपात करने से कुछ तथ्य उभर कर आते हैं जो उन कारणों पर प्रकाश डालते हैं जो जर्मनी के एकीकरण के प्रारंभिक काल में बाधक बने रहे ?

1.
जर्मनी के विभिन्न राज्यों की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक असमानताएँ,

2.
पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रभाव

3. जर्मन की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप
पश्चिमी विश्व

4. अधिकांश जर्मन राज्यों की सैनिक शक्ति की शिथिलता,

5.
सामान्य लोगों में बौद्धिक जागृति का अभाव

6. कुछ विदेशी शक्तियों की जर्मनी के मामलों में रुचि । उदाहरणतः फ्रांस दक्षिण जर्मनी के रोमन कैथोलिकों में रुचि रखता था । इंग्लैंड की रुचि हैनोवर में थी क्योंकि हैनोवर के निर्वाचक को सन् 1714 में इंग्लैण्ड का शासक बना दिया गया था। इन सभी शक्तियों के अतिरिक्त ऑस्ट्रिया की नीति भी यही रही कि जर्मनी की राष्ट्रीय एकता न हो और हैम्सबर्ग राजवंश की प्रधानता स्थापित रहे ।

ऑस्ट्रिया तथा प्रशा– जर्मनी एकीकरण के मार्ग में एक और बाधा भी थी अर्थात् ऑस्ट्रिया प्रशा की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा जिसका सूत्रपात सन् 1740 के सालेसिया के युद्ध से हुआ था और यही द्वेष सन् 1756 की कूटनीति क्रांति (क्पचसवउंजपब त्मअवसनजपवद) से और तीव्र हो गया। जर्मनी के सांविधानिक और राष्ट्रीय आंदोलन या प्रशा के नेतृत्व में शुल्क संघ (ब्नेजवउे न्दपवद) जोलवेरिन की स्थापना के समय भी ऑस्ट्रिया की प्रशा– विरोधी तीव्र मनोवृत्ति दिखाई दी है। बवेरिया के अधिकार के लिए भी इन दोनों राज्यों में विरोध था । उन्नीसवीं शताब्दी में विस्मार्क के समय में प्रतिस्पर्धा स्वयं स्पष्ट हो गई। फ्रांसीसी क्रांति, नेपोलियन तथा जर्मनी– जर्मनी की राइन भूमि पर फ्रांस के आक्रमण (1789–1810)

Notes

विश्व का इतिहास

से जर्मनी के जीवन में विशेष रूप से उथल–पुथल हुई। इससे दो परस्पर विरोधी स्रोतों का प्रवाह जर्मनी में आया एक और उदारवाद (सांविधानिक व राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में) और दूसरी ओर रूढ़िवादी या प्राचीन विचारधारा यथापूर्व रखने की चेष्टा ।

जर्मन राजवंश द्वारा फ्रांसीसी प्रवासी अभिजातों को आश्रय देने से और उन प्रवासी अभिजातों द्वारा फ्रांसीसी क्रांति विरोधी प्रचार से जर्मनी में फ्रांस विरोधी भावना का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ जर्मन राजाओं को फ्रांसीसी क्रांति के कारण अपने कुछ सामंतीय अधिकारों से हाथ धोना पड़ा था और इसलिए वे क्रांति के विरोधी हो गये थे। उन्हें कुछ क्षतिपूर्ति भी नहीं मिली थी। ऐसी स्थिति से प्रेरित होकर फ्रांस ने जर्मनी पर आक्रमण कर दिया, जिससे राइन भूमि का पश्चिमी भाग फ्रांस के अधीन हो गया था। जर्मनी राइन नदी को सदैव अपनी पितृभूमि की स्वाभाविक प्राकृतिक सीमा समझते थे, इसलिए राइन भूमि पर फ्रांसीसी अधिकार ने उन्हें अत्यंत क्षुब्ध कर दिया और इसी घटना ने उनमें एक फ्रांस विरोधी भावना उत्पन्न कर दी जो आगे चलकर राष्ट्रीय भावना का कारण बनी।

जर्मनी के इतिहास का परवर्ती अध्याय नेपोलियन के अभियान तथा शासन का काल रहा (1800–1814) । इस घटना ने जर्मनी में कुछ नकारात्मक और कुछ सकारात्मक प्रभाव डाले।

फ्रांसीसी आक्रमण से जर्मनी को जनहानि ही नहीं हुई। घोर आर्थिक हानि भी हुई थी । जर्मन संघ को फ्रांस के साथ आक्रमण (वमिदेपअम) और प्रतिरक्षात्मक (कममिदेपअम) संधियाँ करनी पड़ी थीं । प्रशा और सेक्सनी को विभाजित कर दिया गया। कुछ इकाइयों को अपनी प्रतिष्ठाओं से वंचित कर नेपोलियन के कांटिनेंटल सिस्टम ने जर्मन उद्योग को गहरी हानि पहुँचाई । निर्यात उद्योग में गिरावट और मूल्य में वृद्धि के कारण जर्मन की आर्थिक अवस्था में सुधार की बहुत आवश्यकता थी । इस नकारात्मक दृष्टिकोण को देखते हुए कुछ जर्मन सुधारकों ने प्रशासकीय परिवर्तन की आवश्यकता का अत्यधिक अनुभव किया। जर्मनी में भविष्य में प्रगतिशील परिवर्तन लाने में नेपोलियन के आक्रमण और शासन ने सकारात्मक रूप में सहायता की । जर्मनी एकीकरण की चेष्टा और उदारवाद की जागृति इसी के परिणाम थे । नेपोलियन की शासन व्यवस्था से जर्मनी में कुछ प्रशासकीय सामाजिक और आर्थिक सुधार भी हुए थे। गिल्ड प्रथा का अंत, अबाध वाणिज्य नीति का प्रचार (राइन भूमि के बायें किनारे पर और उत्तर जर्मनी में) फ्रांसीसी शासन के ही परिणाम थे। नेपोलियन की शासन व्यवस्था से जर्मन संघ के राज्यों की संख्या 300 से

छव्जै
मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
265
पश्चिमी विश्व
छव्जै

घटकर 39 रह गई थी जिससे विभक्त जर्मनी स्वाभाविक रूप में कुछ सीमा तक संगठित हो गया। पवित्र रोमन सम्राट के पद को समाप्त करके नेपोलियन ने जर्मन को मध्ययुग से आधुनिकता की सीमा पर पहुँचाया और इसी से जर्मन राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ। जर्मनी की प्राचीन विचारधारा में परिवर्तन आने से एक नवीन राजनीतिक शक्ति का उदय हुआ, जिसमें अपने राज्यों से वंचित कुलीनवर्ग, (डमकपंदजपम छवइपसपजल) और धार्मिक इकाइयों ने फ्रांस – विरोधी सांविधानिक और राष्ट्रीय आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाई, क्योंकि नेपोलियन के आक्रमणों के कारण उन्हें अपने राज्य खोने पड़े थे। (छोटे राज्यों को बड़े
राज्यों में मिला दिया गया था) और उनके लिए कोई निश्चित राज्य – व्यवस्था अनिवार्य नहीं थी ।

उदारवादी सुधारकों का उदय – इस परिस्थिति में कुछ सुधारकों का उदय हुआ जिन्होंने जर्मन में कुछ सुधार लाना चाहा। उनमें उल्लेखनीय हैः प्रशा के स्टीन (1757– 1837) हार्डेबर्ग (1750–1822) शर्नहार्स्ट (1755 – 1813) हम्बोल्ट (1767– 1835) । जर्मन राष्ट्र बोधन का एक साधन तत्कालीन स्वच्छंदता वादी (तवउंदजपब) आंदोलन था।

इस समय जर्मनी की जिस उदारवाद ने प्रभावित किया था, वह पश्चिमी यूरोप के अठारहवीं शताब्दी के उदारवाद से भिन्न था। जर्मनी का उदारवाद पश्चिमी यूरोप के उदारवाद की तरह व्यापक नहीं था। उसकी विशेषताएँ कुछ सीमित थीं, उदहारण के लिए सांविधानिक राजतंत्र, प्रतिनिधिमूलक विधान सभा (त्मच. तमेमदजंजपअमे स्महपेसंजपअम ठवकल) समाचार पत्र की स्वतंत्रता, सीमित मतदान के अधिकार, भाषण की स्वतंत्रता, गिल्ड प्रणाली तथा आर्थिक व्यवस्था में सुधार, किसानों और दासों की दशा में परिवर्तन आदि । अतः जर्मनी के उदारवाद में गणतंत्र या लोकतंत्र की व्यापकता नहीं थी ।

स्वच्छंदतावादी आंदोलन – जर्मन उदारवाद व राष्ट्रवाद के विकास में जर्मन विद्वानों की देन भी कम नहीं थी। उनके द्वारा जो स्वच्छंतावादी आंदोलन आरंभ हुआ था, उससे जर्मनी की विचारधारा व मननशीलता दोनों ही प्रभावित हुई थीं। एक पक्ष बौद्धिक तथा प्राचीन जर्मन संस्कृति की जागृति से परिचित होकर अपनी प्राचीन विचारधारा अर्थात् रूढ़िवादी, राजनीतिक विचारधारा को उदारवादी, परिवर्तन से बचाए रखना चाहता था, तो दूसरा पक्ष जर्मन को मध्ययुगीन अवस्था से मुक्त करके आधुनिकता का मार्ग अपनाना चाहता था। इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं के दो प्रमुख आधार थे – ऑस्ट्रिया के हैम्सबर्ग वंश का नेतृत्व, जो जर्मनी की विकेंद्रीकरण की शक्तियों, स्वेच्छाचारी, राजतंत्र और मध्
ययुगीन रूढ़िवाद का समर्थन करना चाहता था और राष्ट्रीय एकीकरण का दमन कर देना चाहता था । इसके विपरीत दूसरा पक्ष सांविधानिक तथा राष्ट्रीय आंदोलन के माध्यम से शासन में परिवर्तन लाना चाहता था और अपने भाग्य का

स्वयं निर्णय करने के लिए उत्सुक था। इस पक्ष में प्रशा का नाम उल्लेखनीय है।

अठारहवीं शताब्दी में प्रशा के कुछ प्रसिद्ध विद्वान दार्शनिकों ने जर्मनी के बौद्धिक जीवन को एक नई दिशा प्रदान की।

हर्डर (1744 – 1803) मानव स्वतंत्रता में विश्वास करते थे। इन्होंने फोक (च्मवचसम) के आदर्श के बारे में अपनी विचारधारा को व्यक्त करके जर्मनी के राष्ट्रवाद के सामने उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया ।

ई० कैंट (1724–1804) ने जर्मन दर्शन में एक नवीन विचारधारा को प्रस्तुत किया और जर्मन उदारवाद को स्वतंत्रता का आदर्श देकर प्रखरता प्रदान की।

हीगल (1770–1831) ने जर्मन – देश में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। उनका मत था कि सार्वलौकिक विचारधारा का सर्वोत्तम रूप है राष्ट्र, इसलिए राष्ट्र का स्थान सबसे ऊपर है और राष्ट्र की सत्ता भी सबसे ऊपर होनी चाहिए। इस संदर्भ में यह कहना आवश्यक है कि परवर्ती काल में बिस्मार्क ने हीगल द्वारा सुझाई गई नीति को अपनाकर प्रशा की सत्ता और बल को सर्वोपरि रखकर एकीकरण के कार्य को पूरा किया।

जान. जी. फिक्टे (1762–1814) ने जर्मनी के फ्रांस विरोधी राष्ट्रवाद को तर्क और युक्ति के आधार पर स्थापित किया।

हम्बोल्ट (1767–1835) प्रशा के शिक्षामंत्री थे। वे शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन प्रणाली लाना चाहते थे। हम्बोल्ट व्यक्तिगत स्वतंत्रता में विश्वास रखते थे। इनके कारण जर्मनी उदारवादियों को समाचार–पत्रों की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

हार्डेनबर्ग नोवलिस (1772 – 1801) इस शताब्दी के श्रेष्ठ लेखक व कवि थे। उनकी रचनाएँ और परियों की कहानियाँ जर्मनी के अतीत के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी के जनमानस की आशा–आकांक्षा और कल्पना की शक्ति जाग्रत और सजग हो गई। इससे जर्मनी के निवासियों को यह भी अनुभव हुआ कि उनको एक सूत्र में बाँध रखने वाला सूत्र सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अर्थात् उनका धर्म, भाषा और प्राचीन इतिहास है।

जर्मन कवि आईट (1769–1860) ने भी अपनी देश की भक्तिमूलक कविताओं के माध्यम से जर्मन – जनता के फ्रांस विरोध की मनोभाव तथा देश–प्रेम की भावना को प्रभावित किया।

जैकाव ग्रीम – (1785 – 1863) और बिल्हेम ग्रीम (1786 – 1859) ने जर्मन भाषा विज्ञान, जर्मन – इतिहास और जर्मन – कानून के अध्ययन और चर्चा से और अपनी विख्यात परियों की कहानियाँ प्रकाशित करके जर्मनी के लोगों को उनकी विशेषताओं और उनकी प्रकृति के विषय में जागृत कर दिया अर्थात् उन्होंने जर्मनों में जर्मनत्व की भावना भर दी । यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जर्मनी का यह सांस्कृतिक जागरण पश्चिमी आदर्श (फ्रांस या रोम) से प्रभावित नहीं था ।

इस प्रकार स्वच्छंदतावादी आंदोलन ने केवल उदारवादियों को ही प्रेरणा नहीं दी अपितु प्रतिक्रियावादियों को भी अपनी प्राचीन विचारधारा की रक्षा करने के लिए

प्रोत्साहित किया । इस संबंध में सविगनी (1778–1861) का नाम उल्लेखनीय है । वे मध्ययुगीन स्वेच्छाचारी राजशक्ति के गौरव में विश्वास करते थे और संसदीय शासन (प्रतिनिध मूलक) या शासकों द्वारा प्रजा की माँगों के अनुसार प्रशासकीय परिवर्तन लाने के मत का पूर्णतया विरोध करते थे। एक अन्य विद्वान का नाम भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है, वे माइकेल सेलर (1751 – 1832) । सेलर जर्मनी में पूर्ण रूप से कैथोलिक धर्म की प्रतिष्ठा में विश्वास करते थे। जर्मनी के पुनर्जागरण आंदोलन के सभी समर्थक विश्वास करते थे कि जर्मनी की आशा–आकांक्षा का आधार केवल आस्ट्रिया ही बन सकता है।

जर्मनी की सांस्कृतिक दार्शनिक जागृति की पृष्ठभूमि में ही जर्मनी के संग्राम का प्रारंभ हुआ जिसके परिणामस्वरूप नेपोलियन का पतन हुआ। सन् 1813 के राष्ट्रों के युद्ध में नेपोलियन की पराज्य हुई थी। यद्यपि यह विजय जर्मनी की सैन्य शक्ति की ही विजय थी। फिर भी जर्मनी के निवासी इस विजय को अपनी राष्ट्रीयता की ही विजय समझने लगे थे। आगे चलकर इस विजय के ऐतिहासिक महत्व में और वृद्धि हुई। सन् 1817 में राष्ट्रीय विचारधारा वाले कुछ छात्रों ने राष्ट्रों के युद्ध की चौथी वर्षगाँठ मनाई । इसके साथ ही उन्होंने सन् 1817 में मार्टिन लूथर द्वारा पोप – विरोधी घोषणा का भी स्मरण किया और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। इस घटना का यही महत्व रहा कि इससे जर्मनी में ध ीरे–धीरे एक राष्ट्रीयता की भावना पनपी । एक स्मरणेय तथ्य यह है कि उपर्युक्त घटना (1817) में भाग लेने वाले छात्रों में से अनेक छात्रों ने 20 साल बाद भी चिकित्सक, अध्यापक या वकील के रूप में सन् 1848 की फ्रैंकफर्ट संसद में भी भाग लिया।

है

मैटरनिख और जर्मनी – वियना कांग्रेस का अधिवेशन सन् 1815 में हुआ और इस काल में मैटरनिख का उदय हुआ। मैटरनिख ने जर्मन राज्यों के एकीकरण का विरोध किया। जर्मनी को एक शक्तिहीन संघ राज्य के रूप में पूर्णतया ऑस्ट्रिया के प्रभाव में रखा गया। मैटरनिख स्टीन के सांविधानिक राजतंत्र व प्रतिनिधिमूलक संसदीय व्यवस्था की कार्यपद्धति और योजना को संपूर्ण रूप से समाप्त करने में सफल हुआ। जर्मनी अब संघ राज्य के रूप में रहा जिसमें केंद्र शक्तिहीन था न कि एक संयुक्त राज्य जर्मनी के रूप में जिसमें केंद्र शक्तिशाली होता। जर्मनी में कोई केंद्रीय संघीय संस्थाएँ (ब्मदजतंस थ्मकमतंस प्देजपजन. जपवदे) नहीं थी जो राज्यों की शक्ति पर नियंत्रण कर पातीं। जर्मनी में संघीय डाइट (थ्मकमतंस क्पमज) एक समझौता करने वाली संस्था मात्र रही जो केवल 39 राज्यों में भिन्न–भिन्न कानून व्यवस्थाएँ प्रचलित थीं । डाइट की मतदान प्रणाली ऐसी बनाई गई थी कि किसी एक राज्य के विशेष मत का प्रयोग

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

ैमस्‌– प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

267

पश्चिमी विश्व
छव्ज्म्
ै मस्—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
268

न हो सके। प्राचीन प्रणालियाँ डाइट के सदस्यों में शक्ति—संतुलन स्थापित करने की चेष्टा करती रहीं (मैटरनिख पद्धति का मुख्य लक्ष्य यही था) मैटरनिख के विचार में हर आंदोलनकारी उदारवादी था और हर उदारवादी राष्ट्रवादी था। वियना कांग्रेस (1815) निर्णय के कारण जर्मनी की स्थिति ऐसी रहने पर भी दक्षिणी जर्मनी के (बादेन, बेवेरिया, बुटेम्बर्ग डेस – डर्मेस्टाट) कुछ राज्यों के शासकों ने नेपोलियन के संघीय कानून की धारा 13 के अंतर्गत कुछ सुधार किये, यद्यपि स्टीन प्रशा में ऐसा करने में विफल रहा। उपर्युक्त राज्यों का यह सुधार आधुनिक संसदीय प्रशासनिक व्यवस्था या जनतांत्रिक अधिकार के स्वरूप से बहुत दूर था किंतु मैटरनिख इससे भी शंकित रहा। कुछ राज्यों के शासकों ने विश्वविद्यालयों और प्रेस को कुछ स्वतंत्रता दी जिससे मैटरनिख की शंका में वृद्धि हुई। सन् 1819 में एक जर्मन विद्यार्थी काले सैंड ने जब कोत्जलीन (एक प्रतिक्रियावादी लेखक) सन् 1819 में कार्ल्सवद के कानून पारित कराए। इनसे प्रेस और प्रकाशन के ऊपर कठोर नियंत्रण रखा गया । विश्वविद्यालयों में पर्यवेक्षक नियुक्त किए गए। कक्षा और गिरजाघरों के लिए गुप्तचर नियुक्त किए गए। इस प्रकार मैटरनिख ने शिक्षा, पाठ्य—क्रमों और धार्मिक संस्थाओं के ऊपर नियंत्रण रखकर जर्मनी की उदारवादी विचारधारा व आंदोलन को रोकना चाहा। इस प्रकार उदारवादी भावनाओं को दबाने के लिए कट्टर रूढ़िवादी पादरियों को शिक्षा – संस्थाओं में नियुक्त किया गया। सन् 1820 में उसने डाइट द्वारा विचारणीय विषयों पर प्रतिबंध लगाया। इसके अतिरिक्त मैटरनिख की निरंतर यह चेष्टा रही कि प्रशा को सुधारों से दूर रखा जाए परंतु मैटरनिख ने प्रशा को सुधारों से दूर रखकर भूल की। सैन्य शक्ति संपन्न और निरंकुश प्रशासनिक व्यवस्था वाले देश के रूप में प्रशा ऑस्ट्रिया का अधिक शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी बना । एक सुधारवादी देश के रूप में प्रशा शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी नहीं हो सकता था। मैटरनिख पद्धति ने जर्मनी के छोटे—छोटे राज्यों की एकनिष्ठता को और उनके आंतरिक पारस्परिक अनन्यवाद को प्रोत्साहन देकर जर्मन राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना को विकसित नहीं होने दिया। जर्मनी में जन—आंदोलन के देर से शुरू होने का यह एक प्रमुख कारण था। मैटरनिख के प्रभाव से प्रशा एक प्रतिक्रियावादी राज्य बन गया। प्रशा की सरकार ने हाइने तगा जैसे क्रांतिकारी लेखकों की रचनाओं पर सन् 1815 में प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में प्रशा की उच्चाभिलाषा जब विफल हो गई तब आर्थिक क्षेत्र में प्रशा एक नए नेतृत्व की ओर अग्रसर हुआ। इसके परिणामस्वरूप जोलवेरिन नामक शुल्क संघ (ब्नेजवउे न्दपवदे) की स्थापना हुई। प्रशा के लिए आर्थिक पुनर्गठन की आवश्यकता भी थी क्योंकि फ्रांसीसी युद्धों और नेपोलियन के अभियानों के कारण प्रशा को बहुत क्षतिपूर्ति देना पड़ी थी और उसके कारण

प्रशा के ऊपर पर्याप्त ऋणभार आ पड़ा था ।

ब्रिटेन की औद्योगिक उन्नति की तुलना में जर्मनी के कपड़ा और लोहे के सामान से संबंधित उद्योग काफी पीछे रह गए थे। नेपोलियन के कांटिनेंटल सिस्टम के कारण जर्मनी की जो औद्योगिक हानि हुई थी, उसे शीघ्र उन्नत करना प्रशा के लिए कठिन था, क्योंकि जर्मनी की हर राज्य की शुल्क प्रणली इसमें एक भारी बाधा थी। इसके कारण उद्योग और शिल्प वाणिज्य में प्रबंध नीति का अनुसरण नहीं हो सकता था । हर प्रांत में प्रवेश करने के समय जो शुल्क और चुंगियाँ देनी पड़ती थीं। उनसे वस्तुओं के मूल्य में बहुत वृद्धि हो जाती थी । प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण कृषि में भी पिछड़ापन था ।

उत्तम रेलमार्ग न होने के कारण सार, रूर और सैक्सनी के कोयला उद्योग का न तो विकास हो सका और न ही उसका सही उपयोग हो पाया।

जोलवेरिन की पृष्ठभूमि – सोआबिया के निवासी फ्रेडरिक लिस्ट (1789–1845) ने अर्थनीति में एक नई दिशा का प्रदर्शन किया। ये एडम स्मिथ की प्रबंध वाणिज्य नीति में विश्वास नहीं करते थे, परंतु एक राष्ट्रवादी होने के कारण आर्थिक राष्ट्रवाद में विश्वास करते थे। इनका यह मत था कि जर्मनी की सीमा के अंदर निःशुल्क वाणिज्य नीति प्रचलित होनी चाहिए, जिससे जर्मनी की अर्थनीति में एकता स्थापित हो सके। इसके अतिरिक्त उनका यह भी विश्वास था कि जर्मनी के अपने उद्योग की रक्षा के लिए एक संरक्षणमूलक शुल्क व्यवस्था (च्तवजमबजपअम जंतपर्फ) होनी चाहिए। उन्होंने जर्मनी के रेलमार्ग का विस्तार करने के महत्व पर ध्यान दिया। इससे वे जर्मनी की सामरिक सफलता की संभावनाओं का लाभ उठाना चाहते थे । लिस्ट को जर्मन रेलमार्ग का जनक कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। जर्मनी में एकता लाने के लिए जो पारस्परिक आदान–प्रदान की आवश्यकता थी वह आवश्कता विकसित रेलमार्ग के निर्माण से पूरी हुई। लिस्ट विचारधारा से जर्मनी में आर्थिक एकता की पृष्ठभूमि बनी।

सन् 1818 जर्मन शुल्क व्यवस्था में परिवर्तन न हो सका क्योंकि मशीनों को शुल्क–व्यवस्था के घेरे से पूरी तरह शुल्क – मुक्त रखा गया। शिल्प वस्तुओं पर केवल 10 प्रतिशत शुल्क रहा। प्रशा राज्य में सीमा प्रवेश पर जो पारगमन कर लगता था उसकी दर भी बहुत कम कर दी गई।

जोलवेरिन की स्थापना और इसका महत्व – प्रशा राज्य के अंदर वस्तुओं के परिवहन – कर की दर को बढ़ा दिया गया ताकि जर्मनी के शेष राज्य विशेष रूप से छोटे राज्य शुल्क व्यवस्था की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए जोलवेरिन के सदस्य बनें। छोटे राज्यों के लिए इस संघ का सदस्य बनना आवश्यक हो गया क्योंकि प्रशा की बिखरी हुई सीमा ने इन राज्यों को पूर्ण रूप से घेर रखा था। मुख्य वाणिज्यिक मार्ग भी प्रशा की इन्हीं सीमाओं के मध्य स्थित थे। प्रशा के ऐसे शुल्क नियमों का विरोध तो अवश्य हुआ परंतु प्रशा अपने निश्चय पर अटल रहा । इस विषय में ऑस्ट्रिया को तत्कालीन परिस्थिति के कारण उदासीन रहना पड़ा। सन् 1834 तक जर्मन के सभी प्रमुख राज्य अपनी आर्थिक

सुविधाओं को ध्यान में रखकर धीरे–धीरे जोलवेरिन के सदस्य बन गए। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक स्तर पर प्रशा का नेतृत्व प्रतिष्ठित हो गया। राइन, ओडर ऐल्ब, विस्चुले आदि स्थानों के सब उल्लेखनीय वाणिज्यिक भागों पर प्रशा का नियंत्रण हो गया। उत्तम सड़कों और रेलमार्गों का निर्माण करने का अवसर भी अब प्रशा को प्राप्त होने लगा। इससे उत्तर–दक्षिण के मध्य यातायात ओर पारस्परिक आदान–प्रदान सहज हो गया। यह नई प्रगति जर्मन के भविष्य के एकीकरण का अप्रत्यक्ष रूप से सफलता की ओर ले गई। प्रारंभ में संभवतः जोलवेरिन के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य या उच्चाभिलाषा नहीं रही हो परंतु धीरे–धीरे प्रशा जोलवेरिन के नेतृत्व के माध्यम से जर्मन एकीकरण के राजनीतिक नेतृत्व व उत्तरदायित्व को लेने के लिए अज्ञात रूप से प्रस्तुत हो रहा था। ऑस्ट्रिया जोलवेरिन के बाहर रहा और प्रशा तथा जोलवेरिन की वाणिज्यिक नीति के मामलों में कुछ बोलने के अधिकार से वंचित रहा क्योंकि ऑस्ट्रिया की निजी वाणिज्यिक नीति जोलवेरिन की शुल्क नीति के विपरीत थी। ऑस्ट्रिया चारों तरफ से प्रतिकूल शुल्कों से घिरा हुआ था और जोलवेरिन का सदस्य न होने के कारण उसके लिए वाणिज्यिक निकास का एक ही मार्ग था, जो प्रशा की शुल्क – व्यवस्था के बाहर था और यह मार्ग ऑस्ट्रिया साइलेशिया से ऐल्व की घाटी तक था । ऐसी परिस्थिति में मैटरनिख को सन् 1833 में जोलवेरिन के सारे नियमों को स्वीकार करना पड़ा। अब जर्मन – संघ में शक्ति–संतुलन बनाए रखना संभव न रहा वह पर्याप्त रूप में असंतुलित हो गया क्योंकि अब फ्रेडरल डाइट के मतदान में ऑस्ट्रिया के लिए बहुमत प्राप्त करने की आशा कम हो गई। अब जर्मनी के क्षेत्र में प्रशा का कोई राज्य प्रतिद्वंद्वी नहीं रहा। जोलवेरिन की सफलता ओर ऑस्ट्रिया का उससे दूर रहने का यह परिणाम निकले कि निरंतर एक आर्थिक शक्ति के प्रभाव और दबाव से जर्मन राज्यों के मध्य जो राजनीतिक व्यवधान था और जिसने जर्मनी को इतना की इस अनुभूति ने जर्मनी के विकेंद्रीकरण में सहायक प्रादेशिक ओर राजवंशीय प्रभाव को भी कम कर दिया । इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जोलवेरिन जर्मन राष्ट्रीय एकीकरण का एक उल्लेखनीय सोपान था ।

सन् 1815 से 1833 के मध्य जर्मनी में दो परस्पर विरोधी शक्तियों रूढ़िवादियों और अठारहवीं शताब्दी की नवीन विचारधारा में आस्था रखने वालों में संघर्ष शुरू हो गया। सन् 1833 से सन् 1850 तक सांविधानिक व क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन इसी कारण हुआ। एक ओर प्रतिक्रियावादी मैटरनिख पद्धति उस उदारवाद की गति में बाधा डालती रही, इसने जर्मनी की राजनीतिक स्थिति को अस्त–व्यस्त बनाए रखा, दूसरी ओर जर्मनी आर्थिक एकता को उपलब्ध कर भविष्य में राष्ट्रीय एकता की तैयारी कर रहा था ।

फ्रांस की जुलाई क्रांति तथा जर्मनी – फ्रांस की जुलाई क्रांति (1813) जर्मनी में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ला सकी। दक्षिण जर्मनी के कुछ राज्यों के शासक पहले से ही (1815) प्रजा को सीमित अर्थ में संविधान प्रदान कर चुके थे, क्योंकि दक्षिण उत्तर से अधिक उदारवादी था । उत्तर में निरंकुश राजतंत्र प्रचलित था

। प्रशा में आर्थिक प्रगति हुई थी। रजनीति में साधारण जनता का भाग लेने का या उसके प्रशासन में अधिकार पाने का आदर्श न तो स्पष्ट हुआ था और न ही उसमें यह चेतना सक्रिय हुई द्य उत्तर जर्मनी के राज्यों में (सैक्सनी, बुन्सविक, हैसकेसल, हैनोवर आदि) जो आंदोलन हुआ था, उसका दमन कर दिया गया। कुछ

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

269

पश्चिमी विश्व

छव्ज्मे

ैमसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

270

छोटे और गौण राज्यों में सीमित प्रतिनिधिमूलक सरकार बनाकर इस माँग को समाप्त कर दिया गया था। सन् 1830 के इस आंदोलन की प्रधान दुर्बलता या त्रुटि थी उसके राष्ट्रवादी आदर्श के स्वरूप का स्पष्ट और शक्तिशली न होना। जर्मनी में अभी तक एक शक्तिशाली सुस्पष्ट राजनीतिक विचारधारा वाला सुसंगठित मध्य वर्ग नहीं था, जो ऐसे आंदोलन की सफलता के लिए बहुत आवश्यक था।

सन् 1840 में प्रशा के सिंहासन पर फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ बैठा। प्रशा को आशा थी कि वह राजनीतिक परिवर्तन लाकर अपने पिता के वचन का पालन करेगा परंतु लोगों की यह आशा पूरी नहीं हुई। फ्रेडरिक मध्ययुगीन संस्थाओं के आदर्शों में और दैवी अधिकार संपन्न स्वेच्छाचारी सत्ता में विश्वास करता था और साथ ही वह ऑस्ट्रिया के प्राचीन गौरव, अधिकार और परंपरा के प्रति एक आदर की भावना भी रखता था। इस प्रकार उसके चरित्र में द्वैधता थी। फलस्वरूप प्रजा ने जिस आशा से उसका स्वागत किया था कि राजा फ्रेडरिक एक स्थिर, निश्चित जर्मन राष्ट्रीय नीति का संचालन करेगा (जो जर्मन – एकीकरण को सहायता देगी), वह आशा पूरी नहीं हुई।

उदारवादी आंदोलन का प्रारंभ– प्रशा, मेकेनबर्ग, सेक्सनी, हैसकैसल आदि स्थानों में उदारवादियों ने असंतोष प्रकट किया क्योंकि उन स्थानों पर न तो प्रशासकीय परिवर्तन आया था, न प्रतिनिधिमूलक संस्थानों की प्रतिष्ठा हुई और न ही उसके लिए राजा में कोई उत्सुकता थी। दक्षिण में कुछ सीमित संसदीय शासन व्यवस्था प्रचलित हुई थी, परंतु वहाँ भी उदारवादी मतदान के अधिकार (थ्तंदबीपेम) के विस्तार के लिए आंदोलन कर रहे थे। इसके अतिरिक्त जर्मनी में सन् 1848 की क्रांति के आरंभ की स्थिति एक और कारण से भी बन रही थी । भिन्न–भिन्न राज्यों में आंतरिक स्थिति (सांविधानिक व राजनीतिक) जो भी रही, कुछ सक्रिय मध्य वर्ग (यद्यपि यह अल्पसंख्यक था) इस समय राजनीति में भाग लेने की माँग कर रहा था। इस प्रकार पहले से तैयार भूमि पर केवल एक

दृष्टांत की ही आवश्यकता रह गई थी जो फ्रांस की फरवरी क्रांति (1848) ने पूरा कर दिया ।

उदारवादी तथा क्रांतिवादी अपनी योजनाओं और कर्म पद्धतियों पर चर्चा और विचार करने के लिए हेडलबर्ग (भ्मपकमसइमतह) में इकट्ठे हुए । यहाँ भी उदारवादी लोकतंत्र की प्रतिष्ठा के पक्ष में नहीं बोले क्योंकि उनका यह विचार था कि जर्मनी अभी इसके लिए उपयुक्त नहीं है । वे सब एक सीमित राजतंत्र और कुछ सुधार लाने के पक्ष में ही थे। इस दल के नेता थे– हाइनरिख वॉन गागेर्न (भ्मपदतपबी टवद ळंहवतद) जो हैस – डार्ल्स टार्ड (भ्मे क्तउे ज्कज), के प्रधानमंत्री थे और बाद में फ्रैंकफर्ट संसद में प्रेसीडेंट बने । उदारवादियों का और लोकतंत्रवादियों का लक्ष्य जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण और एक राष्ट्रीय संसद (ळमतउंद दंजपवदंस च्ंतसपंउमदज) की प्रतिष्ठा करना था ।

फ्रेंकफर्ट संसद (1848) : इस परिस्थिति में निर्णय लेने के लिए फ्रैंकफर्ट में एक पूर्व–संसद (टंत– च्ंतसपंउमदज) के अधिवेशन का आह्वान किया गया (मार्च 1848) । इस अधिवेशन में यह निर्णय हुआ कि निर्वाचन के माध्यम से एक आम संसद बुलाई जाए जिसमें पूरे जर्मनी का प्रतिनिधित्व हो और यह निर्वाचन सार्वभौम मताधिकार (न्दपअमतेंस नििंहम) से बहुत दूर थी । इसमें पूरे जर्मनी का प्रतिनिधित्व भी ठीक से नहीं हुआ क्योंकि इसमें दक्षिण के राज्यों की प्रतिनिधि – संख्या बहुत अधिक थी जबकि उत्तर की बहुत कम।

अंत में 18 मई 1848 को संघीय डाइट ने फ्रेंकफर्ट में अपना अधिवेशन बुलाया। इसके सदस्यों को तीन दलों में विभाजित किया जा सकता है–

1. वामपंथी – जो इस मत में विश्वास करते थे कि उस नेशनल असेम्बली के पास प्रभुसत्ता है, और
बनाने का असीम अधिकार भी है।
कानून

2. दक्षिणपंथी दल – विश्वास करता था कि शासन में राजा की सहायता करना ही नेशन असेम्बली का
काम है। कानून बनाने का अधिकार राजा के हाथ में ही है, और

,

3. मध्यवर्गीय दल –जो पुनः दो दलों में विभक्त हो गया था। इसमें से एक दल यह मानता था कि नेशनल असेंबली का काम है– सरकार के साथ बातचीत करके किसी विषय में निर्णय लेना और

।

समझौते से संविधान का लागू करना (सीमित राजतंत्र) । दूसरा दल मानता था कि सरकार द्वारा संविधान का प्रारूप तैयार हो जाए तो नेशनल असेंबली के पास उसे लागू करने का अधिकार है।

संसद के सदस्यों का दल बहुत विचित्र था। अधिकांश संख्या विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की थी। इसके अतिरिक्त वकील, व्यवसायी, न्यायाधीश, पादरी, अफसर, चिकित्सक जैसे भिन्न–भिन्न श्रेणी के लोग थे। श्रमिक या कारीगरों

का प्रतिनिधित्व नहीं था। एक किसान भी इस अधिवेशन में उपस्थित था। मध्य वर्ग की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी, परंतु वे क्रांतिवादी नहीं थे। इसमें विद्वान थे, कुशल वक्ता थे, परंतु अनुभवी राजनीतिक नेता का अभाव था। इस संसद की सबसे बड़ी दुर्बलता यही रही कि इसमें भाषणों का और सिद्धान्तों का ही प्राधान्य रहा, जिससे वास्तविक लाभ कुछ नहीं हुआ और सदस्यों ने संसद की वास्तविक सत्ता के अस्तित्व के प्रति अधिक ध्यान नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि निष्फल तर्क–वितर्क में ही समय व्यतीत हुआ। राष्ट्रवादी गैगर्न का सभापतित्व भी इस परिषद को सफल नहीं बना सका। उदारवादियों द्वारा परिचालित इस संसद को जर्मन जनता का समर्थन तो था, परंतु इसकी अंतर्निहित त्रुटियों और दुर्बलताओं के कारण यह संसद अंत में निष्फल ही रही। उदारवादी या क्रांतिकारी आंदोलन को सफल बनाने के लिए साधारण जनता की जो सक्रिय भूमिका आवश्यक होती है, वह तत्व इस समय इस संसद में विद्यमान नहीं था। फ्रांसीसी क्रांति और जर्मन क्रांति में यही अंतर था ।

ऑस्ट्रिया तथा प्रशा जैसे प्रमुख सत्ताधारी राज्य भी अपने गौरव व अधिकार की चेतना को नहीं भूले। यह स्पष्ट था कि ये दो राज्य शीघ्र ही इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए अपनी–अपनी स्वतंत्र––नीति का निर्णय करने वाले थे कि अंतिम नियंत्रण या सत्ता असेम्बली के पास है या भिन्न–भिन्न राज्यों के पास ।

श्जबिग–हाल्स्टीन का प्रश्न– फ्रैंकफर्ट संसद में श्लेजबिग हालस्टीन के प्रश्न को लेकर द्वंद्व उपस्थित हुआ क्योंकि इस प्रश्न की मीमांसा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से करनी थी। संपत्ति – प्राप्ति के सिद्धान्त के आधार पर डेनमार्क के राजा को ये दो प्रदेश (क्नबील) प्राप्त हुए थे परंतु ये प्रदेश किसी भी अर्थ में डेनमार्क की क्षेत्रीय सीमा के अंदर नहीं आते थे और ये दोनों स्थान अपनी–अपनी प्रचलित प्रशासनिक तथा कानूनी व्यवस्था के आधार पर ही अपनी–अपनी सरकारों का संचालन करते थे। श्लेजबिग के उत्तरी भाग के कुछ डेनिशवासियों को छोड़कर इन दोनों डचियों में जर्मन जाति का प्राधान्य था। अतः जब डेनमार्क के राजा ने उनको अपने राज्यों में मिलाना चाहा तो वहाँ के जर्मन लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए इसका विरोध किया और जर्मनी के साथ संयुक्त होने की इच्छा प्रकट की। डेनमार्क के राजा ने इस दावे को अस्वीकार किया। इससे उन दोनों प्रदेशों में आंदोलन शुरू हुआ तथा उन्होंने जर्मन संसद (क्पमज) से सहायता के लिए प्रार्थना की। उनको सहायता देने के लिए फ्रैंकफर्ट संसद ने प्रशा के राजा से अनुरोध किया। प्रारंभ में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने उनकी सहायता देना स्वीकार कर लिया किंतु बाद में क्योंकि इंग्लैंड और रूस डेनमार्क के पक्ष में थे और वे दोनो मध्यस्थता करने के लिए तैयार थे, उसने उनको सहायता तो नहीं दी, वरन् डेनमार्क के राजा से समझौता करके दोनों प्रदेशों को उनके हाथों में ही छोड़ दिया । राष्ट्रवादी और उदारवादियों के लिए फ्रेडरिक के ऐसे विश्वासघाती कार्य की प्रथम प्रतिक्रिया बहुत ही तीव्र हुई। परन्तु उन्होंने धीरे–धीरे यह भी अनुभव किया कि जर्मनी के एकीकरण में उनके लिए प्रशा की

सहायता करना बहुत आवश्यक है क्योंकि उनके पास अपनी कोई सेना नहीं थी। फलतः उदारवादियों और राष्ट्रवादियों को प्रशा के सामने झुकना पड़ा। इस प्रकार श्लेजबिग – हाल्स्टीन के प्रश्न ने फ्रैंकफर्ट संसद के लिए असफलता और निराशा की स्थिति ला दी और इससे उग्रवादियों या आदर्शवादियों का महत्व तथा प्रखरता भी कम हो गई।

फ्रेडरिक अपनी सफलता से उत्साहित होकर प्रशा में पूर्ण रूप से स्वेच्छाचारी शासन करने लगा । उदारवादियों की माँगों को पूरा करने से उसने इनकार कर दिया और रूढ़िवादी संविधान (ब्वदेमतअंजपअम ब्वदेजपजनजपवद) लागू किया। मतदान का अधिकार सीमित रखा गया ताकि केवल धनी वर्ग का ही स्वार्थ सिद्ध हो।

फ्रैंकफर्ट संसद तथा उसका प्रस्ताविक संविधान – ऐसी स्थिति में भी फ्रैंकफर्ट संसद संविधान प्रस्तुत करने के कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयास करती गई। संविधान रचना और जर्मन एकीकरण की व्यवस्था

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

मसि–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

271

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

करने के उत्तरदायित्व का पालन करना फ्रेंकफर्ट संसद का स्वयं अपने आप निश्चित किया

हुआ कार्य था । संविधान रचयिताओं के समक्ष जो प्रश्न सबसे ज्यादा गंभीर था, वह यह था कि जर्मनी के एकीकरण के लिए कौन – सा मार्ग अपनाना है – विशाल जर्मनी (ळतमंज ळमतउंदल = ळतवै क्म्न्ज्ैब्भ्) ग्रश डयेश का या लघु जर्मनी (स्पजजसम ळमतउंदल =ज्ञसम्पछक्म्न्ज्ैब्भ्) क्लाइन डयेश का। दूसरे शब्दों में ऑस्ट्रिया साम्राज्य को उसकी गैर–जर्मन प्रजाओं के साथ जर्मन – एकीकरण में रखा जाएगा या केवल जर्मन राज्यों को ही उसमें रखना है। फ्रैंकफर्ट संसद के सदस्यों को यह जानकारी थी कि सत्ता और सैनिक शक्ति के लिए ऑस्ट्रिया या प्रशा दोनों में से एक राज्य का नेतृत्व उनके उद्देश्य की सफलता के लिए अनिवार्य है। परंतु धीरे–धीरे नेशनल असेम्बली यह भी अनुभव करने लगी कि जर्मनी के एकीकरण में ऑस्ट्रिया का सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता। बल्कि ऑस्ट्रिया उसमें एक बाधा है क्योंकि एक तो ऑस्ट्रिया अपनी विशाल गैर – जर्मन प्रजाओं के कारण जर्मन– एकीकरण को सफल बनाने से दूर ही रहना चाहता था, और दूसरे ऑस्ट्रिया ही हमेशा प्रशा के राजा को उदारवादी सुधार व संविधान देने से निरूत्साहित करता था। तीसरा कारण यह था कि ऑस्ट्रिया की रुचि, जर्मनी की राष्ट्रीय एकता से अधिक जर्मनी में हैम्सबर्ग की प्रभुसत्ता व निरंकुशता स्थापित रखने में ही थी क्योंकि इससे ऑस्ट्रिया जर्मन व गैर–जर्मन दोनों जातियों के ऊपर अपना नियंत्रण रख सकता था। चौथे, उसे जर्मनी के

पश्चिमी तटों पर स्थित सागर में अपनी नौशक्ति तथा गति – विधि को सक्रिय बनाना था क्योंकि ऑस्ट्रिया एक स्थानीय देश था, जिसकी सीमाओं के निकट कोई सागर नहीं था । इस परिस्थिति का विवेचन करते हुए फ्रैंकफर्ट संसद ने 1 मार्च 1849 को एक ऐसा संविधान पारित करना चाहा जिसमें द्वि–सदनीय व्यवस्था संपन्न एक संघीय राज्य हो और उसके शासक वंशानुगत राजा हों। राजा के पास निषेधाधिकार रहे। निम्न सदन सार्वजनिक मतदान से निर्वाचित होगा। उच्च सदन का नाम सब राज्यों के प्रशासन और विधानमण्डल के नाम पर होगा। इस नए संविधान से पूर्व संघीय डाइट से अधिक शक्ति इस संघीय राज्य की सरकार को दी गई। इस प्रकार अत्यधिक वाद–विवाद और चर्चा के उपरांत फ्रैंकफर्ट संसद के सदस्यों ने प्रशा के राजा फ्रेडरिक को अपना नेता मानकर मुकुट और जर्मन लोगों का राजा यह उपाधि प्रदान करने का निर्णय किया।

फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता – प्रशा का मंत्रिमण्डल प्रशा के नेतृत्व में ही जर्मन एकीकरण के पक्ष में था और वह जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार करना चाहता था। इस समय ऑस्ट्रिया का नया रूढ़िवादी संविधान भी ऐसा था जिसके अनुसार ऑस्ट्रिया का ही प्रभुत्व स्थापित रहे परंतु फ्रेंकफर्ट संसद के उदारवादी व राष्ट्रवादी दलों ने ऑस्ट्रिया की इस अभिलाषा का समर्थन नहीं किया क्योंकि वे संयुक्त जर्मनी में केवल ऑस्ट्रिया के जर्मन प्रांतों को ही रखना चाहते थे। फलतः परिवर्तित परिस्थिति स्पष्टतः प्रशा के नेतृत्व के ही अनुकूल हो गई किंतु इसमें भी एक समस्या आई । प्रशा का राजा फ्रेडरिक एक द्विधाग्रस्त व्यक्तित्व वाला शासक था और सदैव एक अस्थिर व ढुलमुल नीति का अनुसरण करता था । अपने अहंकार (च्मतेवदंस अंदपजल) तथा प्राचीन रूढ़ियों के प्रति मोह के कारण उसके उद्देश्य ऑस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंश की परंपरा को मान्यता देने का था । इसलिए फ्रेडरिक ने फ्रेकफर्ट संसद की ओर से प्रदान किए गए मुकुट और उपाधि को ग्रहण करने से इनकार किया और यह स्पष्ट कर दिया कि जो अधिकार उसे स्वतः ही दैवी अधिकार के रूप में प्राप्त है उसे वह साध ाारण राजनीतिक नेताओं के हाथों से स्वीकार करना अपनी प्रतिष्ठा का अपमान समझता है यदि वह इसे स्वीकार भी करेगा तो केवल राजाओं के हाथों से ही स्वीकार करेगा इस घटना से उदारवादियों और राष्ट्रवादियों की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। इस कटु अनुभव के बाद अनेक सदस्यों ने पद त्याग दिया, विशेष रूप से दक्षिण राज्य जर्मन एकीकरण के प्रति उदासीन हो गए। सेक्सनी और बेडन के आंदोलनों का प्रशा की सैन्य शक्ति के द्वारा दमन कर दिया गया। फ्रैंकफर्ट संसद एक अवशिष्ट संसद (त्नउच) में परिणत हो गई। इस प्रकार जर्मनी में सन् 1848 का उदारवादी तथा क्रांति–समर्थक आंदोलन असफलता के साथ समाप्त हो गया।

उपर्युक्त घटनाक्रम का विवेचन करते हुए फ्रेंकफर्ट संसद की असफलता के जो कारण दृष्टिगत होते हैं, वे निम्नलिखित हैं–

1. फ्रेंकफर्ट संसद के गठन का अत्यधिक बौद्धिक होना।

मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस
272
2. संसद के नेताओं या परिचालकों में व्यावहारिक अनुभव का अभाव।
3.
उत्तर व दक्षिण में पारस्परिक सहयोग और विश्वास का अभाव।
4. फ्रेडरिक के चरित्र में द्विधा की भावना का होना ।
5.
प्रशा की रूढ़िवादी शासन प्रणाली ।
6. ऑस्ट्रिया के जर्मनी के एकीकरण विरोधी तथा रूढ़िवादी विचार द्य
7.
8
फ्रैंकफर्ट संसद के नेताओं में सहमति का अभाव और एक सामान्य नीति (ब्वउउवद च्वसपबल) का न होना।

अंतिम सबसे अधिक महत्वपूर्ण त्रुटि यह थी कि वे राजनीति में शक्ति (च्वूमत पद चवसपजपबे) की आवश्यकता का सम्यक् अनुभव नहीं कर पाए और वे सही दृ ष्टिकोण से समस्याओं का विश्लेषण नहीं कर सके।

फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता का परिणाम यह हुआ कि अब छोटे राज्य अपनी इच्छा के अनुसार नीति–निर्धारण या निर्णय कर लें, ऑस्ट्रिया और रूढ़िवादी मार्ग का ही अनुसरण करें और जर्मन मामलों का संयुक्त रूप से उत्तरदायित्व लें। इस समझौते ने भविष्य में प्रशा और ऑस्ट्रिया के मध्य कटु संबंधों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

एकीकरण की पुनः चेष्टा तथा एरफर्ट संसद – सन् 1849 से प्रशा के सेनापति रैडौविट्ज के क्रमशः बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप प्रशा ने एक सुस्पष्ट, स्थिर और निश्चित जर्मन नीति प्रारंभ की जो संपूर्ण रूप से उसकी अपनी थी और वह नीति ऑस्ट्रिया अर्थात् श्वार्जनबर्ग की नीति के पूर्णतया विरुद्ध थी। रैडोविट्ज नरम उदारवादी (डवकमतंजम स्पइमतंसे) दल का समर्थन प्राप्त करके प्रशा के नेतृत्व में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना चाहता था। इसके लिए वह ऑस्ट्रिया के साथ समझौता करने को तैयार तो था परंतु वह यह जानता था कि श्वार्जबर्ग सहयोग नहीं देगा। अतः उसने प्रशा के पार्श्ववर्ती राज्यों की ओर दृष्टिपात किया (जैसे सेक्सनी, हैनोवर आदि) । इसके अतिरिक्त उसने जन समर्थन प्राप्त करने की भी चेष्टा की। यद्यपि उसको अपने कैथोलिक धर्म और राष्ट्रवादी लक्ष्य के लिए अपने सहयोगियों के विरोध का हमेशा सामना करना पड़ा। तो भी अपने प्रयत्न से उसने सन् 1850 में ऐरफर्ट में संसद 'डाइट' का अधिवेशन बुलाया।
।

इस प्रकार सन् 1850 में एक बार फिर राष्ट्रीय एकता लाने का प्रयास किया गया, इस सभा में उत्तर और मध्य जर्मन राज्यों का ही प्रतिनिधित्व था क्योंकि फ्रैंकफर्ट संसद के अनुभव से उदासीन होकर दक्षिणी राज्यों ने एकीकरण से सम्बंधित मामलों में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। इसके अतिरिक्त उन्हें

एकीकरण के लिए विशेष आवश्यकता भी अनुभव नहीं हुई। इसका कारण यह था कि दक्षिण के प्रमुख राज्यों की अपनी स्थिति अच्छी थी और नेपोलियन के अभियान उनके लिए अधिक हानिकर सिद्ध नहीं हुए थे, इसके अतिरिक्त उदार, शक्तिशाली एवं समृद्ध दक्षिणी राज्य प्रशा के नेतृत्व को स्वीकार करने के इच्छुक भी नहीं थे। किंतु जो इकाइयाँ फ्रांस के साथ और नेपोलियन के साथ लड़ाइयों में अपनी प्रतिष्ठा खो चुकी थी, वे जर्मन – एकीकरण में तथा नए जर्मन संघ में अपना नया अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा ढूँढ़ने का प्रयास कर रही थीं। उनकी सहायता से रैडोविट्ज फ्रैंकफर्ट संसद की असफलता के अंधकार में एक नई आशा की किरण दिखानी चाही परंतु ऑस्ट्रिया के विरोध के कारण यह संभव नहीं हुआ। श्वार्जनबर्ग ने यह कहा कि यह जर्मन संघ का संचालन करने वाली संघीय डाइट के रहते हुए उसकी अनुमति या समर्थन के बिना रैडोविट्ज संविधान का परिवर्तन नहीं कर सकता, क्योंकि यह गैर–कानूनी होगा। हैनोवर ने सदस्य का पद छोड़ दिया। दक्षिण पहले से ही उदासीन था। ऐसी परिस्थिति में ब्रेजविक ने सन् 1815 के संघीय (थ्मकमतंस) संविधान के संशोधन का एक प्रस्ताव रखा परंतु जब गौण राज्यों ने अस्थिरता दिखानी शुरू की तो फ्रेडरिक भी चिंतित हो गए कि कहीं रैडोविट्ज की योजनाएँ अधिक उदार न हो जाएँ। इस प्रकार ऐरफर्ट सम्मेलन भी व्यर्थ हो गया। उधर उदारवाद को पुनरुज्जीवित होते हुए देखकर श्वार्जनबर्ग और सचेत हो गया और जर्मन – संघ के गौण राज्यों को चेतावनी दी कि वे जर्मन संघ को त्याग कर न जाए।

पश्चिमी विश्व

छव्जे

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

273

पश्चिमी विश्व

छव्जे

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

274

सन् 1850 में हाल्स्टीन और हैस में पुनः समस्या आई । प्रशा ऑस्ट्रिया के साथ प्रतिद्वंद्विता के लिए प्रस्तुत भी था, परंतु अंत में रूस की मध्यस्थता से सन् 1850 में आलमूज में दोनों के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार प्रशा ने एकीकरण के विचार को छोड़ दिया। जर्मन के संविधान को सुधारने की रैडोविट्ज की जो परिकल्पना थी, उस पर पुनः विचार करने व निर्णय देने का दायित्व जर्मन शासक वर्ग को दिया गया। इस प्रकार ऑस्ट्रिया की प्रतिक्रियावादी नीति ने प्रशा उदारवादियों तथा संविधानवादियों के लिए कोई आदर्शवादी वातावरण नहीं छोड़ा।

1850–59 की असफलता के कारण

छठे दशक की इस सफलता को देखते हुए कुछ लेखक और विचारकों ने यह महसूस किया कि इस असफलता के पीछे प्रधान कारण यही था कि सन् 1848

के उदारवादियों ने केवल बौद्धिक तथा सैद्धांतिक चर्चा ही अधिक मनोयोग से की थी, उन्होंने राजनीतिक सता की आवश्यकता या वास्तविकता की अवहेलना की थी। वे यह न समझ सके कि शक्ति और संप्रभुता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क से ही सफलता मिल सकती अर्थात् संयुक्त शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र का अस्तित्व उसकी राजनीतिक शक्ति में था, केवल बौद्धिक उत्कर्ष में नहीं। शक्ति जर्मनी की एकीकरण समस्या का समाधान भी थी और सम्मान भी। अब जर्मनी में उस वास्तविकता की अनुभूति हो रही थी जिसके परिणामस्वरूप परवर्ती काल में (1850–1860) राष्ट्रीय उदारवाद का जन्म हुआ । यही कारण था कि बिस्मार्क की शक्ति के आधार पर लाई गई राष्ट्रीय एकता की नीति का जर्मन जनता ने समर्थन किया और यह स्वीकार कर लिया गया कि प्रशा का नेतृत्व सजग होने लगा था। इस प्रकार जर्मनी के निवासी अब जर्मनी की राजनीतिक समस्याओं को सही दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करने लगे थे।

जर्मनी का आर्थिक विकास

सन् 1850–59 वाले दशक की राष्ट्रीय एकता का आंदोलन असफल रहा, किंतु इससे आर्थिक उन्नति में जर्मनी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई थी। रेल निर्माण और मुख्य रेल मार्गों का जाल बिछाने का कार्य चल रहा था (उदाहरणतः सन् 1860 कि.मी.) । इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख उद्योगपतियों (प्दकनेजतपंससपेजे) जैसे बानाई जिसमें (विद्युत), एच. एच. मैयर (नौ परिवहन), हेंकेल फलन डनर्समार्ग (लोहा और स्टील) के नेतृत्व में जर्मनी के विभिनन उद्योगों के क्षेत्र में बहुत उन्नति हो रही थी ।

।

यही प्रभावशाली उद्योगपति जर्मनी के प्रसिद्ध नत्सियनाल फेरैन के सदस्य बने– जिसकी स्थापना सन् 1859 के सितंबर महीने में हुई थी और नत्सियनाल फैरैन के माध्यम से जर्मनी की उदारवादी राष्ट्रीयता प्रोत्साहन मिला। रेलों के विस्तार से जर्मनी के भिन्न–भिन्न राज्यों का पारस्परिक आदान–प्रदान सरल हो गया, जिससे राष्ट्रीय और राजनीतिक भावना के आदान–प्रदान में भी वृद्धि हुई। एक स्थान से दूसरे स्थान को आना–जाना भी सरल हो गया।

सार और रूर क्षेत्रों में कोयला – उत्पादन में भी बहुत वृद्धि हुई । रूर, सेक्सनी और साइलेशिया के औद्योगिक क्षेत्रों में समृद्धि आने के कारण वहाँ की जनसंख्या में वृद्धि हुई । श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई संख्या से उनका राजनीतिक महत्व भी बढ़ने लगा। इस आर्थिक उन्नति और परिवर्तन के फलस्वरूप प्रशा केवल जोलवेरिन का ही नेता नहीं हो गया, बल्कि जर्मनी का आर्थिक नेतृत्व प्रशा पर ही आधारित था। दूसरी ओर आर्थिक क्षेत्र में ऑस्ट्रिया प्रशा से बहुत पीछे रह गया क्योंकि उद्योग, व्यापार और वाणिज्य में ऑस्ट्रिया अपनी रूढ़िवादी नीति (एकाधिकारयुक्त गिल्ड प्रथा आदि) के कारण बहुत पिछड़ा रहा। सन् 1866 के युद्ध के प्रारंभिक काल में ऑस्ट्रिया को आर्थिक घाटा और तीव्र आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था, जबकि प्रशा अपने बढ़ते हुए व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के कारण निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था।

तत्कालीन इटली के राष्ट्रीय एकीकरण से जर्मन राष्ट्रवादी प्रोत्साहित और अनुप्राणित हो रहे थे। उनके लिए ऑस्ट्रिया इटली का जल्लाद (फाँसी देने वाला) और जर्मनी का उत्पीड़क था । यह मनोभाव अधिकतर उत्तरी जर्मनी का था। दक्षिण अभी भी ऑस्ट्रिया के प्रति अनुकूल मनोभाव रखता था। इसलिए दक्षिण
जर्मनी ऑस्ट्रिया के नेतृत्व में ही जर्मन एकीकरण चाहता था । दक्षिण जर्मनी प्रशा की लघु जर्मनी संकल्पना से अधिक विश्वास ऑस्ट्रिया की विशाल जर्मनी (ळतमंज ळमतउंदल) की संकल्पना में ही रखता था । दक्षिण जर्मनी, जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार नहीं चाहता था। यदि जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार हो जाता तो दक्षिण का कैथोलिक धर्म जर्मनी में अल्पमत में हो जाता सन् 1859 के फ्रांस और ऑस्ट्रिया के युद्ध के कारण ऑस्ट्रिया तथा प्रशा के संबंधों की कटुता तीव्र होती चली गई। इस युद्ध में फ्रांस के विरुद्ध ऑस्ट्रिया, प्रशा तथा समस्त जर्मन संघ से सब प्रकार की सहायता व समर्थन की आशा कर रहा था परंतु बिस्मार्क के प्रभाव के कारण ऑस्ट्रिया को प्रशा व समस्त जर्मन संघ से सहायता न मिली।

बिस्मार्क का उदय– बिस्मार्क प्रशा के एक भूस्वामी थे। फ्रैंकफर्ट संसद (1848) के अधिवेशन में इन्होंने पहली बार राजनीति में भाग लिया। वहाँ उन्होंने प्रशा का प्रतिनिधित्व किया था। इस अधिवेशन में बिस्मार्क ने अपने आपको एक निर्मम (त्लजीसमे) दृढ़प्रतिज्ञ कूटनीतिज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया । बिस्मार्क का जन्म 1 अप्रैल 1812 को ब्रैडनवर्ग में हुआ था। उनका चरित्र विचित्र था। उन्होंने फ्रांस के सम्राट लुई चौदहवें की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का समर्थन नहीं किया परंतु प्रशा के शासक फ्रेडरिक महान की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का समर्थन किया क्योंकि उनकी नीतियों से प्रशा के उत्कर्ष में वृद्धि होने का सूत्रपात हुआ था । बिस्मार्क की व्यक्तिगत विचारधारा उदारवाद की विरोधी नहीं थी । प्रशा के राजा फ्रेडरिक तो उन्हें विप्लववादी कहते थे। वास्तव में बिस्मार्क जर्मनी का एकीकरण सफल नहीं हो सकता तब उन्होंने प्रशा के नेतृत्व में बलपूर्वक एकीकरण करना ही एकमात्र उपाय समझा। जर्मन राष्ट्रीयता की शक्ति का प्रयोग कर उन्होंने सफलता प्राप्त की। वे हमेशा जर्मनी की आवश्यकता व प्रतिष्ठा को व्यक्तिगत सम्मान और प्रतिष्ठा से ऊपर समझते थे।ेमम बवचल 331
यद्यपि बिस्मार्क की ऑस्ट्रिया के प्रमख व्यक्तियों तथा ऑस्ट्रिया के रूढ़िवादियों से मित्रता थी, तथापि वे सुस्पष्ट रूप से प्रशा के स्वतंत्र स्वरूप और नीति की प्रतिष्ठा करने में सफल रहे। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि तत्कालीन जर्मन संघ का गठन किस सीमा तक असंतोषजनक था। इसलिए बिस्मार्क इस बात पर भी विचार कर रहे थे कि किस प्रकार से इस संघ की प्रतिकूल परिस्थिति को प्रशा के समर्थन में परिवर्तित किया जाए जिससे प्रशा जर्मनी के एकीकरण का नेतृत्व कर सके ।
–

फ्रैंकफर्ट संसद (1848) में उनके सफल व्यक्तित्व से प्रभावित होकर प्रशा सरकार ने उनको सेंट पीटर्सबर्ग में राजदूत के पद पर (1859 – 1856) नियुक्त किया। इसके बाद बिस्मार्क को पेरिस में राजदूत के रूप में भेजा गया।

बिस्मार्क ने उत्तर के साथ अपने जन्मजात संबंध को कभी भी नहीं भुलाया, न वे अपनी भू–स्वामी मनोवृत्ति को भूले और न भूमिहीन साधारण मध्य वर्ग के प्रति उनकी धारणा कभी परिवर्तित हुई किंतु जहाँ उनके राजनीतिक उद्देश्य सफल होने की बात थी या अपने आदर्श की सिद्धि का प्रश्न था, वहाँ वह अपने समस्त संस्कार या विचारधारा के साथ समझौता करने में एक क्षण का भी विलंब नहीं करते थे । बिस्मार्क पूर्वाग्रहों तथा नैतिक शंकाओं से पूर्णतः मुक्त थे। जहाँ उच्च आदर्श या कार्य सिद्धि का अवसर उन्हें मिलता था वहाँ वे अपनी व्यक्तिगत विचारधारा परिवर्तित करने में या त्यागने में तनक भी नहीं हिचकिचाते थे। शत्रु का दमन करने में एकदम निर्मम तथा सभी प्रकार की कुंठाओं से मुक्त थे। इस मानसिक लचीलेपन (थ्सम•पइपसपजल) ने ही उनको शक्ति और सफलता प्रदान की थी। जब बिस्मार्क ने पदभार ग्रहण किया था तब उन्होंने दोनों की त्रुटियों को भली–भाँति समझ लिया था। उनके लिए उदारवादियों के सत्ताहीन राष्ट्रीय आदर्श तथा राजनीतिक सिद्धान्त या गौण राज्यों के शासकों की निष्फल आध ाारहीन सार्वभौम शक्ति का अहंकार दोनों ही अर्थहीन थे।

बिस्मार्क और उनकी 'रक्त और तलवार' की नीति–

बिस्मार्क का राजनीतिक कार्यं, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था, इस प्रकार से है– जर्मनी उदारवादी आदर्शों के लिए नहीं वरन् शक्ति (च्वूमत) के लिए प्रशा की ओर देख रहा है। इसलिए उपयुक्त अनुकूल

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

275

पश्चिमी विश्व

छव्जै

ैमसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

276

परिस्थिति के लिए प्रशा अवश्य अपनी शक्ति और सत्ता को सुरक्षित रखेगा। जर्मनी की समस्या का समाधान बौद्धिक भाषणों से नहीं, आदर्शवाद से नहीं, बहुमत के निर्णयों से नहीं, वरन् प्रशा के नेतृत्व में रक्त और तलवार (ठसववक – प्तवद) की नीति से ही होगा। यहाँ अब उदारवाद विरोधी मनोभाव और सत्ता तथा बलपूर्वक राष्ट्रीय एकीकरण में विश्वास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। बिस्मार्क की रक्त और तलवार की नीति की तैयारी उनके यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन की पृष्ठभूमि में ही निहित थी । बिस्मार्क ने जर्मनी के हितों को, उसके प्रतिद्वंद्वी देशों (इंग्लैण्ड, रूस, फ्रांस, ऑस्ट्रिया) के संदर्भ में देखा था। उनका निश्चय था कि जर्मनी का एकीकरण कभी भी सत्ताधारी यूरोपीय राज्य

– मंडल स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि शक्तिशाली संयुक्त जर्मनी यूरोप के शक्ति–संतुलन के लिए सबसे बड़ा खतरा था। इसलिए बिस्मार्क दृढ़ रूप से विश्वास करते थे कि शक्तिहीन प्रशा और आगे चलकर शक्तिहीन जर्मनी एक और तो एकीकरण में ही असमर्थ रहेगा और दूसरी ओर यदि एकीकरण हो भी गया तो निर्माण की दृष्टि से जर्मनी, शक्ति के अभाव में, सदा पिछड़ा रहेगा । उदारवाद के बारे में बिस्मार्क का व्यक्तिगत मत चाहे जो कुछ भी रहा हो, जर्मनी की वास्तविक परिस्थिति को देखते हुए उनका यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि राजतंत्र का एकमुखी मार्ग ही जर्मनी की समस्या का एकमात्र सही समाधान है। उन्हें फ्रैंकफर्ट संसद के अनुभव से यह मालूम हो गया था कि उदारवाद में जो विभिन्न विचारधाराएँ थीं अर्थात् एकमत का जो अभाव था, उसमें जर्मनी का एकीकरण संभव नहीं था। इसलिए राजतंत्र के केंद्र बिंदु पर ही बिस्मार्क ने समग्र जर्मनी की राष्ट्रीयता को एकसूत्र में बाँधे रखने का प्रयत्न किया।

बिस्मार्क की रक्त और तलवार की नीति के पीछे प्रशा की सामरिकता की नीति की परंपरा का भी प्रभाव विद्यमान रहा। क्योंकि फ्रेडरिक महान के समय से प्रशा की समृद्धि का जो प्रारंभ हुआ था उसका आधार प्रशा की सामरिक श्रेष्ठता ही थी ।

इटली के एकीकरण के युद्ध में ऑस्ट्रिया के प्रति प्रशा की निरपेक्षता ने दोनों के संबंध में व्यवस्था को ही केवल अधिक नहीं बढ़ाया वरन् इस बात को भी स्पष्ट कर दिया कि अब कोई ऐसी सामान्य नीति नहीं ग्रहण की जा सकती जो दोनों देशों के लिए ग्राह्य हो । प्रशा के राजा फ्रेडरिक के व्यक्तिगत विश्वास तथा आदर्श के कारण ही केवल यह औपचारिक मेल व संबंध बना हुआ था ।

सन् 1862 तक ऑस्ट्रिया की नीति को देखकर उत्तर जर्मनी में यह विश्वास दृ ढ़ होता गया कि अब प्रशा के नेतृत्व में जर्मन संघ से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार करके केवल जर्मन राज्यों को मिलाने से ही जर्मनी के एकीकरण की समस्या का समाधान किया जा सकता है अर्थात् लघु – जर्मनी समाधान ही एकमात्र समाध ाान है।

सन् 1858 से 1862 के काल में प्रशा में राजनीतिक पविर्तन आया। राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के अत्यधिक बीमार हो जाने के कारण उनके भाई विलियम प्रथम ने प्रतिशासक के रूप में शासन किया। इन दोनों भाइयों में चारित्रिक भिन्नता थी । विलियम प्रथम भी रूढ़िवादी थे किंतु आलमूज में (1850) ऑस्ट्रिया के कारण प्रशा को जो अपमान का सामना करना पड़ा था, उस अनुभव को वे भूले नहीं थे। परंतु फिर भी उदारवादियों की आशा पूर्ण नहीं हुई। उन्होंने सुधार का क्षेत्र केवल सैनिक स्तर तक ही सीमित रखा। फलतः सन् 1861 में सांविधानिक आंदोलन का पुनः सूत्रपात हुआ ।

प्रगति वादी (त्त्वहतमेपअम) दल की भारी विजय हुई और उन्होंने संसद (क्पमज) में प्रतिक्रियावादियों के साथ संघर्ष में अपना अस्तित्व सफलता के साथ बनाए रखा। उदारवादियों तथा प्रतिक्रियावादियों में मताधिकार, सैनिक बजट आदि प्रश्नों को लेकर वाद–विवाद चलता रहा । विलियम प्रथम ने अपनी ओर

से इन उदारवादी आंदोलन और उनकी समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा की, परंतु वे इसमें सफल न हो सके। अंत में उन्होंने बिस्मार्क को सन् 1862 में प्रमुख मंत्री (च्तपदबपचसम डपदपेजमत) के पद के लिए आमंत्रित किया तथा बिस्मार्क ने उस दायित्व को स्वीकार किया।

बिस्मार्क के सामने दो समस्याएँ थी –

1. प्रशा का सांविधानिक आंदोलन, और

2. जर्मनी का शक्तिहीन राष्ट्रीय संघर्ष द्य बिस्मार्क ने दोनों समस्याओं का समाध ाान बलप्रयोग अर्थात् सन्

1866 के युद्ध के माध्यम से ही किया ।

बिस्मार्क के पदग्रहण के साथ ऑस्ट्रिया व प्रशा की प्रतिद्वंद्विता समय – समय पर सामने आती रही और तीव्र होती चली गई क्योंकि बिस्मार्क इस बात पर दृ ढ़ संकल्प रहा कि प्रशा को ऑस्ट्रिया के समान शक्तिशाली देश के रूप में प्रतिष्ठित कर दे और जर्मनी की समस्या का समाधान करते समय प्रशा के अधि ाकारों को प्रमुखता दे । दक्षिण में न सही तो कम से कम उत्तर और मध्य जर्मनी में यदि ऑस्ट्रिया प्रशा के परमोच्च शक्ति (च्तंउवनदज चवूमत) के रूप में मान्यता देने को तैयार हो तो बिस्मार्क ऑस्ट्रिया को सहयोग देने को तैयार था। किंतु यह भी स्पष्ट ही था कि प्रशा की ऐसी माँग को मान लेना ऑस्ट्रिया के लिए संभव नहीं था । फलतः दोनों के बीच शांतिपूर्ण या मैत्रीपूर्ण सह अस्तित्व भी संभव नहीं था ।

बिस्मार्क का यह अनुभव था कि ऑस्ट्रिया और प्रशा की यह प्रतिद्वंद्विता एक यूरोपीय संकट की सृष्टि कर सकती थी, विशेष रूप से फ्रांस के हस्तक्षेप की आशंका तो थी ही क्योंकि दक्षिण के धार्मिक प्रश्न के बहाने से फ्रांस हस्तक्षेप कर ही सकता था। ऐसी आपातकालीन अवस्था की संभावना को ध्यान में रखकर बिस्मार्क पहले से ही उसकी तैयारी कर चुका था ।

जब उन्होंने सेंट पीटर्सबर्ग में प्रशा के राजदूत का पद संभाला था, तो अपनी कुशलता से रूस की शुभकामना और मित्रता को प्राप्त कर लिया था, जिसका वे अपनी आवश्यकता के अनुसार फ्रांस के विरुद्ध उपयोग कर सके। यह उनका प्रथम सफल कूटनीतिक कार्य था, जो कालांतर में उनके लिए वास्तविक रूप से बहुत उपयोगीसिद्ध हुआ । क्रीमिया के

युद्ध में प्रशा की निरपेक्षता, सेंट पीटर्सबर्ग में उनका सफल दूत के रूप में कार्य तथा राजतंत्र में आस्था प्रकट करके रूसी सम्राट को संतुष्ट करना इन सभी कार्यों के फलस्वरूप बिस्मार्क के लिए रूसी मैत्री सुरक्षित रही, जिसका समय आने पर फ्रांस के विरुद्ध सफलपूर्वक उपयोग किया गया था।

ऑस्ट्रिया की प्रभुसत्ता कम करने में भी बिस्मार्क बहुत कुशल और चतुर रहे, जब सन् 1863 में ऑस्ट्रिया ने राज्यमण्डल को अपने ही स्वार्थ के लिए सुधारने का प्रयास किया, तब बिस्मार्क ने कुशलता से प्रशा को इस अधिवेशन में अनुपस्थित रखा। ऑस्ट्रिया अपनी स्वार्थपूर्ण नीति के कारण जर्मन समस्या का कोई समाध ाान नहीं कर पाया। फलतः दक्षिण जर्मनी, जो ऑस्ट्रिया का समर्थक था, उसके

प्रति आस्था खो बैठा और उसने इस वास्तविक में विश्वास करना शुरू किया कि जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण का अब एक ही उपाय रह गया है और वह है प्रशा के नेतृत्व में लघु जर्मनी (ैउंसस ळमतउंदल) का संगठन करना । जब दक्षिण जर्मनी का मनोभाव इस प्रकार से परिवर्तित होता गया तब बिस्मार्क ने अविलंब उस परिस्थिति का लाभ उठाना चाहा। ऑस्ट्रिया भी दक्षिण में अपनी स्थिति पुनः स्थापित न कर सका क्योंकि ऑस्ट्रिया जर्मनी को आकर्षित करने के लिए कुछ नहीं दे सकता था । ऐसी स्थिति को देखकर बिस्मार्क ने तनिक भी विलंब न किया और राज्यमण्डल के सुधार के लिए ऐसा प्रस्ताव रखा जिससे उन्हें जन—समर्थन मिलने की आशा थी । इस प्रस्ताव में ऑस्ट्रिया और प्रशा के मध्य सत्ता — विभक्त (क्पअपेपवद व िचवूमत) करने का सुझाव था ।

डेनमार्क के साथ युद्ध 1864 — सन् 1863 में श्लेसबिग हॉलस्टीन का प्रश्न फिर से उठा । इस प्रश्न ने जर्मनी के उदारवादी तथा कूटनीतिक दोनों पक्ष के नेताओं को ही आकर्षित किया क्योंकि दोनों दल इन दो डचियों को डेनमार्क के आधिपत्य से पृथक करके जर्मन राज्यों में मिला लेना चाहते थे। संघीय डाइट ने पहले से ही डेनमार्क के विरुद्ध कदम उठाने का निश्चय कर लिया था। सन् 1864 के प्रारंभ में प्रशा और डेनमार्क के मध्य संधि—वार्ता भी विफल हो चुकी थी। सन् 1863 में संयुक्त सेना डेनमार्क के विरुद्ध भेजी गई थी। प्रशा की सेना ने सन् 1864 में उनका अनुसरण किया और डेनमार्क के साथ युद्ध आरंभ हो गया।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्म्

स्व—प्रगति की जाँच करें

1. बताइए जर्मनी में आधुनिक युग के उदय का क्या कारण था?
2. जर्मनी के एकीकरण हेतु कोई तीन बाधा लिखें।

ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

277

पश्चिमी विश्व

}

छव्ज्म्

ैमसि—प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

278

बिस्मार्क इस परिस्थिति की गंभीरता को समझते थे। उन्हें इंग्लैण्ड, फ्रांस, या रूस के हस्तक्षेप से महादेशीय संकट का भय था । इस विदेशी संकट के अतिरिक्त उन्हें आंतरिक शत्रुता का भी सामना करना था। प्रशा की डाइट (क्पमज) ने युद्ध के लिए अनुदान देने से मना कर दिया, अतः इस स्थिति में बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया के साथ सहयोग की भावना और संबंध बनाए रखने में बहुत चतुरता, सावधानी और तत्परता से काम लिया, क्योंकि डेनमार्क के विरुद्ध युद्ध में ऑस्ट्रिया के सहयोग की बहुत आवश्यकता थी । ऑस्ट्रिया और प्रशा

के मध्य एक औपचारिक संधि हुई । इस लड़ाई में डेनमार्क की पराज्य हुई। डेनमार्क के राजा क्रिश्चियन को इन दो डचियों पर अपने आधिपत्य को छोड़ना पड़ा । बिस्मार्क परिस्थिति का लाभ उठाकर कुशलतापूर्वक श्लेसविग हॉलस्टीन की समस्या का समाधान करने में सफल रहे ।

इस युद्ध में (जो युद्ध आंशिक रूप में एक राष्ट्रीय युद्ध था) प्रशा की सफलता ने उसके नेतृत्व को भविष्य के राष्ट्रीय युद्ध लड़ने के लिए और दृढ़ आधार प्रदान किया। यह विश्वास भी दृढ़ हो गया कि जर्मनी का एकीकरण प्रशा के नेतृत्व में ही संभव था। प्रशा में प्रशा के नेतृत्व में ही संभव था ।

प्रशा में प्रगतिशील दल (च्तवहतमेपअम चंतजल) द्वारा निरंतर शत्रुता का दृष्टिकोण अपनाने पर भी उदारवादी नेताओं ने व्यक्तिगत स्तर पर बिस्मार्क की नीति का समर्थन करना शुरू कर दिया। डेनमार्क के साथ युद्ध और सन् 1866 के युद्ध के मध्य के काल में बिस्मार्क ने प्रशा के बाहर उदारवादी नेताओं से सम्पर्क रखा क्योंकि उनका यह अनुभव था कि अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसकी आवश्यकता होगी।

जैसे ही डेनमार्क के साथ युद्ध शुरू हुआ, उस युद्ध की पृष्ठभूमि पर ही बिस्मार्क ऑस्ट्रिया व प्रशा की प्रतिद्वंद्विता के निर्णायक समाधान का प्रयास करने लगे । युद्ध के बाद सन् 1864 में यह निश्चय हुआ कि वे दो डचियाँ ऑस्टिया और प्रशा दोनों के अधिकार में रहें। इसका अर्थ स्पष्ट था अर्थात् किसी भी समय प्रशा इन दोनों ही डचियों को अपने ही अधिकार में लाने की चेष्टा करेगा तो तनाव उत्पन्न होगा और ऑस्ट्रिया तथा प्रशा के मध्य संघर्ष अनिवार्य हो जाएगा। बिस्मार्क को यह ज्ञात था कि ऐसी चेष्टा करने के पीछे जनता का समर्थन प्रशा को ही प्राप्त होगा क्योंकि प्रशा ने सदैव ही यह चाहा था कि उन दोनों डचियों को जर्मन–संघ में मिलाया जाए। बिस्मार्क स्वयं भी जर्मनी से ऑस्ट्रिया का बहिष्कार करना तथा उन दो डचियों को जर्मन – संघ में मिलाना चाह रहे थे । यदि कार्य शांतिपूर्वक हो जाता तो बिस्मार्क के लिए सुविधा ही होती क्योंकि उसमें अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप का भय नहीं रहता। इसलिए यद्यपि प्रशा का राजा और मंत्रिमण्डल शीघ्र ही कुछ संकट उत्पन्न करके ऑस्ट्रिया के साथ इस मामले को समाप्त करना चाहते थे, बिस्मार्क ने ऐसा नहीं होने दिया और उनको ऐसा करने से निरुत्साहित किया।

ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध की प्रस्तुति – डेनिस युद्ध के बाद यह निश्चित किया गया था कि ऑस्ट्रिया हॉलस्टीन पर और प्रशा, श्लेसबिग पर शासन करेंगे और ऑस्ट्रिया ने प्रशा के सत्ताविभाजन की इस नीति को स्वीकार कर लिया था। अब यह परिस्थिति आने पर बिस्मार्क को अपनी कार्य–सिद्धि के उपयुक्त धूर्तता एवं चतुरता का आश्रय लेने में कोई बाधा नहीं रही। इस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रव्यवस्था में बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया को हॉलस्टीन का उपहार देकर प्रसन्न किया और भविष्य के लिए जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया। साथ ही इंग्लैण्ड व रूस को ऑस्ट्रिया के प्रति शंकालू रखा जैसे कि वे फ्रांस के नेपोलियन तृतीय के प्रति थे।

सन् 1865 के अंत तक बिस्मार्क जर्मन– एकीकरण के अंतिम चरण के लिए प्रस्तुत हो चुका था। गेस्टीन–सम्मेलन (ळेंजमपद ब्वदअमदजपवद) में सत्ता विभाजन और दो डचियों की प्रशासिनक व्यवस्था के विषय में बताया गया था। इस सम्मेलन के फलस्वरूप बिस्मार्क को ऑस्ट्रिया के साथ संघर्ष शुरू करने का अवसर प्राप्त हुआ। हालस्टीन में ऑस्ट्रिया के शासन के विरुद्ध प्रशा में बहुत तीव्र आलोचना प्रारंभ हो गई। फरवरी में प्रशा ने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध आरंभ करने का निर्णय लिया और दोनों डचियों को संघ में मिलाने का निश्चय किया। यूरोप में अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के लिए बिस्मार्क ने फ्रांस के राजा नेपोलियन तृतीय से बियारिट्ज में साक्षात्कार किया। नेपालियन तृतीय ने बिस्मार्क को कोई वास्तविक सहायता देने की प्रतिज्ञा नहीं की

परंतु उसने राइन प्रांत में कुछ स्थान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। बाद में बिस्मार्क ने नेपोलियन को कोई भी सुविधाएँ नहीं दी, किंतु उस समय फ्रांस की तटस्थता प्राप्त करने के लिए वह नेपोलियन को कुछ प्रदेश देने के लिए राजी हो गया। इस प्रकार बिस्मार्क ने चतुराई से उसको प्रलोभन दिया और भविष्य मेँ युद्ध की हालत में ऑस्ट्रिया के विरुद्ध फ्रांस की तटस्थता प्राप्त कर ली। इसके बाद बिस्मार्क ने इटली के साथ मैत्री – संबंध स्थापित किया । इटली ऑस्ट्रिया का शत्रु देश था। इस कारण इस मैत्री संबंध से बिस्मार्क को बहुत लाभ हुआ। रूस के साथ बिस्मार्क का समझौता तो पहले से ही था । इस प्रकार यूरोपीय वातावरण बिस्मार्क के अनुकूल हो गया। अब युद्ध के लिए देश के अंदर उन्हें जो कुछ करना पड़ा। उसमें विलियम ने संशय किया, परंतु युद्ध मंत्री रून (त्ववद) और मोल्टके (डवसजाम) ने बिस्मार्क की योजना का पूर्ण समर्थन किया। अब बिस्मार्क के लिए केवल साधारण जनता का समर्थन ही प्राप्त करना बाकी रह गया था । इसका प्रबंध भी उन्होंने कुशलता से तथा चतुरता से कर लिया। जर्मन राज्यमंडल की डाइट के अधिवेशन में बिस्मार्क ने प्रशा के राजा फ्रेडरिक की राजसत्ता का समर्थक होते

हुए भी यह घोषणा की कि भविष्य में जर्मन डाइट का निर्वाचन सार्वभौम मताधि ाकार पर आधारित होगा और सांविधानिक सुधार पर विचार–विमर्श वही संसद करेगी। इस घोषणा से सबको बहुत आश्चर्य हुआ किंतु इससे बिस्मार्क को उदारवादियों का समर्थन मिल गया। इससे जर्मन राज्यमंडल का सुधार करने का मार्ग सरल हो गया। डाइट के इस अधिवेशन में ही उन्होंने श्लेसविग हॉलस्टीन के प्रादेशिक लाभ के प्रसंग को उठाया। इन दोनों डचियों की समस्या के समाधान के माध्यम से ही उन्होंने ऑस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की योजना बनाई। इस युद्ध के द्वारा बिस्मार्क ने जर्मनी की सैनिक एवं कूटनीतिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया और वे प्रशा का नेतृत्व स्थापित करने में सफल हुए।

बिस्मार्क का विचार था कि सार्वभौम मताधिकार से रूढ़िवाद प्रभाव होने के बदले बढ़ेगा, क्योंकि शहरों के उदारवादी मध्य वर्ग के मतों का संतुलन राजभक्त किसानों के मतों के द्वारा हो जाएगा।

बिस्मार्क के सार्वभौम मताधिकार का प्रस्ताव संघीय संविधान (थ्मकमतंस ब्वद.

जपजनजपवद) को तोड़ने के लिए पर्याप्त था। बिस्मार्क ने विप्लववादी शक्ति को भी अपनी कार्य–प्रणाली में स्थान दिया। यह बात गौण राज्यों के उदारवादियों और रूढ़िवादियों दोनों के लिए ही बड़े आश्चर्य की थी। धीरे–धीरे बिस्मार्क ने प्रगतिशील दल के सदस्यों का पृथक–पृथक् व्यक्तिगत समर्थन प्राप्त कर लिया। इतना समर्थन पाने के बाद भी देश के अंदर या बाहर कितनी वास्तविक सहायता मिलेगी, इसके बारे में बिस्मार्क को निश्चय नहीं था। फिर भी उन्होंने इटली की मित्रता और प्रशा की सामरिक शक्ति के बल पर ही निर्भर करके जर्मन राज्यमण्डल को भंग करने का निश्चय कर लिया और युद्ध की घोषणा कर दी।

मध्यम एवं छोटे राज्यों के लिए यह बहुत कठिन परिस्थिति थी । उत्तर व मध्य जर्मनी के बहुत छोटे राज्यों ने पहले से ही प्रशा के साथ सामरिक उपसंधियाँ कर ली थी। उनके लिए दो ही विकल्प थे, प्रशा के पक्ष का समर्थन या तटस्थ रहना । दक्षिण राज्यों का झुकाव अभी तक ऑस्ट्रिया के प्रति था । परंतु दक्षिण के जन आंदोलन की सामान्य प्रवृत्ति ऑस्ट्रिया के पक्ष में नहीं थी क्योंकि ऑस्ट्रिया उनकी आशा–आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए संघीय संविधान की अधीनता स्वीकार करने की शिक्षा देने के सिवाय और कुछ नहीं दे सकता था । संघीय संविधान पहले से ही अव्यावहारिक प्रमाणित हो चुका था और श्लेसबिग हॉलस्टीन की अस्थायी व्यवस्था की अवहेलना करके ऑस्ट्रिया स्वयं भी संघीय संविधान की व्यर्थता प्रमाणित कर चुका था । (1865) । वियना और बर्लिन के मध्य कूटनीतिक सम्पर्क टूट चुका था। प्रशा की सेना हॉलस्टीन के अंदर प्रवेश कर चुकी थी । लक्समबर्ग, मैकलेनबर्ग और हैस – कैसल ने विरोध किया, दक्षिण के बेडन, बबेरिया और बुर्टमबर्ग राज्यों ने भी प्रशा का साथ नहीं दिया। प्रशा ने उनकों पराजित किया और ऑस्ट्रिया को सैडोवा के निर्णायक युद्ध में पराजित किया । प्रशा और ऑस्ट्रिया की परमोच्च शक्ति बनने की प्रतियोगिता समाप्त हो गई। फ्रांस और इंग्लैंड के हस्तक्षेप के भय के कारण से बिस्मार्क ने ऑस्ट्रिया और दक्षिणी राज्यों के साथ एक समझौता किया, जिसे प्राग की संधि में अंतिम रूप दिया गया। इस प्रकार उत्तर जर्मनी का एकीकरण पूरा हुआ।

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

279

पश्चिमी विश्व

छव्ज्ै

मसा–प्देजतनबजपवदंस डंजमतपंस

280

युवराज विलियम प्रथम तथा बिस्मार्क ने पराजित दक्षिणी राज्यों से बलपूर्वक कोई माँग नहीं की। वे समझते थे कि उससे उनके पराज्य के अपमान के साथ

प्रशा के विरुद्ध और भी विद्वेष की वृद्धि होगी जो आगे चलकर एकीकरण के प्रतिकूल सिद्ध होगी । इसलिए बुद्धिमानी इसी में थी कि उत्तर जर्मनी का एकीकरण जितना हुआ हैं, फिलहाल उसी को क्षेत्रीय सीमा मान लिया जाए। इससे यही होगा कि समय की प्रगति के साथ दक्षिणी राज्य राष्ट्रीय आदर्श और स्वार्थ को ध्यान में रखकर धीरे–धीरे अपने आप ही उत्तर जर्मन संघ के साथ एकीकरण चाहेंगे और आश्यक होने पर फ्रांस के विरुद्ध उत्तर जर्मनी को सहायता भी देंगे। यही कारण था कि बैठन, बवेरिया, बुर्टम वर्ग से केवल क्षतिपूर्ति की राशि ली गई किंतु उनकी कोई भूमि उनसे नहीं ली गई । हैस – कैसल और हैलोवर के शासकों को सिंहासन च्युत किया गया। उनके राज्यों, श्लेस बि– हॉस्टीन और स्वतंत्र शहर फ्रैंकफर्ट को प्रशा में मिला दिया गया। इस प्रकार उत्तर जर्मनी के राज्यों को तो बल–प्रयोग से मिलाया गया परंतु दक्षिण के राज्यों को नहीं मिलाया गया । यह भी बिस्मार्क की एक सफल कूटनीतिक चाल थी। ऑस्ट्रिया को बेनेशिया इटली को देना पड़ा। इसके अतिरिक्त जर्मन मामलों में कुछ कहने का अधिकार भी ऑस्ट्रिया को खोना पड़ा।

ऑस्ट्रिया–प्रशा के युद्ध के फलस्वरूप जर्मनी को पहली बार एक अविच्छिन्न सीमा रेखा मिली, जो हेमेल से मेंस (डंपदे) नहीं तक फैली हुई थी। बिस्मार्क को अब दक्षिण से फ्रांसीसी प्रभाव को दूर करने का कार्य पूरा करना था, जिससे जर्मनी से राष्ट्र–विरोधी तत्व जड़ से ही खत्म हो जाए।

सेडोवा के युद्ध के परिणाम (1866) – सेडोवा के युद्ध के बाद हैस–डर्मस्टेडाट, बैडन बवेरिया, बुर्टम्बर्ग आदि राज्यों ने प्रशा के साथ संधि कर ली थी जिससे यह तय हुआ था कि विदेशी शक्तियों

के

में

युद्ध होने से उनकी सैनिक शक्ति प्रशा के आदेशाधीन रहेगी। इस प्रसंग में यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि दक्षिणी राज्यों के मन में ऑस्ट्रिया का जो स्वरूप था, वह सेडोवा के युद्ध में प्रशा की नेतृत्व प्रतिभा और सैनिक कुशलता को देखकर बदल गया । दक्षिणी राज्यों पर उत्तर के राष्ट्रवाद का भी प्रभाव लड़ना शुरू हो गया। जर्मनी में ऑस्ट्रिया की प्रतिष्ठा तथा बृहत – जर्मनी का स्वप्न भी सेडोवा के साथ ही नष्ट हो गया था। इसके अतिरिक्त सेडोवा के युद्ध में ऑस्ट्रिया की हार का अर्थ था, जर्मनी के रूढ़िवादी धार्मिक संप्रदाय एवं प्रतिक्रियावादियों की जर्मनी की राष्ट्रीय जन–शक्ति के हाथों हार। इससे जिस लोकप्रिय राष्ट्रीय शक्ति का उदय हुआ, बिस्मार्क उसको अपने अपूर्ण कार्य में (फ्रांस से) युद्ध प्रयोग कर सकते थे। ऑस्ट्रिया और प्रशा के युद्ध के परिणामस्वरूप जर्मनी का सांविधानिक संघर्ष समाप्त हो गया, पुरानी डाइट को भंग कर दिया गया। नए निर्वाचन के युद्ध–विरोधी प्रगतिशील दल की पूर्ण पराज्य हुई। इस हार के पीछे तत्कालीन देशभक्ति से अनुप्राणित वातावरण ही था । नवनिर्वाचित डाइट में बिस्मार्क ने स्वयं पूर्ववर्ती डाइट द्वारा युद्धकालीन

सामरिक अनुदान अस्वीकृत करने की क्रिया के विरुद्ध क्षतिपूर्ति माँगना का प्रस्ताव रखा क्योंकि युद्धकाल में सरकार को अपनी ओर से ही युद्ध के व्यय का भार वहन करना पड़ा था। इसमें सरकार की जीत हुई। इस जीत ने तथा सार्वभौम मताधिकार द्वारा संसद गठन करने के प्रस्ताव ने बिस्मार्क को राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान किया । पुराना रूढ़िवादी दल अब दो दलों में विभक्त हो गया जिससे एक स्वतंत्र रूढ़िवादी दल (थ्तमम ब्वदेमतअं. जपअम च्तजल) का उदय हुआ। यह दल बिस्मार्क का समर्थक बन गया परंतु सार्वभौम मताधिकार देने हेनोवर, हैस कैसल के शासकों को पदच्युति और राष्ट्रीय जन–आंदोलनकारी नेताओं के साथ समझौता करने के कारण पुराना रूढ़िवादी दल बिस्मार्क का आलोचक ही रहा ।

–

बिस्मार्क तथा राष्ट्रीय उदारवादी दल इस नई परिस्थिति ने प्रगतिशील दल को भी बहुत प्रभावित किया। पहले यही दल बिस्मार्क का विरोध करता था, किंतु अब इस दल के अधिकांश सदस्य बिस्मार्क की नीति तथा क्षतिपूर्ति के प्रस्ताव का समर्थन करने लगे। उन्होंने प्रशा के उदारवादियों से मिलकर राष्ट्रीय उदारवादी दल (छंजपवदंस स्पइमतंस च्तजल) का निर्माण किया । इन्हीं की सहायता तथा समर्थन से भविष्य के जर्मन साम्राज्य की स्थापना हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में दो विचारधाराओं का उदय हुआ राजनीतिक नीतिवाद तथा राष्ट्रीय आदर्श (छंजपवदंस पकमंसे) जर्मनी ने, जो अब तक इस द्विविधा (क्पसमउउं) में उलझा हुआ था, अंत में राष्ट्रीय आदर्श को ही चुन लिया ।
इसी राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में बिस्मार्क उत्तर जर्मन संघ के साथ दक्षिण जर्मनी के विलय की युक्ति खोज रहे थे। फलतः इसी का परिणाम फ्रांस व प्रशा के मध्य युद्ध हुआ जो जर्मनी के एकीकरण के इतिहास का अंतिम चरण था।

फ्रांस– प्रशा का युद्ध – 1870 फ्रांस– प्रशा का युद्ध मूलभूत कारण यह था कि एक ओर प्रशा अपने नए उपलब्ध साम्राज्य और शक्ति को सुदृढ़ करना चाहता था, दूसरी ओर फ्रांस को भय था कि प्रशा की शक्ति या प्रभाव में और अधिक वृद्धि न हो, जिससे उसका अपना स्वार्थ सुरक्षा तथा शक्ति की हानि न हो । फ्रांस को यह युद्ध अपनी अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सम्मान की पुनः प्रतिष्ठा के लिए लड़ना पड़ा । नेपोलयन तृतीय को अपना आत्मसम्मान व प्रजा की आस्था प्राप्त करने के लिए यह युद्ध लड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। इस प्रकार इस युद्ध के आरंभ में प्रशा और फ्रांस दोनों का ही आंशिक दायित्व रहा। यद्यपि यह बात भी सत्य है कि अंत तक वास्तविक रूप में युद्ध शुरू करने का उत्तरदायित्व बिस्मार्क का ही था क्योंकि उपयुक्त परिस्थिति का शीघ्र अपनी बुद्धि, दूरदर्शिता और कौशल से लाभ उठाकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करने का श्रेय उन्हीं को है।
होहेनजॉलर्न का प्रार्थी– स्पेन के रिक्त राजसिंहासन पर होहेनजॉलर्न (भ्वीमद्रवससमतद) के प्रार्थी को प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव ही फ्रांस और प्रशा

के युद्ध का कारण बना। सन् 1868 में स्पेन में रानी इसेबला द्वितीय के शासनकाल में उनके विरुद्ध एक विद्रोह हुआ, जिसके कारण इसेबला निष्कासित हुई थी। अब स्पेन के सेनापतियों ने जो इस विद्रोह के मूल में थे, प्रशा के राजा के एक संबंधी होहेनजॉलर्न सिगमेरिंजन (भ्वीमदद्रवससमदतदॅपदहउंतपदहमद) के लियोपोल्ड का नाम सिंहासन के लिए प्रस्तुत किया । लियोपोल्ड ने बहुत दुविधा के बाद स्पेन का राजा बनने की स्वीकृति इस शर्म पर दी कि यदि स्पेन की संसद के निर्वाचन में निर्वाचित होंगे तभी वे राजपद को स्वीकार करेंगे (1870)।

लियोपोल्ड की स्वीकृति मिलने के साथ ही फ्रांसीसी सरकार ने इस प्रस्ताव का तीव्र विरोध किया और यह माँग की कि लियोपोल्ड अपने नाम को वापस ले ले। लियोपोल्ड का नाम वापस होने के साथ ही यह अध्याय समाप्त हो जाना चाहिए था, किंतु हुआ नहीं। पेरिस में दल युद्ध का समर्थक दल था, जिसका नेतृत्व कर रहे थे, विदेश मंत्री ग्रेमांट। यह दल इससे संतुष्ट नहीं हुआ, वे प्रशा द्वारा फ्रांस के अपमान का समुचित उत्तर देना चाहते थे। यह प्रशा की सबके समक्ष अपमानित करके ही हो सकता था।

ऐम्स तार– ग्रेमांट ने प्रशा के फ्रांसीसी राजदूत बैनेडेटी (ठमदमकमजजप) को इस आशय को तार भेजा कि वह शीघ्र ही प्रशा के राजा से लियोपोल्ड की उम्मीदवारी के लिए एक क्षमापात्र माँगे जिसमें यह भी निर्दिष्ट किया हुआ हो कि भविष्य में भी कोई होहेनजॉलर्न प्रार्थी स्पेन के सिंहासन पर दावा नहीं करेगा। इस समय प्रशा के राजा विलियम चतुर्थ ऐम्स में थे। बैनेडेटी (ठमदमकमजजप) उनसे मिला और एक साक्षात्कार के लिए उनको राजी कराना चाहा । विलियम चतुर्थ उसी समय समझ गए थे कि यह कोई कूटनीतिक चाल थी और इससे उन्हें भय दिखाकर राजी करने की चेष्टा की जा रही थी। उन्होंने फ्रांसीसी माँग को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया तथा बर्लिन में बिस्मार्क को इस घटना को पूरे विवरण के साथ एक तार भेज दिया जो प्रसिद्ध ऐम्स तार था। अब बिस्मार्क को इस तार के कारण फ्रांस के साथ अविलंब लड़ाई करने का बहाना मिल गया, जिसके लिए वे बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे । बिस्मार्क ने उस तार को अविलंब प्रेस में छापने को दे दिया। उन्होंने इस तार को ऐसे संक्षिप्त रूप में प्रकाशित करवाया जिसमें फ्रांस को जर्मनी का विरोधी व अपमानकर्ता के रूप में दर्शाया गया । स्पष्ट है कि बिस्मार्क ने फ्रांस को उत्तेजित करने के लिए ही ऐसा किया था क्योंकि उन्हें लड़ने के लिए परिस्थिति तैयार करनी थी। फलस्वरूप पेरिस में इसकी प्रतिक्रिया बिजली की तरह ही हुई । ऐम्स तार के प्रकाशन के साथ – साथ ही प्रेस एवं जनता ने घोषणा की कि फ्रांस की अत्यधिक मानहानि हुई है। फ्रांसीसी सरकार ने भी इस बात को अनुभव किया और युद्ध घोषित करने का निर्णय लिया।

उघर बिस्मार्क ने सब तैयारी कर रखी थी। सन् 1866 के युद्ध के बाद ही उन्होंने दक्षिणी राज्यों की प्रशा विरोधी और ऑस्ट्रिया समर्थक मनोवृत्ति को परिवर्तित करने की एक सफल चेष्टा की थी। उन्होंने नेपोलियन तृतीय (फ्रांस के राजा)

की लोभी मनोवृत्ति के बारे में उनको यह बताकर अवगत करा दिया था कि नेपोलियन तृतीय राइन प्रांत पर अपना अधिकार करने को उत्सुक है। इस तथ्य से दक्षिण राज्यों को एक सदमा – सा लगा। बिस्मार्क के इस काम से यह लाभ हुआ कि भविष्य में अब फ्रांस के विरुद्ध इन राज्यों की सहायता स्वाभाविक रूप से और स्वतः ही प्राप्त करने की आशा उज्ज्वल हुई। इसके अतिरिक्त एक ओर उत्तर जर्मनी के देश प्रेम तथा प्रशा के सफल नेतृत्व एवं सामरिक सफलताओं तथा दूसरी ओर ऑस्ट्रिया व फ्रांस की स्वार्थी और लोभी मनोवृत्ति को देखते हुए दक्षिण धीरे–धीरे उत्तर के

पश्चिमी विश्व

लक्ष्य को ही अपना समझने लगा। फलतः नेपोलियन तृतीय की यह आशा पूरी तरह व्यर्थ हो गई कि इस युद्ध में दक्षिण जर्मनी फ्रांस की सहायता करेगा।
फ्रांस– प्रशा युद्ध के आरंभ से ही प्रशा सामरिक क्षेत्र में अग्रगामी था, क्योंकि रूस और मोल्टके के निर्देशन और निरीक्षण से प्रशा की सेना बहुत प्रशिक्षित और दक्ष हो गई थी। इसके अतिरिक्त सन् 1866 के बाद जिन राज्यों ने प्रशा के साथ सामरिक संधि की थी उसे भी प्रशा को बहुत सामरिक लाभ हुआ । विशेषतया दक्षिणी राज्यों की सामरिक संधियों से बिस्मार्क का दक्षिण में पूर्ण नियंत्रण रहा। अंत में सन् 1870 में सीडन (ैमकंद) में फ्रांस की अंतिम हार हुई द्य

सीडन के युद्ध का महत्व – सीडन में फ्रांस की हार ने यूरोप में जर्मनी के उत्कर्ष की नींव रखी। इससे जर्मनी की सामरिक तथा राजनीतिक श्रेष्ठता यूरोप के सामने प्रत्यक्षतः स्थापित हो गई और यही जर्मन श्रेष्ठता उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में एक प्रधान राजनीतिक तत्व बनकर उपस्थित हुई ।
सन् 1870 में युद्ध समाप्त हुआ। वर्सायई में एक प्राथमिक संधि के बाद सन् 1875 में फ्रैंकफर्ट में अंतिम संधि हुई। फ्रांस को जर्मनी की क्षतिपूर्ति और एलसास (।संबम) तथा लोरेन (स्वततंपदम) के पूर्वी भाग देकर संधि करनी पड़ी।
यह महान विजय जर्मनी के उत्तर–दक्षिणी प्रांतों की सम्मिलित चेष्टा और राष्ट्रीयता की महान – प्रेरणा का फल थी। अब सारे क्षेत्र में यही भावना आई कि इस सामरिक सम्मेलन को एक स्थायी नागरिक रूप अवश्य देना चाहिए। इस भावना से प्रेरित होकर दक्षिणी राज्यों की सरकारों ने प्रशा के साथ एक समझौता किया, जिससे दक्षिणी राज्यों ने उत्तर जर्मन संघ में प्रवेश किया। यह भी तय हुआ कि इस संपूर्ण संघ को जर्मन साम्राज्य का नाम दिया जाए। प्रशा के राजा इसके प्रधान होंगे तथा उनकी जर्मनी के सम्राट की उपाधि प्रदान की जाएगी।
18 जनवरी, 1871 को इस व्यवस्था को विश्व के सामने एक विशेष समारोह के माध्यम से घोषित किया गया। इसी समारोह में विलियम प्रथम को, जो अपने भाई फ्रेंडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु के बाद राजा बने थे, जर्मन सम्राट की उपाधि प्रदान गया तथा उन्हें चांसलर के पद पर नियुक्त किया गया ।
निष्कर्ष– उपर्युक्त विवेचन से उभरकर आने वाली मुख्य बातें इस प्रकार हैं–

जर्मनी में उदारवादी आंदोलन की असफलता का एक कारण स्पष्ट है कि सन् 1850 के बाद धीरे–धीरे जर्मनी में उदारवाद के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना अधिक शक्तिशाली होती चली गई। इसका कारण भावी युद्धों की संभावना थी। जब उदारवादी दल की कोई भी योजना व आंदोलन सफल न हो सका तब एकीकरण के अंतिम चरण में राष्ट्रीय उदारवादी दल का जन्म हुआ। इस दल के नाम से ही जर्मन जनमानस का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अर्थात् पहले राष्ट्रीयता का स्थान, बाद में उदारवाद का था। इसी राष्ट्रीयता के बल पर बिस्मार्क ने एकीकरण की दिशा में सफलता की नींव रखी।

सन् 1848 में फ्रैंकफर्ट संसद में दो नारे प्रमुख थे–

एकता

उदारवादियों का स्वतंत्रता के प्रति अधिक रूझान था, किंतु बार–बार उदारवादियों की सफलता के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वार्थ की पूर्ति के लिए स्वतंत्रता के स्थान पर एकता के आदर्श को ही धीरे–धीरे अधिक महत्व दिया जाने लगा। इस संदर्भ में यह बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि इसका अर्थ यह नहीं है कि उदारवाद पूर्णतया समाप्त हो गया । उदारवाद का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ। इसका प्रमाण भविष्य में प्रगतिवादी दल (च्तवहतमेपअम चंतजल) और उदारवादी दल के साथ बिस्मार्क के विरोध में ही मिलता है । उदारवादी भी जर्मन एकीकरण को सफल बनाने के लिए एकता की आवश्यकता समझ रहे थे – फलतः बैनिगसन तथा मिकेल ने भी जो नात्सनियाल फेरैन के उदारवादी नेता तथा समर्थक थे– बिस्मार्क का एकीकरण से पूर्व व बाद में भी समर्थन किया। जर्मनी का एकीकरण तो हो गया लेकिन इसका निर्माण अभी शेष था।

नात्सनियाल फरेन की स्थापना 1859 के सितम्बर के महीने में हुई थी । जर्मनी के उदारवाद को प्रोत्साहित करने में इस संस्था का एक महत्वूपर्ण योगदान रहा, हालांकि अंत में इस संस्था के प्रयत्न निष्फल रहे फिर भी सन् 1859–1868 के काल में इस संस्था ने जर्मनी के एकीकरण में एक उल्लेखनीय भाग लिया । इसकी विचारधारा तथा आदर्शों से इटली की सोसाइटी नात्सनियाल इटालियाना को जिस संस्था ने इटली के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त करने में पर्याप्त सहायता दी थी– बहुत प्रेरणा मिली थी। जर्मनी की नात्सनियाल फेरैन की स्थापना मुख्यतः उत्तर जर्मनी के उदारवादियों ने ही की थी।

यह संस्था जर्मनी की प्रथम राजनीतिक संस्था थी । जर्मनी के बिखरे हुए राज्य की सीमा को तोड़कर समस्त उदारवादियों व गणतंत्रवादियों को एकत्रित और संघटित करके इस संस्था ने एक राष्ट्रीय दल बनाना चाहा । इसका सामान्य लक्ष्य समग्र सामरिक तथा गणतांत्रिक शक्तियों का केंद्रीकरण करना था । यह एक प्रतिनिधिमूलक संसद की प्रतिष्ठा करना चाहती थी जो विदेशियों के विरुद्ध जर्मनी के हितों की रक्षा कर सके। कुछ स्थानीय शासन के अधिकार प्राप्त करना तथा गैर–कानूनी नौकरशाही व्यवस्था व पुलिस राज

सुधार करना भी इस संस्था के उद्देश्य थे।

में
कुछ कारणों से यह संस्था एक सुसंगठित दृढ़ सफल राजनीतिक दबाव डालने वाली न बन पाई, क्योंकि नरमपंथी गणतांत्रिक दल और नरमपंथी सांविधानिक दल दोनों ही इसमें शमिल थे। यह संस्था उत्तर और दक्षिणी जर्मनी के मध्य में जो व्यवधान था, उसको भी समाप्त करना चाहती थी। यह कार्य वास्तव में बहुत मुश्किल था, क्योंकि इसका सामान्य झुकाव लघु जर्मनी के प्रति ही था – जिससे दक्षिण संतुष्ट नहीं हो सकता था। इसके विरुद्ध इटली की इसके अनुरूप संस्था की सफलता का कारण कैबूर और पीडमाट सरकार के मध्य प्रत्यक्ष समझौता था, जो जर्मनी की विभिन्न राज्य सरकारों तथा नातनियाल फरैन के बीच नहीं हो सका । नात्सनियाल फेरैन को तो कुछ जर्मन राज्यों के विरोध का सामना करना पड़ा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि नात्सनियाल फेरैन एक ऐसे जर्मन बंडेस्टाट की प्रतिष्ठा चाहती थी जिसमें प्रशा की अस्तित्व जर्मन प्रजातंत्रवादी संविधान में लीन हो जाए। साथ ही इस संस्था ने यह भी चाहा था कि जर्मनी के राजनीतिक नेतृत्व का भार केवल प्रशा को ही दिया जाए। लेकिन प्रशा शक्तिशाली राजतंत्रवादी संस्थाओं पर आधारित होने के कारण पूर्ण रूप से नात्सनियाल फेरैन के पक्ष में नहीं था। ऐसे विरोधी भाव में नात्सनियाल फेरैन के पक्ष में नहीं था। ऐसे विरोधाभाव में नात्सनियाल फेरैन का अपना स्वरूप तथा अस्तित्व, मध्यवर्ग के और उच्च कुलीन वर्ग के, जिसमें बुद्धिजीवी, सरकारी कर्मचारी तथा उद्योगपति भी सम्मिलित थे– स्वार्थों के कारण खोता चला गया और सन् 1868 में यह संस्था पूर्ण रूप से भंग हो गई। इसके पहले नात्सनियाल फेरैन ने जर्मनी में उदारवादी भावनाओं को मध्य वर्ग में फैलाया था। जर्मनी के एकीकरण में नात्सनियाल फेरैन के योगदान को किसी भी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता। परवर्ती काल में नए जर्मनी के निर्माण एवं प्रतिष्ठा की स्थापना नए सिद्धान्तों पर करने का भार विलियम प्रथम तथा बिस्मार्क पर पड़ा ।

अंत में बिस्मार्क की नीति पर टिप्पणी करते हुए कहा जा सकता है कि सन् 1866 तक तो बिस्मार्क की एकीकरण की नीति पूर्व निर्धारित थी, जैसे डेनमार्क के साथ लड़ाई के बाद श्लेसविग और हॉल्सटीन का प्रशासनिक बँटवारा । उन्होंने पूर्ण रूप से यही सोच विचार करके किया था ताकि उन दो राज्यों की समस्या को लेकर ही ऑस्ट्रिया के साथ भविष्य में विरोध तथा युद्ध का बहाना ढूँढ़ा जा सके परंतु इस काल के बाद अर्थात सन् 1870 में जब फ्रांस और प्रशा का युद्ध हुआ तब बिस्मार्क की नीति पूर्ण रूप से निर्धारित नहीं थी क्योंकि स्पेन सिंहासन में लियोपोल्ड का नाम प्रस्तुत करना उनका कार्य नहीं था– बल्कि यह कार्य स्पेन ने स्वयं ही किया था और न ही बाद में बिस्मार्क ने इस प्रार्थी के लिए कोई जोर दिया था परंतु इस समय कुछ राजनीतिक घटनाओं ने परिस्थितियों को ऐसा बना दिया जो बिस्मार्क के लिए अनुकूल हो गईं और यह बात निःसंदेह सत्य और ग्राह्य है कि इस अनुकूल परिस्थिति का बिस्मार्क
ने

पूरा—पूरा लाभ उठाया।

स्व—प्रगति की जाँच करें :
कहते हैं कि मेनी के संग्राम का प्रारम्भ जर्मनी की सांस्कृतिक दार्शनिक पृष्ठभूमि में तैयार हुआ। इसे स्पष्ट करें।
4. जर्मनी में दो परस्पर विरोधी शक्तियों रूढ़िवादियों और नवीन विचार धारा में आस्था रखने वालों के बीच किस अवधि के दौरान संघर्ष होता
रहा?
सारांश
जर्मनी में उदारवादी आंदोलन की असफलता का एक कारण स्पष्ट है कि सन् 1850 के बाद धीरे – धीरे जर्मनी में उदारवाद के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना अधिक शक्तिशाली होती चली गई। इसका कारण भावी युद्धों की संभावना थी। जब उदारवादी दल की कोई भी योजना व आंदोलन सफल न हो सका तब एकीकरण के अंतिम चरण में राष्ट्रीय उदारवादी दल (छंजपवदंस स्पइमतंस च्तजल) का जन्म हुआ। इस दल के नाम से ही जर्मन जनमानस का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अर्थात् पहले राष्ट्रीयता का स्थान, बाद में उदारवाद का था। इसी राष्ट्रीयता के बल पर बिस्मार्क ने एकीकरण की दिशा में सफलता की नींव रखी।
स्व—प्रगति की जाँच के उत्तर :
सन् 1786 की फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव से जर्मनी एक संक्रांति काल में पहुँचा। फ्रांस से सम्पर्क तथा नेपोलियन के आक्रमण व शासन के फलस्वरूप जर्मनी में आधुनिक युग का उदय हुआ। सन् 1806 में पवित्र रोमन सम्राट की समाप्ति हुई। इससे जर्मन समाज की प्राचीन धार्मिक रूढ़ियाँ क्षीण होती गईं। साथ ही इस परिवर्तन के फलस्वरूप जर्मन लोगों में अपनी भूमि, अपनी संस्कृति के प्रति चेतना भी बढ़ती गई और पवित्र रोमन सम्राट की उपाधि समाप्त हो जाने से यह बात भी प्रतिष्ठित हुई कि जर्मनी संघ (ळमतउंद ब्वदमिकमतंजपवद) का कोई भी राज्य अपना शक्ति – बल बढ़ाकर जर्मन – संघ में प्रभुत्व स्थापित कर सकता था।
जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ— जर्मन की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर दुष्टिपात करने से कुछ तथ्य उभर कर आते हैं जो उन कारणों पर प्रकाश डालते हैं जो जर्मनी के एकीकरण के प्रारंभिक काल में बाधक बने रहे ?
(प) जर्मनी के विभिन्न राज्यों की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक असमानताएँ, (पप) पवित्र रोमन साम्राज्य का प्रभाव
(पपप) जर्मन की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप
जर्मनी की सांस्कृतिक दार्शनिक जागृति की पृष्ठभूमि में ही जर्मनी के संग्राम का प्रारंभ हुआ जिसके परिणामस्वरूप नेपोलियन का पतन हुआ। सन् 1813 के राष्ट्रों के युद्ध में नेपोलियन की पराज्य हुई थी । यद्यपि यह विजय जर्मनी की

सैन्य शक्ति की ही विजय थी। फिर भी जर्मनी के निवासी इस विजय को अपनी राष्ट्रीयता की ही विजय समझने लगे थे। आगे चलकर इस विजय के ऐतिहासिक महत्व में और वृद्धि हुई। सन् 1817 में राष्ट्रीय विचारधारा वाले कुछ छात्रों ने राष्ट्रों के युद्ध की चौथी वर्षगाँठ मनाई। इसके साथ ही उन्होंने सन् 1817 में मार्टिन लूथर द्वारा पोप – विरोधी घोषणा का भी स्मरण किया और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। इस घटना का यही महत्व रहा कि इससे जर्मनी में ध ीरे–धीरे एक राष्ट्रीयता की भावना पनपी । एक स्मरणीय तथ्य यह है कि उपर्युक्त घटना (1817) में भाग लेने वाले छात्रों में से अनेक छात्रों ने 20 साल बाद भी चिकित्सक, अध्यापक या वकील के रूप में सन् 1848 की फ्रेंकफर्ट संसद में भी भाग लिया ।

सन् 1815 से 1833 के मध्य जर्मनी में दो परस्पर विरोधी शक्तियों रूढ़िवादियों और अठारहवीं शताब्दी

की नवीन विचारधारा में आस्था रखने वालों में संघर्ष शुरू हो गया।

अभ्यास–प्रश्न

1. जर्मनी के एकीकरण की पृष्ठभूमि की समीक्षा करें।
2. फ्रांसीसी क्रान्ति के पूर्व जर्मनी की स्थिति की समीक्षा करें।
3. जर्मनी के एकीकरण में कौन–कौन सी बाधाएँ थीं?
4. मैटरनिख और जर्मनी का विश्लेषण करें।
5. जर्मनी में उदारवादी आन्दोलन का प्रारम्भ कब हुआ ?
6. श्लेजविग – हाल्स्टीन का प्रश्न क्या था?

संदर्भ सूची

1. " विश्व इतिहास" – अरुण कुमार

2. "History of the World" – अरजुन देव (NCERT पुस्तक)

3. " विश्व इतिहास का सं क्षिप्त अध्ययन" – राम स्वरूप शुक्ल

4. "World History for UPSC" – नॉर्मन लो (Norman Lowe)

5. " विश्व इतिहास के प्रमुख प्रश्न" – बालाजी पब्लिकेशन

MATS UNIVERSITY

MATS CENTER FOR OPEN & DISTANCE EDUCATION

UNIVERSITY CAMPUS : Aarang Kharora Highway, Aarang, Raipur, CG, 493 441

RAIPUR CAMPUS: MATS Tower, Pandri, Raipur, CG, 492 002

T : 0771 4078994, 95, 96, 98 M : 9109951184, 9755199381 Toll Free : 1800 123 819999

eMail : admissions@matsuniversity.ac.in Website : www.matsodl.com